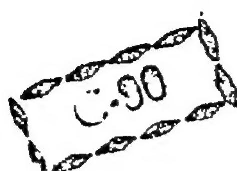


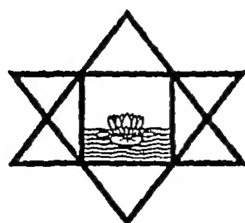
श्रीअरविन्द-साहित्य

खण्ड 12

श्रीअरविन्दकी बंगला रचनाएँ

SRI AUROBINDO'S BENGALI WRITINGS

श्रीअरविन्द



श्रीअरविन्द सोसायटी
पांडिचेरी - 2

अनुवादक:
हृदय

प्रथम संस्करण, वर्ष

Price Rs. मूल्य रू०

•

· श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-2.

ग्रि प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा० लि०
अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-3.

भूमिका

विलायतमे रहते हुए ही श्रीअरविन्दने बगलामे लिखना आरम्भ कर दिया था — थोडा-बहुत अपने पिताके निर्देशको अमान्य कर, कारण, शुरू-शुरूमे न सही पर कालेज जीवनमे उन्हे बगालियोके साथ मिलने-जुलनेका काफी मौका मिला था, फिर सिविल-सर्विसके लिए भारतीय भाषाके तौरपर उन्होंने बगला ली थी (सिविल-सर्विसके लिए एक भारतीय भाषा सीखनी पडती है)। इस प्रसगमे उन्होंने हमे एक मजेदार कहानी सुनायी थी। उनके बगलाके शिक्षक थे एक अग्रेज — पक्के अग्रेज। मास्टर साहबके ज्ञानकी दौडकी परीक्षा करनेके लिए एक शरारती छात्रने एक बगला रचना (बकिमसे नकल कर) उनके हाथमे दी और पूछा "सर, यह बगला लेख बडा कठिन है, समझ नही पा रहा, जरा समझा देगे?" मास्टर साहबने कुछ देरतक बडे गौरसे उस लेखको देखा, उलट-पलटकर परखा, तब आई सी एसी राय दी "This is not Bengali" (यह तो बगला ही नही।)

श्रीअरविन्दने विधिवत् बगला सीखनी आरम्भ की बडौदा आते ही — पढना, लिखना और बोलना। इसका ही पहला फल हुआ बकिमचन्द्रपर निबन्धावली, फिर क्रमश चडीदास, विद्यापति आदि कवियोका अनुवाद। 'वसुमति'-सस्करणकी पूरी ग्रथावली उनके निजी पुस्तकालयमे थी। पढते समय काफी सारे मतव्य उन्होने उन पुस्तकोमे लिख रखे थे, जैसे, मधुसूदनकी कुछ कविताओ-पर। बगला लेखनमे भी (काव्य रचनापर) उन्होंने हाथ चलाया था। इसके बारेमे उनके बडे भाई मनमोहन घोषने एक कुतूहली सवाद प्रस्तुत किया है। मनमोहनने रवीद्रनाथको लिखा — अरविन्द अपनी कुछ कविताए (अग्रेजी) रवीद्रनाथको भेजेगे शायद। पर वह तो आजकल व्यस्त है बगला कविता लिखनेमे। अग्रेजी कविता करनेमे वह खूब ही सुदक्ष है, वह आजकल बेकार समय नष्ट कर रहा है बगला कविता लिखनेकी चेष्टामे। लिख रहा है — ऊषाहरण काव्य (मधुसूदनके ही ढगपर)। किन्तु मनमोहनने खुद भी ठीक इसी विषयपर एक काव्य रचा है।

अस्तु, हमारे इस सग्रहमे उनके बगलामे लिखनेका प्रथम निदर्शन है मृणालिनीको लिखे पत्र, और अन्तिम है पाडिचेरीमे कुछ साधकोको लिखित पत्रावली। पाडिचेरीके पहले अधिकतर बगला रचनाए लिखी गयी थी 'धर्म'

पत्रिकाके लिए। अन्तिम कुछ अकोको छोड 'धर्म'के सारे लेख हैं श्रीअरविन्दके। 'कारा-कहानी' और अन्य एक-आध लेख छपे थे अन्यत्र। पाडिचेरीमे उन्होंने लिखा था ऋग्वेदपर — कुछ अनुवाद और टीका। श्रीअरविन्दकी बगला रचनाकी शैली एक ओर जहा है सस्कृत बहुल (जैसे, 'दुर्गा-स्तोत्र', 'जगन्नाथका रथ', 'हमारा धर्म',), वहा दूसरी ओर सहज, सरल, बोल-चालकी भाषापर भी है उनका समान अधिकार। विषय और उद्देश्यके अनुसार है यह विविधता। 'गीता' और 'कारा-कहानी'के सिवा श्रीअरविन्दकी सारी बगला रचनाए हैं निबधाकार। पुस्तकाकारमे सगृहीत होनेपर भी 'गीताकी भूमिका' और 'कारा-कहानी' हैं असम्पूर्ण। अत वर्तमान रचनावलीमे पुस्तकोको खडित कर विषयानुसार विभिन्न निबन्ध विभिन्न विभागोमे सजाये गये हैं।

सूची

श्रीअरविन्दकी बंगला रचनाएँ

दुर्गा-स्तोत्र

दुर्गा-स्तोत्र

मातः दुर्गे! सिंहवाहिनि सर्वशक्तिदायिनि मातः शिवप्रिये! तुम्हारे शक्त्यंशसे उत्पन्न हम भारतके युवकगण तुम्हारे मंदिरमें आसीन हैं, प्रार्थना करते हैं,—सुनो मातः, भारतमें आविर्भूत होओ, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! युग-युगमें मानवशरीरमें अवतीर्ण हो जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही कार्य कर तुम्हारे आनन्दधामको लौट जाते हैं। इस बार भी जन्म ले तुम्हारे ही कार्यव्रती हैं हम, सुनो मातः, भारतमें आविर्भूत होओ, सहाय होओ।

मातः दुर्गे! सिंहवाहिनि, त्रिशूलधारिणि, वर्म-आवृत-सुन्दर-शरीरे, मातः जयदायिनि! भारत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, तुम्हारी वही मंगलमयी मूर्ति देखनेके लिए उत्सुक है। सुनो मातः, भारतमें आविर्भूत होओ, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! बलदायिनि, प्रेमदायिनि, ज्ञानदायिनि, शक्तिस्वरूपिणि भीमे, सौम्य-रौद्र-रूपिणि! जीवन-संग्राममें, भारत-संग्राममें तुम्हारे ही प्रेरित योद्धा हैं हम, दो मातः, प्राणमें, मनमें असुरकी शक्ति, असुरका उद्यम, दो मातः, हृदयमें, बुद्धिमें देवताका चरित्र, देवताका ज्ञान।

मातः दुर्गे! जगत्-श्रेष्ठ भारतजाति निविड़ तिमिरसे आच्छन्न थी। तुम मातः, गगनप्रांतमें क्रमशः उदय हो रही हो, तुम्हारे स्वर्गीय शरीरकी

एक

पुनर्जन्म

पुनर्जन्मका मत लगभग उतना ही पुरातन है जितना कि स्वय विचार-चिन्तन, और उसकी उत्पत्ति अज्ञात है। अपनी-अपनी पूर्वमान्यताओके अनुसार हम उसे या तो प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुभवका फल मान सकते हैं जिसका सदैव पुनर्नवीकरण किया जा मकता और जिसकी मत्यताका परीक्षण किया जा सकता है और फलत वह सत्य रहता है, या हम उसे दार्शनिक मतवाद और विचक्षण कल्पना कह कर विदा कर दे सकते हैं परन्तु इन दोनो ही दशाओमे यह सम्भावना रहती है कि जैसे यह सिद्धान्त, हम जहाँ तक देख सकते हैं, लगभग मानवीय विचार-चिन्तनके जितना पुरातन है, वैमे ही वह तव तक टिका भी रहे जव तक मानवप्राणियोकी विचारक्रिया चलती रहेगी।

पूर्वकालमे यह सिद्धान्त यूरोपमे "ट्रासमाइग्रेशन" (देहान्तरण) के अनोखे नामसे चलता था। इससे पाश्चात्य मनके सामने पाइथागोरसके अन्तरात्माका मनमानी यात्रा करनेवाले पक्षीकी तरह दिव्य मानवीय रूपमेसे निकलकर गिनी-पिग या गदहे-के शरीरमे चले जानेका विनोदमय चित्र उपस्थित होता था। इस सिद्धान्तका दार्शनिक आदर यूनानके प्रगसनीय किन्तु फिर भी दु साध्य शव्द "मेटमसाइकोसिस" मे हुआ जिसका अर्थ उसी चैत्य व्यक्तिके द्वारा एक नये शरीरमे अन्तरात्माका अनुप्रवेशन होता है। यूनानी भाषा विचार और शव्दका सुखद गठवधन करनेमे सदा भाग्यवती रही है और इससे अधिक अच्छा शव्द नही मिल सकता। परन्तु अंग्रेजीमे जवर्दस्ती घुसानेसे वह वस एक लम्वा और पडिताऊ शव्द वनकर रह जाता है, उसके सूक्ष्म यूनानी भावकी कोई स्मृति नही रहती और उसे छोड देना पडता है। अव "रीइनकार्नेशन" (पुनर्देहधारण) का चलन है, परन्तु इम शव्दमे जो भाव है वह तथ्यके प्रति स्थूल या वाह्य दृष्टिकी ओर झुकता है और वहुत सारे प्रश्न खडे कर देता है। मै "रिवर्थ" शव्दको पसन्द करता हू, क्योकि वह सस्कृतके विस्तीर्ण, वर्णहीन, परन्तु पर्याप्त शव्द "पुनर्जन्म" के भावको व्यक्त करता है और जो मूलभूत भाव इस सिद्धान्तका सार-तत्व और प्राण है उसके अलावा किसी चीजके साथ हमे नहीं वाँधता।

आधुनिक मनके लिये पुनर्जन्म एक कल्पना और मतसे अधिक कुछ नही है, वह कभी भी न तो आधुनिक विज्ञानकी पद्धतियोसे प्रमाणित हुआ है, न वैज्ञानिक सस्कृति द्वारा गठित नये आलोचक मनको उसका सतोषजनक प्रमाण ही मिला है। किन्तु

तिमिर-विनाशी आभासे उषाका प्रकाश हुआ है। आलोक-विस्तार करो, मात., तिमिरका विनाश करो।

मातः दुर्गे! श्यामला, सर्वसौन्दर्य-अलकृता, ज्ञान-प्रेम-शक्तिका आधार भारतभूमि तुम्हारी विभूति है, इतने दिनोतक शक्ति-संहरणके लिए उसने आत्मगोपन किया था। आगत युग, आगत दिन समस्त विश्वका भार स्कघ-पर ले भारतमाता उठ रही है, आओ मातः, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! तुम्हारी सन्तान हम, तुम्हारे प्रसादसे, तुम्हारे प्रभावसे महत् कार्यके, महत् भावके उपयुक्त हो। विनाश करो क्षुद्रताका, विनाश करो स्वार्थका, विनाश करो भयका।

मातः दुर्गे! कालीरूपिणि नृमुडमालिनि दिगंबरि, कृपाणपाणि देवि असुरविनाशिनि! क्रूरनिनादसे अतःस्थ रिपुओका विनाश करो। एक भी हमारे भीतर जीवित न रह जाये, हम विमल, निर्मल हो जायें, बस, यही प्रार्थना है मात., प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! स्वार्थसे, भयसे, क्षुद्राशयतासे म्रियमाण हो रहा है भारत। हमें महत् बनाओ, महत्प्रयासी बनाओ, उदारचेता बनाओ, सत्यसकल्पी बनाओ। अब और अल्पाशी, निश्चेष्ट, अलस, भयभीत न बने रहें हम।

मात. दुर्गे! योगशक्तिका विस्तार करो। तुम्हारी प्रिय आर्य-सन्तान हैं हम, लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधाशक्ति, भक्ति-श्रद्धा, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य-ज्ञानका हममें विकास कर जगत्में वितरण करो। मानवसहाये दुर्गति-नाशिनि जगदम्बे, प्रकट होओ।

मात. दुर्गे! अन्त स्थ रिपुओका संहार कर बाहरके बाधा-विघ्नोंको निर्मूल करो। बलशाली, पराक्रमी, उन्नतचेता जाति भारतके पवित्र काननो-में, उर्वर खेतोमें, गगनसहचर पर्वतोंके नीचे, पूतसलिला नदियोंके किनारे,

एकतामें, प्रेममें, सत्यमें, शक्तिमें, शिल्पमें, साहित्यमें, विक्रममें, ज्ञानमें श्रेष्ठ बन निवास करे, मातृचरणोमें यही प्रार्थना है, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे ! हमारे शरीरमें, योगबलसे प्रवेश करो। यन्त्र तुम्हारे, अशुभविनाशी खड्ग तुम्हारे, अज्ञानविनाशी प्रदीप तुम्हारे बनेंगे हम, भारतीय युवकोंकी यह वासना पूर्ण करो। यंत्री होकर यन्त्र चलाओ, अशुभहन्त्री होकर खड्ग घुमाओ, ज्ञानदीप्तिप्रकाशिनी होकर प्रदीप धरो, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे ! तुम्हें पानेपर फिर विसर्जन नही करेंगे, श्रद्धा-भक्ति-प्रेमकी डोरीसे बाँध रखेंगे। आओ मातः, हमारे मनमें, प्राणमें, शरीरमें प्रकट होओ।

वीरमार्गप्रदर्शिनि, आओ ! अब विसर्जन नही करेंगे। हमारा अखिल जीवन अनविच्छिन्न दुर्गापूजा हो, हमारा समस्त कर्म अविरत पवित्र प्रेममय शक्तिमय मातृसेवाव्रत हो, यही प्रार्थना है, मातः, भारतमें आविर्भूत होओ, प्रकट होओ।

कहानी

स्वप्न

एक दरिद्र अँधेरी कोठरीमें बैठा अपनी शोचनीय अवस्था और भगवान्‌के राज्यमें अन्याय-अविचारकी बातें सोच रहा था। दरिद्र अभिमानसे वशीभूत हो कहने लगा, "लोग कर्मकी दुहाई दे भगवान्‌के सुनामकी रक्षा करना चाहते हैं। यदि गत जन्मके पापसे मेरी यह दुर्दशा हुई होती, यदि मैं इतना ही पापी होता तो निश्चय ही इस जन्ममें भी मेरे मनमें पाप-चिंतनका स्रोत बहता होता, इतने घोर पातकीका मन क्या एक दिनमें निर्मल हो सकता है? और उस पाडेके तीनकौड़ी शीलको तो देखो, उसकी धन-दौलत, सोना-चाँदी, दास-दासियोंको देखो, यदि कर्मफल सत्य हो तो निःसन्देह वह पूर्व जन्ममें कोई जगद्विख्यात साधु-महात्मा रहा होगा। परन्तु कहाँ, इस जन्ममें तो उसका चिह्नतक नहीं दिखायी देता। ऐसा निष्ठुर पाजी बदमाश तो संसारमें दूसरा नहीं। नहीं, कर्मवाद है भगवान्‌की ठगविद्या, मन भुलानेका बहाना मात्र। श्यामसुन्दर बड़े चतुरचूड़ामणि हैं, मुझे पकड़ाई नहीं देते, इसीसे खैर है, नहीं तो ऐसा सबक सिखाता कि सब चालाकी भूल जाते।"

इतना कहते ही दरिद्रने देखा कि हठात् उसकी अँधेरी कोठरी अतिशय उज्ज्वल आलोक-तरंगसे प्रवाहित हो उठी, फिर तुरत ही वह आलोक-तरंग अंधकारमें विलीन हो गयी और उसने देखा कि उसके सामने एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक हाथमें दीपक लिये खड़ा है—धीरे-धीरे मुसकरा रहा है, पर कुछ बोलता नहीं। उसके सिरपर मोरमुकुट और पाँवोंमें नूपुर देख दरिद्रने समझ लिया कि स्वयं श्यामसुन्दर ही उसे पकड़ाई देनेके लिए आये हैं। दरिद्र अप्रतिभ हो उठा, एक बार उसने सोचा कि प्रणाम करूँ, किन्तु बालकका विहँसता चेहरा देख किसी तरह भी प्रणाम करनेकी प्रवृत्ति नहीं हुई। अन्तमें उसके मुँहसे यह वाक्य निकल पड़ा—"अरे कन्हैया, तू क्यों आ गया?"

बालकने हँसकर कहा—"क्यों, तुमने मुझे बुलाया था न? अभी-अभी

तो मुझे चाबुक लगानेकी प्रबल इच्छा तुम्हारे मनमें उठी थी! अब तो मैं पकड़में आ गया, उठकर चाबुक लगाओ न।"

दरिद्र और भी अप्रतिभ हुआ, भगवान्‌को चाबुक लगानेकी इच्छाके लिए उसे हृदयमें अनुताप नहीं, किन्तु इतने सुन्दर बालकको स्नेह न कर उसपर हाथ उठाना उसे ठीक सुरुचि-संगत नहीं मालूम हुआ। बालकने फिर कहा—"देखो हरिमोहन, जो मुझसे भय न कर मुझे अपना सखा मानते हैं, स्नेहभावसे गाली देते हैं, मेरे साथ क्रीडा करना चाहते हैं, वे मुझे बहुत ही प्रिय हैं। मैंने क्रीडाके लिए ही जगत्‌की सृष्टिकी है, मैं सर्वदा इस क्रीडाका उपयुक्त साथी खोजता रहता हूँ। परन्तु भाई, ऐसे साथी मिलते कहां हैं? सभी मुझपर क्रोध करते हैं, दावा करते हैं, दान चाहते हैं, मान चाहते हैं, मुक्ति चाहते हैं, भक्ति चाहते हैं, न जाने क्या-क्या चाहते रहते हैं, किन्तु कहां, मुझे तो कोई नहीं चाहता! जो कुछ ये चाहते हैं वही दे देता हूँ। क्या करूँ, इन्हें सन्तुष्ट रखना ही पड़ता है, नहीं तो ये मेरी जानके गाहक बन जायें। देखता हूँ, तुम भी कुछ चाहते हो। नाराज होनेपर चाबुक मारनेके लिए तुम्हें एक आदमी चाहिये, इसी भावको मिटानेके लिए तुमने मुझे बुलाया है। लो, चाबुककी मार खानेके लिए मैं आ गया—ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। फिर भी प्रहार करनेके पहले यदि तुम मेरे मुंहसे कुछ सुनना चाहो तो मैं तुम्हें अपनी प्रणाली समझा दूं। क्यों! राजी हो?"

हरिमोहनने कहा—"समझा सकेगा तो? देखता हूं, तू बहुत बकबक करना जानता है, किन्तु तेरे जैसा नन्हा-सा बालक मुझे कुछ सिखा सकेगा यह मैं कैसे विश्वास करूं?"

बालकने फिर हँसकर कहा—"अच्छा, आओ, देखो, सिखा सकता हूँ या नहीं।"

इतना कह श्रीकृष्णने हरिमोहनके सिरपर हाथ रखा। दरिद्रके समस्त शरीरमें विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगी, मूलाधारमें सुप्त कुंडलिनीशक्ति अग्निमयी भुजंगिनीके रूपमें गर्जन करती हुई ब्रह्मरध्रकी ओर दौड़ी, उसका मस्तिष्क प्राणशक्तिकी तरंगोंसे भर गया। तुरत ही उसे ऐसा लगने लगा कि घरके चारों ओरकी दीवारें मानो दूर भागी जा रही हैं, नाम-रूपमय जगत् मानो उसे छोड़ अनन्तमें छिप गया है। हरिमोहन बाह्यज्ञानशून्य हो गया। जब उसे फिरसे चेतना आयी तो उसने देखा कि वह किसी अपरिचित मकानमें बालकके संग खड़ा है, उसके सामने गालपर हाथ रखे गद्दीपर बैठे हैं एक वयोवृद्ध पुरुष, प्रगाढ़ चिन्तामें निमग्न। उस घोर दुश्चिन्ता-

विकृत, हृदयविदारक निराशा-विमर्षित मुखमण्डलको देख हरिमोहनको यह विश्वास करनेकी इच्छा नही हुई कि यही है ग्रामके वृद्ध हर्ता-कर्ता तीनकौड़ी शील। अन्तमें अत्यन्त भयभीत हो उसने बालकसे कहा—"अरे, यह तूने क्या किया कन्हैया, चोरकी भाति घोर रात्रिमें दूसरेके मकानमें घुस आया ? पुलिस आकर हम लोगोको पकड़ लेगी और मारते-मारते दोनोंके प्राण निकाल देगी! तीनकौडी शीलके प्रतापको क्या तू नही जानता ?"

बालकने हँसकर कहा—"अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु चोरी तो मेरा पुराना धन्धा है, पुलिसके साथ मेरी खूब पटती है, तुम डरो मत। अब मैं तुम्हें सूक्ष्म-दृष्टि देता हूँ, वृद्धके मनके भीतर देखो। तीनकौड़ीके प्रतापको तो तुम जानते ही हो, अब मेरे प्रतापको भी देखो।"

अब देख पाया हरिमोहन वृद्ध तीनकौडीके मनको। देखी शत्रु-आक्रमणसे विध्वस्त धनाढय नगरी। उस तीक्ष्ण और ओजस्विनी बुद्धिमें कितनी ही विकराल मूर्तियाँ, पिशाच और राक्षस प्रवेश कर शान्ति नष्ट कर रहे है, ध्यान भंग कर रहे है, सुख लूट रहे हैं। वृद्धने अपने प्यारे कनिष्ठ पुत्रके साथ कलह किया है, उसे घरसे निकाल दिया है; अब वे बुढापेके प्यारे पुत्रको खो शोकसे म्रियमाण हो रहे है, किन्तु क्रोध, गर्व और हठ उनके हृदयद्वारपर साकल चढा पहरा दे रहे है। क्षमाको प्रवेश करनेका अधिकार नही। उनकी कन्याके नाम दुश्चरित्रा होनेका कलक लगा है, अतः वृद्ध अपनी प्रिय कन्याको घरसे निकाल अब उसके लिए रो रहे हैं; वृद्ध यह जानते हैं कि वह निर्दोष है, किन्तु समाजका भय, लोक-लज्जा, अहकार और स्वार्थने स्नेहको दबा रखा है, उसे वे उभड़नेका अवसर ही नही देते। हजारो पाप-स्मृतियोंसे डरकर वृद्ध बार-बार चौंक उठते है, तथापि पाप-प्रवृत्तियोको सुधारनेका साहस या बल उनमें नही। बीच-बीचमें मृत्यु और परलोककी चिन्ता वृद्धको अत्यन्त दारुण विभीषिका दिखा जाती। हरिमोहनने देखा कि मरनेकी चिन्ताके परदेके पीछेसे विकट यमदूत वृद्धकी ओर बार-बार झाक रहे है और दरवाजा खटखटा रहे हैं। जब-जब ऐसा शब्द होता है तब-तब वृद्धका अन्तरात्मा भयातुर हो चीत्कार कर उठता है। इस भयकर दृश्यको देख हरिमोहन भयभीत हो उठा और बालककी ओर देख बोला—"अरे कन्हैया! यह क्या ? मैं तो सोचता था कि वृद्ध परम सुखी है।"

बालकने कहा—"यही है मेरा प्रताप। अब बोलो, किसका प्रताप अधिक है, उस पाडेके तीनकौडी शीलका या वैकुंठवासी श्रीकृष्णका ? देखो हरिमोहन! मेरे यहाँ भी पुलिस है, पहरा है, गवर्नमेंट है, कानून है,

विचार है, मैं भी राजा बनकर खेल कर सकता हूँ। पसन्द है तुम्हें यह खेल ?"

हरिमोहनने कहा—"ना रे बाबा, यह तो बडा बुरा खेल है। तुझे पसन्द है यह खेल ?"

बालकने हँसते हुए उत्तर दिया—"मैं सभी खेल पसन्द करता हूँ, चाबुक लगाना भी और चाबुक खाना भी।" इसके बाद उसने कहा—"देखो हरिमोहन, तुम लोग केवल बाहरका ही देखते हो, भीतरका देखनेकी सूक्ष्म-दृष्टि अभी तक विकसित नहीं की है। इसीलिए कहते हो कि तुम दुःखी हो और तीनकौडी सुखी। इस आदमीको किसी भी पार्थिव वस्तुका अभाव नहीं—फिर भी यह लखपती तुम्हारी अपेक्षा कितनी अधिक दुःख-यन्त्रणा भोग रहा है। ऐसा क्यों? बता सकते हो? मनकी अवस्थामें ही सुख है और मनकी अवस्थामें ही दुःख। सुख और दुःख हैं मनके विकार मात्र। जिसके पास कुछ नहीं, विपदा ही जिसकी सपदा है, वह अगर चाहे तो उस विपत्तिमें भी परम सुखी हो सकता है। और देखो, जिस तरह तुम नीरस पुण्यमें दिन बिताते हुए सुख नहीं पा रहे हो, केवल दुःखका ही चिन्तन करते रहते हो, उसी तरह ये भी नीरस पापमें दिन बिताते हुए केवल दुःखका ही चिंतन करते हैं। इसीलिए पुण्यसे केवल क्षणिक दुःख और पापसे केवल क्षणिक सुख मिलता है। इस द्वन्द्वमें आनन्द नहीं। आनन्द-आगारकी छवि तो मेरे पास है। जो मेरे पास आता है, जो मेरे प्रेमपाशमें बँधता है, मुझे साधता है, मुझपर जोर-जुल्म करता है, अत्याचार करता है—वह मेरे आनन्दकी छविको वसूल करता है।"

हरिमोहन बडी तत्परताके साथ श्रीकृष्णकी बातें सुनने लगा। बालकने फिर कहा—"और देखो, हरिमोहन, शुष्क पुण्य तुम्हारे लिए नीरस हो गया है फिर भी सस्कारके प्रभावको तुम नहीं छोड पा रहे, उस तुच्छ अहंकारको नहीं जीत पा रहे। इसी तरह वृद्धके लिए पाप नीरस हो गया है फिर भी सस्कारके प्रभावमें वे उसे नहीं छोड पा रहे और इस जीवनमें नरक-यन्त्रणा भोग रहे हैं। इसे ही कहते हैं 'पुण्यका बन्धन' और 'पापका बन्धन'। अज्ञानजनित सस्कार है उस बंधनकी रस्सी। परन्तु वृद्धकी यह नरक-यन्त्रणा बडी शुभ अवस्था है। इससे उनका परित्राण और मगल होगा।"

हरिमोहन अबतक चुपचाप बालककी बातें सुन रहा था, अब उसने कहा—"कन्हैया, तेरी बातें तो बडी मीठी हैं, किन्तु मुझे विश्वास नहीं हो रहा। सुख और दुःख मनके विकार हो सकते हैं, किन्तु इनका कारण है बाह्य अवस्था। देख, क्षुधाकी ज्वालासे जब प्राण छटपटा रहे हों तब क्या

कोई परम सुखी हो सकता है? अथवा जब रोग या यंत्रणासे शरीर कातर हो रहा हो तब क्या, कोई तुझे याद कर सकता है?"

वालकने कहा—"चलो हरिमोहन, यह भी तुम्हें दिखा दूं।"

इतना कह बालकने हरिमोहनके सिरपर पुनः अपना हाथ रखा। स्पर्शका बोध होते ही हरिमोहनने देखा कि तीनकौडी शीलके मकानका अब कही कोई पता नही। एक निर्जन सुरम्य पर्वतके वायुसेवित शिखरपर एक संन्यासी आसन लगाये ध्यानमग्न बैठे है, उनके चरणोंके पास एक विराट्-काय व्याघ्र प्रहरीकी तरह लेटा हुआ है। वाघको देख हरिमोहनके पैरोने आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया, किन्तु वालक उसे खीच सन्यासीके निकट ले ही गया। वालकके साथ पार न पा लाचार हो हरिमोहनको चलना पडा। बालकने कहा—"देखो हरिमोहन।"

हरिमोहनने देखा कि संन्यासीका मन उसकी आँखोके सामने एक खुली बहीके समान पडा है, इसके पन्ने-पन्नेपर 'श्रीकृष्ण' नाम हजार-हजार बार लिखा है। सन्यासी निर्विकल्प समाधिके सिंह-द्वारका अतिक्रमण कर सूर्यलोकमें श्रीकृष्णके सग क्रीडा कर रहे है। उसने और भी देखा, सन्यासी कई दिनोंसे अनाहार है तथा गत दो दिनोंसे उनके शरीरको भूख-प्याससे विशेष कष्ट हो रहा है। हरिमोहनने कहा—"अरे कन्हैया! यह क्या? वावाजी तुझसे इतना प्रेम करते है फिर भी ये भूख-प्यासकी पीडा भोग रहे है। तुझे क्या जरा भी समझ नही? इस निर्जन व्याघ्रसकुल अरण्यमें कौन आहार देगा इन्हें?"

वालकने कहा—"मै दूंगा, किन्तु एक और मजा देखो।"

हरिमोहनने देखा कि बाघने उठकर अपने पजेके एक आघातसे निकट-वर्ती वल्मीकको तोड दिया। फिर क्या था, छोटी-छोटी सैंकडो चीटियाँ बाहर निकल क्रोधसे भर सन्यासीके बदनपर चढ काटने लगी। सन्यासी ज्यो-के-त्यो बैठे रहे ध्यानमग्न, निश्चल, अटल। अब वालकने सन्यासीके कानमें अति मधुर स्वरसे पुकारा—"सखे!" सन्यासीने आँखें खोली। पहले तो उन्होने इस मोह-ज्वालामय दशनका अनुभव नही किया, अभीतक उनके कानोमें वही विश्ववाछित चित्तहारी वशीध्वनि वज रही थी—ठीक उसी तरह जिस तरह वह वृन्दावनमे राधाके कानोमें वजी थी। उसके बाद उन सैंकडो चीटियोंके काटनेसे उनकी बुद्धि शरीरकी ओर आकृष्ट हुई। सन्यासी अपने आसनसे हिले नही—विस्मयपूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—"यह क्या? ऐसा तो कभी नही हुआ। ओहो! यह तो श्रीकृष्ण मेरे सग क्रीडा कर रहे है, क्षुद्र चीटी समूहके रूपमें मुझे काट रहे है।"

हरिमोहनने देखा कि चींटियोंके काटनेकी पीड़ा अब संन्यासीकी बुद्धितक नहीं पहुँचती, प्रत्येक दंशनमें तीव्र शारीरिक आनन्द अनुभव कर, 'श्रीकृष्ण' नाम लेते हुए अधीर आनन्दपूर्वक तालियाँ बजाते हुए नाचने लगे। चींटियाँ धरतीपर गिर-गिरकर भाग गयीं। हरिमोहनने आश्चर्यके साथ पूछा—"कन्हैया, यह कैसी माया?"

बालक ताली बजा एक पैरके बल दो चक्कर काट ठठाकर हँस पड़ा। कहा—"मैं ही हूँ जगत्का एकमात्र जादूगर! इस मायाको तुम नहीं समझ सकोगे, यह मेरा परम रहस्य है। देखा? यन्त्रणामें भी सन्यासी मेरा स्मरण कर सके न! और देखो।"

सन्यासी प्रकृतिस्थ हो फिर बैठ गये; शरीर अब भूख-प्यास अनुभव करने लगा; किन्तु हरिमोहनने देखा कि संन्यासीकी बुद्धि उस शारीरिक विकारका अनुभवमात्र करती है, न तो वह उससे विकृत ही हो रही है न लिप्त ही। तभी पहाड़पर से किसीने वंशीविनिन्दित स्वरसे पुकारा: "सखे!" हरिमोहन चौंक पड़ा। यह तो श्यामसुन्दरका ही मधुर वंशीविनिन्दित स्वर था। उसके बाद देखा कि शिलाचयके पीछेसे एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक थालीमें उत्तम आहार और फल लिये आ रहा है। हरिमोहन हतबुद्धि हो श्रीकृष्णकी ओर देखने लगा। बालक उसके पास खड़ा है, फिर भी जो बालक आ रहा है वह भी अविकल श्रीकृष्ण ही है। दूसरा बालक वहाँ आया और संन्यासीको रोशनी दिखाकर बोला—"देख, क्या लाया हूँ।"

सन्यासीने हँसकर कहा—"आ गया? इतने दिनों तक भूखा ही रखा न? खैर, जब आया है तब बैठ, मेरे संग खा।"

संन्यासी और बालक उस थालीकी खाद्य सामग्री खाने लगे, एक दूसरेको खिलाने लगे, आपसमें छीना-झपटी करने लगे। आहार समाप्त होनेपर बालक थाली ले अन्धकारमें विलीन हो गया।

हरिमोहन कुछ पूछने ही जा रहा था कि हठात् उसने देखा कि न वहाँ श्रीकृष्ण हैं न संन्यासी! न बाघ और न पर्वत। वह अब एक भद्र पल्लीमें वास कर रहा है। प्रचुर धन-दौलत है, स्त्री है, परिवार है, नित्य ब्राह्मणोंको दान देता है, भिक्षुकोंको दान देता है, त्रिकाल सन्ध्या करता है, शास्त्रोक्त आचार-विचारकी यत्नपूर्वक रक्षा करता हुआ रघुनंदन प्रदर्शित पथपर चलता है। आदर्श पिता, आदर्श स्वामी और आदर्श पुत्र बनकर जीवन यापन करता है। परंतु दूसरे ही क्षण उसने भयभीत होकर देखा कि जो इस भद्र ग्राममें वास करते हैं उनमें लेशमात्र भी सद्भाव या आनन्द

नही, ये यत्रकी तरह वाह्य आचार-रक्षाको ही पुण्य समझते हैं। इस जीवनसे हरिमोहनको आरम्भमें जितना आनन्द हुआ था, अब उसे उससे उतनी ही यत्रणा होने लगी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसे भयानक प्यास लगी है, किन्तु जल नही मिल रहा, वह धूल फांक रहा है, धूल, केवल धूल, अनन्त धूल खा रहा है। वहाँ से भाग वह एक दूसरे गाव गया, वहाँ एक विराट् अट्टालिकाके सामने अपार जनसमूह और उसके आशीर्वादका कोलाहल मचा हुआ था। हरिमोहनने कुछ आगे बढकर देखा कि तीनकौड़ी शील दालानमें बैठे उस जनतामें अशेष धन बाँट रहे हैं, कोई भी वहाँ से निराश नही लौट रहा। हरिमोहन ठठाकर हँस पड़ा, उसने सोचा—"यह कैसा स्वप्न! तीनकौडी शील और दाता!" उसके बाद उसने तीनकौड़ीके मनको देखा। उसे ज्ञात हुआ कि उस मनमें लोभ, ईर्ष्या, काम, स्वार्थ आदि हजारो अतृप्तियाँ और कुप्रवृत्तियाँ 'देहि, देहि' चिल्ला रही हैं। तीनकौड़ीने पुण्यके लिए, यशके लिए, गर्वके वश उन भावोको अतृप्त अवस्थामें ही किसी तरह दबा रखा है, अपने चित्तसे उन्हें भगा नही दिया है। इसी बीच हरिमोहनको पकड़ कोई जल्दी-जल्दी परलोक दिखा लाया। हरिमोहन हिन्दूका नरक, ईसाईका नरक, मुसलमान का नरक, यूनानीका नरक, हिन्दूका स्वर्ग, ईसाईका स्वर्ग, मुसलमानका स्वर्ग, यूनानीका स्वर्ग—न मालूम और कितने ही नरको और कितने ही स्वर्गोको देख आया। उसके बाद उसने देखा कि वह अपने ही मकानमे, अपनी परिचिता फटी चटाईपर मैले तोशकका अवलम्ब ले बैठा है, सामने ही श्यामसुन्दर खड़े हैं। बालकने कहा—"रात अधिक हो गयी है, यदि मैं घर न लौटा तो घरवाले सभी मुझे डाँटेंगे, पीटेंगे। सक्षेपमें ही कहता हूँ। जिन स्वर्गों और नरकोको तुमने देखा है, वे सब स्वप्न-जगत्‌के हैं; कल्पना-सृष्ट हैं। मनुष्य मरनेके बाद स्वर्ग-नरक जाता है, अपने गत जन्मके भावको अन्यत्र भोगता है। तुम पूर्वजन्ममें पुण्यवान् थे, किन्तु उस जन्ममें प्रेमको तुम्हारे हृदयमें स्थान नही मिला। न तुमने ईश्वरसे प्रेम किया न मनुष्यसे। इसलिये प्राण त्याग करनेके बाद स्वप्न-जगत्‌में उस भद्र पल्लीमें निवास कर पूर्व जीवनके भावोका तुम भोग करने लगे, भोग करते-करते उस भावसे ऊब गये, तुम्हारे प्राण व्याकुल होने लगे और वहाँसे निकल तुम धूलिमय नरकमें वास करने लगे, अतमें जीवनके पुण्य फलोका भोग कर पुनः तुम्हारा जन्म हुआ। उस जीवनमें छोटे-मोटे नैमित्तिक दानोको छोड़, नीरस बाह्य व्यवहारको छोड, किसीके अभावको दूर करनेके लिए तुमने कुछ नही किया। इसीलिए इस जन्ममें तुम्हें इतना अभाव है। और

अभी भी जो तुम नीरस पुण्य करते हो उसका कारण यही है कि केवल स्वप्न-जगत्के भोगसे पाप-पुण्यका सपूर्ण क्षय नही होता, इनका सपूर्ण क्षय तो पृथ्वीपर कर्मफल भोगनेसे ही होता है। तीनकौडी गत जन्ममें दाता कर्ण थे, हजारों व्यक्तियोंके आशीर्वादसे इस जन्ममें लखपती हुए हैं, उन्हें किसी वस्तुका अभाव नही। परन्तु उनकी चित्तशुद्धि न होनेके कारण उन्हें इस समय अपनी अतृप्त कुप्रवृत्तियोको पाप-कर्मोंद्वारा तृप्त करना पड रहा है। कर्मवाद समझ गये क्या? न तो यह पुरस्कार है न दड—यह है अमगलद्वारा अमगलकी और मंगलद्वारा मंगलकी सृष्टि। यह है प्रकृतिका नियम। पाप अशुभ है, उसके द्वारा दु:खकी सृष्टि होती है; पुण्य शुभ है, उसके द्वारा सुखकी सृष्टि होती है। यह व्यवस्था चित्तकी शुद्धिके लिए, अशुभके विनाशके लिए की गयी है। देखो हरिमोहन, पृथ्वी मेरे वैचित्र्यमय जगत्का एक अति क्षुद्र अश है, किन्तु कर्मद्वारा अशुभका नाश करनेके लिए तुम लोग यहाँ जन्म ग्रहण करते हो। जव पाप-पुण्यके हाथोंसे परित्राण पा तुम लोग प्रेम-राज्यमें पदार्पण करते हो तब इस कार्यसे छुटकारा पा जाते हो। अगले जन्ममें तुम भी छुटकारा पा जाओगे। मैं अपनी प्रिय भगिनी शक्ति और उसकी सहचरी विद्याको तुम्हारे पास भेजूंगा, परन्तु देखो, एक शर्त है, तुम मेरे खेलके साथी बनोगे, मुक्ति नही माँग सकोगे। राजी हो?"

हरिमोहनने कहा—"कन्हैया! तूने मेरा बडा उपकार किया! तुझे गोदमें ले प्यार करनेकी बडी इच्छा होती है; मानो इस जीवनमें अब कोई वासना नही रह गयी।"

बालकने हँसते हुए कहा—"हरिमोहन, कुछ समझा?"

हरिमोहनने उत्तर दिया—"समझा क्यो नही?" इसके बाद उसने कुछ सोचकर कहा—"अरे कन्हैया, तूने फिर मुझे ठगा। अशुभका सृजन तूने क्यो किया इसकी तो कोई कैफियत दी ही नही।" इतना कह उसने बालकका हाथ पकड लिया। बालकने अपना हाथ छुडा हरिमोहनको धमकाते हुए कहा—"दूर रहो, घटे भरमें ही मेरी सभी गुप्त बातें कहला लेना चाहते हो?" इतना कह बालकने हठात् दीपक बुझा दिया और हरिमोहनसे कुछ दूर हटकर हँसते हुए कहा—"क्यो हरिमोहन, चाबुक मारना तो तुम एकदम भूल ही गये। इसी भयसे मैं तुम्हारी गोदमें नही बैठा, कही तुम बाह्य दु:खसे क्रुद्ध हो मेरी खबर न लेने लगो! मुझे तुमपर जरा भी विश्वास नही।"

हरिमोहनने अधकारमें अपना हाथ बढाया, किन्तु बालक और दूर हट

गया, बोला—"नही, यह सुख मैं तुम्हारे दूसरे जन्मके लिए बाकी रख छोडता हूँ। अच्छा अब चला।"

इतना कह उस अंधेरी रातमें बालक न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। हरिमोहन उसकी नूपुरध्वनि सुनते-सुनते जाग उठा। जगकर उसने सोचा, "यह कैसा स्वप्न देखा! नरक देखा, स्वर्ग देखा, और भगवान्‌को 'तू' कहा, छोटा-सा बालक समझ कितना डाँटा, डपटा! कैसा पाप किया। परन्तु जो हो, प्राणमें अपूर्व शान्तिका अनुभव कर रहा हूँ।" हरिमोहन अब उस कृष्णवर्ण बालककी मोहिनी मूर्तिको स्मरण करने लगा और बीच-बीचमें कहने लगा: "कितनी सुन्दर, कितनी सुन्दर!"

क्षमाका आदर्श

चांद धीर गतिसे मेघके अंतरालमें लुकता-छिपता, तिरता चला जा रहा था। नीचे, कलकल करती, समीरसे सुर मिलाती, नाचती, वलखाती नदी वह रही थी। पृथ्वीका सौन्दर्य अपूर्व हो उठा था ज्योत्स्ना और अंधकारके मिलनसे।

चारों ओर ऋषियोंके आश्रम। एक-एक आश्रम नंदन वनको लजा रहा था। पुष्पित तरु-लताओंसे घिरी ऋषि-कुटी एक अनुपम श्रीसे शोभित थी।

एक दिन ऐसी ही ज्योत्स्ना-पुलकित रात्रिमें ब्रह्मर्षि वशिष्ठदेव अपनी सहधर्मिणी अरुंधतीसे कह रहे थे —

"देवि, जाओ, ऋषि विश्वामित्रसे थोड़ा नमक माग लाओ।"

इस उक्तिसे विस्मित हो अरुंधती देवीने पूछा—"प्रभु, यह आपकी कैसी आज्ञा। मैं कुछ भी नही समझ पा रही। जिसने हमें शत पुत्रोंसे वंचित किया उसी......"

इतना कहते-कहते देवी विलखने लगी। सारी पूर्व स्मृतियां जाग उठी। वह अपूर्व शान्तिका आलय, गंभीर हृदय व्यथित हो उठा। वे कहने लगी—"मेरे शत पुत्र चादनी रातमें वेदगान करते हुए विचरते थे। मेरे सौ-के-सौ पुत्र वेदविद् एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। मेरे ऐसे पुत्रोको उसने मार डाला और आप मुझे उसके यहां नमक माग लानेके लिए भेज रहे हैं! मैं किंकर्तव्यविमूढ हो गयी हूँ।"

धीरे-धीरे ऋषिका श्रीमुख ज्योतिसे चमकने लगा और सागरोपम हृदयसे एक वाक्य फूटा—"देवि, मैं उसे स्नेह जो करता हूँ।"

यह सुन अरुंधती और भी विस्मित हुई। वोली—"यदि आप उसे चाहते हैं तो उसे 'ब्रह्मर्षि' कहनेसे ही तो सारा वखेडा चुक गया होता और मुझे अपने सौ पुत्रोसे वचित न होना पड़ता।"

ऋषिके मुखपर एक अनोखी कांति विराज रही थी। वोले—"उसे

स्नेह करता हूँ तभी तो उसे 'ब्रह्मर्षि' नही कहा। मैंने उसे 'ब्रह्मर्षि' संबोधित नहीं किया है इसीलिए उसके 'ब्रह्मर्षि' होनेकी आशा है।"

आज विश्वामित्र क्रोधसे ज्ञानशून्य हैं। अब और उनका मन तपस्यामें नही लग रहा। उन्होने संकल्प किया है: आज यदि वशिष्ठने उन्हें 'ब्रह्मर्षि' नही कहा तो उनके प्राण लेकर ही छोड़ेंगे। संकल्पको कार्यान्वित करनेके लिए हाथमें तलवार ले कुटीसे बाहर हुए।

वशिष्ठदेवकी कुटीके पास आ वे रुक गये। खड़े-खड़े वशिष्ठदेवकी सारी बातें सुनी। मुष्टिबद्ध तलवार हाथमें शिथिल पड गयी। सोचने लगे: क्या किया! हाय, अनजाने मैंने कितना अन्याय किया! अनजाने मैंने किसके निर्विकार हृदयको व्यथा पहुँचानेकी कुचेष्टा की?

हृदयमें सौ-सौ बिच्छुओंके डंककी यंत्रणा अनुभव होने लगी। हृदय अनुतापसे दग्ध होने लगा। दौड़े और जाकर गिर पड़े वशिष्ठके पाद-प्रांतमें। कुछ पल तो उनके मुँहसे कोई शब्द ही न निकला। फिर बोले—"क्षमा कीजिये! किन्तु मैं तो क्षमा माँगनेके योग्य भी नही।" गर्वित हृदय और कुछ न बोल सका।

पर वशिष्ठदेवने क्या किया?

उन्होने दोनो हाथोंसे विश्वामित्रको उठाते हुए कहा—"उठो, ब्रह्मर्षि उठो!"

द्विगुणित लज्जित हो विश्वामित्रने कहा—"प्रभु, क्यो लज्जित कर रहे है?"

वशिष्ठदेवने उत्तर दिया—"मैं कभी झूठ नही बोलता। आज तुम ब्रह्मर्षि हुए। आज तुमने अभिमानका त्याग किया। आज तुमने प्राप्त किया ब्रह्मर्षि पद।"

विश्वामित्रने कहा—"आप मुझे ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा दीजिये।"

"अनन्तदेवके पास जाओ। वे ही तुम्हें ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा देंगे," वशिष्ठदेवने उत्तर दिया।

जहाँ अनन्तदेव पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण किये हुए हैं विश्वामित्र वहाँ गये।

अनन्तदेवने कहा—"मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा दे सकता हूँ यदि तुम इस पृथ्वीको अपने सिरपर धारण कर सको।"

तपोवलके गर्वसे चूर विश्वामित्रने कहा—"आप पृथ्वीको अपने सिरसे उतारिये, मैं उसे धारण करता हूँ।"

शून्यमें चक्कर काटते-काटते पृथ्वी गिरने लगी।

विश्वामित्र चिल्लाये—"अपनी सारी तपस्याका फल अर्पण करता हूँ। पृथ्वी, तू रुक जा।"

पृथ्वी फिर भी स्थिर न हुई।

ऊँची आवाजमें अनन्तदेवने पुकारा—"विश्वामित्र, अवतक तुमने इतनी तपस्या नहीं की है जिसके वलपर पृथ्वी धारण कर सको। क्या कभी साधु-संग किया है? किया है तो उसका फल अर्पण करो।"

"कुछ पल वशिष्ठका साथ था।"

"तव उसीका फल अर्पण करो।"

"अच्छा, उसीका फल अर्पण करता हूँ।"

और पृथ्वी धीरे-धीरे स्थिर होने लगी।

तव विश्वामित्रने कहा—"अव मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिये।"

अनन्तदेव वोले—"मूर्ख विश्वामित्र, जिनकी मुहूर्त भरकी संगतिके फलसे पृथ्वी स्थिर हो सकती है उन्हें छोड़ तुम मेरे पास आये हो ब्रह्मज्ञान पानेके लिए?"

विश्वामित्र तिलमिला उठे। सोचने लगे: तव क्या वशिष्ठदेवने मेरी प्रतारणा की?

अविलम्ब उनके पास जा पहुँचे और वोले—"आपने क्यों मेरी प्रतारणा की?"

वशिष्ठदेवने अति धीर गंभीर भावसे उत्तर दिया—"यदि उस समय मैंने तुम्हें ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा दी होती तो तुम विश्वास न करते पर अव विश्वास करोगे।"

वशिष्ठदेवने विश्वामित्रको ब्रह्मज्ञान दिया।

भारतमें ऐसे थे ऋषि, ऐसे थे साधु और ऐसा था क्षमाका आदर्श। तपस्याका ऐसा प्रताप था कि सारी पृथ्वीका भार धारण किया जा सकता था। भारतमें पुनः ऐसे ऋषियोंका जन्म हो रहा है जिनके प्रभावके सामने प्राचीन ऋषियोंकी ज्योति हतप्रभ हो जायेगी; जो पुनः भारतको अतीतके गौरवसे अधिक गौरव प्रदान करेंगे।

नेट

वेद-रहस्य

वेद-संहिता भारतवर्षके धर्म, सभ्यता और अध्यात्म-ज्ञानका सनातन स्रोत है। किन्तु इस स्रोतका मूल अगम्य पर्वत-गुहामें विलीन है, उसकी पहली धारा भी अति प्राचीन घनकटकमय अरण्यमें पुष्पित वृक्ष-लता-गुल्मके विचित्र आवरणसे आवृत है। वेद रहस्यमय हैं। उनकी भाषा, कथन-शैली, विचार-धारा आदि अन्य युगकी सृष्टि हैं, अन्य प्रकारके मनुष्यो-की बुद्धिकी उपज। एक ओर तो वे अति सरल हैं, मानो निर्मल वेगवती पर्वतीय नदीके प्रवाह हो, दूसरी ओर यह विचार-प्रणाली हमें इतनी जटिल लगती है, इस भाषाका अर्थ इतना सदिग्ध है कि मूल विचार तथा पंक्तिमें व्यवहृत सामान्य शब्दके विषयमें भी प्राचीन कालसे तर्क-वितर्क और मतभेद होता आ रहा है। परम पंडित सायणाचार्यकी टीका पढ़नेपर मनमें यह धारणा बनती है कि वेदोका कभी कोई संगत अर्थ नही रहा, अथवा यदि कुछ था तो वह वेदोकी परवर्ती ब्राह्मण-रचनाके बहुत पहले ही सर्व-ग्रासी कालके अतल विस्मृति-सागरमें निमग्न हो गया।

सायण वेदोका अर्थ करते समय बडी भारी धांधलीमें जा फसे हैं। मानो इस घोर अधकारके, मिथ्या प्रकाशके पीछे खडा कोई बार-बार फिसला जाता हो, गर्त्तमें, पकमें, गदे जलमें जा गिरता हो, परेशान हो रहा हो, फिर भी छोड न पा रहा हो। वेद आर्यधर्मके असली ग्रथ हैं, इनका अर्थ करना ही पडता है, किन्तु इनमें इतनी पहेलियाँ हैं, इतने रहस्यमय नानाविध निगूढ़ विचारोंसे विजड़ित संश्लेषण हैं कि हजारो स्थलोका अर्थ किया ही नही जा सकता, जैसे-तैसे जहाँ अर्थ हो भी जाता है वहाँ भी प्राय. सदेहकी छाया आ पडती है। इस संकटसे बहुत बार निराश हो सायणने ऋषियो-की वाणीमें ऐसी व्याकरण-विरोधी भाषाका, ऐसी कुटिल, जटिल और भग्न वाक्यरचनाका तथा इतने विक्षिप्त असगत विचारोका आरोप किया है कि उनकी टीका पढनेके बाद इस भाषा और विचार को आर्य न कह बर्बर या पागलका प्रलाप कहनेकी प्रवृत्ति होती है। सायणका कोई दोष नही। प्राचीन

निरुक्तकार यास्कने भी वैसी ही घाँधली मचायी है और यास्कके पूर्ववर्ती अनेक ब्राह्मणकारोने भी वेदका सरल अर्थ न पानेके कारण कल्पनाकी सहायतासे, गाथा-सर्जक शक्ति (mythopoeic faculty) का आश्रय ले दुरूह ऋचाओकी व्याख्या करनेकी विफल चेष्टा की है।

इतिहासकारोने इसी प्रणालीका अनुसरण कर नानाविध कल्पित इतिहासका आडम्बर खडा कर वेदके परिष्कृत सरल अर्थको विकृत और जटिल बना डाला है। एक ही उदाहरणसे इस अर्थविकृतिका रूप और मात्रा समझमें आ जायगी। पचम मडलके द्वितीय सूक्तमें अग्निकी निष्पेषित या आच्छन्न (गुठित) अवस्था और तुरत उसके बृहत् प्रकाशकी बात कही गयी है—

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।...
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धाऽपश्यं जातं यदसूत माता॥

इसका अर्थ है : "युवती माता कुमारको ढक गुहामें अर्थात् गुप्त स्थानमें अपने जठरमें वहन करती है, पिताको देना नही चाहती। हे युवती, वह कुमार कौन है जिसे तुम सपिष्ट हो अर्थात् अपनी सकुचित अवस्थामें, अपने भीतर वहन करती हो? माता जब सकुचित अवस्था छोड़ महती बनती है तब वह कुमारको जन्म देती है। गर्भस्थ शिशु लगातार कई वर्षोंतक बढ़ता रहा, जब माताने उसे जन्म दिया तब मैं उसे देख सका।" वेदकी भाषा सर्वत्र ही थोडी सघन, सहत, सारयुक्त है, थोडे शब्दोमें अधिक अर्थ प्रकट करना चाहती है, फिर भी अर्थकी सरलता, विचारोंके सामजस्यमें कोई क्षति नही होती। ऐतिहासिकगण इस सूक्तके इस सरल अर्थको नही समझ सके, जब माता **पेषी** होती है तब कुमार **समुब्धम्** होता है, माताकी सपिष्ट अर्थात् सकुचित अवस्थामें कुमारकी भी निष्पिष्ट अर्थात् ढकी हुई अवस्था होती है, ऋषिकी भाषा और विचारसबधी इस सामजस्यको वे न तो देख सके और न हृदयगम ही कर सके। उन्होंने **पेषी**को पिशाची समझा, सोचा किसी पिशाचिनीने अग्निका तेज हरण किया है, **महिषी**का अर्थ राजाकी महिषी समझा, **कुमारं समुब्धम्**को किसी ब्राह्मण-कुमारको रथके पहियेसे निष्पेषित हो मरा हुआ समझा। इस अर्थके सहारे एक अच्छी-खासी आख्यायिकाकी भी सृष्टि हो गयी। फलत. सीधी ऋक्का अर्थ दुरूह बन गया, कुमार कौन है, जननी कौन है, पिशाचिनी कौन है, अग्निकी कहानी है या ब्राह्मणकुमारकी, कौन किसे किस विषयमें कह रहा है कुछ समझमें नही आता, सब घपला हो गया है। सर्वत्र ऐसा ही अत्याचार

दिखायी देता है, अनुचित कल्पनाके उपद्रवसे वेदका प्राजल पर गभीर अर्थ विकृत और विकलांग हो गया है, अन्यत्र जहाँ भाषा और विचार कुछ जटिल हैं, टीकाकारकी कृपासे दुर्बोधताने भीषण अस्पृश्य मूर्ति धारण कर ली है।

अलग-अलग ऋक् अथवा उपमा ही क्यो, वेदके यथार्थ मर्मके विषयमें अति प्राचीन कालमें भी बहुत अधिक मतभेद था। ग्रीस देशके यूहेमेर (Euhemeros)के मतानुसार ग्रीक जातिके देवता चिरस्मरणीय वीर और राजा थे, कालक्रमसे अन्य प्रकारके कुसंस्कारने तथा कवियोकी उद्दाम कल्पनाने उन्हें देवता बना स्वर्गमें सिंहासनारूढ़ कर दिया। प्राचीन भारतमें भी यूहेमेर-मतावलम्बियोका अभाव नही था। दृष्टातस्वरूप, वे कहते, असलमें अश्वि-द्वय (अश्विनौ) न देवता हैं न नक्षत्र, वरन् थे दो विख्यात राजा, हमारी तरह ही रक्त-मासके मनुष्य, हो सकता है मृत्युके बाद देव-पद पा गये हो। दूसरोंके मतानुसार यह सब Solar myth है अर्थात् सूर्य, चन्द्र, आकाश, तारे, वृष्टि इत्यादि बाह्य प्रकृतिकी क्रीड़ाको कविकल्पित नाम-रूपोंसे सजा मनुष्याकृतिसपन्न देवता बना दिया गया है। वृत्र मेघ है, वल भी मेघ है, और जितने दस्यु, दानव, दैत्य हैं वे सब आकाशके मेघमात्र हैं, वृष्टिके देवता इन्द्र इन सब सूर्यकिरणोको रोकनेवाले जलवर्षण विमुख कृपण जलधारोको विद्ध कर वृष्टि प्रदान करते तथा उससे पचनदकी सप्त नदियोंके अबाध स्रोतका सृजन कर भूमिको उर्वर, आर्यको धनी और ऐश्वर्यशाली बना देते हैं। अथवा इन्द्र, मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, विष्णु आदि सबके सब सूर्यके नाम-रूपमात्र हैं; मित्र दिनके देवता हैं, वरुण रात्रिके; जो ऋभुगण मनके बलसे इन्द्रके अश्व, अश्विनीकुमारोंके रथका निर्माण करते हैं, वे भी और कुछ नही, सूर्यकी ही किरणें हैं। दूसरी ओर असख्य कट्टर वैदिक लोग भी थे, वे थे कर्मकाडी। उनका कहना था कि देवता मनुष्याकृति देवता भी हैं और प्राकृतिक शक्तिके सर्वव्यापी शक्तिधर भी, अग्नि एक साथ ही हैं विग्रहवान् देवता और वेदीकी आग। पार्थिव अग्नि, वडवानल और विद्युत् इन तीन मूर्तियोंमें प्रकटित हैं, सरस्वती नदी भी है और देवी भी, इत्यादि। इनका दृढ विश्वास था कि देवतागण स्तव-स्तुतिसे सतुष्ट हो परलोकमें स्वर्ग, इहलोकमें बल, पुत्र, गाय, घोडा, अन्न और वस्त्र देते हैं, शत्रुका सहार करते हैं, स्तोताके बेअदब निन्दक समालोचकका मस्तक वज्राघातसे चूर्ण करते हैं और इस तरहके शुभ मित्र-कार्य सपन्न करनेके लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं। प्राचीन भारतमें यह मत ही प्रबल था।

तथापि ऐसे विचारशील लोगोका अभाव नही था जो वेदके वेदत्वमें, ऋषिके प्रकृत ऋषित्वमें आस्था रखते थे, ऋक्-सहिताके आध्यात्मिक अर्थको

खोज निकालते थे, वेदमें वेदान्तका मूल तत्त्व खोजते थे। उनके मतानुसार ऋषिगण देवताके सम्मुख ज्योतिर्दानके लिए जो प्रार्थना करते थे वह भौतिक सूर्यकी नही वरन् ज्ञानसूर्यकी, गायत्री-मन्त्रोक्त सूर्यकी ज्योति थी जिसके दर्शन विश्वामित्रने किये थे। यह ज्योति वही **तत्सवितुर्वरेण्यं देवस्य भर्गः** थी, वे देवता वही **यो नो धियः प्रचोदयात्** थे जो हमारे सभी विचारोको सत्य-तत्त्वकी ओर प्रेरित करते हैं। ऋषि **तमः**से डरते थे—रात्रिके नही बल्कि अज्ञानके घोर तिमिरसे। इन्द्र जीवात्मा या प्राण हैं; वृत्र न मेघ है न कविकल्पित असुर जो हमारे पुरुषार्थको घोर अज्ञानके अधकारसे आवृत कर रोक रखता है, जिसमें देवगण पहले निहित और लुप्त रहते, पीछे देववाक्यजनित उज्ज्वल ज्ञानालोकसे निस्तारित और प्रकटित होते हैं, वही है वृत्र। सायणाचार्यने इन लोगोको "आत्मविद्" नामसे अभिहित कर बीच-बीचमें उनकी वेदव्याख्याका उल्लेख किया है।

इस आत्मवित्-कृत व्याख्याके दृष्टात रूप रहूगण पुत्र गौतम ऋषिके मरुत्स्तोत्रका उल्लेख किया जा सकता है। उस सूक्तमें गौतम मरुद्गणका आवाहनकर उनसे **ज्योति**की भिक्षा मांगते हैं—

यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥
1.86.9,10

कर्मकाडियोंके मतसे इन दोनो ऋचाओकी व्याख्यामें ज्योतिको भौतिक सूर्यकी ही ज्योति समझना होगा। "जिस राक्षसने सूर्यके आलोकको अंधकारसे ढक दिया है उस राक्षसका विनाश कर मरुद्गण सूर्यकी ज्योतिको पुनः दृष्टिगोचर करे।" आत्मविद् मतसे दूसरे प्रकारसे अर्थ करना उचित है, जैसे "तुम सत्यके बलसे बली हो, तुम्हारी महिमासे वह परमतत्त्व प्रकाशित हो, अपने विद्युत्-सम आलोकसे राक्षसको विद्ध करो। हृद्-गुहामें प्रतिष्ठित अंधकारको छिपा दो अर्थात् वह अधकार सत्यके आलोककी बाढमें निमग्न, अदृश्य हो जाय। पुरुषार्थके समस्त भक्षकोको अपसारित कर हम जो ज्योति चाहते हैं उसे प्रकट करो।" यहाँ मरुद्गण मेघहंता वायु नही, पंचप्राण हैं। तम है हृद्यगत भाव-रूप अधकार, पुरुषार्थके भक्षक हैं षड् रिपु, **ज्योतिः** है परमतत्त्वके साक्षात्कार स्वरूप ज्ञानका आलोक। इस व्याख्यासे वेदमें अध्यात्मतत्त्व, वेदातका मूल सिद्धान्त, राजयोगकी प्राणायाम-प्रणाली सब एक साथ मिल गये।

यह तो हुई वेदसबधी स्वदेशी धांधली। उन्नीसवी शताब्दीमें पाश्चात्य

पंडितोंके कमर कस अखाडेमें उतर आनेसे इस क्षेत्रमें घोरतर विदेशी घांधली मची है। उस जलप्लावनकी विपुल तरंगमें हम आज भी डूबते-उतराते बह रहे हैं। पाश्चात्य पडितोने प्राचीन निरुक्तकार तथा ऐतिहासिकोकी पुरानी नीवपर ही अपने चमचमाते नवीन कल्पना-मंदिरका निर्माण किया है। वे यास्कके निरुक्तको उतना नही मानते, बर्लिन और पेट्रोगार्डमें नवीन मनोनीत निरुक्त तैयार कर उसीकी सहायतासे वेदकी व्याख्या करते हैं। उन्ही प्राचीन भारतवर्षीय टीकाकारोकी 'सौर गाथा' (Solar myth) की विचित्र नवीन मूर्ति गढ, प्राचीन रगपर नवीन रग चढा, इस देशके शिक्षित सप्रदायकी आँखें चौंधिया दी। इस यूरोपीय मतके अनुसार भी वेदोक्त देवतागण बाह्य प्रकृतिकी नानाविध क्रीडाके रूपक भर हैं। आर्य लोग सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, उषा, रात्रि, वायु, आँधी, झील, नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष इत्यादि दृश्य वस्तुओकी पूजा करते थे। इन सबको देख आश्चर्य से अभिभूत बर्बर जाति कविप्रदत्त रूपकके बहाने इन्ही सबकी विचित्र गतिका स्तवगान करती थी। फिर उन्हीके अदर नाना देवताओकी चैतन्यपूर्ण क्रिया समझ उन शक्तिधरोके साथ मित्रता स्थापित करती तथा उनसे युद्धमें विजय, धन-दौलत, दीर्घ जीवन, आरोग्य और सततिकी कामना करती थी, रातके अधकारसे अत्यत भयभीत हो यज्ञ-यागद्वारा सूर्यकी पुनरुपलब्धि करती थी। उन्हे भूतका भी आतक था, भूतको भगानेके लिए देवताओंसे कातर प्रार्थना करते थे। यज्ञसे स्वर्ग-प्राप्तिकी आशा और प्रबल इच्छा इत्यादि प्रागैतिहासिक बर्बर जातिके उपयुक्त धारणा और कुसस्कार है।

युद्धमें विजयलाभ, पर युद्ध किसके साथ ? वे कहते हैं कि पचनद-निवासी आर्यजातिका युद्ध वास्तवमें भारतवासी द्राविड जातिके साथ था और पडोसियोंके बीच जैसे युद्ध-विग्रह सदा होता रहता है वैसे आर्य-आर्यमें आपसी कलह था। जिस तरह प्राचीन ऐतिहासिक वेदकी अलग-अलग ऋचाओ अथवा सूक्तोको आधार बना नाना प्रकारका इतिहास तैयार करते थे इनकी भी ठीक वही प्रणाली है। अत. विचित्र अतिप्राकृतिक घटनाओ-से भरी विचित्र कहानी न गढ, जैसे जार (जरपुत्र) वृष ऋषिके सारथ्यमें रथके चक्केसे ब्राह्मणकुमारके निष्पेषण, मत्रद्वारा पुनर्जीवन दान, पिशाची-द्वारा अग्नितेज हरण आदि-आदिकी अद्भुत कल्पना न कर, ये आर्य तृत्सुराज सुदासके साथ मिश्रजातीय दस राजाओंके युद्ध, एक ओर वशिष्ठ और दूसरी ओर विश्वामित्रका पौरोहित्य, पर्वतगुहानिवासी द्राविड जातिद्वारा आर्योंकि गोधनका हरण तथा नदीप्रवाहका बधन, देवशुनी सरमाकी उपमाके बहाने द्राविडोंके निकट आर्योंका दूत या राजदूतीका प्रेरण आदि सत्य या

मिथ्या संभव घटनाओंको ले प्राचीन भारतका इतिहास लिखनेकी चेष्टा करते हैं। इस प्राकृतिक क्रीडाके परस्परविरोधी रूपकमें और इस इतिहास-सबघी रूपकमें मेल बैठानेकी चेष्टा करते हुए पाश्चात्य पडितमडलीने वेदके विषयमें जो अपूर्व गोलमाल किया है वह वर्णनातीत है। परन्तु उनका कहना है कि आखिर हम करें क्या, प्राचीन बर्बर कवियोंके मनमें ही गोल-माल था, इसी कारण इस तरह जोड-तोड करना पड़ा है, किन्तु हमारी व्याख्या बिल्कुल ठीक, विशुद्ध और निर्भ्रान्त है। जो हो, फलस्वरूप प्राच्य पंडितोकी व्याख्यासे जिस तरह वेदका अर्थ असगत, गडबड, दुरूह और जटिल हो गया है वैसे ही पारुचात्योकी व्याख्यासे भी। सभी बदला फिर भी सब वही है। टेम्स, सैन (Sein) और नेवा (Neva) नदीके सैंकडो वज्रधरोने हमारे मस्तकपर नवीन पाडित्यकी स्वर्गीय सप्त नदियोको बरसाया है सही परन्तु उनमेंसे कोई भी वृत्रकृत अधकारको नही हटा सका। हम जिस तिमिरमें थे उसी तिमिरमें हैं।

तपोदेव अग्नि

इस यज्ञमें जीव ही है यजमान, गृहस्वामी, जीवकी प्रकृति गृहपत्नी है यजमानकी सहधर्मिणी, परंतु पुरोहित कौन होगा? जीव यदि स्वयं अपने यज्ञमें पुरोहिताई करने जाय तो कहा जा सकता है कि यज्ञके सुचारु रूपसे परिचालित होनेकी कोई आशा नही, कारण, जीव अहंकारद्वारा चालित होता है, मानसिक, प्राणिक और दैहिक त्रिविध बधनोंसे विजड़ित होता है। ऐसी अवस्थामें अपने-आप पुरोहिताई करनेपर अहंकार ही होता, ऋत्विक्, यहाँतक कि यज्ञका देवता भी बन बैठता है और फिर अवैध यज्ञ-विधानके कारण महत् अनर्थ घटित होनेकी आशका होती है। सबसे पहले नितात बद्ध अवस्थासे वह मुक्ति चाहता है। और यदि बंधनमुक्त होना हो तो अपनी शक्तिसे भिन्न अन्य शक्तिका आश्रय लेना ही होगा। त्रिविध यूपरज्जुके शिथिलीकरणके बाद भी यज्ञ करने योग्य निर्दोष ज्ञान और शक्ति हठात् प्रादुर्भूत या सत्वर गठित नही होती। दिव्यज्ञान और दिव्यशक्तिकी आवश्यकता है, उसका आविर्भाव और सुगठन यज्ञद्वारा ही संभव है। और जीवके मुक्त हो जानेपर भी, दिव्यज्ञानी और दिव्यशक्तिमान् हो जानेपर भी यज्ञके भर्ता अनुमंता ईश्वर यज्ञफलके भोक्ता होते हैं, किंतु कर्मकर्ता नही। देवताको ही पुरोहित-रूपमें वरण कर वेदीपर सस्थापित करना होगा। जबतक देवता स्वयं मानव-हृदयमें प्रविष्ट, प्रकाशित और प्रतिष्ठित नही हो जाते तबतक मनुष्यके लिए देवत्व और अमरत्व प्राप्त करना असाध्य है; यह ठीक है कि देवताके जाग्रत होनेसे पहले उस बोधनके लिए मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण यजमानका पौरोहित्य स्वीकार करते हैं, वशिष्ठ और विश्वामित्र सुदास त्रसदस्यु और भारतपुत्रके होता बनते हैं किंतु देवताका आह्वान कर वेदीपर पुरोहित और होताका स्थान देनेके लिए ही होता है मंत्रप्रयोग और हविःप्रयोग। देवता यदि अंतरमें जाग्रत न हो तो कोई भी जीवको तार नही सकता। देवता ही हैं त्राणकर्ता। देवता ही है यज्ञके एकमात्र सिद्धिदाता पुरोहित।

देवता जब पुरोहित होते हैं तब उनका नाम होता है अग्नि, उनका रूप भी होता है अग्नि। अग्निका पौरोहित्य है सर्वांगसुन्दर सफल यज्ञका मुख्य साधन और प्रारंभ। इसी कारण ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके प्रथम सूक्तकी प्रथम ऋचामें ही अग्निका पौरोहित्य निर्दिष्ट किया गया है।

यह अग्नि कौन है? 'अग्' धातुका अर्थ है 'शक्ति'; जो शक्तिमान् है वही है 'अग्नि'। 'अग्' धातुका दूसरा अर्थ है-आलोक या ज्वाला, जो शक्ति ज्वलंत ज्ञानके आलोकसे उद्भासित है, ज्ञानका कर्मबल है, उस शक्तिका शक्तिधर है अग्नि-रूप। 'अग्' धातुका अन्य अर्थ है पूर्वत्व और प्रधानत्व, जो ज्ञानमय शक्ति जगत्का आदि-तत्त्व है और जगत्की अभिव्यक्त सभी शक्तियोका मूल और प्रधान है, उसी शक्तिका शक्तिधर है अग्नि। 'अग्' धातुका एक और अर्थ है नयन (प्रचालन) जगदादि सनातन-पुरातन प्रधान शक्तिके जो शक्तिधर जगत्को निर्दिष्ट पथसे निर्दिष्ट गन्तव्य धामकी ओर ले जा रहे है, जो कुमार देवसेनाके सेनानी है, जो पथके प्रदर्शक है, जो प्रकृतिकी नाना शक्तियोको ज्ञानसे, बलसे, उनके अपने-अपने व्यापारमें प्रवर्तित कर सुपथपर चलाते है वही शक्तिधर है अग्नि। वेदके सैकडो सूक्तोमें अग्निके ये सब गुण कथित और स्तुत हुए है। जगत्के आदि, जगत्के प्रत्येक स्फुरणमें निहित, सब शक्तियोंके मूल और प्रधान, सकल देवताओंके आधार, सकल धर्मोंके नियामक, जगत्के निगूढ़ उद्देश्य तथा निगूढ सत्यके रक्षक यह अग्नि और कुछ नही स्वयं भगवान्के ओज.-तेज:-भ्राज·-स्वरूप सर्वज्ञानमडित परम ज्ञानात्मक तप.शक्ति है।

सच्चिदानंदका सत्-तत्त्व चिन्मय है। सत्का यही चित् है सत्की शक्ति। चित्-शक्ति ही है जगत्का आधार, चित्-शक्ति ही है जगत्का आदिकारण और स्रष्ट्री, चित्-शक्ति ही है जगत्की नियामिका और प्राण-स्वरूप। चिन्मयी जिस समय सत्-पुरुषके वक्षस्थलमें मुँह छिपा, स्तिमित नयनसे केवल सत्-स्वरूपका चितन करती हैं उस समय अनत चित्-शक्ति निस्तब्ध रहती है, वही अवस्था है प्रलयकी अवस्था, निस्तब्ध आनदसागर-स्वरूप। और जब चिन्मयी मुँह ऊपर उठा नेत्र उन्मीलित कर सत्-पुरुषका मुखमण्डल तथा तनु प्रेमसहित हेरती हैं, सत्-पुरुषके अनंत नाम-रूपका ध्यान करती है, कृत्रिम विच्छेद-मिलन-जनित सभोग-लीलाका स्मरण करती है तब उस आनदका अजस्र प्रवाह उनके उन्मुक्त विक्षोभकी, विश्वानदकी अनत तरगोकी सृष्टि करता है। चित्-शक्तिका यह नाना ध्यान, यह एकमुखी फिर भी बहुमुखी समाधि ही तपःशक्तिके नामसे अभिहित है। सत्-पुरुष जब किसी नाम-रूपका सृजन करने, किसी तत्त्वका विकास करने और किसी

भी अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए अपनी चित्-शक्तिको सगृहीत, संचालित तथा अपने विषयपर संस्थापित करते हैं तव तप शक्ति प्रयुक्त होती है। यह तप.प्रयोग ही है योगेश्वरका योग। इसीको अंगरेजीमें 'डिवाइन विल' (Divine Will) अथवा 'कास्मिक विल' (Cosmic Will) कहते हैं। इसी 'डिवाइन विल' या तपःशक्तिद्वारा जगत् सृष्ट, चालित और रक्षित होता है। अग्नि ही है यह तपःशक्ति।

हम चित्-शक्तिके दो पक्ष देखते हैं, चिन्मय और तपोमय, सर्वज्ञानस्वरूप और सर्वशक्तिस्वरूप, किंतु यथार्थमें ये दोनो एक ही हैं। भगवान्‌का ज्ञान सर्वशक्तिमय है और उनकी शक्ति सर्वज्ञानमय। उन्हें जव आलोक-ज्ञान होता है तव आलोक-सृष्टिका होना अनिवार्य है, क्योंकि उनका ज्ञान उनकी शक्तिका चिन्मय स्वरूप ही है। जगत्‌के किसी भी जड़-स्पन्दनमें, जैसे, अणुके नृत्यमें अथवा विद्युत्‌के लम्फनमें निहित है, क्योंकि उनकी शक्ति उनके ज्ञानका ही स्फुरण है। केवल हमारे अदर अविद्याकी भेद-बुद्धिमें, अपरा प्रकृतिकी भेदगतिमें, ज्ञान और शक्ति विभिन्न, असम और मानो परस्पर कलहप्रिय हैं अथवा विसगतिग्रस्त और खर्व हो रही हैं अथवा क्रीडाके लिए उस तरहकी समता और कलहका ढोंग करती हैं। वास्तवमें देखा जाय तो जगत्‌के क्षुद्रतम कर्म या संचरणमें भगवान्‌का सर्वज्ञान और सर्वशक्ति निहित है, इसके विना या इसके कम होनेपर उस कर्म या संचरणको घटित करानेकी शक्ति किसीमें नही। जिस तरह ऋषिके वेदवाक्यमें वा शक्तिधर महापुरुषके युग-प्रवर्तनमें, उसी तरह मूर्खकी निरर्थक वाचालतामें अथवा आक्रांत क्षुद्र जीवकी छटपटाहटमें वही सर्वज्ञान और सर्वशक्ति प्रयुक्त होते हैं। हम सव जव ज्ञानके अभावमें शक्तिका अपव्यय करते हैं या शक्तिके अभावमें ज्ञानका निष्फल प्रयोग करते हैं तव सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिमान् आडमें वैठ उस शक्तिप्रयोगको अपने ज्ञानद्वारा, उस ज्ञान-प्रयोगको अपनी शक्तिद्वारा सभालते और चलाते हैं और इसी कारण उस क्षुद्र चेष्टाद्वारा जगत्‌में 'कुछ' हो जाता है। निर्दिष्ट कर्म सपन्न और उसका उचित कर्मफल साधित होता है। उससे तुम्हारा-हमारा अज्ञ मनोरथ और प्रत्याशा व्यर्थ अवश्य हो जाती है किंतु उस विफलताद्वारा ही उनकी गूढ अभिसधि सिद्ध होती है एव उस विफलताद्वारा ही हमारे किसी छद्मवेशी कल्याण और जगत्‌के महान् उद्देश्यके एक क्षुद्रतम अंशका क्षुद्र आंशिक पर अत्यावश्यक उपकार साधित होता है। अशुभ, अज्ञान और विफलता हैं छद्मवेशमात्र। अशुभमें शुभ, अज्ञानमें ज्ञान, विफलतामें सफलता और शक्ति गुप्त रूपसे विद्यमान रहकर अप्रत्याशित कर्म संपादन

करती हैं। तपः-अग्निकी निगूढ़ अवस्थिति है इसका कारण। यह अनिवार्य शुभ, यह अखडनीय ज्ञान, यह अचूक शक्ति है भगवान्का अग्नि-रूप। जैसे सत्-पुरुषका चित् और तपः एक हैं, जैसे दोनो ही आनन्दके स्पंदन है, वैसे ही उनके प्रतिनिधिस्वरूप इस अग्निका ज्ञान और शक्ति अविच्छिन्न है तथा दोनो ही हैं शुभ और कल्याणकारी।

जगत्की बाहरी आकृति दूसरी तरहकी है, वहाँ अनृत, अज्ञान, अशुभ, विफलता ही प्रधान हैं। परंतु बच्चेको डरानेवाले मुखौटेके भीतर मातृमुख छिपा है। यह अचेतन, यह जड़, यह निरानंद है केवल इन्द्रजाल। भीतर आसीन हैं जगत्पिता, जगन्माता, जगदात्मा सच्चिदानंद। इसीलिए वेदमें हमारी साधारण चेतना रात्रि नामसे अभिहित है। हमारे मनका चरम विकास भी है ज्योत्सना-पुलकित तारानक्षत्रमडित भगवती रात्रिका विहार मात्र। किंतु इसी रात्रिकी गोदमें उसकी भगिनी दैवी उषा अनंत-प्रसूत भावी दिव्य ज्ञानका आलोक लिये छिपी बैठी है। पार्थिव चेतनाकी इस रात्रिमें भी 'तप.-अग्नि' बार-बार जाज्वल्यमान हो उषाकी आभासे आलोक फैलाते हैं। 'तपःअग्नि' ही अब जगत्में सत्य-चैतन्यमयी उषाके जन्म-मुहूर्त्तकी तैयारी कर रहे हैं। परम देवने इस 'तपःअग्नि'को जगत्में भेजा और स्थापित किया है, प्रत्येक पदार्थ और जीव-जतुके अंतरमें निहित हो विश्वकी समस्त गतिका नियमन अग्नि-देव ही कर रहे हैं। क्षणिक अनृतमें वह अग्निदेव ही हैं चिरंतन सत्यके रक्षक, अचेतन और जडमें अग्नि ही है अचेतनकी निगूढ चेतना, जडकी प्रचड गति-शक्ति। अज्ञानके आवरणमें अग्नि ही हैं भगवान्का गूढ ज्ञान, पापकी कुरूपतामें अग्नि ही है उनकी सनातन अकलंक शुद्धता, दुःख-दैन्यके विषण्ण कुहासेमे अग्नि ही है उनका ज्वलत विश्वभोगी आनद। दुर्बलता और जड़ताके मलिन वेशमें अग्नि ही हैं उनकी सर्ववाहक, सर्वक्षम, दक्ष क्रियाशक्ति। एक बार इस *काले आवरणको भेद यदि हम अग्निको अपने अतरमें प्रज्वलित, प्रकाशित,* उन्मुक्त और ऊर्ध्वगामी बना सकें तो वही दैवी उषाको मानव चैतन्यमें ला, देवताओको भीतर जगा अनृत, अज्ञान, निरानंद और विफलताके काले आवरणको दूर हटा हमें अमर और देवभावापन्न बना देंगे। अग्नि ही हैं अतरस्थ देवताका प्रथम और प्रधान जाग्रत रूप। उन अग्निको हृदय-वेदीमें प्रज्वलित कर, पौरोहित्यके लिए वरण कर—उनके सुनहले प्रकाशक ज्वाला-ज्ञानमें, सर्वदाहक और पावक ज्वाला-शक्तिमें—उन ज्ञानमय, शक्ति-मय, ज्वलत अग्निमें, अपने इन सब तुच्छ सुख-दुःखोको, इन सब क्षुद्र परिमित चेष्टाओ और विफलताओको, इस समस्त मिथ्यापन और मृत्युको समर्पित

करते हैं। पुरातन और अनृत भस्मीभूत हो जाने दो, तब जाज्वल्यमान सावित्री-रूपमें गगनस्पर्शी तपःअग्निसे आविर्भूत होंगे नवीन और सत्य।

भूलना मत कि सभी हमारे अंतरमें हैं; मनुष्यके भीतर ही अग्नि है, भीतर ही हैं वेदी, हवि और होता, भीतर ही हैं ऋषि-मंत्र और देवता, भीतर ही हैं ब्रह्मका वेदगान, भीतर ही हैं ब्रह्मद्वेषी राक्षस और देवद्वेषी दैत्य, भीतर ही हैं वृत्र और वृत्रहता, भीतर ही हैं देव-दानव युद्ध, भीतर ही हैं वशिष्ठ, विश्वामित्र, अंगिरा, अत्रि, भृगु, अथर्वा, सुदास, त्रसदस्यु, दासजाति और पंचविध ब्रह्मान्वेषी आर्यगण। मनुष्यका आत्मा और जगत् एक हैं, उसके भीतर ही है दूर और निकट, दस दिशाएँ, दो समुद्र, सात नदियाँ, सात भुवन। हमारा यह पार्थिव जीवन दो गुप्त समुद्रोंके बीच अभिव्यक्त है। नीचेका समुद्र वह गुह्य अनंत चैतन्य है जिससे ये समस्त भाव और वृत्तियाँ, नाम और रूप अहरह प्रति मुहूर्त्त प्रादुर्भूत होते हैं जैसे प्रस्फुटित होते हैं भगवती रात्रिकी गोदमें तारानक्षत्र। आधुनिक भाषामें इसे निश्चेतन (inconscient) अथवा अवचेतन (subconscient) कहते हैं, वेदका **अप्रकेतं सलिलम्**, प्रज्ञाहीन समुद्र। प्रज्ञाहीन होनेपर भी यह अचेतन नही है, इसके अंदर प्रज्ञातीत विश्व-चैतन्य सर्वज्ञानमें ज्ञानी, सर्वकर्ममें समर्थ हो मानो अवश संचरणद्वारा जगत्की सृष्टि और गति संपादित करता है। ऊपर है गुह्य मुक्त अनन्त चैतन्य जिसे अतिचैतन्य (superconscient) कहते हैं, जिसकी छाया है यह अवचेतन। वहाँ सच्चिदानन्द जगत्में पूर्णतः अभिव्यक्त है,—सत्यलोकमें अनंत सत्-रूपमें, तपोलोकमें अनंत चित्-रूपमें, जनलोकमें अनंत आनंद-रूपमें और महर्लोकमें विशाल विश्वात्माके सत्य-रूपमें। मध्यस्थ पार्थिव चैतन्य है वेदोक्त पृथिवी। इसी पृथिवीसे जीवनका आरोहणीय पर्वत गगनकी ओर उठता है, उसका प्रत्येक सानु है आरोहणका एक सोपान, सप्तलोकके एक लोकका अंतःस्थ राज्य। देवगण आरोहणके सहायक हैं, दैत्यगण शत्रु और पथरोधक। यह पर्वतारोहण ही है वैदिक साधककी यज्ञगति, यज्ञसहित परम लोकमें, परम आकाशमें, आलोक-समुद्रमें ऊपर उठना होगा। यह अग्नि ही है आरोहणका साधन-स्वरूप, इस पथका नेता, इस युद्धका योद्धा और इस यज्ञका पुरोहित। वैदिक कवियोंका अध्यात्म-ज्ञान इसी मूल उपमापर प्रतिष्ठित है, जैसे वृन्दावनवासी प्रेमिक गोप-गोपियोंपर वैष्णवोंके राधा-कृष्ण-विषयक सकल गान। इस उपमाका अर्थ सर्वदा मनमें रखनेसे वेदतत्त्वको हृदयंगम करना आसान हो जाता है।

ऋग्वेद

भूमिका

"आर्य"[1] पत्रिकामें "वेद-रहस्य"में वेदसबधी जो नवीन मत प्रकाशित हो रहा है उसी मतके अनुसार है यह अनुवाद। उस मतके अनुसार वेदका यथार्थ अर्थ आध्यात्मिक है, किन्तु गुह्य और गोपनीय होनेके कारण अनेक उपमाओ, सांकेतिक शब्दो बाह्य यज्ञ-अनुष्ठानोंके उपयुक्त वाक्यों-द्वारा वह अर्थ आवृत है। आवरण साधारण मनुष्योंके लिए अभेद्य था, पर दीक्षित वैदिक लोगोंके लिए झीना और सत्यका सर्वाङ्ग प्रकाशक वस्तु-मात्र था। उपमा इत्यादिके पीछे इस अर्थको खोजना होगा। देवताओ-के "गुप्त नाम" तथा उनकी अपनी-अपनी क्रियाओं, "गो", "अश्व", "सोम-रस" इत्यादि साकेतिक शब्दोंके अर्थो, दैत्योके कर्मो और गूढ अर्थों, वेदके रूपको, गाथाओ (myths) इत्यादिका तात्पर्य जान लेनेपर वेदका अर्थ मोटे तौरपर समझमें आ जाता है। निस्सदेह, उसके गूढ अर्थकी वास्तविक और सूक्ष्म उपलब्धि विशेष ज्ञान और साधनाका फल है, बिना साधनाके केवल वेदाध्ययनसे वह नही होती।

इस सकल वेदतत्त्वको अपने पाठकोंके सम्मुख रखनेकी इच्छा है। अभी तो वेदकी केवल मुख्य बात ही संक्षेपमें बतायेंगे। यह है: जगत् ब्रह्ममय है, पर ब्रह्मतत्त्व मनके लिए अज्ञेय है। अगस्त्य ऋषिने कहा है: तद् अद्‌भुतम् अर्थात् सबसे ऊपर और सबसे अतीत, कालातीत है वह।

---

1 सन् 1914 से 1919 तक प्रकाशित "आर्य" पत्रिकामें श्रीअरविन्द-ने "वेद-रहस्य" शीर्षकसे जो लेखमाला लिखी थी यहाँ उसीकी तरफ सकेत है।

आज या कल कब कौन उसे जान सका है? और सबकी चेतनामें उसका सञ्चार होता है, किन्तु मन यदि नजदीक जाकर निरीक्षण करनेकी चेष्टा करता है तो तत् अदृश्य हो जाता है। केनोपनिषद्के रूपकका भी यही अर्थ है, इन्द्र ब्रह्मकी ओर धावित होते हैं, निकट जाते ही ब्रह्म अदृश्य हो जाता है। फिर भी तत् "देव"-रूपमें ज्ञेय है।

"देव" भी "अद्भुत" है किन्तु त्रिधातुके अन्दर प्रकाशित अर्थात् देव सन्मय, चित्-शक्तिमय, आनदमय है। आनदतत्त्वमें देवको प्राप्त किया जा सकता है। देव नाना रूपोमें विविध नामोंसे जगत्में व्याप्त हैं और उसे धारण किये हुए हैं। नाम-रूप हैं वेदके सब देवता।

वेदमें कहा गया है कि दृश्य जगत्के ऊपर और नीचे दो समुद्र हैं। नीचे अप्रकेत "हृद्य" वा हृत्समुद्र है, अगरेजीमें जिसे अवचेतन (subconscient) कहते हैं,—ऊपर सत्-समुद्र है जिसे अगरेजीमें अतिचेतन (superconscient) कहते हैं। दोनोको ही गुहा या गुह्यतत्त्व कहा जाता है। ब्रह्मणस्पति अप्रकेतसे वाक्द्वारा व्यक्तको प्रकट करते हैं, रुद्र प्राण-तत्त्वमें प्रविष्ट हो रुद्र-शक्तिद्वारा विकास करते है, जोर लगाकर ऊपरकी ओर उठाते हैं, भीम ताडनाद्वारा गन्तव्य पथपर चलाते है, विष्णु व्यापक शक्तिद्वारा धारण कर इस नित्यगतिके सत्-समुद्र या जीवनकी सप्त नदियो-के गंतव्य स्थलको अवकाश देते है। अन्य सभी देवता है इस गतिके कार्य-कर्ता, सहाय और साधन।

सूर्य सत्य-ज्योतिके देवता है, सविता—सृजन करते है, व्यक्त करते हैं; पूषा—पोषण करते हैं, "सूर्य"—अनृत और अज्ञानकी रात्रिमेंसे सत्य और ज्ञानालोकको जन्म देते हैं। अग्नि चित्-शक्तिके "तप." है, जगत्-का निर्माण करते हैं, जगत्की वस्तुओमें विद्यमान है। वह भूतत्त्वमें हैं अग्नि, प्राणतत्त्वमें कामना और भोगप्रेरणा, जो पाते हैं भक्षण करते हैं; मनस्तत्त्वमें हैं चिन्तनमयी प्रेरणा और इच्छाशक्ति और मनोतीत तत्त्वमें ज्ञानमयी क्रियाशक्तिके अधीश्वर।

मल और व्याख्या

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।।1।।

मैं अग्निकी उपासना करता हूँ जो यज्ञके देव, पुरोहित, ऋत्विक्, होता एव आनद-ऐश्वर्यका विधान करनेमें श्रेष्ठ है।

ईळे—भजामि, प्रार्थये, कामये। उपासना करता हूँ।

पुरोहितम्—जो यज्ञमें पुर, सामने स्थापित है, यजमानके प्रतिनिधि और यज्ञके सपादक।

ऋत्विजम्—जो ऋतुके अनुसार अर्थात् काल, देश, निमित्तके अनुसार यज्ञका सपादन करे।

होतारम्—जो देवताका आह्वान कर होम निष्पादन करे।

रत्नधा—सायणने रत्नका अर्थ रमणीय धन किया है। आनदमय ऐश्वर्य कहना यथार्थ अर्थ होगा। **धा** का अर्थ है जो धारण करता है या विधान करता है अथवा जो दृढतापूर्वक स्थापित करता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः ईड्यो नूतनैः उत। स देवाँ एह वक्षति ।।2।।

जो अग्नि-देव प्राचीन ऋषियोंके भजनीय थे वह नवीन ऋषियोंके भी (उत) भजनीय है। क्योंकि वह देवताओंको इस स्थानपर ले आते हैं।

मत्रके अतिम चरणद्वारा अग्नि-देवके भजनीयत्व होनेका कारण निर्दिष्ट किया गया है। **स** शब्द उसीका आभास देता है।

एह वक्षति—इह आवहति। अग्नि अपने रथपर देवताओंको ले आते हैं।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषम् एव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ।।3।।

रयिम्—रत्नका जो अर्थ है वही रयिः, राधः, राय· इत्यादिका भी। फिर भी "रत्न" शब्दमें "आनंद" अर्थ अधिक प्रस्फुटित है।

अश्नवत्—अश्नुयात्। प्राप्त हो या भोग करे।

पोषम् प्रभृति रविके विशेषण हैं। पोषम् अर्थात् जो पुष्ट होता है, जो वृद्धिको प्राप्त होता है।

यशसम्—सायणने यशका अर्थ कभी तो कीर्ति किया है और कभी अन्न। असली अर्थ प्रतीत होता है सफलता, लक्ष्य-स्थानकी प्राप्ति इत्यादि। दीप्ति अर्थ भी संगत है, किन्तु यहाँ वह लागू नही होता।

अग्ने यं यज्ञम् अध्वरं विश्वतः परिभूः असि। स इद् देवेषु गच्छति ॥4॥

जिस अध्वर यज्ञको चारो ओरसे व्यापे हुए तुम प्रादुर्भूत होते हो वही यज्ञ देवताओतक पहुँचाता है।

अध्वरम्—'ध्वृ' धातुका अर्थ है हिंसा करना। सायणने 'अध्वर'का अर्थ अहिंसित यज्ञ किया है। किन्तु 'अध्वर' शब्द स्वय यज्ञवाचक हो गया है। "अहिंसित" शब्दका ऐसा अर्थ परिवर्तन संभव नही। "अध्वन्"का अर्थ है पथ, अत अध्वरका अर्थ 'पथगामी' अथवा 'पथस्वरूप' ही होगा। यज्ञ था देवधाम जानेका पथ और यज्ञ देवधामके पथिकके रूपमें सर्वत्र विख्यात है। यही है सगत अर्थ। 'अध्वर' शब्द भी 'अध्वन्'की तरह 'अध्' धातुसे बना है। इसका प्रमाण यह है कि 'अध्वा' और 'अध्वर' दोनो ही आकाशके अर्थमें व्यवहृत थे।

परिभूः—परितो जात. (चारो ओर प्रादुर्भूत)।

देवेषु—सप्तमीके द्वारा लक्ष्यस्थान निर्दिष्ट है।

इत्—एव (ही)।

अनुवाद

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥1॥

जो देवता होकर हमारे यज्ञके पुरोहित, ऋत्विक् और होता बनते है तथा अशेष आनदका विधान करते हैं, उन्ही तपोदेव अग्निकी मैं उपासना करता हूँ ॥1॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः ईड्यो नूतनैः उत। स देवाँ एह वक्षति ॥2॥

प्राचीन ऋषियोकी तरह आधुनिक साधकोंके लिए भी ये तपोदेवता उपास्य हैं। वे ही देवताओंको इस मर्त्यलोकमें ले आते है ।।2।।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषम् एव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ।।3।।

तप-अग्निद्वारा ही मनुष्य दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त करता है। वही ऐश्वर्य अग्नि-बलसे दिन-दिन वर्द्धित, अग्निबलसे विजयस्थलकी ओर अग्रसर तथा अग्निबलसे ही प्रचुर वीरशक्तिसपन्न होता है ।।3।।

अग्ने यं यज्ञम् अध्वरं विश्वतः परिभूः असि। स इद् देवेषु गच्छति ।।4।।

हे तपः-अग्नि, जिस देवपथगामी यज्ञके सब ओर तुम्हारी सत्ता अनुभूत होती है, वह आत्मप्रयासरूपी यज्ञ ही देवताओके निकट पहुंचकर सिद्ध होता है ।।4।।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरागमत् ।।5।।

जो तप-अग्नि होता, सत्यमय हैं, जिनकी कर्मशक्ति सत्यदृष्टिमें स्थापित है, नानाविध ज्योतिर्मय श्रौत ज्ञानमें जो श्रेष्ठ है, वही देववृंदको साथ ले यज्ञमें उतर आवें ।।5।।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ।।6।।

हे तपः-अग्नि, जो तुम्हें देता है तुम तो उसके श्रेयकी सृष्टि करोगे ही, यही है तुम्हारी सत्य सत्ताका लक्षण ।।6।।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ।।7।।

हे अग्नि, प्रति दिन, अहर्निश हम बुद्धिके विचारद्वारा आत्मसमर्पणको उपहारस्वरूप वहन करते हुए तुम्हारे निकट आते है ।।7।।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ।।8।।

जो समस्त देवोन्मुख प्रयासके नियामक, सत्यके दीप्तिमय रक्षक हैं, जो अपने धाममे सर्वदा वर्द्धित होते हैं, उन्हीके निकट हम आते हैं ।।8।।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ।।9।।

जिस तरह पिताका सामीप्य संतानके लिए सुलभ है उसी तरह तुम भी हमारे लिए सुलभ होओ। दृढ़संगी बन कल्याणगति साधित करो ।।9।।

आध्यात्मिक अर्थ

विश्वयज्ञ

विश्वजीवन एक बृहत् यज्ञस्वरूप है। उस यज्ञके देवता है स्वयं भगवान् और प्रकृति है यज्ञदाता। भगवान् है शिव और प्रकृति उमा। उमा अपने अतरमें शिव-रूपको धारण करनेपर भी प्रत्यक्षमें शिवरूपविरहित है, प्रत्यक्षमें शिव-रूपको पानेके लिए लालायित। यही लालसा है विश्व-जीवनका निगूढ अर्थ।

किन्तु किस उपायसे मनोरथ सफल हो? पुरुपोत्तमतक पहुँच पानेका कौन-सा पथ प्रकृतिके लिए निर्दिष्ट है? अपने स्वरूपको या पुरुपोत्तमके स्वरूपको पानेका क्या उपाय है? आँखोपर अज्ञानका आवरण, चरणोमें स्थूलके सहस्र वधन। स्थूल सत्ताने मानो अनत सत्को भी सातमें बाँध लिया है, मानो स्वय भी वन्दी हो गयी है, स्वयंरचित इस कारागारकी खोयी चाभी अब और हाथ नही लग रही। जड़-प्राणशक्तिके अवश सचार-से अनंत, उन्मुक्त, चित्-शक्ति विमूढ, निलीन, अभिभूत, अचेतन हो गयी है जैसे। अनत आनद तुच्छ सुख-दु:खके अधीन प्राकृत चैतन्य वन छद्म-वेशमें घूमते-घूमते अपने स्वरूपको ही भूल गया है मानो, अब उसे खोज ही नही पाता, खोजते-खोजते दु:खके और भी असीम पकमे निमज्जित हो जाता है। सत्य मानो अनृतकी द्वैधमयी तरगमें डूब गया है। मानसा-तीत विज्ञानतत्त्व अनत सत्यका आधारस्थल है। विज्ञानतत्त्वकी क्रिया पार्थिव चैतन्यके लिए या तो निपिद्ध है या विरल, मानो परदेके पीछेके क्षणिक विद्युत्का उन्मेप भर हो। सत्य और अनृतके बीच दोलायमान भीरु, खंज, विमूढ मानसतत्त्व घूम-फिरकर सत्यको खोजता रहता है, राक्षसी प्रयाससे सत्यका आभास पा भी सकता है, किन्तु सत्यके पूर्ण प्रकृत ज्योति-र्मय अनत रूपको पा नही पाता। जैसे ज्ञानमें वैसे ही कर्ममें भी वही विरोध, वही अभाव, वही विफलता। सहज सत्यकर्मके हास्यमय देवनृत्यके वजाय प्राकृत इच्छाशक्तिकी शृखलावद्ध चेष्टा होती है, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, विप-अमृत, कर्म-अकर्म-विकर्मके जटिल पाशमें छटपटाया करती है। वासनाहीन, वैफल्यहीन, आनंदमय, प्रेममय, ऐक्यरसमे मत्त भागवती क्रिया-शक्ति मुक्त, अकुठित, अस्खलित होती है, उसका सहज स्वाभाविक विश्व-मय संचारण प्राकृत इच्छाशक्तिके लिए असंभव है। मातके अनृत जालमें

पर इस पार्थिव प्रकृतिके लिए उस अनन्त सत्, उस अनंत चित्-शक्ति, उस अनन्त आनन्द-चैतन्यको प्राप्त करनेकी भला क्या आशा है, उपाय ही क्या है?

यज्ञ ही है उपाय। यज्ञका अर्थ है आत्मसमर्पण, आत्मबलिदान। जो कुछ तुम हो, जो कुछ तुम्हारा है, जो कुछ भविष्यमें निज चेष्टासे या देवकृपासे बन सकते हो, जो कुछ कर्मप्रवाहमें अर्जन या सञ्चय कर सको, सब उसी अमृतमयको लक्ष्य कर हविः-रूपमें तपःअग्निमें डालो। क्षुद्र सर्वस्वका दान करनेसे अनंत सर्वस्व प्राप्त करोगे। यज्ञमें योग निहित है। योगसे आनन्त्य, अमरत्व और भागवत आनन्दकी प्राप्ति विहित है। यही है प्रकृतिके उद्धारका पथ।

जगती देवी इस रहस्यको जानती है। अतएव उस विपुल आशासे वह अनिद्रित, अशांत, दिन-रात, वर्षपर वर्ष, युगपर युग यज्ञ ही कर रही है। उसके सभी कर्म, सभी प्रयास हैं उसी विश्वयज्ञके अंगमात्र। जो कुछ भी उत्पादन कर सकी है उसीकी बलि चढ़ा रही है। वह जानती है कि सबमें वही लीलामय अकुण्ठित मनसे रसास्वादन कर रहे हैं, यज्ञ-रूपसे सब प्रयत्न, सब तप ग्रहण कर रहे हैं। वही विश्वयज्ञको धीरे-धीरे घुमा-फिराकर, टेढ़े-मेढ़े उत्थानमें, पतनसे, ज्ञानसे, अज्ञानमें, जीवनसे, मृत्युसे निर्दिष्ट पथसे निर्दिष्ट गन्तव्य धामकी ओर सर्वदा अग्रसर कराते हैं। उन्हींके भरोसे प्रकृति देवी निर्भीक, अकुण्ठित, विरामहीन है। वह सर्वत्र ही, सर्वदा ही भागवती प्रेरणासे सतत सृजन और हनन, उत्पादन और विनाश, ज्ञान और अज्ञान, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, कल्याण-अकल्याण, कुत्सित-सुन्दर, पवित्र-अपवित्र जो हाथमें पाती है सब उसी बृहत् निरंतर होमकुंडमें निक्षिप्त करती है। स्थूल है सूक्ष्म यज्ञकी हवि, जीव है यज्ञका बद्ध पशु। यज्ञके मन-प्राण-देह-रूप त्रिबन्धन-युक्त यूपकाष्ठमें जीवको बांध प्रकृति देवी उसे अनवरत बलि दे रही है। मनका बंधन है अज्ञान, प्राणका बंधन दुःख, वासना और विक्षोभ, देहका बंधन मृत्यु।

प्रकृतिका उपाय तो निर्दिष्ट हुआ किन्तु इस बद्ध जीवका क्या उपाय होगा? उपाय है यज्ञ, आत्मदान, आत्मबलि। पर प्रकृतिके अधीन न हो, पाशविनाश प्रयत्न न हो स्वयं उठ खड़े हो, यजमान बन सर्वस्व दे देना होगा। यही विश्वका निगूढ़ रहस्य है कि पुरुष ही जैसे यज्ञका देवता है, वैसे पुरुष ही यज्ञका पशु भी। जीव भी पुरुष है। पुरुषने अपने मन, प्राण और शरीरको बलि-रूपमें, यज्ञके प्रधान उपकरण-रूपमें, प्रकृतिके हाथ समर्पित कर दिया है। उसके इस आत्मदानके दो गूढ़ उद्देश्य निहित

है कि एक दिन चैतन्य प्राप्त कर, प्रकृतिको अपने हाथमें ले, प्रकृतिको यज्ञकी सहधर्मिणी बना वह स्वय यज्ञ सपन्न करेंगे। इसी गुप्त कामनाको पूरी करनेके लिए हुई है नरकी सृष्टि। नर-मूर्तिमें वह वही लीला करना चाहते हैं। आत्मस्वरूप, अमरत्व, अनंत आनन्दका विचित्र आस्वादन, अनत ज्ञान, अनत शक्ति, अनत प्रेमका भोग नरदेहमे, नर-चैतन्यमें करना होगा। यह सब आनद तो पुरुषके अपने अन्दर है ही, पुरुष अपने अन्दर सनातन रूपसे सनातन भोग कर रहे हैं। किन्तु मानवकी सृष्टि कर, बहुमें एकत्व, सान्तमें अनन्त, वाह्यमें आतरिकता, इंद्रियमें अतीन्द्रिय, पार्थिवमें अमर लोकत्व, इस विपरीत रसको ग्रहण करनेमें तत्पर हैं। हमारे अन्दर मनके ऊपर, बुद्धिके उस पार, गुप्त सत्यमय विज्ञानतत्त्वमें बैठ, फिर हमारे ही अन्दर हृदयके पीछे चित्तका जो गुप्त स्तर है, जहां हृदय-गुहा है, जहां अर्तानिहित गुह्य चैतन्यका समुद्र है, हृदय, मन, प्राण, देह और बुद्धि जिस समुद्रकी छोटी-छोटी तरगें है, वही बैठ वह पुरुष प्रकृतिके अघ प्रयास, अध अन्वेषण, द्वंद्व प्रतिघातद्वारा ऐक्य स्थापनकी चेष्टाका रसास्वादन करते है। ऊपर सज्ञान भोग है, नीचे अज्ञानपूर्ण भोग, इस प्रकार दोनो एकसग चल रहे हैं। किन्तु चिरकाल इसी अवस्थामें मग्न रहनेसे उनकी निगूढ प्रत्याशा, उनका चरम उद्देश्य सिद्ध नही होता। इसीलिए प्रत्येक मनुष्यके जागरणका दिन विहित है। अतस्थ देवता एक दिन अवश पुण्यहीन प्राकृत आत्मवलि त्यागकर सज्ञान समंत्र यज्ञ संपादन करना आरम्भ करेंगे। यही सज्ञान समत्र यज्ञ है वेदोक्त "कर्म"। उसका उद्देश्य है द्विविध विश्वमय बहुत्वमे सपूर्णता, जिसे वेदमें विश्वदेव्य और वैश्वानरत्व कहा गया है, और एकात्मक परम-देवसत्तामें अमरत्व लाभ। ये वेदोक्त देवतागण अर्वाचीन, साधारण लोगोंके हेय इन्द्र, अग्नि, वरुण नामक क्षुद्र देवता नही, ये हैं भगवान्‌की ज्योतिर्मयी शक्तिसंपन्न नाना मूर्तियाँ। और यह अमरत्व पुराणोक्त तुच्छ स्वर्ग नही, है वैदिक ऋषियोका अभिलषित स्वः अनंत लोकका आधार, वेदोक्त अमरत्व, सच्चिदानंदमय अनत सत्ता और चैतन्य।

मूल और अनुवाद

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे ।।1।।

हे इन्द्र, हे वरुण, तुम्ही सम्राट् हो, तुम देवोको ही हम रक्षक-रूपमें वरण करते हैं—ऐसे तुम इस अवस्थामें हमारे ऊपर उदय होओ ।।1।।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः। धर्तारा चर्षणीनाम् ।।2।।

कारण, जो ज्ञानी शक्ति धारण कर पाते हैं, उन्हींके यज्ञस्थलमें तुम देव रक्षा करनेके लिए उपस्थित होते हो। तुम ही सब कार्योंके धारण-कर्ता हो ।।2।।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ। ता वां नेदिष्ठमीमहे ।।3।।

आधारके आनद-प्राचुर्यमें यथाकामना आत्मतृप्ति अनुभव करो, हे इन्द्र और वरुण, हम तुम्हारे अत्यंत निकट सहवास चाहते हैं ।।3।।

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्। भूयाम वाजदाव्नाम् ।।4।।

जो शक्तिया एव जो सुबुद्धिया आतरिक ऋद्धि बढाती हैं, उन्ही सबके प्रबल आधिपत्यमें हम जैसे प्रतिष्ठित रहें ।।4।।

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ।।5।।

जो-जो शक्तिदायक है इन्द्र उनके और जो-जो प्रशस्त और महत् है वरुण उनके ही स्पृहणीय प्रभु हो ।।5।।

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम् ।।6।।

इन दोनोंके रक्षणसे हम स्थिर सुखके साथ निरापद रहते एवं गभीर ध्यानमें समर्थ होते हैं। हमारी पूर्ण शुद्धि हो ।।६।।

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ।।7।।

हे इन्द्र, हे वरुण, हम तुमसे चित्र-विचित्र आनद प्राप्त करनेके लिए यज्ञ करते हैं, हमें सर्वदा विजयी बनाओ ।।7।।

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा। अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥8॥

हे इन्द्र, हे वरुण, हमारी बुद्धिकी सभी वृत्तिया हमारी वश्यता स्वीकार करें, उन सभी वत्तियोमें अधिष्ठित हो हमें शान्ति प्रदान करो ॥8॥

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे। यामृधाये सधस्तुतिम् ॥9॥

हे इन्द्र, हे वरुण, ये जो सुन्दर स्तव हम तुम्हें यज्ञरूपमें अर्पण करते हैं, वह तुम्हारा भोग्य हो, उस साधनाके लिए तुम ही स्तव-वाक्यको पुष्ट और सिद्धियुक्त बना रहे हो ॥9॥

व्याख्या

प्राचीन ऋषि जब आध्यात्मिक युद्धमे अन्तर-शत्रुके प्रबल आक्रमण होनेपर देवताओकी सहायता पानेके लिए प्रार्थना करते, साधना-पथपर किञ्चित् अग्रसर होनेपर असंपूर्णताका अनुभव कर पूर्णताकी प्रतिष्ठाकी, मनमें वाजः अथवा शक्तिकी स्थायी घनीभूत अवस्थाकी कामना करते अथवा अन्तर-प्रकाश और आनंदकी परिपूर्णतामें उसीकी प्रतिष्ठा करनेमें योगदान देने या उसकी रक्षा करनेके लिए देवताओका आह्वान करते, तब हम देखते हैं कि वे प्रायः युग्म रूपमें अमरगणके सम्मुख एक वाक्य, एक स्तवद्वारा स्तुतिकर अपना मनोभाव प्रकट करते थे। अश्वि-युगल (अश्विनौ), इन्द्र और वायु, मित्र और वरुण ऐसे संयोगोंके उदाहरण हैं। इस स्तवमें इन्द्र और वायु नहीं, मित्र और वरुण भी नही। इन्द्र और वरुणका इस प्रकार संयोग कर कण्ववंशज मेधातिथि आनंद, महत्त्वसिद्धि और शान्तिके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। इस समय उनके मनका भाव उच्च, विशाल और गंभीर है। वह चाहते हैं मुक्त और महत् कर्म, चाहते हैं प्रबल तेजस्वी भाव किन्तु वह बल प्रतिष्ठित होगा स्थायी, गभीर और विशुद्ध ज्ञानपर, वह तेज विचरण करेगा शान्तिके दो विशाल पक्षोपर आरूढ़ हो कर्मरूपी आकाशमें। आनंदके अनंत सागरमें निमग्न होनेपर भी, आनंदकी चित्र-विचित्र तरगोपर आदोलित होनेपर भी वह चाहते हैं वही स्थैर्य, महिमा और चिरप्रतिष्ठाका अनुभव; उस सागरमें डूब आत्म-ज्ञान खोने, उन तरंगोपर लुलितदेह गोता खानेको अनिच्छुक। उस महाकांक्षाकी प्राप्ति

करानेके योग्य सहायता देनेवाले देवता है इन्द्र और वरुण—राजा इन्द्र, सम्राट् वरुण। समस्त मानसिक वृत्तियाँ, अस्तित्व और कार्यकारित्वके मानसिक तेज और तप.के दाता इन्द्र ही हैं, वृत्रोंके आक्रमणसे उसकी रक्षा वे ही करते है। चित्त और चरित्रके जितने भी महत् और उदार भाव हैं, जिनके अभावमे मन और कर्ममें उद्धतता, सकीर्णता, दुर्बलता या शिथिलताका आना अवश्यंभावी है, उनकी स्थापना और रक्षा वरुण करते हैं। अतएव इस सूक्तके प्रारम्भमे ऋषि मेधातिथि इन दोनोकी सहायता और मित्रताका वरण करते है। **इन्द्रावरुणयोरहमव आ वृणे। सम्राजोः** क्योकि वे ही सम्राट् हैं। अतएव **ईदृशे,** इस अवस्थामें (मनकी जिस अवस्थाका वर्णन किया है) या इस अवसरपर वह अपने लिए और सबके लिए उनकी प्रसन्नताकी प्रार्थना करते हैं—**ता नो मृळात ईदृशे।** जिस अवस्थामें देह, प्राण, मन तथा विज्ञानाशकी सभी वृत्तिया और चेष्टाए अपने स्थानमें समारूढ और आवृत रहती हैं, किसीका भी जीवपर आधिपत्य, विद्रोह अथवा यथेच्छाचार नही होता, सभी अपने-अपने देवताकी पराप्रकृतिकी वश्यता स्वीकार कर अपना-अपना कर्म भगवन्निर्दिष्ट समयपर और परिमाणमें आनंदके साथ करनेमें अभ्यस्त होती हैं, जिस अवस्थामें गभीर शान्ति तथा साथ ही तेजस्विनी सीमारहित प्रचण्ड कर्म-शक्ति होती है, जिस अवस्थामें जीव स्वराज्यका स्वराट् होता है, अपने आधारभूत आन्तरिक राज्यका यथार्थ सम्राट्, उसीके आदेशसे या उसीके आनदके लिए सभी वृत्तियाँ सुचारु रूपसे परस्पर सहायता करती हुई कर्म करती है अथवा उसकी इच्छा होनेपर गंभीर तमोरहित नैष्कर्म्यमें मग्न हो अतल शान्तिके अनिर्वचनीय आनदका आस्वादन करती हैं, उसी अवस्थाको प्रथम युगके वैदातिक स्वराज्य वा साम्राज्य कहा करते थे। इन्द्र और वरुण इसी अवस्थाके विशेष अधिष्ठाता है, सम्राट् है। इन्द्र सम्राट् बन अन्य सभी वृत्तियोको चालित करते हैं, वरुण सम्राट् वन अन्य सभी वृत्तियोपर शासन करते और उन्हे महिमान्वित करते है।

इन महिमान्वित अमरद्वयकी सपूर्ण सहायता प्राप्त करनेके अधिकारी सभी नही होते। जो ज्ञानी है, धैर्य-प्रतिष्ठित हैं वे ही है अधिकारी। 'विप्र' होना होगा, 'मावान्' वनना होगा। विप्रका अर्थ ब्राह्मण नही। 'वि' धातुका अर्थ है प्रकाश, 'विप्' धातुका अर्थ है प्रकाशकी क्रीड़ा, कपन या पूर्ण उच्छ्वास। जिसके मनमें ज्ञानका उदय हुआ है, जिसके मनका द्वार ज्ञानकी तेजस्वी क्रीडाके लिए मुक्त है वही है विप्र। 'मा' धातुका अर्थ है धारण करना। जननी गर्भमें सतान धारण करती है इसीलिए वह

'माता' नामसे अभिहित है। आकाश समस्त भूतके, समस्त जीवके जन्म, खेल और मृत्युको अपने गर्भमें धारण कर स्थिर, अविचलित बना रहता है, इसलिए वह समस्त कर्मके प्रतिष्ठापक प्राणस्वरूप वायुदेवता मातरिश्वाके नामसे विख्यात है। आकाशकी तरह ही जिसमें धैर्य और धारणशक्ति है, जब प्रचण्ड बवण्डर दिङ्मण्डलको आलोडित कर प्रचण्ड हुंकारके साथ वृक्ष, पशु, गृहतकको उडाता हुआ रुद्र भयंकर रासलीला नृत्य-अभिनय करता है तब आकाश उस क्रीडाको जिस प्रकार सहन करता है, चुपचाप आत्मसुखमें मग्न रहता है, उसी तरह जो प्रचण्ड विशाल आनन्दको, प्रचण्ड रुद्र कर्मस्रोतको, यहाँतक कि शरीर या प्राणकी असह्य यत्रणाको भी, अपने आधारमें उस क्रीड़ाके लिए उन्मुक्त क्षेत्र प्रदान कर अविचलित और आत्मसुखमें प्रफुल्ल रहता हुआ साक्षी-रूपमें धारण करनेमें समर्थ होता है वही है 'मावान्'। जिस समय ऐसे मावान् विप्र, ऐसे धीर ज्ञानी अपने आधारको वेदी बना यज्ञके लिए देवताओंका आवाहन करते हैं, उस समय इन्द्र और वरुणकी वहा अबाध गति होती है, वे स्वेच्छासे भी उपस्थित होते हैं, यज्ञकी रक्षा करते हैं, उसके समस्त अभीप्सित कर्मके आश्रय और अवलंब बन (धर्तारा चर्षणीनाम्) विपुल आनद, शक्ति और ज्ञानका प्रकाश प्रदान करते हैं।

प्रथम मण्डल—सूक्त 75

मूल और अनुवाद

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥1॥

मैं जिसे व्यक्त करता हूं वह अतिशय विस्तृत और बृहत् है एवं देवताके भोगकी सामग्री है, उसे तुम प्रेमसहित आत्मसात् करो। जितना भी हव्य प्रदान करो, सब अपने ही मुंहमें अर्पण करो ॥1॥

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥2॥

हे तपः-देव! हे शक्तिधारियोंमें श्रेष्ठ तथा उत्तम विधाता! मै हृदयका जो मत्र व्यक्त करता हूं वह तुम्हें प्रिय हो और मेरी अभिलषित वस्तुओंके विजयी भोक्ता बनो ॥2॥

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥3॥

हे तपः-देव अग्नि! जगत्में कौन तुम्हारा साथी और भाई है? तुम्हें देवगामी सख्य देनेमें कौन समर्थ है? तुम ही कौन हो? किसके अतरमें अग्निदेवका आश्रय है? ॥3॥

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥4॥

हे अग्नि! तुम ही सब प्राणियोंके भ्राता हो, तुम ही जगत्के प्रिय बन्धु हो, तुम ही सखा और अपने सखाओंके काम्य हो ॥4॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥5॥

मित्र और वरुणके लिए, देवताओंके लिए, बृहत् सत्यके लिए यज्ञ करो। हे अग्नि! वह सत्य तुम्हारा अपना ही घर है, उसी लक्ष्य-स्थलपर यज्ञको प्रतिष्ठित करो ॥5॥

तृतीय मण्डल—सूक्त 46

मूल और अनुवाद

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥1॥

जो देवता पुरुष योद्धा ओजस्वी स्वराट् हैं, जो देवता नित्ययुवा स्थिर-शक्ति प्रखर दीप्तिस्वरूप और अक्षय, अति महान् हैं, वही हैं श्रुतिधर वज्रधर इन्द्र, अति महान् है उनके समस्त वीरकर्म ॥1॥

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान्।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥2॥

हे विराट्! हे ओजस्वी! तुम महान् हो, अपनी विस्तार-शक्तिके कर्मद्वारा तुम अन्य सबपर जोर-जबर्दस्ती कर उनसे हमारा अभिलषित धन छीन लो। तुम एक हो, समस्त जगत्में जो कुछ दीख रहा है उस सबके राजा हो, मनुष्यको युद्धकी प्रेरणा दो, उसके जेय स्थिर-धाममें उसे स्थापित करो ॥2॥

प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥3॥

इन्द्र दीप्ति-रूपमें प्रकट होकर जगत्की सभी मात्राका अतिक्रमण कर जाते हैं, देवताओको भी सब ओरसे अनतभावसे अतिक्रम कर सबके लिए अगम्य हो जाते हैं।. साथ ही, ऋजुगामी ये शक्तिधर इन्द्र अपनी ओजस्वितासे मनोजगत्, विस्तृत भूलोक एव महान् प्राणजगत्को भी अतिक्रम कर जाते हैं ॥3॥

उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम्।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥4॥

इस विस्तृत और गभीर, इस जन्मत उग्र और तेजस्वी, इस सर्वविकासकारी और सर्वविचारधारक इन्द्र-रूप समुद्रमे जगत्के सभी मद्यकर रसप्रवाह मनोलोककी ओर अभिव्यक्त होकर स्रोतस्विनी नदियोकी तरह प्रवेश करते हैं ॥4॥

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥5॥

ह शक्तिधारी, जिस तरह माता अजात शिशुको धारण करती है उसी तरह यह आनद-मदिरा मनोलोक और भूलोकको तुम्हारी ही कामनासे धारण करती है। हे वर्षक इन्द्र! अध्वरका अध्वर्यु तुम्हारे ही लिए तुम्हारे ही पानके लिए उस आनदप्रवाहको दौडाता है, तुम्हारे लिए ही उस आनदको परिशुद्ध करता है ॥5॥

नवम मण्डल—सूक्त 1

मूल और अनुवाद

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥1॥

स्वादिष्ट, मादकतम धारामें, पवित्र स्रोतमें बहो, हे सोमदेव, इन्द्रके पानार्थ तुम अभिपुत हो ॥1॥

उपनिषद्

उपनिषद्

हमारा धर्म अत्यंत विशाल और नाना शाखा-प्रशाखाओंसे सुशोभित है। उसका मूल है गभीरतम ज्ञानपर आरूढ और शाखाएँ कर्मके सुदूर प्रांतोतक फैली हुई। जिस तरह गीताका अश्वत्थ वृक्ष है **ऊर्ध्वमूलः** और **अधःशाखः**, उसी तरह यह धर्म है ज्ञानप्रतिष्ठित और कर्म-प्रेरक। निवृत्ति है उसकी नींव, प्रवृत्ति है उसका घर, छत और दीवाल तथा मुक्ति है उसका शिखर। मानवजातिका सारा जीवन इस हिन्दू-धर्मके विशाल वृक्षपर आश्रित है।

सभी कहते हैं कि वेद हिन्दूधर्मका आधार है, किन्तु थोडे लोग ही उस आधारके स्वरूप और मर्मसे अवगत हैं; प्रायः ही हम शाखाके अग्र-भागमें बैठ दो एक सुस्वादु नश्वर फल चख मत्त हो जाते हैं, मूलकी कोई खोज-खबर ही नही रखते। हमने सुना अवश्य है कि वेदके दो भाग हैं—कर्मकांड और ज्ञानकाड; किन्तु यह नही जानते कि असल कर्मकांड क्या है, ज्ञानकाड क्या है? हमने मैक्समूलर-कृत ऋग्वेदकी व्याख्या या रमेशचन्द्र दत्तका बंगला अनुवाद चाहे पढ लिया हो, पर नही जानते कि ऋग्वेद क्या है। मैक्समूलर और दत्त महोदयसे हमें यह ज्ञान मिला है कि ऋग्वेदके ऋषि प्रकृतिके बाह्य पदार्थो या भूतमात्रकी पूजा करते थे, सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि इत्यादिके स्तव-स्तोत्र ही है सनातन हिन्दूधर्मका वह अनाद्यनन्त अपौरुषेय मूल ज्ञान। हम इसीपर विश्वास कर वेदोका, ऋषियोका और हिन्दूधर्मका अपमान करते हैं और समझते है कि हम बडे ही विद्वान् हैं, बडे 'आलोकप्राप्त' हैं। इस बातका बिल्कुल कोई अनुसंधान ही नही करते कि असली वेदमे वास्तवमें है क्या और क्या कारण है कि शंकराचार्य प्रभृति महाज्ञानी और महापुरुष इन स्तव-स्तोत्रोको अनाद्यनन्त संपूर्ण अभ्रान्त ज्ञान मानते थे।

अथवा उपनिषद् ही क्या है—इसे भी बहुत थोडे लोग ही जानते है। जब उपनिषदोकी चर्चा करते हैं तब हम प्रायः ही शंकराचार्यके अद्वैतवाद,

रामानुजके विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वके द्वैतवाद इत्यादि दार्शनिक व्याख्याओंकी बात सोचते हैं। असली उपनिषदोंमें क्या लिखा है, उसका प्रकृत अर्थ क्या है, क्यों परस्परविरोधी षड्दर्शन इस एक ही मूलसे उत्पन्न हुए हैं, षड्दर्शनके अतिरिक्त कोई निगूढ अर्थ इस ज्ञानभंडारमें प्राप्त हो सकता है या नहीं—इनपर हम विचार भी नहीं करते। शंकरने जो अर्थ किया था उसे ही हम हजारों वर्षोंसे स्वीकार करते चले आ रहे हैं, शंकरकी व्याख्या ही हमारा वेद है, हमारी उपनिषद् है; कष्ट उठा असली उपनिषदें भला कौन पढ़े? अगर पढ़ें भी तो शंकर-विरोधी कोई व्याख्या देखते ही उसे भूल समझ उसे त्याग देते हैं। परन्तु उपनिषदोंमें केवल शंकर-लब्ध ज्ञान नहीं है, भूत, वर्तमान और भविष्यमें जो आध्यात्मिक ज्ञान या तत्त्वज्ञान प्राप्त हुए हैं या होंगे उन सबको आर्य ऋषि और महायोगी अत्यंत संक्षेपमें निगूढ़ अर्थप्रकाशक श्लोकोंमें निहित कर गये हैं।

उपनिषद् क्या है? जिस अनाद्यनन्त गभीरतम सनातन ज्ञानपर सनातन धर्म प्रतिष्ठित है, उसी ज्ञानका भांडार हैं उपनिषदें। चारों वेदोंके सूक्तोंमें पाया जाता है वह ज्ञान, किन्तु उपमाके बहाने, स्तोत्रोंके बाहरी अर्थद्वारा ढका हुआ है, जैसे दर्पणमें मनुष्यकी प्रतिमूर्ति। उपनिषदें हैं अनाच्छन्न परम ज्ञान, असली मनुष्यके अनावृत अवयव। ऋग्वेदके वक्ता ऋषियोंने ईश्वरीय प्रेरणासे आध्यात्मिक ज्ञानको शब्दों और छन्दोंमें प्रकट किया था, उपनिषदोंके ऋषियोंने साक्षात् दर्शनद्वारा उस ज्ञानका स्वरूप देख थोड़े और गंभीर शब्दोंमें उसे व्यक्त किया। अद्वैतवाद इत्यादि ही क्यों, उसके बाद जितने भी दार्शनिक विचार और वाद भारतमें, यूरोपमें, एशियामें सृष्ट हुए—नाममात्रवाद (Nominalism), यथार्थवाद (Realism), शून्यवाद, डारविनका क्रमविकास, कोंतेका प्रत्यक्षवाद (Positivism), हेगेल, कांट, स्पिनोजा, शोपेनहावर, उपयोगितावाद (Utilitarianism) सुखवाद (Hedonism) इन सबको उपनिषद्के ऋषियोंने अपने साक्षात्कार-द्वारा अनुभव तथा व्यक्त किया था। परन्तु अन्यत्र जिसे हम खंडरूपमें देखते हैं, जो सत्यका अंशमात्र होनेपर भी सम्पूर्ण सत्यके रूपमें प्रचारित है, सत्य-मिथ्या मिला विकृत रूपमें वर्णित है, वह उपनिषदोंमें पूर्ण रूपमें, अपने प्रकृत संबंधमें आबद्ध हो शुद्ध और अभ्रांत रूपमें लिपिबद्ध है। अतएव शंकरकी व्याख्यासे या और किसीकी भी व्याख्यासे सीमाबद्ध न हो उपनिषदोंका वास्तविक, गभीर और अखंड अर्थग्रहण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

'उपनिषद्' शब्दका अर्थ है गूढ स्थानमें प्रवेश करना। ऋषियोंने

तर्कके बलपर, विद्याका प्रसार कर, प्रेरणाके स्रोतसे उपनिषदुक्त ज्ञानको प्राप्त नही किया था, बल्कि मनकी निभृत कोठरीके जिस स्थानमें सम्यक् ज्ञानकी चाभी लटक रही है, योगद्वारा अधिकारी बन उसी कोठरीमें प्रवेश कर उन्होंने वह चाभी प्राप्त की और अभ्रात ज्ञानके विशाल राज्यके राजा बने। वह चाभी हस्तगत हुए बिना उपनिषदोका प्रकृत अर्थ नही खुलता। केवल तर्क-बलपर उपनिषदोका अर्थ करना और घने जगलमें मोमबत्तीके प्रकाशमें तुग वृक्षके शिखरोको निरीक्षण करना एक जैसी बात है। साक्षात् दर्शन ही है वह सूर्यालोक जिससे सारा अरण्य आलोकित हो अन्वेषणकारीको नयनगोचर होता है। योगद्वारा ही प्राप्त हो सकता है साक्षात् दर्शन।

सृष्टि और क्रमविकास—इन सबका गूढ तात्पर्य यही है। अन्य जिन उद्देश्योंके पीछे हमारे प्राण और मन हैरान होते हैं वे गौण उद्देश्य हैं, आंशिक हैं, देवताओंकी सच्ची अभिसंधिमें सहायमात्र है। अन्य जिन खण्ड सिद्धियोंको पा हम उल्लसित होते हैं वे हैं पथके विश्रामगृह-भर, मार्गस्थ पर्वतशिखरोंपर जयपताका गाड़नेके समान। असली उद्देश्य, यथार्थ सिद्धि है मनुष्यमें, कुछ विरल महापुरुषोंमें ही नहीं, बल्कि मनमें, जातिमें, विश्वमानवमें ब्रह्मका विकास और स्वयं-प्रकाश, भगवान्‌का प्रत्यक्ष शक्ति-संचारण और ज्ञानमय व आनंदमय लीला।

इस ज्ञान और इस साधनाका प्रथम रूप और अवस्था हम देखते हैं ऋग्वेदमें। भारतीय इतिहासके प्रारंभमें ही आर्यधर्म-मंदिरके द्वारस्थ स्तूपपर अंकित थी आदि-लिपि। ऋग्वेद ही उसकी आदिम वाणी है—यह बात हम ठीक निःसंदिग्ध रूपसे नहीं कह सकते, क्योंकि ऋग्वेदके ऋषियोंने भी स्वीकार किया है कि जो उनके अग्रवर्ती थे, आर्यजातिके आदि पूर्वपुरुष—**पूर्वे पितरो मनुष्याः**—उन्होंने इस पथका आविष्कार किया, उन्हींका देवजीवन-प्राप्तिका साधनमार्ग है परवर्ती मानवजातिका सत्य और अमृतत्वका पंथ। पर वे यह भी कहते हैं कि प्राचीन ऋषियोंने जो कुछ दिखाया था, नवीन ऋषि उसीका अनुसरण करते हैं; जिस दिव्य वाक्‌का उच्चारण पितृगणोंने किया था उसी वाणीकी प्रतिध्वनि हमें सुनायी पड़ती है ऋग्वेदके मंत्रोंमें, अतएव ऋग्वेदमें हम इस धर्मका जो स्वरूप देखते हैं उसे ही उसका आदि-रूप कह सकते हैं। इसीका अति महत्, अति उदार रूपांतर है उपनिषदों का ज्ञान, वेदांतकी साधना। वेदका वैश्वदेव्य ज्ञान और देवजीवन-साधना, उपनिषदोंका आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-प्राप्तिकी साधना, दोनों ही, समन्वय पर प्रतिष्ठित हैं—विश्वपुरुष और विश्वशक्ति-के नाना पहलुओंको, ब्रह्मके सभी तत्त्वोंको एकत्र कर वैश्वदेव्य, सर्वं ब्रह्मकी अनुभूति और अनुशीलन ही है उसकी मूल वाणी। उसके बाद आरम्भ होता है विश्लेषण-युग। सत्यके एक-न-एक खंड-दर्शनको ले वेदान्तकी पूर्व और उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक आदि विभिन्न साधनाओं-की सृष्टि हुई; अंतमें खंड-दर्शनका खंड ले अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टा-द्वैतवाद, वैष्णवमत, शैवमत, पुराण, तंत्र आदि रचित हुए। समन्वयकी चेष्टा भी बंद नहीं हुई, गीता, तंत्र और पुराणोंमें भी वह चेष्टा दिखायी पड़ती है, उनमेंसे प्रत्येक थोड़ा-बहुत कृतार्थ भी हुआ है, बहुत-सी नवीन आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी उपलब्ध की गयी हैं, पर वेद-उपनिषद्‌के समान व्यापकता और कहीं नहीं मिलती। भारतकी आदिम आध्यात्मिक वाणी

ईश उपनिषद्

[1]

ईश उपनिषद्का सीधा अर्थ ग्रहण करने तथा उसमें निहित ब्रह्मतत्त्व, आत्मतत्त्व और ईश्वरतत्त्वको हृदयंगम करनेमें प्रधान अंतराय है शंकराचार्यद्वारा प्रचारित मायावाद और उपनिषदोंका शंकर-प्रणीत भाष्य। साधारण मायावाद, निवृत्तिकी एकमुखी प्रेरणा और संन्यासीद्वारा प्रशंसित कर्मविमुखता-के साथ ईशोपनिषद्का पूर्ण विरोध है, श्लोकोंके अर्थकी खींच-तान कर उलटा अर्थ किये बिना इस विरोधका समाधान करना है असंभव। जिस उपनिषद्-में लिखा है—**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः** अर्थात् कर्म करते हुए सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा कर, और फिर लिखा है—**न कर्म लिप्यते नरे**—कर्म मनुष्यको नहीं बांधते; फिर जिस उपनिषद्ने साहसपूर्वक कहा है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

जो अविद्याकी उपासना करते हैं वे घने अंधकारमें प्रवेश करते हैं और जो विद्यामें ही रत रहते हैं वे उससे कहीं अधिक अंधकारमें पतित होते हैं; और भी कहा है—**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा**—अविद्याद्वारा मृत्युको पार कर, और यह भी कहा है—**सम्भूत्यामृतमश्नुते**—सभूतिद्वारा अमृतत्व प्राप्त करता है, उस उपनिषद्के साथ भला मायावाद और निवृत्ति-मार्गका मेल कैसे बैठ सकता है? शंकरके बाद दाक्षिणात्यके अद्वैतमतके प्रधान नियंता विद्यारण्यने ऐसा समझकर ही 'ईश'को बारह प्रमुख उपनिषदोंकी तालिकासे निर्वासित कर उसके स्थानपर नृसिंहतापनीय उपनिषद्को बिठा दिया था। स्वयं शंकरा-चार्यने प्रचलित विधानको उलट वैसा करनेका दुस्साहस नहीं किया। उन्होंने मान लिया कि यह श्रुति है, माया है श्रुतिका प्रतिपाद्य तत्त्व, अतएव इस श्रुतिका अर्थ भी प्रकृत मायावादके अनुकूल ही होगा, उससे भिन्न, उसके प्रतिकूल नहीं हो सकता।

जगती यदि पृथ्वी ही हो तो यह मानना होगा कि यह सब जो कुछ गतिशील पृथिवीपर है अर्थात् मनुष्य, पशु, कीट, पक्षी, नद, नदी इत्यादि, सब हैं गतिशील। परन्तु यह अर्थ है नितान्त असंभव। उपनिषद्‌की भाषामें सर्वमिदम् शब्दसे सर्वत्र ही जगत्‌की सभी वस्तुएँ परिलक्षित होती हैं, पृथ्वीकी नहीं। अतएव जगती शब्दसे समझना होगा जगत्-रूपमें प्रकटित गतिशील शक्ति, जगत् शब्दमें जो कुछ आता है वह प्रकृतिकी गतिकी एक गति है, चाहे प्राणि-रूपमें हो या पदार्थ-रूपमे। विरोध होता है इन दोनोमें : ईश्वर और जगत्‌में जो कुछ है। जैसे, ईश्वर स्थाणु, प्रकृति और शक्ति गतिशीला, सर्वदा कर्ममें और जगद्व्यापी गतिमें व्यापृत रहती है, इस तरहके जगत्‌में जो कुछ है वह है उसकी गतिका एक क्षुद्र जगत्, वह सर्वदा ही है प्रति मुहूर्त्त सृष्टि-स्थिति-प्रलयका सधिस्थल, चचल, नश्वर, स्थाणुके विपरीत। एक ओर तो ईश्वर है और दूसरी ओर पृथ्वी और पृथ्वीपर विद्यमान समस्त जगम—इससे वह नित्य विरोध प्रस्फुटित नही होता। एक ओर स्थाणु ईश्वर है, दूसरी ओर चंचला प्रकृति और उसके सृष्ट जगत् में प्रकृतिद्वारा अधिकृत समस्त चीजें—समस्त अस्थायी वस्तुएँ; इसी सर्वजनलक्षित नित्यविरोधको लेकर उपनिषदोका आरम्भ होता है।

इसी विरोध और उसके समाधानपर रचित हैं सभी उपनिषदें। आगे जाकर ईश्वर क्या है और जगत् क्या है—इसका विचार करते हुए उपनिषत्कार तीन बार इसी बातको अन्य प्रकारसे उत्थापित करते हैं। पहले ब्रह्मकी चर्चा करते हुए पुरुष और प्रकृतिका विरोध अनेजद् और मनसो जवीयः (वह अचल है और मनसे अधिक वेगवान् है)..... तद् एजति, तन्नैजति (वह चलता है और वह नही भी चलता)—इन चन्द शब्दोंमें उन्होंने यह समझाया है कि दोनो ही ब्रह्म हैं, पुरुष भी ब्रह्म, प्रकृति और प्रकृतिरूपी जगत् भी ब्रह्म। फिर आत्माकी बात है, बताते हैं ईश्वर और जगत्‌में जो कुछ है उसका विरोध। आत्मा ही ईश्वर है, पुरुष....।

निश्चय ही, निचोडनेपर अर्थात् मायावाद-निष्पीडनसे प्रकृत प्रच्छन्न अर्थ बाध्य हो बाहर निकल आयेगा। इसी उपलब्धिके वशीभूत हो शकराचार्यने ईशोपनिषद्‌के भाष्यकी रचना की थी।

देखें, एक ओर शांकर भाष्य क्या कहता है और दूसरी ओर सचमुचमें उपनिषद् क्या कहती है। उपनिषत्कार ईश्वर-तत्त्व और जगत्-तत्त्वको एक-दूसरेके सम्मुख ला एक कर देते हैं और इन दोनोका मूल सबध बतलाते हैं—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

इसका सीधा अर्थ है, "ईश्वरके वास करनेके लिए यह सब विद्यमान है, जो कुछ जगतीके अन्दर जगत् है" अर्थात् गतिशीलाके अन्दर गतिशील। यह सहज ही पता चल जाता है कि विश्वविकासमें दो तत्त्व प्रकटित होते हैं, स्थाणु और जगती, निश्चल सर्वव्यापी नियामक पुरुष और गतिशीला प्रकृति, ईश्वर और शक्ति। स्थाणुको जब ईश्वर नाम दिया गया है तब समझना होगा कि पुरुष और प्रकृतिका संबंध यही है कि जगती ईश्वरके अधीन है, उनके द्वारा नियंत्रित है, उनकी इच्छासे प्रकृति समस्त कर्म करती है। यह पुरुष केवल साक्षी और अनुमता ही नहीं, ज्ञाता, ईश्वर, कर्मका नियंता भी है, प्रकृति कर्मकी नियंत्री नहीं, नियति मात्र है, कर्त्री तो है पर है कर्ताके अधीन, पुरुषके आज्ञाधीन रहती हुई उसीकी कार्यकारिणी शक्ति।

इसके बाद यह भी देखा जाता है कि यह जगती केवल गतिशील शक्ति, केवल जगत्कारणस्वरूप तत्त्व ही नहीं, वह जगत्-रूपमें भी विद्यमान है। जगती शब्दका साधारण अर्थ है पृथिवी, पर यहाँ यह लागू नहीं होता। जगत्यां जगत्—इन दो शब्दोंके संयोगद्वारा उपनिषत्कार यह इशारा करते हैं कि इन दोनोंका धातुगत अर्थ उपेक्षणीय नहीं। उसपर जोर देना ही है उनका उद्देश्य।

ईश उपनिषद्

[2]

ईश उपनिषद् है पूर्णयोग-तत्त्व तथा पूर्ण अध्यात्म-सिद्धिकी परिचायिका, थोड़ेमें बहुत-सी समस्याओंका समाधान करनेवाली, अति महत्, अतल गभीर अर्थसे परिपूर्ण श्रुति। अठारह श्लोकोंमें समाप्त कुछ इने-गिने क्षुद्राकार मंत्रोंमें जगत्के ततोधिक प्रमुख सत्योंकी व्याख्या। इस प्रकार एक क्षुद्र परिसरमें अनंत अमूल्य संपदा श्रुतिमें ही पायी जाती है।

समन्वय-ज्ञान, समन्वय-धर्म, विपरीत तत्त्वोंका मिलन और एकीकरण है इस उपनिषद्का प्राण। पाश्चात्य दर्शनमें एक नियम है जिसे Law of Contradiction, विपरीत वस्तुओंका परस्पर बहिष्करण कहा जाता है। दो विपरीत सिद्धान्त एक संग नहीं रह सकते, परस्पर मिल नहीं सकते, दो विपरीत गुण एक समयमें, एक स्थानमें, एक आधारमें, एक वस्तुके सम्बन्धमें युगपत् सत्य नहीं हो सकते। इस नियमके अनुसार विपरीत वस्तुओंका मिलन और एकीकरण हो ही नहीं सकता। भगवान् यदि एक हों तो, वे हजार सर्वशक्तिमान् क्यों न हों, बहु कदापि नहीं हो सकते। अनंत कभी सान्त नहीं होता। अरूपका रूप बनना असंभव, उसके स-रूप होनेपर उसका अरूपत्व विनष्ट हो जायगा। ब्रह्म एक साथ ही निर्गुण और सगुण है, उपनिषद् जो भगवान्के संबंधमें कहती है कि वह "निर्गुणो गुणी" है, इस सिद्धान्तको भी यह युक्ति उड़ा देती है। ब्रह्मका निर्गुणत्व, अरूपत्व, एकत्व, अनंतत्व यदि सत्य हो तो फिर उसका सगुणत्व, सरूपत्व, बहुत्व, सांतत्व मिथ्या है। मायावादीका यह सर्वध्वंसी सिद्धान्त—**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**—इस दार्शनिक नियमकी है चरम परिणति। ईशोपनिषद्के द्रष्टा ऋषि पद-पद पर इस नियमका दलनकर हर श्लोकमें मानों उसकी असारताकी घोषणा करते हुए तथा वैपरीत्यके अंदर विपरीत तत्त्वोंके गुप्त हृदयमें मिलन और एकीकरणका स्थान ढूंढ़ते हुए चल रहे हैं। गतिशील

जगत् और स्थाणु पुरुषका एकत्व, पूर्ण त्यागमें पूर्ण भोग, पूर्ण कर्ममें सनातन मुक्ति, ब्रह्मकी गतिमें ही चिर-स्थाणुत्व, चिरंतन स्थाणुत्वमें अबाध अचिंत्य गति, अक्षर ब्रह्म और क्षर जगत्का एकत्व, निर्गुण ब्रह्म और सगुण विश्व-रूपका एकत्व, जैसे अविद्यामें वैसे विद्यामें परम अमरत्व-प्राप्तिका अभाव, युगपत् विद्या-अविद्याके सेवनसे अमरत्व, न जन्म-चक्र-परिभ्रमणमें, न जन्मनाशमें, युगपत् संभूति और असंभूतिकी सिद्धिमें परम मुक्ति और परम सिद्धि—ये ही हैं उपनिषद्द्वारा उच्च कंठसे प्रचारित महातथ्य।

दुर्भाग्यवश उपनिषद्के अर्थको ले अनर्थक गोलमाल किया गया है। शंकराचार्य उपनिषद्के प्राय. सर्वजनस्वीकृत प्रधान टीकाकार हैं, किन्तु ये सब सिद्धान्त यदि गृहीत हो तो शकरका मायावाद अतल जलमें डूब जायगा। मायावादके प्रतिष्ठापक दार्शनिकोमें अतुल्य अपरिमेय शक्तिशाली है। यमुना नदी जब अपना पथ छोडनेके लिए इच्छुक नही हुई तब तृषित बलरामने जैसे उसे अपने हलास्त्रसे जबर्दस्ती घसीट अपने चरण-प्रांतमें ला उपस्थित किया था, वैसे ही शंकरने भी जब इस मायावादनाशी उपनिषद्को अपने गतव्य स्थलके पथपर उपस्थित पाया तब उसके अर्थको खीच-तानकर अपने मतके साथ मिलाकर छोड़ दिया। इससे उपनिषद्की क्या दुर्दशा हुई है यह हम दो-एक दृष्टांतोसे ही समझ सकते हैं। उपनिषद्में कहा गया है कि जो एकमात्र अविद्याकी उपासना करते हैं वे घोर अधकारमें पतित होते हैं, साथ ही कहा है कि जो एकमात्र विद्याकी उपासना करते हैं वे मानो और भी घने अंधकारमें प्रवेश करते है। शंकर कहते हैं, विद्या और अविद्याको यहाँ मैं साधारण अर्थमें नही लेता, यहाँ विद्याका अर्थ है देव-विद्या। उपनिषद्में कहा गया है—विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते, असभूतिद्वारा मृत्युको जीत सभूतिद्वारा अमरत्वका भोग करता है। शकर कहते हैं, इसे पढना चाहिये, "असंभूत्यामृतम्" विनाशका यहाँ अर्थ है जन्म। ठीक इसी तरह एक द्वैतवादी टीकाकार कहते हैं: "तत्त्वमसि" को "अतत् त्वमसि" पढना चाहिये। शकरके परवर्ती एक प्रधान मायावादी आचार्यने एक दूसरे उपायका अवलबन किया है, वह ईशोपनिषद्को मुख्य प्रमाणस्वरूप उपनिषदोकी तालिकासे बहिष्कृतकर उसके स्थानपर नृसिंहोत्तरतापनीयको promote (उच्च पद दे) कर कृतार्थ हुए। सच पूछा जाय तो इस प्रकार लाठीके बलपर अपने मतकी स्थापना करनेकी आवश्यकता नही। उपनिषदें अनंत ब्रह्मके अनंत पक्ष हैं, किसी एक ही दार्शनिक मतकी पोषक नही, तभी तो इस एक ही बीजसे सहस्र दार्शनिक मत अकुरित हुए हैं।

प्रत्येक दर्शन अनंत सत्यके एक-एक पहलूको बुद्धिके सम्मुख सुश्रृंखलित रूपमें उपस्थित करता है। अनंत ब्रह्मकी अभिव्यक्ति अनंत, अनंत ब्रह्मको पानेके पथ भी अनगिनत।

पुराण

पुराण

पिछले प्रबंधमे उपनिषदोकी बात लिखी है और उपनिषदोका प्रकृत और पूर्ण अर्थ समझनेकी प्रणाली बतलायी है। जैसे उपनिषदें हिंदूधर्म-का प्रमाण है वैसे पुराण भी। जैसे श्रुति प्रमाण है वैसे स्मृति भी, किन्तु एक ही श्रेणीके नही। श्रुति और प्रत्यक्ष प्रमाणके साथ यदि स्मृतिका विरोध हो तो स्मृतिका प्रमाण ग्राह्य नही। जो कुछ योगसिद्ध दिव्य-चक्षुप्राप्त ऋषियोने प्रत्यक्ष दर्शन किया, जो कुछ अतर्यामी जगद्गुरुने उनकी विशुद्ध बुद्धिको श्रवण कराया, वही है श्रुति। जो कुछ प्राचीन ज्ञान और विद्या है, जो कुछ पुरुष-परपरासे रक्षित होता आया है, वही है स्मृति। स्मृति-ज्ञान बहुतोंके मुहसे, बहुतोंके मनमें परिवर्तित, विकृत तक होता हुआ आ सकता है, अवस्था-भेदके अनुसार नया-नया मत और आवश्यकतानुसार नया-नया रूप धारण करता हुआ आ सकता है। अतएव स्मृतिको श्रुतिकी तरह अभ्रात नही कहा जा सकता। स्मृति अपौरुपेय नही, यह है मनुष्यके सीमाबद्ध परिवर्तनशील मत और बुद्धिकी सृष्टि।

स्मृतियोमें पुराण प्रधान है। उपनिषदोंके आध्यात्मिक तत्त्व पुराणोंमें उपन्यास और रूपकोंमे परिणत हुए है, उनमे भारतका इतिहास, हिन्दूधर्म-की उत्तरोत्तर वृद्धि और अभिव्यक्ति, प्राचीन सामाजिक अवस्था, आचार, पूजा, योगसाधना, चिन्तनप्रणाली अनेक आवश्यक बातें पायी जाती है। इसके अतिरिक्त प्राय: सभी पुराणकार या तो सिद्ध थे या साधक: उनका ज्ञान और साधनासे प्राप्त उपलब्धि ही उनके द्वारा रचित पुराणमे लिपिबद्ध है। वेद और उपनिषद् है हिन्दूधर्मके मूल ग्रन्थ। पुराण है उन ग्रन्थोकी व्याख्या। व्याख्या कभी मूल ग्रन्थके समान नही हो सकती। तुम जो व्याख्या करो वही व्याख्या मैं नही भी कर सकता, पर मूल ग्रन्थको परि-वर्तित या अग्राह्य करनेका अधिकार किसीको भी नही। जो वेद और उप-निषद्में नही मिलता वह हिन्दूधर्मके अगके रूपमे गृहीत नही हो सकता, परतु पुराणोंके साथ मेल न होनेपर भी नया विचार गृहीत हो सकता है। व्याख्या-

का मूल्य व्याख्याकारकी मेधाशक्ति, ज्ञान और विद्यापर निर्भर है। जैसे, व्यासदेव-रचित पुराण यदि विद्यमान रहता तो उसका आदर प्रायः श्रुतिके समान होता; उसके और लोमहर्षणके रचे पुराणके अभावमें जो अष्टादश पुराण विद्यमान हैं उनमें, सबका समान आदर न कर, विष्णु और भागवत पुराण जैसी योगसिद्ध व्यक्तिकी रचनाओंको अधिक मूल्यवान् कहना होगा, शिव या अग्नि पुराणकी अपेक्षा गभीर, ज्ञानपूर्ण मानना होगा। पर जब व्यासदेवका पुराण आधुनिक पुराणोंका आदि-ग्रंथ है तब इनमें जो निकृष्ट हैं उनमें भी हिन्दूधर्मके तत्त्वको प्रकट करनेवाली अनेक बातें निश्चय ही वर्तमान हैं, और जब निकृष्ट पुराण भी जिज्ञासु या भक्त योगाभ्यासरत साधकका लिखा है तब रचयिताका स्वप्रयास-लब्ध ज्ञान और विचार भी आदरणीय हैं।

वेद और उपनिषद्से पुराणोंको अलगकर अंग्रेजीशिक्षाप्राप्त लोगोंने वैदिक धर्म और पौराणिक धर्मके नामसे जो मिथ्या भेद किया वह भ्रम और अज्ञानसभूत है। पुराण वेद और उपनिषद्के ज्ञान सर्वसाधारणको समझाते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं, सविस्तार आलोचना करते हैं, उसे जीवनके छोटे-मोटे क्रिया-कलापोंमें लगानेकी चेष्टा करते हैं, और इसीलिए वे हिन्दूधर्मके प्रमाण-ग्रंथोंमें गिने जाते हैं। जो वेद और उपनिषद्को भूल पुराणको स्वतन्त्र और यथेष्ट प्रमाण मानते हैं वे भी भ्रान्त हैं। इससे हिन्दूधर्मका अभ्रात और अपौरुषेय मूल ही छूट जाता है और भ्रम तथा मिथ्या ज्ञानको प्रश्रय मिलता है। इससे वेदका अर्थ, साथ ही पुराणका प्रकृत अर्थ लुप्त हो जाता है। पुराणको वेदपर प्रतिष्ठित कर पुराणका उपयोग करना होगा।

गीता

गीताका धर्म

जिन्होने गीताको ध्यानपूर्वक पढ़ा है, उनके मनमें सम्भवतः यह प्रश्न उठ सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णने बारम्बार 'योग' शब्दका व्यवहार किया है और युक्तावस्थाका वर्णन किया है, परन्तु कहां, साधारण लोग जिसे योग कहते हैं, उसके साथ तो इसका कोई मेल नही दिखायी देता? श्रीकृष्णने जगह-जगहपर सन्यासकी प्रशसाकी है, अनिर्देश्य परब्रह्मकी उपासनासे परम गति प्राप्त होनेकी बात भी कही है, किन्तु इन्हे अत्यन्त सक्षेपमें ही समाप्तकर गीताके श्रेष्ठाशमें उन्होने त्यागके महत्त्व और वासुदेवके प्रति श्रद्धा और आत्मसमर्पणद्वारा परमावस्थाकी प्राप्तिकी बातको ही विविध प्रकारसे अर्जुनको समझाया है। छठे अध्यायमें राजयोगका कुछ वर्णन है, किन्तु गीताको राजयोग-प्रचारक ग्रन्थ नही कहा जा सकता। समता, अनासक्ति, कर्मफल-त्याग, श्रीकृष्णको सपूर्ण आत्म-समर्पण, निष्काम-कर्म, गुणातीत्य और स्वधर्मसेवा ही हैं गीताके मूल तत्त्व। इसी शिक्षाको भगवान्ने परमज्ञान और गुह्यतम रहस्य कहा है। हमारा विश्वास है कि गीता ही जगत्के भावी धर्मका सर्वजनसम्मत शास्त्र होगी। किन्तु गीताका ठीक-ठीक अर्थ सब नही समझते। बडे-बडे पण्डित और श्रेष्ठ मेधावी, तीक्ष्णबुद्धि लेखक भी इसका गूढार्थ समझनेमें असमर्थ है। एक ओर मोक्षपरायण व्याख्याकारोको गीतामें अद्वैतवाद और सन्यासधर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन दिखायी पडा है, दूसरी ओर अग्रेजी दर्शनमें निष्णात और बकिम चन्द्रको गीतामें केवल वीरभावसे कर्तव्य पालन करनेका ही उपदेश मिला है, और उसी अर्थको तरुणमण्डलीके मनमें घुसा देनेकी चेष्टा की है। इसमे सन्देह नही कि सन्यासधर्म है उत्कृष्ट धर्म, किन्तु उस धर्मका आचरण थोडे लोग ही कर सकते हैं। सर्वजनसम्मत धर्ममें आदर्श और तत्त्वसम्बन्धी एक ऐसी शिक्षा होनी चाहिये जिसे सर्वसाधारण अपने-अपने जीवन और कर्मक्षेत्रमें उपलब्ध कर सकें और साथ ही उस आदर्शका पूर्णरूपेण आचरण करनेपर अल्पजनसाध्य परमगतिको भी प्राप्त कर सकें। वीरभावसे कर्तव्य-पालन

करना उत्कृष्ट धर्म तो है किन्तु कर्तव्य क्या है इस जटिल समस्याके कारण ही धर्म और नीतिमें इतनी अधिक धाधली है। भगवान्‌ने कहा है, **गहना कर्मणो गतिः**, कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है, कर्म क्या है, अकर्म क्या है, विकर्म क्या है, इसका निर्णय करनेमें ज्ञानी भी विमोहित हो जाते हैं किन्तु मैं तुम्हें ऐसा ज्ञान दूंगा जिससे तुम्हें अपना गन्तव्य पथ निर्धारित करनेमें कोई रुकावट नही होगी, कर्म-जीवनका लक्ष्य तथा सर्वदा अनुष्ठेय नियम एक ही शब्दसे विशद् रूपमें स्पष्ट हो जायगा। यह ज्ञान क्या है, लाख बातोकी एक बात कहाँ मिलेगी ? हमारा विश्वास है कि गीताके अन्तिम अध्यायमें भगवान्‌ने जहाँ अपने सर्वगुह्यतम परम कर्तव्यको बतलानेकी प्रतिज्ञा अर्जुनसे की है, वही खोजनेसे यह दुर्लभ अमूल्य वस्तु प्राप्त हो सकती है। वह सर्वगुह्यतम परम वाणी क्या है ?

मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

इन दो श्लोकोका अर्थ एक शब्दमें कहा जा सकता है—आत्मसमर्पण। जो जितने परिमाणमें श्रीकृष्णको आत्मसमर्पण कर सकते हैं, उनके शरीरमें उतने ही परिमाणमें भगवद्दत्त शक्ति आती है और वे परम मंगलमयके प्रसादसे पापमुक्त हो देवभाव प्राप्त करते हैं। उसी आत्मसमर्पणका वर्णन श्लोकके पहले अर्द्धांशमें किया गया है। **तन्मना तद्‌भक्त** और **तद्याजी** होना होगा। **तन्मना** अर्थात् सर्वभूतोमें उनके दर्शन करना, सब समय उनका स्मरण करना, सब कार्यों और सब घटनाओमें उनकी शक्ति, ज्ञान और प्रेमके खेलको देखते हुए परम आनन्दसे रहना। **तद्‌भक्त** अर्थात् उनपर पूर्ण श्रद्धा और प्रीति रख उनके साथ युक्त रहना। **तद्याजी** अर्थात् छोटे-बड़े सब कर्मोको श्रीकृष्णके निमित्त यज्ञरूपमें अर्पण करना तथा स्वार्थ और कर्मफलमें आसक्तिका त्याग कर उनके लिए ही कर्तव्य-कर्ममें प्रवृत्त होना। पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करना मनुष्यके लिए कठिन है, किन्तु थोडी-सी भी चेष्टा करनेसे स्वय भगवान् अभय दे, गुरु रक्षक और सुहृद बन योग-मार्गपर अग्रसर कर देते हैं। **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।** उन्होने कहा है, इस धर्मका आचरण करना सहज और सुखप्रद है। वास्तवमें ऐसा ही है, सपूर्ण आचरणका फल है अनिर्वचनीय आनन्द, शुद्धि और शक्तिलाभ। **'मामेवैष्यसि'** अर्थात् मुझे प्राप्त करोगे, मेरे साथ वास करोगे,

मेरी प्रकृतिको प्राप्त करोगे। इस उक्तिसे प्रकट होती है सादृश्य, सालोक्य और सायुज्यरूप फलकी प्राप्ति। जो गुणातीत हैं वे ही भगवान्‌के सादृश्य-प्राप्त हैं। उनमें कोई आसक्ति नही रहती, फिर भी वे कर्म करते हैं, पापमुक्त हो महाशक्तिके आधार बन जाते हैं और इस शक्तिके सभी कार्यों-में आनंदित होते है। सालोक्य भी केवल देहपातके बादकी ब्रह्मलोककी गति नही है, इस शरीरमें भी सालोक्य की प्राप्ति होती है। देहयुक्त जीव जब अपने अन्तरमें परमेश्वरके साथ क्रीडा करता है, मन उनके दिये ज्ञानसे पुलकित होता है, हृदय उनके प्रेमस्पर्शसे आनंदप्लुत होता है, बुद्धि, मुहुर्मुहुः उनकी वाणी श्रवण करती है तथा प्रत्येक विचारमें उन्हीकी प्रेरणाको अनुभव करती है, तभी होती है मानवतनुमें भगवान्‌के साथ सालोक्य प्राप्ति। सा-युज्य भी इसी शरीरमें होता है। गीतामें भगवान्‌के अन्दर निवास करनेकी बात कही गयी है। जब 'सब जीवोमें वह है' यह उपलब्धि स्थायी रूपसे वर्तमान रहती है, सब इन्द्रियाँ उन्हीके दर्शन करती, श्रवण करती, घ्राण लेती, आस्वादन करती, स्पर्श करती हैं, जीव सर्वदा उन्हीमें अंशभावसे निवास करनेका अभ्यस्त होता है, तब इसी शरीरमे सायुज्यकी प्राप्ति होती है। यह परमगति है, सम्पूर्ण अनुशीलनका फल। किन्तु इस धर्मके अल्प-आचरण-से भी महान् शक्ति, विमल आनद, पूर्ण सुख और शुद्धता प्राप्त होती हैं। यह धर्म विशिष्ट-गुण-सम्पन्न लोगोंके लिए सृष्ट हुआ। भगवान्‌ने कहा है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुरुष, नारी, पापयोनि प्राप्त जीवतक इस धर्म-द्वारा उन्हें प्राप्तकर सकते हैं। घोर पापी भी उनकी शरण ले थोडे समयमें विशुद्ध हो जाते हैं। अतएव यह धर्म सबके लिए आचरणीय है। जगन्नाथ-के मंदिरमे जातिका विचार नही, फिर भी इसकी परमगति किसी भी धर्म-द्वारा निर्दिष्ट परमावस्थासे कम नही।

संन्यास और त्याग

पिछले प्रवन्धमें यह कहा गया है कि गीतोक्त धर्म सबके लिए आचरणीय है, गीतोक्त योगका अधिकार सबको है, फिर भी उस धर्मकी परमावस्था किसी भी धर्मकी परमावस्थाकी अपेक्षा कम नही। गीतोक्त धर्म है निष्काम कर्मीका धर्म। हमारे देशमें आर्यधर्मके पुनरुत्थानके साथ-साथ एक सन्यासमुखी स्रोत सर्वत्र व्याप रहा है। राजयोगके साधकका मन सहज ही गृहकर्म या गृहवाससे सतुष्ट रहना नही चाहता। उसके योगाभ्यासके लिए ध्यान-धारणा आदि अत्यत आयासपूर्ण चेष्टाओकी आवश्यकता है। मनमें थोडा भी विक्षोभ होनेसे या वाह्य स्पर्शसे ध्यान-धारणाकी स्थिरता विचलित हो जाती है या एकदम नष्ट। घरमें इस तरहकी अनेक बाधाएँ हैं। अतएव जो पूर्वजन्मप्राप्त योगलिप्सा ले जनमते है उनके लिए तरुणावस्थामें ही संन्यासकी ओर आकृष्ट होना अत्यत स्वाभाविक है। इस तरहके जन्मसे योगलिप्सा रखनेवालोकी सख्या अधिक हो जानेके कारण जव सारे देशमें वह शक्ति सचारित होती है और देशके युवक-सप्रदायमें सन्यासमुखी स्रोत प्रबल रूपमें दिखायी देता है तब देशके कल्याण-पथका द्वार भी खुल जाता है, उस कल्याण-मार्गमें आनेवाली विपत्तियोकी आशका भी बढ जाती है। कहा गया है, सन्यास-धर्म श्रेष्ठ धर्म है, किंतु उस धर्मके अधिकारी थोडे ही होते हैं। जो बिना अधिकारके उस पथमें प्रवेश करते हैं, वे अतमें, थोडी ही दूर जा, आधे रास्तेमें तामसिक अप्रवृत्तिजनक आनदके अधीन हो निवृत्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें इहजीवन तो सुखसे कट जाता है किंतु उससे जगत्का कोई हित साधित नही होता और योगके ऊर्ध्वतम सोपानपर आरोहण करना भी दु:साध्य हो जाता है। हमारे लिए जैसा समय और जैसी अवस्था उपस्थित हुई है उसमें हमारा प्रधान कर्तव्य हो गया है रज: और सत्त्व यानी प्रवृत्ति और ज्ञानको जगा, तमका वर्जन कर देशसेवा और जगत्सेवाके लिए अपने राष्ट्रकी आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक वलको पुनरुज्जीवित करना। इस जीर्ण

शीर्ण तम:पीड़ित स्वार्थसीमित राष्ट्रके गर्भसे ज्ञानी, शक्तिमान् और उदार आर्यजातिकी पुनः सृष्टि करनी होगी। इसी उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए आज भारतमें इतने अधिक शक्तिसंपन्न, योगबलप्राप्त, आत्माओंका जन्म हो रहा है। ये यदि सन्यासकी मोहिनी शक्तिद्वारा आकृष्ट हो स्वधर्म और ईश्वर-प्रदत्त कार्यका त्याग करें तो धर्मनाशसे राष्ट्रका ध्वस होगा। युवक-समुदायको यह याद रखना चाहिये कि *ब्रह्मचर्याश्रमका समय शिक्षाप्राप्ति और चरित्र-गठनके लिए निर्दिष्ट है।* इस आश्रमके वाद गृहस्थाश्रम विहित है। जब हम कुशलरक्षा और भावी आर्यजातिका गठन कर पूर्वपुरुषोंके ऋणसे मुक्त हो जायेंगे, जब सत्-कर्म और धनसचय कर समाजका ऋण एव ज्ञान, दया, प्रेम और शक्तिका वितरण कर जगत्का ऋण चुका देंगे, जब भारत जननीके हितके लिए उदार और महान् कर्म कर जगन्माताको सतुष्ट कर लेंगे, तव वानप्रस्थ और संन्यास ग्रहण करना दोषपूर्ण नही माना जा सकता। अगर ऐसा न किया जाय तो फिर वर्मसंकर और अधर्मकी वृद्धि होगी। पूर्वजन्ममें ऋणमुक्त हुए बाल-संन्यासियोकी बात हम नही कहते, पर अनधि-कारीका सन्यास ग्रहण करना निन्दनीय है। अनुचित वैराग्यकी अधिकता और क्षत्रियोंके स्वधर्म-त्यागकी प्रवृत्तिके कारण महान् और उदार बौद्धधर्मने जहाँ देशका बहुत कुछ हित साधित किया वहाँ अनिष्ट भी किया और अतमें भारतसे बाहर भगा दिया गया। हमें ऐसा दोष नवयुगके नवीन धर्ममें नही आने देना चाहिये।

गीतामें श्रीकृष्णने बार-बार अर्जुनको सन्यास लेनेसे क्यो मना किया है? उन्होने सन्यास-धर्मका गुण स्वीकार किया है, किंतु विरक्त और कृपापरवश पार्थके बार-बार पूछनेपर भी कर्ममार्गके अपने आदेशको वापस नही लिया। *अर्जुनने पूछा कि यदि कर्मसे कामनाशून्य योगयुक्त बुद्धि ही श्रेष्ठ है तो फिर* आप गुरुजनोकी हत्याके समान अत्यन्त भीषण कर्ममें मुझे क्यो नियुक्त कर रहे है? बहुतोने अर्जुनके इस प्रश्नको पुन. उठाया है और कोई-कोई व्यक्ति तो श्रीकृष्णको निकृष्ट धर्मोपदेशक और कुपथप्रवर्त्तक कहनेसे भी बाज नही आये। उत्तरमें श्रीकृष्णने समझाया है कि सन्याससे त्याग श्रेष्ठ है, स्वेच्छा-चारकी अपेक्षा भगवान्को स्मरण करते हुए निष्कामभावसे स्वधर्मका पालन ही उत्तम है। त्यागका अर्थ है कामनाका त्याग, स्वार्थका त्याग, उस त्यागकी शिक्षाके लिए पर्वत या निर्जन स्थानमें आश्रय नही लेना होता, कर्मक्षेत्रमें ही कर्मद्वारा वह शिक्षा मिलती है, कर्म ही है योगपथपर आरूढ होनेका साधन। यह विचित्र लीलामय जगत् जीवके आनन्दके लिए सृष्ट है। भगवान्का यह उद्देश्य नही कि यह आनन्दमय खेल समाप्त हो

जाय। वह जीवको अपना सखा और खेलका साथी बना जगत्‌में आनन्दका स्रोत बहाना चाहते हैं। खेलकी सुविधाके लिए वे हमसे दूर चले गये हैं ऐसा माननेसे ही, जिस अज्ञान-अंधकारमें हम हैं वह अंधकार हमें घेरे रहता है। उनके द्वारा निर्दिष्ट ऐसे बहुत-से साधन हैं जिनका अवलम्बन लेनेसे मनुष्य अंधकारसे निकल उनका सान्निध्य प्राप्त करता है। जो उनकी लीलासे विरक्त होते या विश्राम लेना चाहते हैं उनकी अभिलाषाको वह पूरी करते हैं। परंतु जो उन्हींके लिए उन साधनोंका अवलम्बन लेते हैं, भगवान् उन्हें ही इहलोक और परलोकमें अपने खेलका उपयुक्त साथी बनाते हैं। अर्जुन श्रीकृष्णके प्रियतम सखा और क्रीडाके सहचर थे इसीलिए गीताकी गूढतम शिक्षा प्राप्त कर सके। वह गूढतम शिक्षा क्या है, इसे समझानेकी चेष्टा इससे पहले की गयी है। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा, कर्मसंन्यास जगत्‌के लिए अनिष्टकर है और त्यागहीन सन्यास केवल विडम्बना। सन्याससे जो फल मिलता है, त्याग से भी वही मिलता है अर्थात् अज्ञानसे मुक्ति, समता, शक्ति, आनन्द और श्रीकृष्णकी प्राप्ति। सर्वजनपूजित व्यक्ति जो कुछ करते हैं लोग उसे ही आदर्श मानकर चलते हैं, अतएव तुम यदि कर्मसे सन्यास लोगे तो सब उसी पथके पथिक हो धर्मकी संकरता और अधर्मकी प्रधानताकी सृष्टि करेंगे। तुम कर्मफलकी स्पृहाका त्याग कर मनुष्यके साधारण धर्मका आचरण करो, आदर्शस्वरूप बन सबको अपने-अपने कर्मपथपर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दो, तब तुम मेरा साधर्म्य प्राप्त करोगे और मेरे प्रियतम सुहृद् बनोगे। उसके बाद उन्होंने समझाया है कि कर्मद्वारा श्रेयमार्गपर आरूढ होनेपर उस मार्गकी अंतिम अवस्थामें शम अर्थात् सर्वारम्भ-परित्याग (सब कर्मोंका परित्याग) विहित है। यह भी कर्मसंन्यास नहीं, बल्कि यह है अहंकारको त्याग, अत्यन्त आयासपूर्ण राजसिक चेष्टाका त्याग, भगवान्‌के साथ युक्त हो, गुणातीत हो, उनकी शक्तिद्वारा चालित यन्त्रकी नाईं कर्म करना। उस अवस्थामें जीवको यह स्थायी ज्ञान रहता है कि मैं कर्ता नहीं द्रष्टा हूँ, मैं भगवान्‌का अंश हूँ, मेरे स्वभावरचित उस देहरूप कर्ममय आधारमें भगवान्‌की शक्ति ही लीलाका कार्य कर रही है। जीव है साक्षी और भोक्ता, प्रकृति कर्त्री, परमेश्वर अनुमन्ता। ऐसे ज्ञानप्राप्त पुरुष शक्तिके किसी भी कार्यारम्भमें कामनाजन्य सहायता या बाधा देना नहीं चाहते। शक्तिके अधीन हो उनका शरीर, मन और बुद्धि ईश्वरनिर्दिष्ट कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। कुरुक्षेत्रके भीषण हत्याकाण्डके लिए भी यदि भगवान्‌की अनुमति हो और स्वधर्मके मार्गमें वही आ पड़े तो भी अलिप्त बुद्धि, कामना-रहित, ज्ञान-प्राप्त जीवको पाप स्पर्श नहीं करता। परन्तु इस ज्ञान और

आदर्शको बहुत थोड़े लोग ही प्राप्त कर सकते हैं; यह जनसाधारणका धर्म नहीं बन सकता। तो फिर इस पथके साधारण पथिकका कर्तव्य कर्म क्या है? साधारण मनुष्य भी कुछ अंशमें यह ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वे यन्त्री हैं और मैं यन्त्र। उसी ज्ञानके बलसे, भगवान्‌को स्मरण करते हुए स्वधर्मका पालन करना ही है उसके लिए आदिष्ट।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

स्वधर्म है स्वभावनियत कर्म। कालक्रममें स्वभावकी अभिव्यक्ति और परिणति होती है। कालक्रममें मनुष्यका जो साधारण स्वभाव गठित होता है वही है स्वभावनियत कर्म, युगधर्म। राष्ट्रकी कर्मगतिसे जो राष्ट्रीय स्वभाव गठित होता है उसी स्वभावद्वारा नियत कर्म है राष्ट्रका धर्म। व्यक्तिकी कर्मगतिसे जो स्वभाव गठित होता है, उसी स्वभावद्वारा नियत कर्म है *व्यक्तिका धर्म। ये नाना धर्म सनातनधर्मके साधारण आदर्शद्वारा परस्पर* संयुक्त और सुशृंखलित होते हैं। साधारण धार्मिक व्यक्तिके लिए यही धर्म है स्वधर्म। ब्रह्मचर्यकी अवस्थामें इसी धर्मका पालन करनेके लिए ज्ञान और शक्तिका संचय किया जाता है, गृहस्थाश्रममें इस धर्मका अनुष्ठान होता है और धर्मका पूरी तरह अनुष्ठान होनेपर वानप्रस्थ या संन्यासका अधिकार प्राप्त होता है। यही है धर्मकी सनातन गति।

विश्वरूप-दर्शन

गीतामें विश्वरूप

'वन्दे मातरम्' शीर्षक प्रबंधमें हमारे श्रद्धेय मित्र विपिनचंद्र पालने प्रसगवशात् अर्जुनके विश्वरूपदर्शनका उल्लेख करते हुए यह लिखा है कि गीताके एकादश अध्यायमें विश्वरूपदर्शनका जो वर्णन किया गया है वह है नितान्त असत्य, कविकी कल्पनामात्र। हम इस बातका प्रतिवाद करनेके लिए बाध्य हैं। विश्वरूपदर्शन गीताका अत्यन्त प्रयोजनीय अग है, अर्जुनके मनमें जो दुविधा और सन्देह उत्पन्न हुआ था, उसका श्रीकृष्णने तर्क और ज्ञानगर्भित उक्तिद्वारा निरसन किया था, किंतु तर्क और उपदेशद्वारा प्राप्त ज्ञान दृढ़प्रतिष्ठ नही होता, वही ज्ञान दृढप्रतिष्ठ होता है जिसकी उपलब्धि हुई हो। इसी कारण अर्जुनने अन्तर्यामीकी गुप्त प्रेरणासे विश्व-रूपदर्शनकी आकाक्षा प्रकट की। विश्वरूप दर्शनसे अर्जुनका सन्देह चिरकालके लिए तिरोहित हो गया, बुद्धि पवित्र और विशुद्ध हो गीताका परम रहस्य ग्रहण करने योग्य हुई। विश्वरूपदर्शनसे पहले गीतामे जो ज्ञान कहा गया है वह साधकके लिए उपयोगी ज्ञानका बहिरग है; उस विश्वरूप-दर्शनके बाद जो ज्ञान कथित हुआ है वह ज्ञान है गूढ सत्य, परम रहस्य, सनातन शिक्षा। उसी विश्वरूपदर्शनके वर्णनको यदि हम कविकी उपमा कहें तो गीताका गाभीर्य, सत्यता और गभीरता नष्ट हो जाती है, योगलब्ध गभीरतम शिक्षा कतिपय दार्शनिक मत और कवि-कल्पनाके सयोगमें परिणत हो जाती है। विश्वरूपदर्शन कल्पना नही, उपमा नही, सत्य है; अतिप्राकृत सत्य नही, क्योकि विश्व है प्रकृतिके अन्तर्गत, विश्वरूप अतिप्राकृत नही हो सकता। विश्वरूप कारण जगत्का सत्य है, कारण जगत्का रूप दिव्य चक्षुके सम्मुख प्रकट होता है। दिव्यचक्षुप्राप्त अर्जुनने कारण जगत्का विश्वरूप देखा था।

साकार और निराकार

जो निर्गुण निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे गुण और आकारकी बातको रूपक और उपमा कह उडा देते हैं; जो सगुण निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं वे शास्त्रोकी दूसरी तरहकी व्याख्या- कर निर्गुणत्वको अस्वीकार करते हैं, एव आकारको रूपक और उपमा कह उडा देते हैं। सगुण साकार ब्रह्मके उपासक इन दोनोपर ही तलवार खीचे रहते हैं। हम इन तीनो मतोको सकीर्ण तथा अपूर्ण-ज्ञान-समूत मानते हैं। कारण, जिन्होने साकार और निराकार, द्विविध ब्रह्मकी उपलब्धि की है वे भला कैसे एकको सत्य और दूसरेको असत्य कल्पना कह ज्ञानके अन्तिम प्रमाणको नष्ट कर सकते हैं, असीम ब्रह्मको सीमाके अधीन कर सकते हैं? अगर हम ब्रह्मके निर्गुणत्व, निराकारत्वको अस्वीकार करें तो हम भगवान्‌की खिल्ली उडाते हैं, यह सत्य है, परन्तु अगर हम ब्रह्मके सगुणत्व और साकारत्वको अस्वीकार करें तो हम भगवान्‌की अवमानना करते हैं—यह भी सत्य है। भगवान् रूपके कर्ता, स्रष्टा और अधीश्वर हैं, वह किसी रूपमें आबद्ध नही; परन्तु जिस तरह साकारत्वसे आवद्ध नही उसी तरह निराकारत्वसे भी आबद्ध नही। भगवान् सर्वशक्तिमान् है, स्थूल प्रकृतिके नियम अथवा देश-कालके नियमरूप जालमें उन्हें फँसानेका स्वाग भर अगर हम यह कहें कि तुम जब अनन्त हो तो हम तुम्हें सान्त नही होने देंगे, कोशिश करो, देखे, तुम नही हो पाओगे, तुम हमारे अकाटच तर्क युक्तिसे आबद्ध हो, जैसे प्रास्पेरोके इन्द्रजालमें फर्डिनैण्ड था, कैसी हास्यास्पद बात, कैसा घोर अहकार और अज्ञान! भगवान् बधन-रहित हैं, निराकार और साकार हैं, साकार हो साधकको दर्शन देते हैं—उस आकारमें पूर्ण भगवान् रहते हैं—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त। क्योकि, भगवान् देशकालातीत, अतर्कगम्य है, देश और काल उनके खेलकी सामग्री हैं देश और कालरूपी जाल फेंक, सर्वभूतको पकड़ वह क्रीडा कर रहे हैं, परन्तु हम उन्हें उस जालमें नही पकड सकते। हम जितनी ही बार तर्क और दार्शनिक युक्तिका प्रयोग कर उस असाध्यको साध्य करने जाते हैं उतनी ही बार रगमय उस जालको हटा, हमारे सामने, पीछे, पार्श्वमें, दूर, चारो ओर, मृदु-मृदु हंसते हुए, विश्वरूप और विश्वातीत रूपको फैला हमारी बुद्धिको परास्त करते हैं। जो कहता है कि मैंने उन्हें जान लिया वह कुछ नही जानता, जो यह कहता है कि मै जानता हूँ फिर भी नही जानता, वही है सच्चा ज्ञानी।

विश्वरूप

जो शक्तिके उपासक हैं, कर्मयोगी हैं, यंत्रीका यन्त्र बन भगवन्निर्दिष्ट कार्य करनेका आदेश पा चुके हैं, उनकी दृष्टिमें विश्वरूपदर्शन अत्यंत आवश्यक है। विश्वरूपदर्शनसे पहले भी उन्हें आदेश मिल सकता है किन्तु उस दर्शनके न हो जाने तक वह आदेश ठीक-ठीक स्वीकृत नही होता, पेश हो जाता है, मंजूर नही होता। उस समय तक उनकी कर्मशिक्षाका और तैयारीका समय होता है। विश्वरूपदर्शन होने पर होता है कर्मका आरंभ। विश्वरूपदर्शन कई प्रकारका हो सकता है—जैसी साधना हो, जैसा साधकका स्वभाव हो। कालीका विश्वरूपदर्शन होनेपर साधक जगत्-भरमें अपरूप नारी-रूप देखते हैं, देखते हैं एक, फिर भी अगणित देहोंसे युक्त, सर्वत्र वही निविड़-तिमिर-प्रसारक घनकृष्णा कुन्तलराशि आकाशको छाये हुए हैं, सर्वत्र उसी रक्ताक्त खड्गकी आभा आँखोको झुलसाती नृत्य कर रही है, जगद्व्यापी भीषण अट्टहासका वह स्रोत विश्व-ब्रह्माण्डको चूर्ण-विचूर्ण कर रहा है। यह सब बातें कवि-कल्पना नही, अतिप्राकृत उपलब्धिको अपूर्ण मानव भाषामें प्रकट करनेका विफल प्रयास नही। यह है कालीका आत्मप्राकट्य, हमारी माका वास्तविक रूप,—जो कुछ दिव्य चक्षुद्वारा देखा गया है उसीका अनतिरंजित सरल सच्चा वर्णन। अर्जुनने कालीका विश्वरूप नही देखा, देखा था कालरूप श्रीकृष्णका संहारक विश्वरूप। एक ही बात है। दिव्य-चक्षुसे देखा था, बाह्यज्ञानहीन समाधिमें नही—जो कुछ देखा उसीका अविकल अनतिरंजित वर्णन व्यासदेवने किया। यह स्वप्न नही, कल्पना नही, है सत्य, जाग्रत् सत्य।

कारण जगत्का रूप

भगवत्-अधिष्ठित तीन अवस्थाओंकी बात शास्त्रोमें पायी जाती है—प्राज्ञ-अधिष्ठित सुषुप्ति, तैजस या हिरण्यगर्भ-अधिष्ठित स्वप्न, विराट्-अधिष्ठित जाग्रत्। प्रत्येक अवस्था है एक-एक जगत्। सुषुप्तिमें कारण जगत् है, स्वप्नमें सूक्ष्म जगत्, जाग्रत्में स्थूल जगत्। कारणमें जो निर्णीत होता है वह हमारे देश-कालसे अतीत सूक्ष्ममें प्रतिभासित होता है और स्थूलमें आंशिक रूपमें स्थूल जगत्के नियमानुसार अभिनीत होता है। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, मैं धार्तराष्ट्रगणका पहले ही वध कर चुका हूँ, फिर भी स्थूल जगत्में धार्तराष्ट्रगण उस समय युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके सामने उपस्थित थे, जीवित,

युद्धमें सलग्न। भगवान्‌की यह बात न असत्य है न उपमा ही। कारण जगत्‌में उन्होंने उनका वध किया था, अन्यथा इहलोकमें वध करना असभव होता। हमारा प्रकृत जीवन कारणमें होता है, स्थूलमें तो उसकी छाया-भर पड़ती है। परन्तु कारण जगत्‌का नियम, देश, काल, रूप, नाम भिन्न है। विश्वरूप कारणका रूप है, स्थूलमें दिव्य-चक्षुके सामने प्रकट होता है।

दिव्य-चक्षु

दिव्य-चक्षु क्या है? यह कल्पनाका चक्षु नही, कविकी उपमा नही। योगलब्ध दृष्टि तीन प्रकारकी होती है—सूक्ष्म-दृष्टि, विज्ञान-चक्षु और दिव्य-चक्षु। सूक्ष्म-दृष्टिसे हम स्वप्नमें या जाग्रत् अवस्थामें मानसिक मूर्तियोंको देखते हैं; विज्ञान-चक्षुसे हम समाधिस्थ हो सूक्ष्म जगत् और कारण जगत्‌के अन्तर्गत नाम-रूपकी प्रतिमूर्तियो और साकेतिक रूपोको चित्ताकाशमें देखते है, दिव्य-चक्षुसे कारण जगत्‌के नाम-रूपकी उपलब्धि करते हैं, समाधिमें भी उपलब्धि करते हैं, स्थूल चक्षुके सामने भी देख पाते है। जो स्थूल इन्द्रियोंके लिए अगोचर है, वह यदि इन्द्रियगोचर हो तो इसे दिव्य-चक्षुका प्रभाव समझना चाहिये। अर्जुन दिव्य-चक्षुके प्रभावसे जाग्रत् अवस्थामें भगवान्‌के कारणान्तर्गत विश्वरूपको देख सदेहमुक्त हुए थे। वह विश्वरूप-दर्शन भले ही स्थूल जगत्‌का इन्द्रियगोचर सत्य न हो, पर स्थूल सत्य की अपेक्षा कही अधिक सत्य है—कल्पना, असत्य या उपमा नही।

गीताकी भूमिका

प्रस्तावना

गीता है जगत्‌की श्रेष्ठ धर्मपुस्तक। गीतामें जिस ज्ञानकी व्याख्या सक्षेपमें की गयी है वही ज्ञान चरम और गुह्यतम है; गीतामें जिस धर्मनीतिका वर्णन है, सब धर्मनीतियां उसी नीतिके अंतर्गत तथा उसीपर प्रतिष्ठित हैं; गीतामें जो कर्ममार्ग प्रदर्शित किया गया है वही कर्ममार्ग है उन्नतिशील जगत्‌का सनातन मार्ग।

गीता है अनगिनत रत्नोंको उत्पन्न करनेवाला अथाह समुद्र। जीवन-भर इस समुद्रकी थाह लेते रहनेपर भी इसकी गहराईका अनुमान नहीं लगता, इसकी थाह नहीं मिलती। सैंकडो वर्षों तक ढूंढते रहनेपर भी इस अनत रत्न-भाडारका सहस्रांश भी आहरण करना दुष्कर है। तथापि इसमें दो-एक रत्न भी निकाल लेनेपर दरिद्र धनी हो जाते हैं, गभीर चिंतनशील व्यक्ति ज्ञानी, भगवद्विद्वेषी प्रेमिक बन जाते हैं तथा महापराक्रमी, शक्तिमान् कर्मवीर अपने जीवनकी उद्देश्य-सिद्धिके लिए पूर्ण रूपसे सुसज्जित और सन्नद्ध हो कर्मक्षेत्रमें लौट आते हैं।

गीता है अक्षय मणियोंकी खान। यदि युग-युगांत तक इस खानसे मणियां निकलती रहें तो भी भावी वंशधर इसमें सर्वदा नये-नये अमूल्य मणि-माणिक्य प्राप्त कर प्रसन्न और विस्मित होते रहेंगे।

ऐसी गभीर और गुप्तज्ञानपूर्ण पुस्तक, फिर भी भाषा अतिशय प्रांजल, रचना सरल तथा बाह्य अर्थ सहजबोधगम्य। गीता-समुद्रकी छोटी तरंगोंके ऊपर-ही-ऊपर सैर करते रहनेपर भी, डुबकी न लगानेपर भी, शक्ति और आनंदकी थोड़ी-बहुत वृद्धि हो ही जाती है। गीतारूपी खानकी रत्नोद्भासित गभीर गुहामें प्रवेश न कर, केवल चारों ओर घूमते रहनेपर भी घास-

पातपर गिरी उज्ज्वल मणि मिल जाती है, उससे ही हम जीवन-भरके लिए धनी बन सकते हैं।

गीताकी हजारो व्याख्याएँ होनेपर भी ऐसा समय कभी नही आयेगा जब किसी नयी व्याख्याकी आवश्यकता नही होगी। कोई जगत्-श्रेष्ठ महापंडित या गभीर ज्ञानी गीताकी ऐसी व्याख्या नही कर सकता जिसे हृदयंगम कर हम यह कह सकें कि बस हो चुका, अब इसके बाद गीताकी कोई और व्याख्या करना निष्प्रयोजन है, सारा अर्थ समझमें आ गया। सारी बुद्धि खर्च कर हम इस ज्ञानकी मात्र कतिपय शिक्षाओको समझ या समझा सकेंगे। बहुत दिनो तक योगमग्न अथवा निष्कामकर्ममार्ग में उच्चसे उच्चतर स्थानपर आरूढ़ होकर भी हम इतना ही कह सकेंगे कि गीतोक्त कुछ-एक गभीर सत्योको ही प्राप्त किया है या गीताकी दो-एक शिक्षाओको ही इस जीवनमें कार्यान्वित किया है। लेखकने जितना उपलब्ध किया है, जितने अशका कर्मपथपर अभ्यास किया है, उसके अनुसार विचार-वितर्क-द्वारा जो अर्थ किया है, उसका दूसरोकी सहायताके लिए विवरण देना ही है इन प्रबन्धोका उद्देश्य।

वक्ता

गीताके उद्देश्य और अर्थको समझनेके लिए पहले उसके वक्ता, पात्र और उस समयकी अवस्थाका विचार करना आवश्यक है। वक्ता है भगवान् श्रीकृष्ण, पात्र हैं भगवान्के सखा वीरश्रेष्ठ अर्जुन, अवस्था है कुरुक्षेत्रके भीषण हत्याकाडका आरभ।

बहुतसे लोग कहते हैं कि महाभारत रूपकमात्र है; श्रीकृष्ण हैं भगवान्, अर्जुन हैं जीव, धार्तराष्ट्रगण कामक्रोधादि रिपु और पाण्डव-सेना मुक्तिके लिए अनुकूल वृत्ति। ऐसा कहनेसे जैसे महाभारतको काव्य-जगत्में हीन स्थान प्राप्त होता है वैसे ही गीताकी गभीरता, कर्मके जीवनमे उसकी उपयोगिता तथा मानवजातिकी उन्नति करानेवाली उसकी उच्च शिक्षा भी खर्व और नष्ट होती है। कुरुक्षेत्रका युद्ध गीताचित्रका फ्रेम-भर नही, वह है गीताकी शिक्षाका मूल कारण तथा गीतोक्त धर्मको सपादित करनेका श्रेष्ठ क्षेत्र। यदि कुरुक्षेत्रके महायुद्धका काल्पनिक अर्थ स्वीकार कर लिया जाए तो गीताका

धर्म वीरोंका धर्म, ससारमें आचरणीय धर्म न वन ससारके लिए अनुपयोगी, शांत सन्यासधर्ममें परिणत हो जायगा।

श्रीकृष्ण हैं वक्ता। शास्त्र कहते हैं, श्रीकृष्ण है स्वयं भगवान्। गीतामें भी श्रीकृष्णने अपने-आपको भगवान् कहा है। चौथे अध्यायमें अवतारवाद और दसवें अध्यायमें विभूतिवादका वर्णन कर यह बतलाया गया है कि भगवान् भूतमात्रके शरीरमें प्रच्छन्न रूपसे अधिष्ठित हैं, विशेष-विशेष भूतोमें शक्तिके विकासके अनुसार कुछ परिमाणमें व्यक्त है और श्रीकृष्ण-शरीरमें हैं पूर्णांश रूपमें अवतीर्ण। बहुतोका कहना है कि श्रीकृष्ण अर्जुन और कुरुक्षेत्र रूपकमात्र हैं, इस रूपकको छोडकर ही गीताकी असली शिक्षाका उद्धार करना होगा, किंतु उस शिक्षाके इस अंशको नही छोडा जा सकता। अवतारवादको यदि मानते हैं तो श्रीकृष्णको क्यो छोड़ दें? अतएव स्वय भगवान् ही हैं इस ज्ञान और शिक्षाके प्रचारक।

श्रीकृष्ण हैं अवतार, मानवशरीरमें मनुष्यके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक धर्मको ग्रहण कर तदनुसार लीला कर गये हैं। उस लीलाकी प्रकट और गूढ शिक्षाको यदि हम आयत्त कर सकें तो इस जगद्व्यापी लीलाके अर्थ, उद्देश्य और प्रणालीको भी समझ जायगे। उस महती लीलाका प्रधान अंग है पूर्ण ज्ञानद्वारा प्रवर्तित कर्म; उस कर्ममें तथा उस लीलाके मूलमें जो ज्ञान निहित था वही गीतामें प्रकाशित हुआ है।

महाभारतके श्रीकृष्ण हैं कर्मवीर, महायोगी, महासंसारी, साम्राज्य-सस्थापक, राजनीतिज्ञ और योद्धा, क्षत्रिय-शरीरमें ब्रह्मज्ञानी। उनके जीनवम महाशक्तिका अतुलनीय विकास और रहस्यमय क्रीड़ा देखते हैं। उसी रहस्यकी व्याख्या है गीता।

श्रीकृष्ण जगत्प्रभु हैं, विश्वव्यापी वासुदेव है, फिर भी अपनी महिमाको प्रच्छन्न रख मनुष्योंके साथ पिता, पुत्र, भ्राता, पति, सखा, मित्र, शत्रु इत्यादि-का संबंध स्थापित कर लीला की है। उनके जीवनमें आर्यज्ञानका श्रेष्ठ रहस्य और भक्तिमार्गकी उत्तम शिक्षा निहित है। इन दोनोका तत्त्व भी गीताकी शिक्षाके अंतर्गत है।

श्रीकृष्ण द्वापर और कलियुगके सधिकालमें अवतीर्ण हुए थे। प्रत्येक कल्पमें भगवान् उसी सधिकालमें पूर्णांश रूपमें अवतीर्ण होते हैं। कलियुग चारो युगोमें जितना निकृष्ट युग है उतना ही श्रेष्ठ भी। यह युग मानवोन्नतिके प्रधान शत्रु पापप्रवर्तक कलिका राज्यकाल है। मनुष्यकी अत्यंत अवनति और अधोगति होती है कलिके राज्यकालमें। बाधाके साथ युद्ध करते-करते शक्ति बढ़ती है, पुरातनका ध्वस होनेसे नूतनकी सृष्टि होती है,

कलियुगमें भी यही नियम दिखायी देता है। जगत्के क्रमविकासद्वारा अशुभका जो अश विनाशकी ओर अग्रसर होता रहता है, कलियुगमें वही अतिविकासद्वारा नष्ट हो जाता है, दूसरी ओर नव सृष्टिका बीज वपित और अकुरित होता है, वही बीज सत्ययुगमें वृक्षमें परिणत होता है। इसके अतिरिक्त जैसे ज्योतिष विद्यामें एक ग्रहकी दशामें सभी ग्रहोकी अतर्दशाका भोग होता है, वैसे ही कलिकी दशामें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि भी अपनी-अपनी अतर्दशाका बारबार भोग करते रहते हैं। इस प्रकारकी काल-चक्रकी गतिके कारण कलियुगमे घोर अवनति, पुन उन्नति, पुनः घोरतर अवनति, पुन. उन्नति होती है और इस तरह भगवान्का उद्देश्य साधित होता है। द्वापर और कलियुगके सधिकालमें भगवान् अवतीर्ण हो अशुभका अति-विनाश, अशुभके नाश, शुभके बीजवपन और अकुरित होनेके लिए अनुकूल अवस्था उत्पन्न कर जाते हैं, उसके बाद होता है कलियुगका आरभ। श्रीकृष्ण इस गीतामें सत्ययुग ले आने योग्य गुह्य ज्ञान और कर्मप्रणाली छोड़ गये हैं। कलिकी वास्तविक अंतर्दशा आरम्भ होनेके समय गीताधर्मका विश्वव्यापी प्रचार अवश्यभावी है। अब वह समय आ गया है और इसीलिए गीताका प्रचार कुछ ज्ञानी और पडित लोगोतक ही सीमित न रह सर्व-साधारणमें और म्लेच्छ देशो तकमें हो रहा है।

अतएव वक्ता श्रीकृष्णसे उनकी गीतारूपी वाणीको अलग नही किया जा सकता। श्रीकृष्ण गीतामे प्रच्छन्न रूपसे विद्यमान है, गीता है श्रीकृष्ण-की वाङमयी मूर्ति।

पात्र

गीतोक्त ज्ञानके पात्र हैं पाडवश्रेष्ठ महावीर इद्रतनय अर्जुन। जिस तरह वक्ताको छोड देनेसे गीताका उद्देश्य और निगूढ अर्थ समझना कठिन है, उसी तरह पात्रको छोड देनेसे उस अर्थकी हानि होती है।

अर्जुन थे श्रीकृष्णके सखा। जो लोग श्रीकृष्णके समकालीन थे, एक ही कर्मक्षेत्रमें उतरे थे, उन्होने मनुष्यदेहधारी पुरुषोत्तमके साथ अपने-अपने अधिकार और पूर्वकर्मभेदानुसार नाना सबध स्थापित किये थे। उद्धव थे श्रीकृष्णके भक्त, सात्यकि उनके अनुगत सहचर और अनुचर, राजा युधिष्ठिर

उनकी मंत्रणाके अनुसार चलनेवाले आत्मीय और बंधु, किन्तु अर्जुनकी तरह कोई भी श्रीकृष्णके साथ घनिष्ठता स्थापित नहीं कर सका था। समवयस्क दो पुरुषोंमें जितने भी मधुर और निकट संबंध हो सकते हैं, श्रीकृष्ण और अर्जुनमें वे सभी मधुर संबंध थे। अर्जुन थे श्रीकृष्णके भाई, उनके प्रियतम सखा, उनकी प्राणप्यारी बहन सुभद्राके स्वामी। चतुर्थ अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है कि इस घनिष्ठताके कारण ही उन्होंने अर्जुनको गीताका परम रहस्य सुननेके पात्रके रूपमें वरण किया है।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

"तुझे अपना भक्त और सखा जान इस पुरातन लुप्त योगको आज मैंने तेरे सामने प्रकट किया है। कारण, यही योग जगत्‌का श्रेष्ठ और परम रहस्य है।" अठारहवें अध्यायमें भी गीताके केन्द्रस्वरूप कर्मयोगका मूलमंत्र व्यक्त करनेके समय इसी बातकी पुनरुक्ति हुई है।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

"अब मेरी परम और सबसे अधिक गुह्यतम बातको सुन। तू मुझे अत्यन्त प्रिय है, इसी कारण मैं तेरे सामने इस श्रेष्ठ मार्गकी बात प्रकट करूँगा।" इन दोनों श्लोकोंका तात्पर्य श्रुतिके अनुकूल है, जैसा कि कठोपनिषद्‌में कहा गया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

"यह परमात्मा न दार्शनिककी व्याख्यासे प्राप्त होते हैं, न मेधाशक्तिसे और न अत्यधिक शास्त्रज्ञानसे, भगवान् स्वयं जिन्हें वरण करते हैं उन्हें ही वे प्राप्त होते हैं, उन्हींके सामने परमात्मा अपने शरीरको प्रकट करते हैं।" अतएव जो भगवान्‌के साथ सख्य आदि मधुर संबंध स्थापित करनेमें समर्थ हैं, वे ही हैं गीतोक्त ज्ञानके पात्र।

इसके अन्दर एक और अत्यंत आवश्यक बात निहित है। भगवान्‌ने अर्जुनको एक ही शरीरमें भक्त और सखाके रूपमें वरण किया था। भगत

नाना प्रकारके होते हैं। साधारणतया जब किसीको भक्त कहा जाता है तब हमारा मन गुरु-शिष्य-संबंधकी ओर ही जाता है। उस भक्तिके मूलमें भी प्रेम तो होता ही है, पर प्रायः बाध्यता, सम्मान और अंधभक्ति ही उसका विशेष लक्षण होती है। परन्तु सखा सखाका सम्मान नहीं करता, वह उसके साथ खेल-कूद, आमोद-प्रमोद और स्नेह-संभाषण करता है; क्रीड़ाके लिए उसका उपहास और तिरस्कार भी करता है, उसे गाली देता है और उसके साथ शरारत भी करता है। सखा सर्वदा अपने सखाकी आज्ञासे बंधा नहीं होता, वह उसकी ज्ञानगरिमा और अकपट हितैषितासे मुग्ध हो यद्यपि उसके उपदेशानुसार चलता है, पर अंधभावसे नहीं, वह उसके साथ तर्क करता है; अपने समस्त संदेहोंको उसके सामने रखता है, बीच-बीचमें उसके मतका प्रतिवाद भी करता है। सख्य-संबंधकी पहली शिक्षा है भयविसर्जन; दूसरी शिक्षा है सम्मानके बाहरी आडंबरका त्याग; प्रेम है उसकी सबसे पहली और अंतिम बात। जो इस जगत्को, संसारको माधुर्यमय, रहस्यमय, प्रेममय और आनंदमय लीला मान भगवान्को लीला-सहचरके रूपमें वरणकर उन्हें सख्य-संबंधमें बांध सकते हैं, वे ही हैं गीतोक्त ज्ञानके पात्र। जो भगवान्की महिमा, प्रभुता, ज्ञानगरिमा और भीषणताको हृदयंगम करके भी उससे अभिभूत नहीं होते और उनके साथ निर्भय हो प्रफुल्लवदन खेलते रहते हैं, वे ही हैं गीतोक्त ज्ञानके पात्र।

सख्य-संबंधमें क्रीडाके बहाने और सब संबंध अंतर्भूत हो सकते हैं। गुरु-शिष्य-संबंध सख्य-भावमें प्रतिष्ठित होनेपर वह अत्यंत मधुर हो उठता है, ऐसे ही संबंधकी स्थापना अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ गीताके आरम्भमें की थी। "तुम मेरे परम हितैषी बंधु हो, तुम्हारे सिवा और किसकी शरणमें जाऊं? मैं हतबुद्धि हो रहा हूं, कर्तव्यके भयसे अभिभूत हो रहा हूं, कर्तव्यके संबंधमें संदिग्ध हो रहा हूं, तीव्र शोकसे आतुर हो रहा हूं। तुम मेरी रक्षा करो, मुझे उपदेश दो, मैं अपने लौकिक और पारलौकिक मंगलका समस्त भार तुमपर छोड़ता हूं। इस भावके साथ अर्जुन मानवजातिके सखा और सहायके निकट ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आये थे। इसके अतिरिक्त मातृसंबंध और वात्सल्यभाव भी सख्यभावमें सन्निविष्ट होता है। वयोवृद्ध और ज्ञानश्रेष्ठ अपनेसे अल्प-वयस्क तथा अल्पविज्ञ सखाको मातृवत् स्नेह करते, उसकी रक्षा करते, देख-भाल करते, उसे सदा अपनी गोदमें रख विपत्ति और अशुभ-से बचाते हैं। जो श्रीकृष्णके साथ सख्य-भाव स्थापित करते हैं, उनके सामने श्रीकृष्ण अपने मातृरूपको भी प्रकट करते हैं। सख्य-भावमें जैसे मातृप्रेमकी गंभीरता आ सकती है, वैसे ही दाम्पत्य-प्रेमकी तीव्रता और उत्कट-आनंद

भी। सखा सदा सखाके सान्निध्यकी प्रार्थना करते है, उनके विरहसे कातर होते और शरीर-स्पर्शसे पुलकित होते है। उनके लिए प्राणतक दे देनेमें आनन्दित होते है। दास्य-सबध भी सख्यकी क्रीडाके अतर्भूत होनेपर अत्यत मधुर हो उठता है। कहा जाता है कि पुरुषोत्तमके साथ जो जितना मधुर सबध स्थापित कर सकते है उनका सख्य-भाव उतना ही प्रस्फुटित होता है तथा उन्हें गीतोक्त ज्ञानकी उतनी ही पात्रता प्राप्त होती है।

कृष्णसखा अर्जुन है महाभारतके प्रधान कर्मी और गीतामे कर्मयोगकी शिक्षा है प्रधान शिक्षा। ज्ञान, भक्ति और कर्म ये तीनो मार्ग परस्पर-विरोधी नही, कर्ममार्गमें, ज्ञान-प्रवर्तित कर्ममे भक्तिलब्ध शक्तिका प्रयोगकर, भागवत उद्देश्यमें उनसे युक्त हो, उनका ही आदिष्ट कर्म करना है गीतोक्त शिक्षा। जो ससारके दु:खसे डरते है, वैराग्य-पीडित है, भगवान्‌की लीलासे वितृष्ण हो गये है तथा इस लीलाको छोड अनतकी गोदमें छिप जाना चाहते है, उनका मार्ग है भिन्न। वीरश्रेष्ठ महाधनुर्धर अर्जुनकी ऐसी कोई इच्छा या भाव नही था। श्रीकृष्णने किसी शात सन्यासी अथवा दार्शनिक ज्ञानीके सामने इस उत्तम रहस्यको प्रकट नही किया, किसी अहिंसापरायण ब्राह्मणको इस शिक्षाके पात्रके रूपमे वरण नही किया, बल्कि एक महापराक्रमी, तेजस्वी क्षत्रिय योद्धाको माना इस अतुलनीय ज्ञानको प्राप्त करनेका उपयुक्त आधार, जो समार-युद्धमें जय या पराजयसे विचलित नही होते वे ही इस शिक्षाके गूढतम स्तरमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते है। **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः** (यह आत्मा बलहीन पुरुषोंको प्राप्त नही होती)। जो मुमुक्षुत्वकी अपेक्षा भगवान्‌को पानेकी आकाक्षा रखते है वे ही भागवत सान्निध्यका आस्वाद ग्रहणकर अपने-आपको नित्य-मुक्त जानते है और मुमुक्षुत्वको अज्ञानका अतिम आश्रयस्थल जान उसे त्यागनेमें समर्थ है। जो तामसिक और राजसिक अहकार त्याग सात्त्विक अहकारसे बद्ध रहना नही चाहते वे ही हो सकते है गुणातीत। अर्जुनने क्षत्रियधर्मका पालनकर राजसिक वृत्तिको चरितार्थ किया था, और फिर सात्त्विक आदर्श ग्रहणकर रज:शक्तिको सत्त्वमुखी बनाया था। ऐसा पात्र ही है गीतोक्त शिक्षाका उत्तम आधार।

अर्जुन समसामयिक महापुरुषोंमें श्रेष्ठ नही थे। आध्यात्मिक ज्ञानमें श्रेष्ठ थे व्यासदेव, उस युगके सर्वविध सासारिक ज्ञानमे श्रेष्ठ थे भीष्मपितामह, ज्ञान-तृष्णामें राजा धृतराष्ट्र और विदुर, साधुता और सात्त्विक गुणमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भक्तिमें उद्धव और अक्रूर, स्वभावगत शौर्य और पराक्रममें बडे भाई महारथी कर्ण। फिर भी जगत्प्रभुने अर्जुनको ही वरण किया था, उन्हींके हाथोंमें अक्षय जयश्री एव गाडीव आदि दिव्य अस्त्रोंको अर्पण कर

उनके द्वारा भारतके हजारो जगद्विख्यात योद्धाओका सहार कर युधिष्ठिरका असपत्न साम्राज्य अर्जुनके पराक्रमलब्ध दानके रूपमें स्थापित किया था; और इसके अतिरिक्त उन्हें ही गीतोक्त परम ज्ञानका एकमात्र उपयुक्त पात्र निर्णीत किया था। अर्जुन ही ह महाभारतके नायक और प्रधान कर्मी, इस काव्यका प्रत्येक अश उन्हीकी यशकीर्तिकी घोषणा करता है। यह पुरुषोत्तम या महाभारत-रचयिता व्यासदेवका अन्याय और पक्षपात नही। यह उत्कर्ष है पूर्ण श्रद्धा और आत्म-समर्पणका फल। जो पुरुषोत्तमपर पूर्ण श्रद्धा रख, उन्हीपर निर्भर रह कोई दावा न कर, अपने शुभ और अशुभ, मगल और अमगल, पाप और पुण्यका समस्त भार उन्हें अर्पण करते है, अपने प्रिय कर्ममें आसक्त न हो उनके आदेशानुसार कर्म करनेके इच्छुक अपनी प्रिय वृत्तिको चरितार्थ न कर उनके द्वारा प्रेरित वृत्तिको ग्रहण करते है, स्वप्रशसित गुणका साग्रह आलिगन न कर उनके दिये गुण और प्रेरणाको उन्हीके काममें प्रयुक्त करते है, वे श्रद्धावान् अहकाररहित कर्मयोगी ही है पुरुषोत्तमके प्रियतम सखा और शक्तिके आधार, उनके द्वारा जगत्के विराट् कार्य निर्दोष रूपसे संपन्न होते है। इस्लाम-धर्मके प्रणेता हजरत मुहम्मद इसी प्रकारके श्रेष्ठ योगी थे। अर्जुन भी इसी प्रकार आत्म-समर्पण करनेके लिए बरावर सचेष्ट रहे। यही चेष्टा थी श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और प्रेमका कारण। जो पूर्ण आत्म-समर्पण करनेकी दृढ चेष्टा करते है वे ही है गीतोक्त शिक्षाके उत्तम अधिकारी। श्रीकृष्ण उनके गुरु और सखा बन उनका इहलोक और परलोकका सारा भार ग्रहण करते है।

अवस्था

मनुष्यके प्रत्येक कार्य और उक्तिका उद्देश्य और कारण पूर्णतया समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि किस अवस्थामें वह कार्य किया गया था या वह उक्ति व्यक्त हुई थी। कुरुक्षेत्रके महायुद्धके आरम्भमें जिस समय शस्त्रप्रयोग आरम्भ हुआ था—प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते—उसी समय भगवान्ने गीता सुनायी थी। इस बातसे बहुत-से लोग विस्मृत और क्रोधित होते है, वे कहते हैं कि यह निश्चय ही या तो कविकी असावधानी है या बुद्धिका दोष। परन्तु वास्तवमें उसी समय, उसी स्थानपर, उसी प्रकारके

भावापन्न पात्रको देश-काल-पात्रका विचार कर श्रीकृष्णने गीतोक्त ज्ञान प्रदान किया था।

समय था युद्धका आरम्भ। जिन्होने प्रवल कर्मस्रोतमें अपने वीरत्व और शक्तिका विकास नही किया, उसकी परीक्षा नही की, वे कभी गीतोक्त ज्ञानके अधिकारी नही हो सकते। परन्तु जो कोई कठिन महाव्रत आरम्भ करते हैं, ऐसा महाव्रत जिसमें अनेक प्रकारके बाधा-विघ्न आते हैं, अनेक शत्रुओकी वृद्धि होती है, वहुत वार पराजयकी आशका स्वभावतः ही होती है, उस महाव्रतका पालन करनेसे जव दिव्य शक्ति उत्पन्न होती है तव उस व्रतके अंतिम उद्यापनके लिए, भगवान्‌की कार्यसिद्धिके लिए यह ज्ञान प्रकाशित होता है। गीता कहती है कि कर्मयोगद्वारा भगवान्‌की प्राप्ति होती है, श्रद्धा और भक्तिपूर्ण कर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है, अतएव गीतोक्त मार्गका पथिक पथ छोडकर किसी दूरस्थ शांतिमय आश्रयमें, पर्वत या निर्जन स्थानमें भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त नही करता, वल्कि वीच रास्तेमें ही, कर्मके कोलाहलमे ही हठात् वह स्वर्गीय दीप्ति उसके सामने जगत्‌को आलोकित कर देती है, वह मवुर तेजोमयी वाणी उसके कर्णकुहरमें प्रवेश कर जाती है।

स्थान था युद्धक्षेत्र, दो सेनाओका मध्य स्थल, जहाँ शस्त्रपात हो रहा था। जो इस पथके पथिक होते हैं, ऐसे कर्ममें अग्रणी होते हैं, वे प्राय ही कोई महत्तर फल उत्पन्न होनेके समय, उस समय जव कि कर्मीके भाग्य-की गति उसके कर्मानुसार इस ओर या उस ओर परिचालित होनेवाली होती है, अकस्मात् योगसिद्धि और परम ज्ञान प्राप्त करते हैं। उनका ज्ञान कर्मरोधक नही वल्कि कर्मके साथ घुल-मिल जाता है। यह वात भी सत्य है कि ध्यानमे, निर्जन स्थानमें, स्वस्थ आत्माके अन्दर ज्ञान प्रकाशित होता है, इसी कारण मनीषिगण निर्जन स्थानमे रहना पसद करते हैं। परन्तु गीतोक्त योगके पथिक मन, प्राण और देह रूपी आधारको इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं कि वे जनताके अन्दर निर्जनता, कोलाहलके अन्दर शान्ति, घोर कर्मप्रवृत्तिके अन्दर परम निवृत्तिका अनुभव कर सकें। वे अतरको वाह्यद्वारा नियन्त्रित नही करते, वल्कि वाह्यको अतरद्वारा नियंत्रित करते हैं। साधारण योगी ससारसे डरते हैं और ससारसे भागकर योगाश्रममे शरण लेकर योगमें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु कर्मयोगीका योगाश्रम है संसार। साधारण योगी वाहरी शान्ति और नीरवताकी अभिलाषा करते हैं, शान्ति भंग होनेसे उनका तमोभंग होता है। कर्मयोगी अंतरकी विशाल शान्ति और नीरवतामें लीन रहते हैं, वाहरी कोलाहलमें उनकी यह अवस्था और भी गभीर होती है, वाह्य तमोभंग होनेसे उनका वह स्थिर आतरिक तप

भग्न नही होता, अविचलित रहता है। लोग कहते है कि युद्धके लिए तैयार दो सेनाओंके बीच श्रीकृष्ण और अर्जुनका सवाद किस प्रकार संभव है? उत्तर है, योग-प्रभावसे समव होता है। उस योगबलद्वारा युद्धके कोलाहलमें एक स्थानपर श्रीकृष्ण और अर्जुनके अन्दर और बाहर शाति विराजमान थी, युद्धका कोलाहल उन दोनो व्यक्तियोको स्पर्श नही कर सका था। इस बातमें कर्मोपयोगी एक और आध्यात्मिक शिक्षा निहित है। जो गीतोक्त योगका अनुशीलन करते है वे है श्रेष्ठ कर्मी एव कर्ममें अनासक्त। वे कर्मके अन्दर ही आत्माके आंतरिक आवाहनको सुनकर कर्मसे विरत हो योगमग्न और तपस्यारत होते हैं। वे जानते है कि कर्म भगवान्‌का है, फल भगवान्‌का है, हम यंत्र है, इसलिए वे कर्म फलके लिए उत्कठित नही होते। वे यह भी जानते है कि कर्मयोगकी सुविधाके लिए कर्मकी उन्नतिके लिए ज्ञान और शक्ति बढानेके लिए यह आवाहन होता है। इसलिए कर्मसे विरत होनेमे उन्हें भय नही होता, वे जानते है कि तपस्यामें समय लगानेसे वह कभी व्यर्थ नही जा सकता।

पात्रका भाव है कर्मयोगीके अंतिम सदेहका उद्रेक। विश्वकी समस्या, सुख-दुखकी समस्या, पाप-पुण्यकी समस्यासे विमूढ हो वहुतसे लोग पलायनको ही श्रेयस्कर समझ निवृत्ति, वैराग्य और कर्म-त्यागकी प्रशंसाका डका बजाते है। वुद्धदेवने जगत्‌को अनित्य और दु.खमय वता निर्वाणप्राप्तिका मार्ग दिखाया था। ईसामसीह, टाल्सटाय आदि मानवजातिके लिए सतति पैदा करनेवाली विवाह-पद्धति और जगत्‌के चिरन्तन नियम—युद्धके घोर विरोधी है। संन्यासी कहते हैं, कर्म है ही अज्ञान-सृष्ट, अज्ञान त्यागो, कर्म त्यागो, शात और निष्क्रिय बनो। अद्वैतवादी कहते है, जगत् मिथ्या है, जगत् मिथ्या है, व्रह्ममें विलीन होओ। तो फिर यह जगत् क्यो? यह संसार क्यो? भगवान् यदि है तो फिर क्यो उन्होने एक नादान बच्चेकी तरह यह व्यर्थ पशुश्रम किया, यह नीरस उपहास आरम्भ किया? यदि केवल आत्मा ही हो और जगत् माया ही हो तो फिर इस आत्माने इस जघन्य स्वप्नको अपने निर्मल अस्तित्वपर क्यो थोपा? नास्तिक कहते है, भगवान् भी नही, आत्मा भी नही, है केवल एक अघशक्तिकी अघ क्रिया। यह भला कैसी बात? शक्ति किसकी? कहासे उत्पन्न हुई? अध और उन्मत्त ही भला क्यो? इन सव प्रश्नोकी सतोषजनक मीमासा कोई भी न कर सका, न ईसाई, न बौद्ध, न अद्वैतवादी, न नास्तिक, न वैज्ञानिक, सभी है इस विषयमें निरुत्तर और समस्याकी उपेक्षा कर टालनेमें सचेष्ट। केवल उपनिषद् और तदनुयायी गीता इस प्रकार टाल-मटोल करना नही चाहती। इसीलिए

कुरुक्षेत्रके युद्धमें गीता गायी गयी। घोर सासारिक कर्म, गुरुहत्या, भ्रातृ-हत्या, आत्मीयहत्या है उसका उद्देश्य। इस अगणित प्राणिसहारक युद्धके प्रारम्भ होनेपर अर्जुन हतबुद्धि हो गाडीव धनुष हाथसे छोड देते है और कातर स्वरमें कहते है —

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥

"हे केशव! क्यो मुझे इस घोर कर्ममें नियुक्त करते हो?" उत्तर-मे उस युद्धके कोलाहलके बीच भगवान्के मुँहसे वज्र-गभीर स्वरमें यह महा-गीत निःसृत होता है:—

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।

*

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।

*

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

*

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

*

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

*

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

*

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

*

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

*

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।

*

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते ॥

"इसलिए तुम कर्म ही करते रहो, तुम्हारे पूर्वपुरुष पहलेसे जो कर्म करते आये हैं, तुम्हे भी वही कर्म करना होगा। . योगस्थ हो आसक्ति त्याग कर्म करो। जिनकी बुद्धि योगस्थ होती है वे इस कर्मक्षेत्रमें ही पाप-पुण्यका अतिक्रमण करते हैं, अतएव योगके लिए साधना करो, योग है ही कर्मका श्रेष्ठ सम्पादन। .मनुष्य यदि अनासक्त हो कर्म करें तो निश्चय ही वे परम भगवान्को प्राप्त करेंगे। .ज्ञानपूर्ण हृदयसे अपने समस्त कर्म मुझे सौंप दो, कामना त्याग, अहकार त्याग, दु खरहित हो युद्ध करो।... जो मुक्त हैं, आसक्तिरहित हैं, जिनका चित्त सदा ज्ञानमे निवास करता है, जो यज्ञार्थ कर्म करते हैं उनके समस्त कर्म बधनका कारण न बन, उसी क्षण पूर्ण रूपसे मुझमें विलीन हो जाते हैं।...समस्त प्राणियोका अतर्निहित ज्ञान अज्ञानसे आवृत है इसलिए वे सुख-दु ख, पाप-पुण्य आदि द्वदोकी सृष्टि कर मोहमे जा गिरते हैं। मुझे समस्त लोकोका महेश्वर, यज्ञ, तपस्या आदि सब प्रकारके कर्मोका भोक्ता तथा प्राणिमात्रका सखा और बन्धु माननेसे परम शान्ति प्राप्त होती है।.. मैं तुम्हारे शत्रुओका वध कर चुका हूँ, तुम यत्र बन उनका सहार करो, दुखी मत होओ, युद्धमें लग जाओ, विपक्षियोको रणमें जीतोगे। .जिनका अत करण अहज्ञानशून्य है, जिनकी बुद्धि निर्लिप्त है, वे यदि समस्त जगत्का सहार करें तो भी वे हत्या नही करते, उन्हें किसी प्रकारका पाप-बधन नही लगता।

प्रश्न टालनेका, प्रश्नसे मुह मोडनेका कोई लक्षण नही। प्रश्नको स्पष्ट रूपमें सामने रखा गया है। भगवान् क्या है, जगत् क्या है, ससार क्या है, धर्मपथ क्या है, गीतामें इन सभी प्रश्नोका उत्तर संक्षेपमें दिया गया है। फिर भी सन्यासकी शिक्षा नही, कर्मकी शिक्षा ही है गीताका उद्देश्य। इसी-में है गीताकी सार्वजनीन उपयोगिता।

प्रथम अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥1॥

धृतराष्ट्रने कहा—

हे संजय, धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिए समवेत हो मेरे पक्ष और पाण्डव-पक्षने क्या किया ?

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥2॥

सजयने कहा—

उस समय राजा दुर्योधन व्यूहबद्ध पाडव-अनीकिनीको देख आचार्य (द्रोणाचार्य)के समीप उपस्थित हो यह वोले।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥3॥

देखिये आचार्य! अपने मेधावी शिष्य द्रुपदतनय धृष्टद्युम्नद्वारा रचित-व्यूह इस महती पाडवसेनाको देखिये।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥4॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥5॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥6॥

इस विराट् सेनामें भीम और अर्जुनके समान महाधनुर्धर वीर पुरुष हैं,—युयुधान, विराट और महारथी द्रुपद,

धृष्टकेतु, चेकितान और महाप्रतापी काशिराज, पुरुजित्, कुंतिभोज और नरपुंगव शैव्य,

विक्रमशाली युधामन्यु और प्रतापवान् उत्तमौजा, सुभद्रातनय अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रगण, सभी महायोद्धा हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।7।।

हममें जो असाधारण-शक्तिसम्पन्न हैं, जो मेरी सेनाके नायक हैं, उनके नाम आपके स्मरणार्थ कहता हूँ, ध्यान दीजिये।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ।।8।।
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।।9।।

आप, भीष्म, कर्ण और समरविजयी कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त-तनय भूरिश्रवा और जयद्रथ,

और भी अनेक वीर पुरुषोंने मेरे लिए प्राणकी ममता छोड दी है, ये सभी युद्धविशारद और नानाविध अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।।10।।

हमारा यह सैन्यबल एक तो अपरिमित है, उस पर भीष्म हैं हमारे रक्षक, उनका सैन्यबल परिमित है, भीम ही हैं उनकी रक्षाके आशास्थल।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।।11।।

अतएव आप सभी युद्धके सब प्रवेशस्थलोंपर अपने-अपने निर्दिष्ट सैन्य-भागमें रह भीष्मकी ही रक्षा करें।

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।।12।।

दुर्योधनके प्राणोंमें हर्षोद्रेक कर कुरुवृद्ध महाप्रतापी पितामह भीष्मने उच्च सिंहनादमें रणस्थलको ध्वनित कर शंखनिनाद किया।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।।13।।

तब शंख, भेरी, पणव, आनक और गोमुख आदि युद्धके बाजे अकस्मात् बजने लगे, तुमुल शब्दसे रणक्षेत्र गूंज उठा।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।।14।।

तदुपरान्त श्वेत अश्वोसे युक्त विशाल रथमे खडे माधव और पांडुपुत्र अर्जुनने अपना-अपना दिव्य शख बजाया।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ।।15।।

हृषीकेशने पाचजन्य, धनजयने देवदत्त, भीमकर्मा वृकोदरने पौड्र नामक महाशख बजाया।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।।16।।

कुतीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनतविजय शख तथा नकुल और सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक शख बजाये।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।।17।।
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ।।18।।

परम धनुर्धर काशीराज, महारथी शिखडी, धृष्टद्युम्न, अपराजित योद्धा सात्यकि,

द्रुपद, द्रौपदीके पुत्रगण, महाबाहु सुभद्रातनय, सबने चारो ओरसे अपना-अपना शख बजाया।

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीञ्चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।।19।।

उस महाशब्दने आकाश और पृथ्वीको तुमुल रवसे प्रतिध्वनित कर धार्तराष्ट्रोका हृदय विदीर्ण किया।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।।20।।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।

तब शस्त्रनिक्षेप आरम्भ होनेके बाद पाडुपुत्र अर्जुनने धनुष उठा हृषीकेश-से यह कहा।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।।21।।
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ।।22।।
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।23।।

अर्जुनने कहा—

हे निष्पाप! दोनो सेनाओके बीच मेरा रथ खडा करो। तब तक मै युद्धके इच्छुक अवस्थित इन विपक्षियोका निरीक्षण कर लू। जानना चाहता हूँ कि किनके साथ इस रणोत्सवमें युद्ध करना होगा।

देखूं, ये युद्धप्रार्थी कौन है जो दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रतनय दुर्योधनका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे युद्धक्षेत्रमें उतर आये है।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।।24।।
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ।।25।।

सजयने कहा—

गुडाकेशकी यह बात सुन हृषीकेश दोनो सेनाओंके बीच उस उत्तम रथ-को खडा कर

भीष्म, द्रोण और समस्त राजाओंके सामने उपस्थित हो बोले, "हे पार्थ! समवेत कौरवोको देखो।

तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।।26।।

उस रणस्थलमें पार्थने देखा कि पिता, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, सखा, श्वसुर, सुहृद् जितने भी आत्मीय और स्वजन हैं, वे सब दोनो परस्परविरोधी सेनाओमें खड़े हैं।

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।।27।।

उन सब बधु-बाधवोको इस प्रकार अवस्थित देख कुंतीपुत्र तीव्र कृपासे अभिभूत हो विषादग्रस्त हृदयसे यह बोले—

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमान् स्वजनान् कृष्ण युयुत्सून् समवस्थितान्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति ।।28।।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ।।29।।

अर्जुनने कहा—

हे कृष्ण! इन सब स्वजनोंको युद्धार्थ अवस्थित देख मेरे शरीरके सभी अंग अवसन्न हो रहे हैं, मुंह सूखा जा रहा है,

समस्त शरीरमें कप और रोमाच हो रहा है, गांडीव अवश हाथसे गिरा जा रहा है, त्वचा मानो आगमें जली जा रही है।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।।30।।

मैं खड़ा होनेमें भी असमर्थ हो रहा हूँ, मन मानो चक्कर खा रहा है; हे केशव! मैं सभी अशुभ लक्षण देख रहा हूँ।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।।31।।

युद्धमें स्वजनोको मारनेमें कोई कल्याण नही देखता; हे कृष्ण! मैं जय नही चाहता, राज्य भी नही चाहता, सुख भी नही चाहता।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।।32।।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।।33।।

बोलो गोविन्द, राज्यसे हमें क्या लाभ ? भोगसे क्या लाभ ? जीवनका क्या प्रयोजन ? जिनके लिए राज्य, भोग और जीवन वांछनीय है,

वे ही जीवन और धनको त्याग इस रणक्षेत्रमें उपस्थित है,—आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह,

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।।34।।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।।35।।

मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी सबंधी। हे मधुसूदन, ये यदि मेरा वध भी करें तो भी मैं इन्हें मारना नही चाहता;

त्रिलोकके राज्यके लोभसे भी नही, पृथ्वीके आधिपत्यकी तो बात ही क्या ? धार्तराष्ट्रोका सहारकर हे जनार्दन, हमारे मनको क्या सुख मिल सकता है ?

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।36।।

ये आततायी है, तथापि इनका वध करनेसे हमारे मनमें पापको ही आश्रय मिलेगा। अतएव धार्तराष्ट्रगण जब हमारे आत्मीय है तो हमें इनका संहार करनेका अधिकार नही। हे माधव ! स्वजनोंके वधसे हम कैसे सुखी होंगे ?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।37।।
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।38।।

यद्यपि लोभवश बुद्धिभ्रष्ट हो ये कुलनाशके दोष और मित्रका अनिष्ट करनेके महापापको नही समझ पा रहे,

तथापि, हे जनार्दन ! हम कुलक्षयजनित दोषको समझते है, हमें बोध क्यो न हो ? इस पापसे क्यो न हम निवृत्त हो ?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।39।।

कुलक्षयसे सारे सनातन कुलधर्म विनाशको प्राप्त होते है, धर्मनाशसे अधर्म सारे कुलको अभिभूत करता है।

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।।40।।

अधर्मके अभिभवसे, हे कृष्ण, कुलकी स्त्रिया दुश्चरित्रा हो जाती है। कुलकी स्त्रियोंके दुश्चरित्रा होनेसे वर्णसकर होता है।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।41।।

वर्णसकर कुल और कुलनाशक लोगोको नरकमें ले जानेका हेतु बनता है; क्योकि उनके पितृगण पिण्डोदकसे वचित हो पितृलोकसे पतित होते हैं।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।।42।।

कुलनाशकोंके इन वर्णसकरोत्पादक दोषोंके कारण सनातन जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट होते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।।43।।

जिनके कुलधर्म नष्ट हो गये है, उन मनुष्योंके लिए नरक वास निर्दिष्ट होता है, प्राचीन कालसे यही सुनता आ रहा हूँ।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।।44।।

अहो! हमने बहुत बडा पाप करनेका निश्चय किया था जो राज्यसुखके लोभसे स्वजनोका वध करनेको उद्यत हो रहे थे।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ।।45।।

यदि मुझ अशस्त्र और प्रतिकार न करनेवालेको सशस्त्र धार्त्तराष्ट्रगण रणमें मार डालें तो इसकी अपेक्षा मेरा अधिक मगल होगा।"

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।।46।।

संजयने कहा—

ऐसा कह अर्जुन शोकसे उद्विग्नचित्त हो युद्धके समय धनुष-बाण छोड़ रथमें बैठ गये।

संजयको दिव्य-चक्षुप्राप्ति

गीता महाभारतके महायुद्धके आरंभमें कही गयी थी। इसीलिए गीताके पहले ही श्लोकमें राजा धृतराष्ट्र दिव्यचक्षुप्राप्त संजयसे युद्धके बारेमें पूछ रहे हैं, दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हैं, वृद्ध राजा यह जाननेके लिए उत्सुक हैं कि उनकी पहली चेष्टा क्या है। संजयकी दिव्यचक्षुप्राप्तिकी बात आधुनिक भारतके अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंकी दृष्टिमें कवि-कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं। यदि कहते कि अमुक व्यक्ति दूरदृष्टि (clairvoyance) और दूरश्रवण (clairaudience) से किसी दूरस्थ रणक्षेत्रका रोमांचकारी दृश्य तथा महारथियोंका सिंहनाद इन्द्रियगोचर कर सका था तो संभवतः यह बात इतनी अविश्वसनीय न भी होती। और यदि कहें कि व्यासदेवने यह शक्ति संजयको दी थी तो इसे कवि-कल्पना कह उड़ा देनेकी प्रवृत्ति होती है। यदि कहते कि एक विख्यात यूरोपीय विज्ञानविद्ने अमुक व्यक्तिको स्वप्नावस्थाप्राप्त (hypnotised) करा उसके मुँहसे उस दूर घटनाका हाल जान लिया था तो जिन्होंने पाश्चात्य सम्मोहन (Hypnotism) की बात ध्यानपूर्वक पढ़ी है वे संभवतः विश्वास कर लेते। किंतु सम्मोहन योगशक्तिका एक निकृष्ट और त्याज्य अंगमात्र है। मनुष्यमें ऐसी अनेक शक्तियाँ निहित हैं जिन्हें पुरातनकालीन सभ्य जातियाँ जानती थीं और उन्हें विकसित करती थीं; पर कलि-प्रसूत अज्ञान-स्रोतमें वे सब विद्याएँ बह गयी हैं, केवल अल्प थोड़े-से लोगोंमें गुप्त और गोपनीय ज्ञानके रूपमें रक्षित होती आ रही हैं। स्थूल इन्द्रियोंके परे सूक्ष्म दृष्टि नामक एक सूक्ष्मेन्द्रिय है जिसके द्वारा हम स्थूल इन्द्रियोंकी पहुँचसे परेकी वस्तुओं और ज्ञानको आयत्त कर सकते हैं, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन, सूक्ष्म शब्दका श्रवण, सूक्ष्म गंधका आघ्राण, सूक्ष्म पदार्थका स्पर्श और सूक्ष्म आहारका आस्वादन कर सकते हैं। सूक्ष्म-दृष्टिके चरम परिणामको ही दिखलाया करते हैं, इसमें पदार्थोंमें दूरस्थ,

गुप्त या अन्य लोकोकी सब बातें हमें ज्ञानगोचर होती हैं। परम योग-शक्तिके आधार महामुनि व्यास यह दिव्यचक्षु सजयको देनेमें समर्थ थे,—इस बातमें अविश्वास करनेका हम कोई भी कारण नहीं पाते। जब हमें पाश्चात्य सम्मोहनकारी (hypnotist) की अद्भत शक्तिमें अविश्वास नहीं होता तब भला अनुपम ज्ञानी व्यासदेवकी शक्तिमें ही अविश्वास क्यों? शक्तिमान्‌की शक्ति दूसरेके शरीरमें संचारित हो सकती है, इसके असख्य प्रमाण इतिहासके पन्ने-पन्नेपर और मनुष्य-जीवनके प्रत्येक कार्यमें मिलते हैं। नेपोलियन, इतो इत्यादि कर्मवीरोने उपयुक्त शक्ति-संचार कर अपने कार्यके लिए सहकर्मी तैयार किये थे। अति सामान्य योगी भी कोई सिद्धि प्राप्त कर कुछ क्षणके लिए या किसी कार्य-विशेषमें प्रयोग करनेके लिए दूसरोको अपनी सिद्धि दे सकते है, व्यासदेव तो जगत्के श्रेष्ठ मनीषी और असामान्य योगसिद्ध पुरुष थे। वास्तवमें दिव्यचक्षुका होना कपोल-कल्पना नही, बल्कि है एक वैज्ञानिक सत्य। हम जानते हैं, आँखें नही देखती, कान नही सुनते, नाक नही सूंघती, त्वचा स्पर्श नहीं करती, रसना स्वाद नही लेती; मन ही देखता है, मन ही सुनता, मन ही सूंघता, मन ही स्पर्श करता और मन ही स्वाद लेता है। दर्शनशास्त्र और मनो-विज्ञानमें यह सत्य चिरकालसे स्वीकृत होता आ रहा है, सम्मोहनमें वैज्ञानिक प्रयोगद्वारा यह परीक्षित हो प्रमाणित हुआ है कि आँखें बंद रहनेपर भी दर्शनेंद्रियका कार्य किसी नाड़ीद्वारा संपादित किया जा सकता है। उससे यही सिद्ध होता है कि चक्षु इत्यादि स्थूल इंद्रियाँ ज्ञानप्राप्तिके केवल सुविधाजनक साधन हैं, स्थूल शरीरके सनातन अभ्यासवश हम उनके दास हो गये हैं। किंतु वास्तवमें चाहे किसी भी शारीरिक प्रणालीद्वारा वह ज्ञान मनतक पहुँचाया जा सकता है—जैसे एक अंधा स्पर्शद्वारा पदार्थोंकी आकृति और स्वभावकी ठीक-ठीक धारणा करता है। किंतु अंधेकी दृष्टि और स्वप्नावस्थाप्राप्त व्यक्तिकी दृष्टिमें यह भेद दिखायी देता है कि स्वप्नावस्थाप्राप्त व्यक्ति पदार्थोकी प्रतिमूर्ति मनके अंदर देखता है। इसे ही कहते हैं दर्शन। वास्तवमें हम सामने रखी पुस्तक नहीं देखते, उस पुस्तककी जो प्रतिमूर्ति हमारी आंखोमें चित्रित होती है उसे ही देखकर मन कहता है कि मैंने पुस्तक देखी। किंतु स्वप्नावस्थाप्राप्त व्यक्तिके दूरस्थित पदार्थ या घटनाको देखने और सुननेसे यह भी सिद्ध होता है कि पदार्थका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए किसी शारीरिक प्रणालीकी आवश्यकता नहीं—सूक्ष्म दृष्टिद्वारा दर्शन कर सकते हैं। लंदनके एक मकानमें बैठे हुए उस समय एडिनबरामें घट रही घटनाको मनसे देख लेते हैं, ऐसे

दृष्टांतोकी सख्या आजकल दिन-दिन बढ रही है। इसीको कहते है सूक्ष्म-दृष्टि। सूक्ष्म-दृष्टि और दिव्य-दृष्टिमें यही भेद है कि दृष्टिसे अदृष्ट पदार्थकी प्रतिमूर्ति मनके अदर देखते हैं और दिव्य-दृष्टिसे हम उस दृश्यको मनके अदर न देख शारीरिक स्थूल आँखोके सामने देखते है, चिन्तन-स्रोतमें उस शब्दको न सुन शारीरिक कानोसे सुनते है। इसका एक सामान्य दृष्टांत है स्फटिकके अदर या स्याहीके अंदर समसामयिक घटनाको देखना। किंतु दिव्यचक्षुप्राप्त योगीको इस प्रकारके किसी उपकरणकी कोई आवश्यकता नही, वे इस शक्तिका विकास कर विना किसी उपकरणकें, देश-कालका बधन खोल, अन्य देशो और अन्य समयोकी घटना जान सकते है। देशके बंधन तोडनेके हम यथेष्ट प्रमाण पा चुके है, परन्तु इस बातके बहुसंख्यक और संतोषजनक प्रमाण अभी जगत्के सामने उपस्थित नही किये गये कि कालका बधन भी तोडा जा सकता है, मनुष्य त्रिकालदर्शी हो सकता है। फिर भी यदि देशबंधनको तोडना संभव हो तो कालबंधनको तोड़ना असंभव नही कहा जा सकता। जो हो, इस व्यासप्रदत्त दिव्य-चक्षुसे संजयने हस्तिनापुरमें बैठे-बैठे ही मानो कुरुक्षेत्रमें खड़े हो, वहाँ समवेत धार्तराष्ट्रो और पाण्डवोको अपनी आँखो देखा, दुर्योधनकी उक्ति, भीष्म-पितामहका भीषण सिंहनाद, पांचजन्यका कुरुध्वंसघोषक महाशब्द और गीतार्थद्योतक कृष्णार्जुन-सवाद अपने कानो सुना।

हमारे मतमें महाभारत रूपक नही, कृष्ण और अर्जुन भी कवि-कल्पना नही, गीता भी आधुनिक तार्किक या दार्शनिक लोगोंका सिद्धांत नही। अतएव हमें यह सिद्ध करना होगा कि गीताकी कोई भी बात असंभव या युक्तिविरुद्ध नही। इसीलिए दिव्य-चक्षु-प्राप्तिकी इतनी विस्तृत आलोचना की है।

दुर्योधनकी वाक्चातुरी

संजयने उस युद्धके प्रथम प्रयासका वर्णन करना आरभ किया। दुर्योधन पाडवसेनाकी व्यूहरचना देख द्रोणाचार्यके निकट उपस्थित हुए। द्रोणके निकट क्यो गये इसकी व्याख्या आवश्यक है। भीष्म थे सेनापति, उचित था कि युद्धकी बात उनसे ही कही जाती किंतु कूटबुद्धि दुर्योधनकें

मनमें भीष्मपर विश्वास नहीं था। भीष्म पाडवोंके प्रति अनुरक्त थे, हस्तिनापुरके शात्यनुमोदक दल (peace-party) के नेता थे; यदि पाडवों और धार्तराष्ट्रोमें ही युद्ध होता तो भीष्म कभी अस्त्रधारण न करते; किंतु कुरुगणके प्राचीन शत्रु और समकक्ष साम्राज्याभिलाषी पाचालोद्वारा कुरुराज्यको आक्रान्त देख कुरुजातिके प्रधान पुरुष, योद्धा और राजनीति-विद् सेनापतिके पदपर नियुक्त हो निज बाहुबलसे चिररक्षित स्वजातिके गौरव और प्राधान्यकी अतिम बार रक्षा करनेके लिए कृतसंकल्प हुए। दुर्योधन थे स्वय असुर-प्रकृति, राग-द्वेष ही था उनके सब कार्योका प्रमाण और कारण, इसलिए कर्तव्यपरायण महापुरुषोके मनका भाव समझनेमे असमर्थ थे, वह यह कभी विश्वास न कर सके कि कर्तव्य-बुद्धिवश प्राणतुल्य पाडवोका भी युद्धक्षेत्रमें संहार करनेका बल इस कठिन तपस्वीके प्राणोमें है। परामर्शके समय स्वदेशहितैषीके अपना मत प्रकट कर स्वजातिको अन्याय और अहितसे निवृत्त करनेके लिए प्राणपण चेष्टा करनेपर भी वह अन्याय और अहित लोगोंद्वारा एक बार स्वीकृत हो जाय तो वे अपने मतकी उपेक्षा कर अधर्मयुद्धमें भी स्वजातिकी रक्षा और शत्रुदमन करते है, भीष्मने भी इसी पक्षका अवलंबन लिया था। यह भाव समझना भी दुर्योधनके वशका नही था। अतएव भीष्मके पास न जा द्रोणको स्मरण किया। द्रोण व्यक्तिगत रूपसे पाचालराजके घोर शत्रु थे, पाचाल देशके राजकुमार धृष्टद्युम्नने गुरु द्रोणका वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतएव दुर्योधनने सोचा कि इस व्यक्तिगत वैरभावकी बात याद दिलानेसे आचार्य शांतिका पक्ष छोड़ पूर्ण उत्साहके साथ युद्ध करेंगे। यह बात स्पष्टत: नही कही। धृष्टद्युम्नके नामका उल्लेख-भर किया, उसके बाद भीष्मको भी सतुष्ट करनेके लिए उन्हें कुरुराज्यका रक्षक और विजयका आशा-स्वरूप कहा। पहले विपक्षके मुख्य-मुख्य योद्धाओंके नामोका उल्लेख किया, फिर अपनी सेनाके कुछ नेताओंके नाम गिनाये, सबके नही, द्रोण और भीष्मका ही नाम लेना उनकी उद्देश्य-सिद्धिके लिए काफी था, किंतु उस उद्देश्यको छिपानेके लिए और चार-पाँच नामोका उल्लेख किया। उसके बाद उन्होने कहा—"मेरी सेना अति विशाल है, भीष्म हैं मेरे सेनापति, पाडवोकी सेना है अपेक्षाकृत छोटी, उनका आशास्थल है भीमका बाहुबल, अतएव हमारी विजय क्यो नही होगी? भीष्म ही जब हमारे प्रधान अवलब हैं तब शत्रुओंके आक्रमणसे उनकी रक्षा करना सबके लिए उचित है, उनके रहते हमारी विजय है अवश्यभावी।" बहुत-से लोग 'अपर्याप्त' शब्दका उलटा अर्थ करते हैं, वह युक्तिसगत नही, दुर्योधनकी सेना अपेक्षाकृत

विशाल है, उस सेनाके नेता शौर्य-वीर्यमें किसीसे भी कम नही, तव भला आत्मश्लाघी दुर्योधन अपने वलकी निन्दा कर निराशा उत्पन्न करने क्यों जायँगे? भीष्मने दुर्योधनके मनका भाव और गूढ उद्देश्य समझ लेनेपर उनका सदेह दूर करनेके लिए सिंहनाद और शंखध्वनि की। दुर्योधनके हृदयमें इससे प्रसन्नता हुई। उन्होने सोचा, मेरा उद्देश्य सिद्ध हो गया, द्रोण और भीष्म दुविधा दूर कर युद्ध करेंगे।

पूर्व सूचना

ज्यो ही भीष्मके गगनभेदी शखनादसे रणक्षेत्र कपित हुआ त्यो ही उस विशाल कौरवसेनामें चारो ओर रण-वाद्य गूंज उठे और रणोल्लाससे रथिगण झूमने लगे। इधर पाडवोंके श्रेष्ठ वीर और उनके सारथी श्रीकृष्णने भीष्मके युद्धाह्वानके उत्तरमें शखनाद किया और युधिष्ठिर आदि पांडव-पक्षके वीरोने अपना-अपना शख वजा सेनाके हृदयमें रणचडीको जगाया। उस महा रवने पृथ्वी और गगनमडलको प्रतिध्वनित कर मानो धार्तराष्ट्रोका हृदय विदीर्ण किया। इसका अर्थ यह नही कि भीष्म आदि इस रवसे डर गये थे, वे थे वीर पुरुष, रणचडीके आह्वानसे भला भयभीत क्यो होने लगे? इस उक्तिद्वारा कविने पहले अत्यंत उत्कट रवके शारीरिक वेगवान् सचारका वर्णन किया है, जैसे वज्रनादसे वहुत वार श्रोताको ऐसा लगता है मानो उसका सिर दो टूक हो गया हो, वैसे ही इस रणक्षेत्र-व्यापी महा रवका सचार हुआ; और यह रव था मानो धार्तराष्ट्रोंके भावी निधनकी घोषणा, जिन हृदयोको पाडवोंके शस्त्र विदीर्ण करेंगे उन्हें उनके शखनादने पहले ही विदीर्ण कर डाला। युद्ध आरभ हुआ, दोनो ओरसे शस्त्रसंपात होने लगा, ऐसे समय अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, "तुम मेरा रथ दोनो सेनाओके वीच खडा करो, मैं देखना चाहता हूं कि कौन-कौन विपक्षी हैं, कौन दुर्वुद्धि दुर्योधनका प्रिय कार्य करनेके लिए समागत हैं, किनके साथ मुझे युद्ध करना होगा।" अर्जुनका भाव यही था कि मैं ही हूं पांडवोकी आशा, मेरेद्वारा ही विपक्षके प्रधान-प्रधान योद्धा मारे जायँगे, अतएव देखूं ये कौन हैं। यहाँतक तो अर्जुनमे संपूर्ण क्षत्रियभाव रहता है, 'कृपा' या दुर्वलताका कोई चिह्न नही। भारतके अनेक श्रेष्ठ वीर पुरुष विपक्षकी

सेनामें उपस्थित हैं, सबका संहार कर अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरको असपत्न साम्राज्य देनेके लिए उद्योगी हैं। परंतु श्रीकृष्ण जानते हैं कि अर्जुनके मनमें दुर्बलता है, अभी अगर चित्त शुद्ध न किया गया तो किसी भी समय वह अकस्मात् चित्तसे निकल बुद्धिपर अधिकार जमा सकती है जिससे पांडवोंका बड़ा अनिष्ट होगा, संभवतः सर्वनाश ही हो जाय। इसीलिए श्रीकृष्णने ऐसे स्थानपर रथ स्थापित किया कि भीष्म, द्रोण इत्यादि अर्जुनके प्रियजन उनके सामने रहें और साथ ही कौरवपक्षके दूसरे सब राजाओंको भी देख सकें, और उनसे कहा: देखो, समवेत कुरुजातिको देखो। याद रखना चाहिये कि अर्जुन स्वयं थे कुरुजातीय, कुरुवंशके गौरव, उनके सभी आत्मीय, प्रियजन, बाल्यसखा उसी कुरुजातिके थे, तब हृदयंगम होगा श्रीकृष्णके कहे इन तीन सामान्य शब्दोंका गंभीर अर्थ और भाव। उस समय अर्जुनने देखा कि जिनका संहार कर युधिष्ठिरका असपत्न राज्य संस्थापित करना होगा, वे और कोई नहीं, अपने ही प्रिय आत्मीय, गुरु, बंधु तथा भक्ति और प्रेमके पात्र हैं और देखा कि भारत-भरके क्षत्रिय एक-दूसरेके साथ प्रिय संबंधद्वारा आबद्ध हैं फिर भी एक-दूसरेका संहार करनेके लिए इस भीषण रणक्षेत्रमें इकट्ठे हुए हैं।

विषादका मूल कारण

क्या था अर्जुनके निर्वेदका मूल कारण? बहुत-से लोग इस विषादकी प्रशंसा कर श्रीकृष्णको कुमार्ग-प्रदर्शक और अधर्मका अनुमोदक कह निंदा करते हैं। इस धारणावश ही कि ईसाई-धर्मका शांतिभाव, बौद्धधर्मका अहिंसाभाव और वैष्णव-धर्मका प्रेमभाव ही उच्च और श्रेष्ठ धर्म है, युद्ध और नरहत्या पाप है और भ्रातृहत्या और गुरुहत्या महापातक, वे ऐसी असंगत बात कहते हैं। परंतु यह आधुनिक धारणा द्वापर-युगके महावीर पांडवके मनमें भी नहीं उठी थी, इस विचारका कोई चिह्नतक अर्जुनकी बातमें दिखायी नहीं देता कि अहिंसाभाव श्रेष्ठ है या युद्ध, नरहत्या, भ्रातृहत्या और गुरुहत्या महापाप है और इस कारण युद्धसे विरत होना उचित। पर इतना अवश्य कहा कि गुरुजनोंकी हत्याकी अपेक्षा भिक्षावृत्तिका अवलंबन श्रेयस्कर है, यह भी कहा कि बंधु-बांधवकी हत्यासे हमें पाप लगेगा, किंतु

कर्मका स्वभाव देख यह बात नही कही, बल्कि कर्मका फल देख यह बात कही। इसी कारण श्रीकृष्णने उनका विषाद भंग करनेके लिए यह शिक्षा दी कि कर्मका फल नहीं देखना चाहिये, कर्मका स्वभाव देख निश्चय करना चाहिये कि वह कर्म उचित है या अनुचित। अर्जुनका पहला भाव था, ये हैं मेरे आत्मीय, गुरुजन, बधु, बाल्यसहचर, सभी स्नेह, भक्ति और प्रेमके पात्र, इनकी हत्या कर असपत्न राज्य भोग करनेपर वह राज्यभोग कदापि सुखप्रद नही हो सकता, बल्कि जीवन-भर दु.ख और पश्चात्तापसे जलते रहना होगा, बधु-बाधव-शून्य पृथ्वीका राज्य किसीके लिए भी वाछनीय नही। अर्जुनका दूसरा भाव था, प्रियजनोंकी हत्या करना है धर्म-विरुद्ध, जो द्वेषके पात्र हैं उन्हें युद्धमें मारना है क्षत्रियका धर्म। उनका तीसरा भाव था, स्वार्थके लिए ऐसा करना धर्मविरुद्ध और क्षत्रियके लिए अनुचित है। चौथा भाव था, भ्रातृ-विरोध और भ्रातृहत्यासे कुलनाश और जाति-ध्वस। ऐसा कुफल उत्पन्न करना कुलरक्षक और जातिरक्षक क्षत्रिय वीरके लिए है महापाप। इन चार भावोंके अतिरिक्त अर्जुनके विषादके मूलमें और कोई भाव नही। इसे समझे बिना श्रीकृष्णका उद्देश्य और उनकी शिक्षाका अर्थ भी समझमें नही आ सकता। ईसाई-धर्म, बौद्ध-धर्म, वैष्णव-धर्मके साथ गीताके धर्मके विरोध और सामजस्यकी बात बादमें बतलायेंगे। सूक्ष्म विवेचनद्वारा अर्जुनके कथनके भावका निरीक्षण कर उनका मनोभाव दिखानेकी चेष्टा करेंगे।

वैष्णवी मायाका आक्रमण

अर्जुनने पहले अपने विषादका वर्णन किया। स्नेह और 'कृपा'के अकस्मात् विद्रोहसे महावीर अर्जुन अभिभूत और परास्त हो गये, क्षण-भरमें उनके शरीरका सारा बल जाता रहा, सारे अंग शिथिल हो गये, खडे रहनेतककी शक्ति नही रही, बलवान् हाथ गाडीव धारण करनेमें असमर्थ थे, शोकके उत्तापसे ज्वरके लक्षण दिखायी देने लगे, शरीर दुर्बल हो गया, त्वचा मानो आगमें जलने लगी, मुंह सूख गया, समस्त शरीर जोरसे कांपने लगा, मन मानो उस आक्रमणसे चक्कर खाने लगा। ऐसे भावका वर्णन पढ़ पहले तो उसे कविकी तेजस्विनी कल्पनाका अतिशय विकास मान केवल

उस कवित्व-सौंदर्यका उपभोग कर चुप बैठ जाते हैं; किंतु जब इस भावकी सूक्ष्म विवेचना कर निरीक्षण करते हैं तब मनमें इस वर्णनका एक गूढ़ अर्थ प्रकट होता है। पहले भी अर्जुनने कौरवोंके साथ युद्ध किया था, पर ऐसा भाव कभी नहीं उठा, इस बार श्रीकृष्णकी इच्छासे हठात् यह आतरिक उत्पात उठ खडा हुआ। मनुष्यजातिकी अनेक अति प्रबल वृत्तियाँ क्षात्र-शिक्षा और उच्च आकाक्षाद्वारा पराभूत और आबद्ध हो अर्जुनके हृदय-तलमें गुप्त पडी थी। निग्रहसे चित्तशुद्धि नही होती, विवेक और विशुद्ध बुद्धिकी सहायतासे, सयमसे होती है चित्त-शुद्धि। निगृहीत वृत्तियाँ और भाव इस जन्म या दूसरे जन्ममें, किसी-न-किसी दिन चित्तसे उभड बुद्धिपर आक्रमण करते हैं और उसे विजित कर समस्त कर्मोको निज विकासके अनुकूल मार्गपर चलाते हैं। इसी कारण इस जन्ममें दयावान् दूसरे जन्ममें निष्ठुर होता है, इस जन्ममे कामी और दुश्चरित्र दूसरे जन्ममें साधु और पवित्रचेता होता है। निग्रह न कर विवेक और विशुद्ध बुद्धिकी सहायतासे सभी वृत्तियोको निकाल चित्त-शुद्धि करनी चाहिये। यही है संयम। ज्ञानके प्रभावसे तमोभाव दूर न होनेतक सयम असभव है। इसीलिए श्रीकृष्ण अर्जुनके अज्ञानको दूर कर, सुप्त विवेकको जगा, चित्त-शोधन करनेके इच्छुक थे। परतु त्याज्य वृत्तियोको चित्तमें ऊपर उठा बुद्धिके सामने उपस्थित न करनेमे बुद्धि भी उन्हें निकाल बाहर करनेका अवसर नही पाती, और फिर युद्धमें ही अत स्थ दैत्य और राक्षस विवेकद्वारा नष्ट किये जाते है, तब विवेक बुद्धिको मुक्त करता है। योग-साधनाकी प्रारभिक अवस्थामें, चित्तमें बद्धमूल सब कुप्रवृत्तियाँ साधककी बुद्धिपर बडे जोरसे आक्रमण करती हैं और अनभ्यस्त साधकको भय और शोकसे विह्वल कर देती हैं, पाश्चात्य देशोमे इसे ही कहते हैं शैतानका प्रलोभन, यही है मार (कामदेव)का आक्रमण। परतु यह भय और शोक हैं अज्ञान-संभूत, यह प्रलोभन शैतानका नही, है भगवान्का। अतर्यामी जगद्गुरु ही साधकपर आक्रमण करानेके लिए इन सब प्रवृत्तियोका आह्वान करते हैं, उसके अमंगलके लिए नही, मगलके लिए, चित्त-शोधनके लिए। श्रीकृष्ण जैसे सशरीर बाह्य जगत्में अर्जुनके सखा और सारथी थे वैसे ही उनके अतरमें थे अशरीरी ईश्वर और अतर्यामी पुरुषोत्तम, उन्होने ही इन सब गुप्त वृत्तियों और भावोको एक ही साथ बडे वेगसे अर्जुनकी बुद्धि-पर फेंका था। इस भीषण आघातसे अर्जुनकी बुद्धि चक्कर खाने लगी और उसी क्षण प्रबल मानसिक विकार स्थूल शरीरमें कवि-वर्णित सब लक्षणोंद्वारा व्यक्त हुए। प्रबल अप्रत्याशित शोक और दु ख इसी तरह

शरीरमें प्रकट होते हैं, यह हम जानते हैं, यह मनुष्य-जातिके साधारण अनुभवसे बाहरकी बात नही। भगवान्‌की वैष्णवी मायाने अर्जुनको अखड बलसे क्षण-भरमें अभिभूत कर लिया था, उसीसे हुआ यह प्रबल विकार। अधर्म जब दया, प्रेम आदि धर्मका कोमल आकार धारण करके आता है, अज्ञान जब ज्ञानके वेषमे छद्म-वेषी बन आता है, प्रगाढ अंधकारमय तमोगुण जब उज्ज्वल और विशद पवित्रताका रूप धारण कर कहता है कि "मै हूँ सात्त्विक, मै हूँ ज्ञान, मै हूँ धर्म, मै हूँ भगवान्‌का प्रिय दूत, पुण्यरूप और पुण्यप्रवर्त्तक", तब समझना होगा, भगवान्‌की वैष्णवी माया प्रकट हुई है बुद्धिके अन्दर।

वैष्णवी मायाका लक्षण

इस वैष्णवी मायाके मुख्य अस्त्र है 'कृपा' और स्नेह। मनुष्य-जातिका प्रेम और स्नेह विशद्ध वृत्तियाँ नही, शारीरिक और प्राणकोषागत विकार-वश पवित्र प्रेम और दया कलुषित और विकलाग हो जाते हैं। चित्त ही है वृत्तियोका वासस्थान। प्राण है भोगका क्षेत्र, शरीर कर्मका यत्र और बुद्धि चिंतनका देश। शुद्ध अवस्थामें इन सबकी प्रवृत्ति स्वतत्र पर परस्पर-अविरोधी होती है, चित्तमें भाव उठता है, शरीरसे तदनुसार कर्म होता है, बुद्धिमें तत्सबधी विचार उठते है, प्राण उसी भाव, कर्म और चिन्तनका आनद लेता है और जीव साक्षी रूपसे प्रकृतिकी यह आनंदमयी क्रीडा देख आनदित होता है। अशुद्ध अवस्थामें प्राण शारीरिक या मानसिक भोगके लिए लालायित हो शरीरको कर्म-यत्र न बना भोगका साधन बनाता है, शरीर भोगमें आसक्त हो, बारबार शारीरिक भोगके लिए दावा करता है, शारीरिक भोगकी कामनासे आक्रात हो चित्त निर्मल भाव ग्रहण करनेमे असमर्थ होता है और कलुषित वासनायुक्त भाव चित्त-सागरको विक्षुब्ध करता है, उसी वासनाका कोलाहल बुद्धिको अभिभूत कर व्याकुल करता है, उसे बहरी बनाता है, अब बुद्धि निर्मल, शात और अभ्रांत चिंतनको ग्रहण करनेमें समर्थ नही रह जाती, चचल मनके वशीभूत हो वह भ्रम, विचार-विप्लव और असत्यके प्राबल्यसे अधी बन जाती है। जीव भी इस बुद्धिभ्रशके कारण ज्ञानशून्य हो साक्षीभाव और निर्मल आनद-

भावसे वंचित हो आधारके साथ अपना एकत्व स्वीकार कर "मैं हूँ देह, मैं हूँ प्राण, मैं हूँ चित्त, मैं हूँ बुद्धि" इस भ्रांत धारणासे शारीरिक और मानसिक सुख-दु.खसे सुखी और दु.खी होता है। अशुद्ध चित्त है इस धाँधलीका मूल, अतएव चित्त-शुद्धि है उन्नतिका प्रथम सोपान। यह अशुद्धि केवल तामसिक और राजसिक वृत्तिको कलुषित कर चुप नही वैठ जाती, सात्त्विक वृत्तिको भी कलुषित करती है। "अमुक मनुष्य मेरे शारीरिक और मानसिक भोगकी सामग्री है, वह मुझे अच्छा लगता है, उसीको चाहता हूँ, उसके विरहसे मुझे क्लेश होता है," यह है अशुद्ध प्रेम, शरीर और प्राणने चित्तको कलुषित कर निर्मल प्रेमको विकृत कर दिया है। बुद्धि भी इस अशुद्धिके कारण भ्रांत हो कहती है : "अमुक मेरी स्त्री है, भाई, बहिन, सखा, आत्मीय, मित्र है, उसे ही प्यार करना होगा, यही प्रेम पुण्य-मय है, यदि मैं इस प्रेमके प्रतिकूल कार्य करूँ तो वह पाप होगा, क्रूरता होगी, अधर्म होगा।" इस प्रकारके अशुद्ध प्रेमके फलस्वरूप इतनी बलवती 'कृपा' होती है कि प्रियजनोको कष्ट देने, प्रियजनोका अनिष्ट करनेकी अपेक्षा धर्मको ही तिलाजलि देना श्रेयस्कर लगता है, अतमें कही इस 'कृपा'-को चोट न पहुँचे इसलिए धर्मको अधर्म कह अपनी दुर्बलताका समर्थन करते हैं। इस प्रकारकी वैष्णवी मायाका प्रमाण अर्जुनकी प्रत्येक वातमें मिलता है।

वैष्णवी मायाकी क्षुद्रता

अर्जुनकी पहली वात थी कि ये हमारे स्वजन है, आत्मीय है, स्नेहके पात्र हैं, युद्धमें इनकी हत्या कर हमारा क्या हित साधित होगा? विजेताका गर्व, राजाका गौरव, धनीका सुख? मैं ये अर्थहीन स्वार्थ नही चाहता। लोगोको राज्य, भोग और जीवन क्यो प्रिय होता है? हमारे स्त्री, पुत्र, कन्या है, हम आत्मीय-स्वजनोको सुखसे रख सकेंगे, वंधु-बाधवोंके साथ ऐश्वर्यके सुख और आमोदमें दिन बितायेंगे—ऐसा मानकर सुख और महत्त्व उनके लोभके विषय वन जाते हैं। परंतु जिनके लिए हम राज्य, भोग और सुख चाहते हैं, वे ही हमारे शत्रु बन युद्धमें उपस्थित हैं। वे हमारा वध करनेको तैयार हैं, पर हमारे साथ मिल-जुलकर राज्य और

सुखका उपभोग करनेके लिए तैयार नही। वे भले ही मेरा वध करें, पर मैं कभी इनका वध न कर सकूंगा। इनकी हत्यासे यदि मुझे तीनो लोकोंका राज्य मिले तो भी मैं यह काम नही कर सकूंगा, पृथ्वीका असपत्न साम्राज्य खाक ही तो है! स्थूलदर्शी लोग—

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

और—

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

इन उक्तियोसे मोहित हो कहते हैं, "वाह, कितना महान्, उदार, नि:स्वार्थ और प्रेममय भाव है अर्जुनका! रक्तसे सने भोग और सुखकी अपेक्षा उन्हें पराजय, मरण और चिरदुःख पसंद है।" परतु, यदि अर्जुनके मनोभावकी परीक्षा करें तो पता लगेगा कि अर्जुनका भाव अत्यत क्षुद्र, दुर्बलतासूचक और क्लीवोचित है। कुलके हितके लिए या प्रियजनोंके प्रेमवश, 'कृपा'के वशीभूत हो और रक्तपातके भयसे व्यक्तिगत स्वार्थका त्याग अनार्यके लिए महत् उदार भाव हो सकता है, आर्यके लिए तो वह मध्यम कोटिका है, धर्म और भगवत्प्रीतिके लिए स्वार्थ-त्याग करना ही है उत्तम भाव। दूसरी ओर, कुलके हितके लिए, प्रियजनोंके प्रेमके कारण, 'कृपा'के वश हो, रक्तपातके भयसे धर्मका परित्याग अधम भाव है। धर्म और भगवत्प्रीतिके लिए स्नेह, 'कृपा' और भयका दमन करना ही है यथार्थ आर्य-भाव। अपने इस क्षुद्र भावके समर्थनके लिए अर्जुन स्वजनोकी हत्याका पाप दिखाकर पुनः बोले, "कौरवोका वध करनेसे हमें कौन-सा सुख, कौन-सी मनस्तुष्टि मिल सकती है? वे हमारे बधु-बांधव हैं, आत्मीय-स्वजन हैं, वे अन्याय और हमारे साथ शत्रुता करते हैं, हमारा राज्य छीनते हैं और सत्यका गला घोटते हैं, फिर भी उनके वधसे हमें पाप ही लगेगा, सुख नही मिलेगा।" अर्जुन यह भूल गये थे कि वे धर्मयुद्धमें उतरे हैं, श्रीकृष्णने उन्हें उनके अपने या युधिष्ठिरके सुखके लिए, कौरवोंके वधके लिए नियुक्त नही किया था, बल्कि धर्म-स्थापना, अधर्म-नाश, क्षत्रियधर्म-पालन, भारतमें धर्म-प्रतिष्ठित एक महान् साम्राज्यकी स्थापना ही था इस युद्धका उद्देश्य। समस्त सुखको तिलाजलि दे आजीवन दु:ख और यत्रणा सहकर भी इस उद्देश्यको सिद्ध करना था अर्जुनका कर्तव्य।

परतु अपनी दुर्वलताके समर्थनमें अर्जुनने एक और उच्चतर युक्ति ढूंढ निकाली, इस युद्धमें कुलनाश और जातिनाश होगा इसलिए यह युद्ध धर्मयुद्ध नही, अधर्मयुद्ध है। इस भ्रातृहत्यासे मित्रद्रोह, अर्थात् जो स्वभावसे अनुकूल और सहायक है उनका अनिष्ट करना होगा, और फिर अपने कुलका, अर्थात् जिस कुरु-नामक क्षत्रियवश और जातिमे दोनो पक्षोका जन्म हुआ है, विनाश होगा। प्राचीन कालमें जातियाँ प्राय. ही रक्त-सवधपर प्रतिष्ठित थी। एक वडा कुल वढता-वढता जातिमें परिणत हो जाता था, भारतजातिके अतर्गत कुल-विशेष, जैसे भोजवश, कुरुवंश आदि, एक-एक वलशाली जाति वन गये थे। कुलके अतर्विरोध और पारस्परिक अनिष्ट-वृत्तिको ही अर्जुनने मित्रद्रोह कहा। एक तो यह मित्रद्रोह नैतिक दृष्टिसे महापाप है, तिसपर अर्थनीतिक दृष्टिसे इस मित्रद्रोहमें एक महान् दोष यह है कि कुलक्षय इसका अवश्यभावी फल है। सनातन कुलधर्मका सम्यक् पालन कुलकी उन्नति और अवस्थितिका कारण है, गृहस्थ जीवन और राजनीतिक क्षेत्रमें पितृगण जिस महत् आदर्श और क्रमश्रृखलाकी स्थापना और रक्षा करते आ रहे हैं, उस आदर्शके ह्रास या श्रृंखलाके शिथिल होनेसे कुलका अध.पतन होता है। जवतक कुल सौभाग्यवान् और वलशाली वना रहता है, तभीतक यह आदर्श और क्रमश्रृखला सुरक्षित रहती है, कुलके क्षीण या दुर्वल हो जानेसे, तमोभाव वढ जानेसे इस महान् धर्ममें शिथिलता आ जाती है, फलस्वरूप अराजकता, दुर्नीति आदि दोष कुलमें घुस जाते है, कुलकी महिलाएँ दुश्चरित्रा हो जाती है और कुलकी पवित्रता नष्ट हो जाती है, नीच जाति और नीच चरित्रवालोंके सहवाससे महान् कुलमें वर्णसंकर होता है। इस प्रकार पितरोकी प्रकृत सतति नष्ट होनेसे कुलनाशकोको नरककी प्राप्ति होती है तथा अधर्मके फैलनेसे वर्ण-सकरसंभूत नैतिक अधोगति और नीच गुणोंके वढ जानेसे एवं अराजकता आदि दोषोंके घुस आनेसे सारा कुल ही विनष्ट होता है और नरकमें जाता है। कुलनाशसे जातिधर्म और कुलधर्म दोनो ही नष्ट हो जाते है। जाति-धर्मका अर्थ है समस्त कुलसमष्टिसे वनी महान् जातिका परपरागत सनातन आदर्श और क्रमश्रृखला। इसके बाद अर्जुन एक वार फिर अपने प्रथम सिद्धात और कर्तव्य-धर्म-विषयक अपने निश्चयको जना युद्धके समय ही गांडीव त्याग रथमें बैठ गये। कविने इस अध्यायके अतिम

श्लोकमें इशारेसे यह दिखाया है कि शोकसे बुद्धि-भ्रम होनेके कारण अर्जुनने इस प्रकार क्षत्रियके लिए अनुचित और अनार्योचित आचरण करनेका सकल्प किया था।

विद्या और अविद्या

अर्जुनकी कुलनाशविषयक बातमे हमे एक अत्यत विशाल और उन्नत भावकी छाया दिखायी देती है, इस भावके साथ जो गुरुतर प्रश्न जुडा हुआ है उसकी आलोचना करना गीताके व्याख्याकारके लिए है अत्यत आवश्यक। और अगर हम गीताका केवल आध्यात्मिक अर्थ ही खोजें, अपने जातीय, गृहस्थ-सबधी और व्यक्तिगत सासारिक कर्म और आदर्शसे गीतोक्त धर्मका सपूर्ण विच्छेद करें तो उस भाव और उस प्रश्नका महत्त्व और प्रयोजनीयता अस्वीकृत हो जाती है और गीतोक्त धर्मका सर्वव्यापी विस्तार संकुचित हो जाता है। शकर आदि जिन लोगोने गीताकी व्याख्या की है वे थे संसारत्यागी, दार्शनिक, अध्यात्मविद्यापरायण ज्ञानी अथवा भक्त, गीतामें अपने लिए आवश्यक ज्ञान और भावको खोजकर, प्रयोजनीयको प्राप्तकर वे सतुष्ट हो गये। जो एक साथ ही ज्ञानी, भक्त और कर्मी हैं वे ही हैं गीताकी गूढतम शिक्षाके अधिकारी। गीताके वक्ता श्रीकृष्ण ज्ञानी और कर्मी थे, गीताके पात्र अर्जुन भक्त और कर्मी थे, उनके ज्ञान-चक्षु-उन्मीलनके लिए कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णने यह शिक्षा प्रतिपादित की। एक महान् राजनीतिक संघर्ष था गीतोपदेशका कारण, उस सघर्षमे अर्जुनको एक महान् राजनीतिक उद्देश्यकी सिद्धिके यत्र और निमित्तके रूपमें युद्धमें प्रवृत्त करना था गीताका उद्देश्य, युद्धक्षेत्र ही था शिक्षाका स्थल। श्रीकृष्ण थे श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ और योद्धा, धर्मराज्य-संस्थापन था उनके जीवनका प्रधान उद्देश्य, अर्जुन भी थे क्षत्रिय राजकुमार, राजनीति और युद्ध थे उनके स्वभावनियत कर्म। फिर भला गीताके उद्देश्यको, गीताके वक्ता, पात्र और उसके कारणको अलग कर गीताकी व्याख्या करनेसे कैसे काम चल सकता है?

मानव-जगत्के पांच मुख्य आधार चिरकालसे विद्यमान हैं—व्यक्ति, परिवार, वंश, जाति और मानवसमष्टि। धर्म भी इन्ही पांच आधारोपर

प्रतिष्ठित है। धर्मका उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। भगवत्प्राप्तिके दो मार्ग हैं—विद्याको आयत्त करना और अविद्याको भी आयत्त करना; दोनो ही है आत्म-ज्ञान और भगवद्दर्शनके साधन। विद्याका मार्ग है ब्रह्मकी अभिव्यक्ति-रूप अविद्यामय प्रपंचका परित्याग कर सच्चिदानंदकी प्राप्ति या परब्रह्ममें लय। अविद्याका मार्ग है सर्वत्र आत्मा और भगवान्‌के दर्शन कर ज्ञानमय, मगलमय, शक्तिमय परमेश्वरको बंधु, प्रभु, गुरु, पिता, माता, पुत्र, कन्या, दास, प्रेमी, पति और पत्नी रूपमें प्राप्त करना। शांति है विद्याका उद्देश्य और प्रेम अविद्याका। परंतु भगवान्‌की प्रकृति है विद्या-अविद्यामयी। अगर हम विद्याके मार्गका ही अनुसरण करें तो हम विद्यामय ब्रह्मको प्राप्त करेंगे, यदि केवल अविद्याके मार्गका अनुसरण करें तो अविद्यामय ब्रह्मको। जो विद्या और अविद्या दोनोंको ही आयत्त कर सकते हैं वे ही पूर्णतया वासुदेवको प्राप्त करते हैं; वे विद्या और अविद्याके परे है। जो विद्याके अंतिम लक्ष्यतक पहुँच जाते हैं वे विद्याकी सहायतासे अविद्याको आयत्त करते है। ईशोपनिषद्‌में यह महान् सत्य अत्यंत स्पष्टतया व्यक्त किया गया है। जैसे—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

"जो अविद्याके उपासक हैं वे अंध अज्ञानरूप तममें प्रवेश करते है...। जिन धीर ज्ञानियोने हमें ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा दी है, उनके मुंहसे सुना है कि विद्याका भी फल होता है और अविद्याका भी, वे दोनों फल भिन्न-भिन्न हैं। जो विद्या और अविद्या दोनोको अपने ज्ञानमें अधिकृत कर पाये हैं वे ही अविद्याद्वारा मृत्युको अतिक्रम कर विद्याद्वारा अमृतमय पुरुपोत्तमके आनंदका उपभोग करते है।"

समस्त मानवजाति अविद्याका भोग करती हुई विद्याकी ओर अग्रसर हो रही है, यही है वास्तविक क्रमविकास। जो श्रेष्ठ, साधक, योगी, ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगी हैं वे हैं इस महान् अभियानके अग्रगामी सैनिक, दूर-

स्थित गन्तव्य स्थानपर क्षिप्र गतिसे पहुँच लौट आते हैं और मनुष्यजातिको सुसंवाद सुनाते हैं, पथ-प्रदर्शन करते हैं, शक्ति वितरण करते हैं। भगवान्के अवतार और विभूतियाँ आकर पथ सुगम बनाते हैं, अनुकूल अवस्था उत्पन्न करते हैं और बाधाएँ दूर करते हैं। अविद्यामें विद्या, भोगमें त्याग, संसारमें सन्यास, आत्मामें सर्वभूत, सर्वभूतमें आत्मा, भगवान्में जगत्, जगत्में भगवान्—यही उपलब्धि है असली ज्ञान, यही है मानवजातिका गंतव्य स्थानकी ओर जानेका निर्दिष्ट पथ। आत्मज्ञानकी सकीर्णता है उन्नतिकी प्रधान बाधा, देहात्मक बोध और स्वार्थबोध हैं उस सकीर्णताके मूल कारण, अतएव दूसरेको आत्मवत् देखना है उन्नतिका प्रथम सोपान। मनुष्य पहले अपने व्यक्ति-भावमें व्यस्त रहता है अपनी व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक उन्नति, भोग और शक्तिके विकासमें रत रहता है, मैं देह हूँ, मैं मन हूँ, मैं प्राण हूँ, देहका बल, सुख और सौंदर्य, मनकी क्षिप्रता, आनद और स्वच्छता, प्राणका तेज, भोग और प्रफुल्लता है जीवनके उद्देश्य और उन्नतिकी चरमावस्था—यही है मनुष्यका पहला या आसुरिक ज्ञान। इसकी भी आवश्यकता है; देह, मन और प्राणका विकास और परिपूर्णता साधित कर उस पूर्णविकसित शक्तिको दूसरोकी सेवामें प्रयुक्त करना उचित है। इसीलिए आसुरिक शक्तिका विकास है मानवजातिकी सभ्यताकी प्रथम अवस्था, पशु, यक्ष, राक्षस, असुर, पिशाचतक मनुष्यके मनमें, कर्ममे, चरित्रमें लीला करते और पनपते हैं। उसके बाद मनुष्य आत्मज्ञानका विस्तार कर दूसरोको आत्मवत् देखना आरभ करता है, परार्थमें स्वार्थको डुबा देना सीखता है। पहले परिवारको ही आत्मवत् देखता है, स्त्री-पुत्रकी प्राणरक्षाके लिए प्राण त्यागता है, स्त्री-संतानके सुखके लिए अपने सुखको तिलांजलि देता है। इसके बाद वंश या कुलको आत्मवत् देखता है, कुलरक्षाके लिए प्राण त्यागता है, स्वय अपनी, अपनी स्त्री और सतानकी बलि चढाता है, कुलके सुख, गौरव और वृद्धिके लिए अपने और स्त्री-पुत्रके सुखको तिलांजलि देता है। फिर जातिको आत्मवत् देखता है, जातिरक्षाके लिए प्राण त्यागता है, अपनी, स्त्री, संतति और कुलकी बलि चढाता है,—जैसे चित्तौडके राजपूत कुलने सारी राजपूत जातिकी रक्षाके लिए बार-बार स्वेच्छासे अपना बलिदान किया था,—जातिके सुख और गौरवकी वृद्धिके लिए अपने, स्त्री-सतानके कुलके सुख और गौरवकी वृद्धिको तिलाजलि देता है। उसके बाद समस्त मानवजातिको आत्मवत् देखता है, मानवजातिकी उन्नतिके लिए प्राण त्यागता है, अपनी, स्त्री-संतानकी, कुलकी, जातिकी बलि देता है—मानव-जातिके सुख और गौरव-वृद्धिके

लिए अपने, स्त्री-सतानके, कुलके सुख और गौरव-वृद्धिको तिलाजलि देता है। इस तरह दूसरेको आत्मवत् देखता, दूसरेके लिए अपनी और अपने सुखकी बलि दे देना है बौद्धधर्म और बौद्धधर्मप्रसूत ईसाई-धर्मकी प्रधान शिक्षा। यूरोपकी नैतिक उन्नति इसी पथसे आगे बढी है। पुरा-कालीन यूरोपियनोने व्यक्तिको परिवारमें, परिवारको कुलमें डुबा देना सीखा था, आधुनिक यूरोपियनोने कुलको जातिमें डुबा देना सीखा है, जातिको मनुष्य-समष्टिमें डुबा देना अभी उनके लिए कठिन आदर्श माना जाता है, टाल्सटाय इत्यादि मनीषिगण तथा सोशलिस्ट (समाजवादी), एनार्किस्ट (अराजकतावादी) इत्यादि नवीन आदर्शोके अनुमोदक दल इसी आदर्शको कार्यमें परिणत करनेके लिए उत्सुक हैं। यूरोपकी दौड यहीतक। वे है अविद्याके उपासक, प्रकृत विद्यासे अवगत नही—**अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।**

भारतमें मनीषियोने विद्या और अविद्या, दोनोको ही आयत्त किया है। वे जानते हैं कि अविद्याके पाँच आधारोके अतिरिक्त विद्या और अविद्या दोनोंके आधार भगवान् है, उनको जाने बिना अविद्या भी नही जानी जाती, आयत्त नही होती। अतएव केवल दूसरेको आत्मवत् न देख, उन्होने **आत्मवत् परदेहेषु** अर्थात् अपने अन्दर और दूसरोंके अन्दर समान भावसे भगवान्को देखा है। हम अपना उत्कर्ष करेंगे, हमारे उत्कर्षसे परिवारका उत्कर्ष होगा, परिवारका उत्कर्ष करेंगे, परिवारके उत्कर्षसे कुलका उत्कर्ष होगा; जातिका उत्कर्ष करेंगे, जातिके उत्कर्षसे मानव-जातिका उत्कर्ष होगा—यही ज्ञान है आर्योकी सामाजिक व्यवस्था और आर्य-शिक्षाके मूलमें निहित। व्यक्तिगत त्याग है आर्यका मज्जागत अभ्यास : परिवारके लिए त्याग, कुलके लिए त्याग, समाजके लिए त्याग, मानवजातिके लिए त्याग, भगवान्के लिए त्याग। हमारी शिक्षामे जो दोष या कमी दिखायी देती है वह कुछ एक ऐतिहासिक कारणोका फल है; जैसे, जातिको समाजके अदर देखना, समाजके हितमें व्यक्ति और परिवारका हित डुबा देना, परतु जातिके राजनीतिक जीवनका विकास करना हमारे धर्ममें मुख्य अगके रूपमें स्वीकृत नहीं था। पश्चिमसे इस शिक्षाकी आमदनी करनी पडी है। किंतु हमारी भी प्राचीन शिक्षामें, महाभारतमें, गीतामें, राजपूतानेके इतिहासमे, रामदासके दासबोधमे हमारे अपने देशमें ही यह शिक्षा विद्यमान थी। विद्याकी अत्यधिक उपासनाके कारण, अविद्याके भयसे हम उस शिक्षाका विकास न कर सके और उसी दोषवश तमोभिभूत हो, जातिधर्मसे च्युत हो कठिन दासत्व, दुःख और

अज्ञानमें जा पड़े, अविद्याको भी आयत्त नही कर सके और विद्याको भी खो बैठे। **ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।**

श्रीकृष्णका राजनीतिक उद्देश्य

मानव-समाजके क्रमिक विकासमें कुल और राष्ट्र भिन्न-भिन्न हैं, प्राचीन कालमें भारत तथा अन्य देशोंमें भी यह भिन्नता इतनी परिस्फुट नहीं हुई थी। कुछ एक बडे-बडे कुलोंके समावेशसे एक राष्ट्र तैयार हो जाता था। ये भिन्न-भिन्न कुल या तो एक ही पूर्वपुरुषके वंशधर होते थे या भिन्न वंशजात होनेपर भी प्रीति-संबध स्थापित करनेके कारण एक ही वंशके माने जाते थे। समस्त भारत एक वडा राष्ट्र नही वन सका, किंतु जो वड़ी-वड़ी जातियाँ सारे देशमें फैली हुई थी उनमें एक ही सभ्यता, एक ही धर्म, एक ही संस्कृत भाषा एवं विवाह आदि संबंध प्रचलित थे। तथापि प्राचीन कालसे एकत्वकी चेष्टा होती आ रही थी, कभी कुरु, कभी पांचाल, कभी कोशल, कभी मगध-जाति देशका नेता या सार्वभौम राजा वनकर साम्राज्य करती थी, किंतु प्राचीन कुलधर्म और कुलकी स्वाधीनता-प्रियता एकत्वके लिए ऐसी प्रवल वाधा उत्पन्न करते थे कि वह चेष्टा कभी चिरकालतक नही टिक पायी। भारतमें यह एकत्वकी चेष्टा, असपत्न साम्राज्यकी चेष्टा पुण्यकर्म तथा राजाके कर्तव्य कर्मके अंतर्गत थी। इस एकत्वकी धारा इतनी प्रवल हो गयी थी कि चेदिराज शिशुपाल-जैसे तेजस्वी और दुर्दांत क्षत्रिय भी युधिष्ठिरके साम्राज्य-संस्थापनको पुण्य-कर्म मान सहयोग देनेके लिए सम्मत हो गये थे। ऐसा एकत्व, साम्राज्य या धर्मराज्य स्थापित करना था श्रीकृष्णका राजनीतिक उद्देश्य। मगध-राज जरासन्धने इससे पहले ऐसी चेष्टा की थी, किंतु उनकी शक्ति अधर्म और अत्याचारपर प्रतिष्ठित थी, अतः उसे क्षणस्थायी समझ श्रीकृष्णने भीमके हाथो उनका वध करवा वह चेष्टा विफल की। श्रीकृष्णके कार्यमे सवसे प्रधान वाधक था गर्वित और तेजस्वी कुरुवंश। कुरुजाति वहुत दिनोंसे भारतकी नेतृस्थानीया जाति थी, अंग्रेजीमें जिसे कहते है hegemony अर्थात् वहुत-सी एक समान स्वाधीन जातियोंके वीच प्रधानत्व और नेतृत्व, कुरुजातिका उसपर पुरुषपरंपरागत अधिकार था। श्रीकृष्ण यह जानते

थे कि जबतक इस जातिका बल और गर्व अक्षुण्ण रहेगा तबतक भारतमें कभी एकत्व स्थापित नही होगा। अतः उन्होने कुरुजातिका ध्वस करनेका सकल्प किया। किंतु श्रीकृष्ण यह नही भूले कि भारतके साम्राज्यपर कुरुजातिका परंपरागत अधिकार है; जो धर्मतः किसीका प्राप्य है उससे उसे वचित करना है अधर्म, इसलिए न्यायतः जो कुरुजातिके राजा और प्रधान थे, उन्ही युधिष्ठिरको उन्होने भावी साम्राट् पदके लिए मनोनीत किया। श्रीकृष्णने, परम धार्मिक और समर्थ होनेपर भी, स्नेहवश अपने प्रिय यादव-कुलको कुरुजातिके स्थानपर बैठानेकी चेष्टा नहीं की, पाडवोमें ज्येष्ठ युधिष्ठिरकी अवहेलना कर अपने प्रियतम सखा अर्जुनको उस पदपर नियुक्त नहीं किया। परंतु केवल उम्र या पूर्वाधिकार देखनेसे अनिष्टकी संभावना रहती है, गुण और सामर्थ्य भी देखनी होती हैं। राजा युधिष्ठिर यदि अधार्मिक, अत्याचारी या अशक्त होते तो फिर श्रीकृष्ण दूसरा पात्र खोजनेके लिए बाध्य होते। युधिष्ठिर जैसे वंशक्रम, न्याय्य अधिकार और देशके पूर्वप्रचलित नियमानुसार सम्राट् होनेके उपयुक्त थे, वैसे ही वह गुणमें भी थे उस पदके यथार्थ अधिकारी। उनसे कही अधिक तेजस्वी और प्रतिभावान् थे बड़े-बडे वीर राजा, किंतु केवल बल और प्रतिभासे ही कोई राज्यका अधिकारी नही हो जाता। राजाको धर्मरक्षा करनी होती है, प्रजारंजन करना होता है, देशरक्षा करनी होती है। प्रथम दो गुणोमें युधिष्ठिर थे अतुलनीय, वे थे धर्मपुत्र, दयावान् न्यायपरायण, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यकर्मा और प्रजाको अत्यन्त प्रिय। शेषोक्त आवश्यक गुणमें जो उनकी न्यूनता थी उसे उनके दो वीर भाई भीम और अर्जुन पूरा करनेमें समर्थ थे। समकालीन भारतमें पंचपाडवोंके समान पराक्रमी राजा या वीर पुरुष कोई नही था। अतएव जरासन्ध-वधद्वारा कण्टक दूर कर श्रीकृष्णके परामर्शसे राजा युधिष्ठिरने देशकी प्राचीन-प्रणालीका अनुसरण कर राजसूय यज्ञ किया और देशके सम्राट् बने।

श्रीकृष्ण थे धार्मिक और राजनीतिविशारद। यदि देशके धर्म, देशकी प्रणाली, देशके सामाजिक नियम-अनुसार कार्य करनेसे उनके महत् उद्देश्यकी सिद्धिकी संभावना हो तो फिर उस धर्मकी हानि, उस प्रणालीके विरुद्ध आचरण, उस नियमका भंग भला क्यो करेंगे? बिना कारण इस प्रकारका राष्ट्रविप्लव और समाजविप्लव करना देशके लिए अहितकर होता है। इसी कारण पहले पुरानी प्रणालीकी रक्षा करते हुए अपनी उद्देश्य-सिद्धिके लिए सचेष्ट हुए। किंतु देशकी पुरानी प्रणालीमें यह दोष था कि उससे प्रयास सफल होनेपर भी उस फलके स्थायी होनेकी संभावना बहुत कम

थी। जिनके पास सामरिक वल अधिक था वे राजसूय यज्ञ कर सम्राट् तो वन सकते थे, पर उनके वशधरोके तेजहीन होते ही वह मुकुट उनके मस्तकसे स्वतः गिर पड़ता था। जो तेजस्वी वीर जातियाँ पिता या पितामहके वशमें हुई थी वे भला अव विजयीके पुत्र या पौत्रकी अधीनता क्यो स्वीकार करती? वंशगत अधिकार नहीं, राजसूय यज्ञ अर्थात् असाधारण बलवीर्य था उस साम्राज्यका मूल, जिनमें अधिक बलवीर्य होता वे ही यज्ञ कर सम्राट् वन जाते थे। अतएव साम्राज्यके स्थायी होनेकी कोई आशा नही रहती थी, थोड़े समयके लिए प्रधानता या hegemony ही हो सकती थी। इस प्रथामें और एक दोष यह था कि नये-नये सम्राटोंके अकस्मात् वलशाली और सर्वप्रधान हो जानेसे देशके वलाभिमानी, असहिष्णु, तेजस्वी क्षत्रियोंके हृदयमें ईर्ष्या-वह्नि प्रज्वलित हो उठती थी; उनके मनमे सहज ही इस विचारके उठनेकी संभावना थी कि ये प्रधान क्यो होगे, हम क्यो नही। युधिष्ठिरके अपने कुलके क्षत्रिय इसी ईर्ष्यासे उनके विरोधी हुए थे, उनके पितृव्यकी सतानोने इसी ईर्ष्याका सहारा ले वडी चतुराईके साथ उन्हें पदच्युत और निर्वासित किया था। देशकी प्रणालीका दोष थोड़े ही दिनोमें प्रकट हो गया।

श्रीकृष्ण जैसे धार्मिक थे वैसे ही राजनीतिज्ञ भी। वे कभी सदोष, अहितकर या समयके लिए अनुपयोगी प्रणाली, उपाय या नियमको बदलनेमें आगा-पीछा नही करते थे। वे अपने युगके थे प्रधान विप्लवी। राजा भूरिश्रवाने श्रीकृष्णकी भर्त्सना करते समय समकालीन प्राचीन मतावलवी वहुत-से भारतवासियोका आक्रोश प्रकट करते हुए कहा, कृष्ण और कृष्ण-चालित यादवकुल कभी भी धर्मके विरुद्ध आचरण करनेमें या धर्मको विकृत करनेमें कुण्ठित नही होता, जो कृष्णके परामर्शसे कार्य करेगा वह निश्चय ही अविलम्व पापके गर्तमें गिरेगा। कारण, पुरातन रीतिमें आसक्त रक्षणशील पुरुषोंके मतानुसार नूतन प्रयास ही है पाप। श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके पतनसे समझ गये—समझ क्यो गये, वह तो भगवान् थे, पहलेसे ही जानते थे—कि द्वापरयुगके लिए उपयोगी प्रथा कलिमें कभी भी रक्षणीय नही। अतएव उन्होंने फिर वैसी चेष्टा नही की, कलिके लिए उचित भेददण्ड-प्रधान राजनीतिका अनुसरण कर, गर्वित, दृप्त क्षत्रिय-जातिका वल नष्ट कर भावी साम्राज्यको निष्कण्टक वनानेकी चेष्टा की। उन्होने कुरुओंके पुराने समकक्ष शत्रु पांचाल जातिको कुरुवंशका ध्वस करनेमें प्रवृत्त किया, जितनी जातियाँ कुरुओंके प्रति विद्वेष होनेके कारण, युधिष्ठिरके प्रेमद्वारा या धर्मराज्य और एकत्वकी आकाक्षासे आकृष्ट हो सकती थी, उन सवको

उस पक्षमें खींच लाये और युद्धकी तैयारी कराने लगे। सन्धिकी जो चेष्टा की गयी थी उसमें श्रीकृष्णका विश्वास नही था, वे जानते थे कि सन्धिकी कोई संभावना नही, सन्धि होनेपर भी वह स्थायी नही हो सकती, फिर भी धर्मके लिए और राजनीतिके लिए उन्होने सन्धिकी चेष्टा की। इसमें सदेह नही कि कुरुक्षेत्र-युद्ध था श्रीकृष्णकी राजनीतिका फल और कुरुध्वंस, क्षत्रियध्वंस और निष्कण्टक साम्राज्य और भारतका एकत्वसंस्थापन था उनका उद्देश्य। धर्मराज्यकी स्थापनाके लिए जो युद्ध होता है वही है धर्मयुद्ध, उसी धर्मयुद्धके ईश्वरनिर्दिष्ट विजेता, दिव्यशक्ति प्रणोदित महारथी थे अर्जुन। अर्जुनके अस्त्रत्याग करनेसे तो श्रीकृष्णका सारा राजनीतिक प्रयास ही नष्ट हो जाता, भारतमें एकता स्थापित न होती और देशके भावी जीवनमें अविलंब घोर कुफल फलता।

भ्रातृवध और कुलनाश

अर्जुनकी सारी युक्ति कुलके हितको सामने रखकर प्रयुक्त हुई थी, स्नेहवश जातिके हितका विचार उनके मनसे अपसारित हो गया था। वे कुरुवंशके हितका विचार करते हुए भारतका हित भूल गए थे, अधर्मके भयसे धर्मको तिलांजलि देनेके लिए कटिबद्ध हो उठे थे। यह बात सभी जानते हैं कि स्वार्थके लिए भ्रातृवध करना महापाप है, परंतु भ्रातृप्रेमके वशीभूत हो जातिका अनर्थ करनेमें सहायक होना, जातिके हितसाधनसे मुंह मोड़ना है उससे भी बड़ा पाप। अर्जुन यदि शस्त्रत्याग करते तो अधर्मकी जीत होती, दुर्योधन भारतके प्रधान राजा और सारे देशके नेता बन अपने बुरे दृष्टान्तसे राष्ट्रीय चरित्र और क्षत्रियकुलका आचरण कलुषित कर देते, भारतके सारे प्रबल, पराक्रमी कुल स्वार्थ, ईर्ष्या और विरोधप्रियताकी प्रेरणासे एक-दूसरेका विनाश करनेके लिए तत्पर होते, देशको एकत्रित, नियन्त्रित और सारी शक्तिको एकत्रित कर उसकी रक्षा करनेवाली कोई असपत्न धर्मप्रणोदित राजशक्ति न रह जाती, ऐसी अवस्थामें जो विदेशी आक्रमण उस समय भी रुद्ध समुद्रकी तरह भारतपर टूट परिप्लावित करनेके लिए तैयार हो रहा था, वह असमयमें ही आ आर्य-सभ्यताको नष्ट कर इस जगत्के भावी हितकी आशाको ही निर्मूल कर देता। श्रीकृष्ण

और अर्जुनद्वारा प्रतिष्ठित साम्राज्यका नाश होनेके दो हजार वर्ष बाद भारतमें जो राजनीतिक उत्पात आरंभ हुआ था, वह उसी समय आरंभ हो गया होता।

लोग कहते हैं कि अर्जुनने जिस अनिष्टके भयसे यह आपत्ति उठायी थी, कुरुक्षेत्र-युद्धके फलस्वरूप ठीक वही अनिष्ट फला। भ्रातृवध, कुलनाश और यहाँतक कि राष्ट्रनाश भी कुरुक्षेत्रके युद्धके फल थे। कुरुक्षेत्र-युद्ध कलिके आरंभका कारण बना। इस युद्धमें भीषण भ्रातृवध हुआ था यह सच है। प्रश्न यह है कि अन्य किस उपायसे श्रीकृष्णका महान् उद्देश्य सिद्ध होता? इसीलिए तो श्रीकृष्णने संधि-प्रार्थनाकी विफलताको जानते हुए भी संधि करनेके लिए काफी प्रयास किया था, यहाँतक कि पाँच गाँव ही मिल जानेपर युधिष्ठिर युद्ध न करते, पैर रखनेके लिए उतना-सा ही स्थान पा जानेपर श्रीकृष्ण धर्मराज्यकी स्थापना कर लेते। किंतु दुर्योधनका दृढ़ निश्चय था कि बिना युद्ध वे सूच्यग्र भूमि भी नहीं देंगे। जब सारे देशका भविष्य युद्धके फलपर निर्भर होता है तब उस युद्धमें भ्रातृवध होगा इस कारण महत्कर्मसे विरत होना है अधर्म। परिवारका हित राष्ट्रके हितमें, जगत्‌के हितमें डुबा देना होता है; भ्रातृस्नेहसे, पारिवारिक प्रेमके मोहसे कोटि-कोटि लोगोंका सर्वनाश नहीं किया जा सकता, कोटि-कोटि मनुष्योंके भावी सुख या दुःखमोचनको विनष्ट नहीं किया जा सकता, उससे व्यक्ति और कुलको नरकप्राप्ति होती है।

कुरुक्षेत्र-युद्धसे कुलनाश हुआ था—यह बात भी सच है। इस युद्धके फलस्वरूप महाप्रतापी कुरुवंश एक तरहसे लुप्त हो गया। किंतु कुरुजातिके लोप होनेसे यदि समस्त भारतकी रक्षा हुई है तो कुरुध्वससे हानि नहीं, लाभ ही हुआ है। जैसे पारिवारिक प्रेमकी माया होती है वैसे ही कुलकी भी। देशभाईको हम कुछ नहीं कहेंगे, देशवासीका विरोध नहीं करेंगे, अनिष्ट करनेपर भी, आततायी होनेपर भी, देशका सर्वनाश करनेपर भी वे हमारे भाई हैं, स्नेहके पात्र हैं, चुपचाप सह लेंगे—हमारे अंदर यह जो वैष्णवी-मायाप्रसूत अधर्म धर्मका स्वांग रच बहुतोंकी बुद्धि भ्रष्ट करता है वह इस कुलकी मायाके मोहसे उत्पन्न होता है। बिना कारण या स्वार्थके लिए, नितांत प्रयोजन या आवश्यकताके अभावमें देशभाईका विरोध और उससे कलह करना है अधर्म। किंतु जो देशभाई सबकी माँको जानसे मार डालनेके लिए या उसका अनिष्ट करनेके लिए कटिबद्ध है उसका अत्याचार चुपचाप सहन कर उस मातृहत्या या अनिष्टाचरणको प्रश्रय देना घोरतर पातक है। शिवाजी जब मुसलमानोंके पृष्ठपोषक

देशभाइयोका सहार करने गये तब यदि उनसे कोई कहता कि अहा! क्या करते हो, ये देशभाई हैं, चुपचाप सहो, मुगल महाराष्ट्र-देशको अधिकृत करते है तो करें, मराठे-मराठेके बीच प्रेम बना रहना ही पर्याप्त है, तो क्या यह बात नितान्त हास्यजनक न लगती? अमेरिकनोने जब दासप्रथाको उठानेके लिए देशमें विरोध और गृहयुद्ध भड़का हजारो देशभाइयोका प्राणसंहार किया था तब क्या उन्होंने कोई कुकर्म किया था? बहुत बार देशभाइयोका विरोध करना, देशभाइयोका युद्धमें वध करना राष्ट्रके हित और जगत्‌के हितका एकमात्र उपाय होता है। इससे यदि कुलनाशकी आशका हो तो भी राष्ट्रके हित और जगत्‌के हितसाधनसे मुंह नही मोड़ सकते। यदि उस कुलकी रक्षा करना राष्ट्रके हितके लिए आवश्यक हो तो निस्सदेह समस्या जटिल हो जाती है। महाभारतके युगमें भारतमें राष्ट्र प्रतिष्ठित नही हुआ था, सब कुलको ही मनुष्यजातिका केंद्र मानते थे। इसीलिए भीष्म, द्रोण आदिने, जो कि पुरातन विद्याके आकर थे, पाण्डवोंके विरुद्ध युद्ध किया था। उन्हें पता था कि धर्म पाण्डवोंके पक्षमें है, वे जानते थे कि महत् साम्राज्यकी स्थापनाके लिए समस्त भारतको एक केंद्रमें आबद्ध करनेकी आवश्यकता है। परतु वे यह भी समझते थे कि कुल ही है धर्मका आधार और राष्ट्रका केंद्र, कुलका नाश होनेपर धर्मरक्षा और राष्ट्रसंस्थापन करना असभव होगा। अर्जुन भी उसी भ्रममें पड़े थे। इस युगमें राष्ट्र ही है धर्मका आधार, मानव-समाजका केंद्र। राष्ट्र-रक्षा है इस युगका प्रधान धर्म, राष्ट्रका नाश है इस युगका अमार्जनीय महापातक। परतु ऐसा भी युग आ सकता है जब एक बृहत् मानवसमाज प्रतिष्ठित हो सकता है, हो सकता है कि उस समय जगत्‌के बड़े-बडे ज्ञानी और कर्मी राष्ट्रकी रक्षाके लिए युद्ध करें और दूसरे पक्षमें श्रीकृष्ण विप्लवी बन नया कुरुक्षेत्र-युद्ध संघटित कर जगत्‌का हित-साधन करें।

श्रीकृष्णकी राजनीतिका फल

पहले 'कृपा'के आवेशमें अर्जुनने कुलनाशकी बातपर अधिक जोर दिया था, क्योकि ऐसे बृहत् सैन्य-समावेशको देख कुलकी चिंता, राष्ट्रकी

चिंता स्वत. ही मनमें उठती है। पहले कह चुके हैं कि कुलकी हितचिंता तत्कालीन भारतवासियोंके लिए स्वाभाविक थी, जैसे राष्ट्रकी हितचिंता आधुनिक मनुष्यजातिके लिए स्वाभाविक है। किंतु क्या यह आशंका निर्मूल थी कि कुलका नाश होनेसे राष्ट्रका आधार नष्ट हो जायगा? बहुत-से लोग कहते हैं कि अर्जुनको जिस बातका भय था वास्तवमें वही हुआ, कुरुक्षेत्र युद्ध भारतकी अवनति और दीर्घकालव्यापी पराधीनताका मूल कारण है। तेजस्वी क्षत्रियवंशके लोपसे, क्षात्र तेजके ह्रासमे भारतका भारी अमंगल हुआ है। एक विख्यात विदेशी महिला, जिनके श्रीचरणोंमें बहुत-से हिन्दू आज शिष्य भावसे नतसिर हैं, यह कहनेमें भी कुण्ठित नही होती कि क्षत्रियोका नाश कर ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करनेका पथ सुगम करना ही था स्वयं भगवान्के अवतीर्ण होनेका वास्तविक उद्देश्य। हमारा ख्याल है कि जो ऐसी असबद्ध बातें कहते हैं वे इस विषयकी गहराईमें न जा अति नगण्य राजनीतिक तत्त्वके वशीभूत हो श्रीकृष्णकी राजनीतिका दोष दिखाते हैं। यह राजनीतिक तत्त्व है म्लेच्छ-विद्या, अनार्य चिंतन-प्रणाली-सभूत। अनार्यगण आसुरिक बलमें बलीयान् होते हैं, उसी बलको स्वाधीनता और राष्ट्रीय महत्त्वका एकमात्र आधार मानते हैं।

राष्ट्रीय महत्त्व केवल क्षात्र तेजपर ही प्रतिष्ठित नही हो सकता, चतुर्वर्णका चतुर्विध तेज ही है उस महत्त्वका आधार। सात्त्विक ब्रह्मतेज राजसिक क्षात्र तेजको ज्ञान, विनय तथा परहित-चिंतनकी मधुर संजीवनी सुधासे जीवित बनाये रखता है और क्षात्र तेज रक्षा करता है शात ब्रह्मतेजकी। क्षत्रतेजरहित ब्रह्मतेज तमोभावद्वारा आक्रांत हो शूद्रत्वके निकृष्ट गुणोको प्रश्रय देता है, इसीलिए जिस देशमें क्षत्रिय नही होते उस देशमें ब्राह्मणका रहना निषिद्ध है। यदि क्षत्रियवंशका लोप हो जाय तो नये क्षत्रियोंकी सृष्टि करना ब्राह्मणका प्रथम कर्तव्य है। ब्रह्मतेज-परित्यक्त क्षत्रतेज दुर्दान्त, उद्दाम आसुरिक बलमें परिणत हो पहले परहितका विनाश करनेकी चेष्टा करता है फिर अंतमें स्वय विनष्ट हो जाता है। रोमन कविने ठीक ही कहा है, असुर अपने ही बलातिरेकसे पतित हो समूल नष्ट हो जाते हैं। सत्त्व रजस्की सृष्टि करे, रज. सत्त्वकी रक्षा करे, सात्त्विक कार्यमें नियुक्त हो, तभी व्यक्तिकी और राष्ट्रकी रक्षा सभव है। सत्त्व यदि रजस्को ग्रस ले, रजस् यदि सत्त्वको ग्रस ले तो तमस्के प्रादुर्भावसे विजयी गुण स्वय पराजित हो जाते हैं, तमोगुणका राज्य फैल जाता है। ब्राह्मण कभी राजा नही हो सकता, क्षत्रियका नाश होनेपर शूद्र राजा होगा, ब्राह्मण तामसिक हो अर्थके लोभमें ज्ञानको विकृत कर शूद्रका दास बन

जायगा, आध्यात्मिक भाव निष्चेष्टताका पोषण करेगा, स्वय म्लान हो धर्मकी अवनतिका कारण बनेगा। निःक्षत्रिय शूद्रचालित राष्ट्रका दासत्व है अवश्यम्भावी। यही हुई है भारतकी अवस्था। दूसरी ओर आसुरिक बलके प्रभावसे क्षणिक उत्तेजनामें शक्तिका संचार तथा महत्त्वकी प्राप्ति तो हो सकती है पर शीघ्र ही दुर्बलता और ग्लानि आ जाती है, शक्ति-क्षयसे देश अवसन्न हो जाता है अथवा राजसिक विलास, दम्भ और स्वार्थकी वृद्धिसे राष्ट्र अनुपयुक्त हो अपनी महत्ताकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है या फिर अंतर्विरोध, दुर्नीति और अत्याचारसे देश छार-खार हो शत्रुके लिए सहजलभ्य शिकार बन जाता है। भारत और यूरोपके इतिहासमें इन सब परिणामोंके अनेको दृष्टांत मिलते हैं।

महाभारतके युगमें आसुरिक बलके भारसे पृथिवी डोल उठी थी। भारतमें उतने तेजस्वी, पराक्रमशाली, प्रचण्ड क्षत्रिय तेजका विस्तार न तो उससे पहले कभी हुआ था न उसके बाद ही कभी हुआ, पर उस भीषण बलका सदुपयोग होनेकी सभावना बहुत ही कम थी। जो उस बलके धारणकर्ता थे वे सभी आसुरिक प्रकृतिवाले थे—अहंकार, दर्प, स्वार्थ और स्वेच्छाचार उनकी रग-रगमें भरा था। यदि श्रीकृष्ण इस बलका नाश कर धर्मराज्य स्थापित न करते तो जिन तीन परिणामोका वर्णन किया है उनमेंसे एक-न-एक जरूर घटता। भारत असमयमें ही म्लेच्छोंके हाथ पड़ जाता। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि पाँच हजार वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र-युद्ध हुआ था। ढाई हजार वर्ष बीतनेके बाद म्लेच्छोका पहला सफल आक्रमण सिंध नदीके दूसरे पारतक पहुँच पाया था। अतएव अर्जुनद्वारा प्रतिष्ठित धर्मराज्यने इतने दिनोतक ब्रह्मतेज-अनुप्राणित क्षत्रतेजके प्रभावसे देशकी रक्षा की थी। उस समय भी सचित क्षात्र तेज देशमें इतना था कि उसके भग्नाशने ही और भी दो हजार वर्षोतक देशको बचाये रखा; चन्द्र-गुप्त, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, विक्रम, संग्रामसिंह, प्रताप, राजसिंह, प्रतापादित्य, शिवाजी इत्यादि महापुरुषोने उसी क्षात्र तेजके बलसे देशके दुर्भाग्यके साथ संग्राम किया। अभी, उसी दिन तो गुजरातके युद्धमें और लक्ष्मीबाईकी चितामें उसका अंतिम स्फुलिंग निर्वापित हुआ है। उस दिन श्रीकृष्णके राजनीतिक कार्यका सुफल और पुण्य क्षीण हो गया, भारतकी, जगत्की रक्षाके लिए फिरसे पूर्णावतारकी आवश्यकता हुई। वह अवतार फिरसे लुप्त ब्रह्मतेजको जगा गये, वही ब्रह्मतेज क्षात्र तेजकी सृष्टि करेगा। श्रीकृष्णने भारतके क्षात्र तेजको कुरुक्षेत्रके रक्तसमुद्रद्वारा निर्वापित नहीं किया था, वरन् आसुरिक बलका विनाश कर ब्रह्मतेज और क्षात्र तेज

दोनोंकी ही रक्षा की थी। उन्होने आसुरिक वलदृप्त क्षत्रियवंशके सहारसे उद्दाम रज.शक्तिको छिन्न-भिन्न कर दिया था—यह सत्य है। ऐसे महा-विप्लव, अन्तर्विरोधको दारुण दुःखभोगद्वारा क्षीण कर निगृहीत करना, उद्दाम क्षत्रियकुलका सहार करना सर्वदा अनिष्टकर नही होता। अतर्विरोधसे रोमन क्षत्रियकुलका नाश होनेसे और राजतंत्रकी स्थापनासे रोमका विराट् साम्राज्य अकाल ही कालकवलित होनेसे बच गया था। इगलैंडमें श्वेत और रक्त गुलाब-दलके अतर्विरोधद्वारा क्षत्रिय कुलका नाश होनेके कारण चौथे एडवर्ड, आठवें हेनरी और रानी एलिजावेथ सुरक्षित, पराक्रमशाली, विश्वविजयी आधुनिक इगलैडकी नीव स्थापित कर सके थे। कुरुक्षेत्र-युद्धसे भारतकी भी उसी तरह रक्षा हुई। इसे कोई अस्वीकार नही कर सकता कि कलियुगमें भारतकी अवनति हुई है। किंतु अवनति ले आनेके लिए भगवान् कभी अवतीर्ण नही होते। धर्मरक्षा, विश्वरक्षा, लोकरक्षाके लिए ही आते है अवतार। विशेषत. कलियुगमें ही भगवान् पूर्ण रूपमे अवतीर्ण होते हैं क्योकि कलिमे मनुष्यकी अवनतिका भय अधिक होता है, अधर्मकी वृद्धि स्वाभाविक होती है, अतएव मानवजातिकी रक्षाके लिए, अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापनाके लिए, कलिकी गतिको रोकनेके लिए इस युगमें बार-बार अवतार आते हैं। श्रीकृष्ण जब अवतीर्ण हुए थे तब कलिका राज्य आरभ होनेका समय हो गया था, उनके आविर्भावसे भयभीत हो कलि अपने राज्यमे पदार्पण नही कर सके थे, उन्हींके प्रसादसे परीक्षितने कलिको पाँच गाँव देकर उसीके युगमें उसके एकाधिपत्यको स्थगित कर रखा था। जिस कलियुगके आदिसे अततक कलिके साथ मनुष्यका घोर सग्राम चल रहा है और चलता रहेगा, उस सग्रामके सहायक और नायकके रूपमें भगवान्की विभूति और अवतार कलिमे बार-बार आते हैं, उस संग्रामके उपयुक्त ब्रह्मतेज, ज्ञान, भक्ति, निष्काम-कर्मकी शिक्षा देने तथा उनकी रक्षा करनेके लिए कलिके आरभमे भगवान्ने मानव शरीर धारण किया था। भारतकी रक्षा है मानव-कल्याणका आधार और आशास्थल। भगवान्ने कुरुक्षेत्रमें भारतकी रक्षा की थी। उस रक्तसमुद्रमें नवीन जगत्के लीला-पद्मपर महाकाल विराट् पुरुषने विहार करना आरभ किया।

द्वितीय अध्याय

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।1।।

संजयने कहा—

अर्जुनकी 'कृपा'के आवेशको, उसकी अश्रुपूर्ण आँखों और विषण्ण भावको देख मधुसूदनने उसे यह उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ।।2।।

भगवान्‌ने कहा—

हे अर्जुन! इस संकटके समय यह अनार्योंद्वारा आदृत, स्वर्गपथरोधक और अकीर्तिकर मनकी मलिनता कहाँसे आ गयी?

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।।3।।

हे पार्थ! हे शत्रुदमनमें समर्थ! नपुंसकताका आश्रय मत लो, यह तुम्हारे लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। मनकी यह क्षुद्र दुर्बलता त्याग दो, उठो।

श्रीकृष्णका उत्तर

श्रीकृष्णने देखा कि 'कृपा'ने अर्जुनको अभिभूत कर लिया है, विषादने ग्रस लिया है। इस तामसिक भावको दूर करनेके लिए अंतर्यामी

भगवान्ने अपने प्रिय सखाका क्षत्रियोचित तिरस्कार किया कि शायद इससे राजसिक भाव जागृत हो तामसिक भावको दूर कर दे। उन्होंने कहा : देखो, यह है तुम्हारे पक्षके लिए सकटकाल, इस समय यदि तुम हथियार रख दोगे तो उनके एकदम विपत्तिमे पड जाने और नष्ट हो जानेकी सभावना है। रणक्षेत्रमें अपने पक्षका त्याग करनेकी वात तुम्हारे-जैसे श्रेष्ठ क्षत्रियके मनमें नही उठनी चाहिये, हठात् यह दुर्मति कहांसे आ गयी? तुम्हारा यह भाव है दुर्वलतापूर्ण और पापपूर्ण। ऐसे भावकी तो अनार्य प्रशंसा करते हैं, वे इसके वशमें होते हैं, किंतु आर्यके लिए यह है अनुचित, इससे परलोकमें स्वर्गप्राप्तिके मार्गमे वाधा पहुँचती है और इस लोकमें यश और कीर्तिकी हानि होती है। इसके वाद उन्होंने और भी मर्मभेदी शब्दोमें तिरस्कार किया। यह भाव क्लीवोचित है, तुम वीरश्रेष्ठ हो, जेता हो, कुन्तीके पुत्र हो, तुम ऐसी वात कहते हो? प्राणकी यह दुर्वलता त्यागो, उठो, अपने कर्तव्य कर्ममें लग जाओ।

कृपा और दया

कृपा और दया हैं दो भिन्न भाव, यहांतक कि कृपा दयाका विरोधी भाव भी हो सकती है। दयाके वशीभूत हो हम जगत्का कल्याण करते हैं, मनुष्यका दु:ख, जातिका दु:ख, दूसरोका दु:ख मोचन करते हैं। अगर हम अपना दु:ख या किसी व्यक्ति-विशेषका दु:ख न सह सकनेके कारण उस कल्याण-कार्यसे विमुख हो जायें तो हममें दयाका नही कृपाका आवेश हुआ है। समस्त मानव-जाति या देशके दु:खमोचनके लिए जव हम तत्पर होते हैं तो वह है दयाका भाव। रक्तपातके भयसे, प्राणहिंसाके भयसे जव हम पुण्य-कार्यसे विमुख होते हैं, जगत्के, राष्ट्रके दु:खके चिरस्थायी होनेमें हां भरते हैं तो वह है कृपाका भाव। दूसरोंके दु:खसे दु:खी हो दु:खमोचनकी जो प्रवल प्रवृत्ति है वह है दया। दूसरोंके दु:खकी चिंतासे या दूसरोंके दु:खको देख कातर होना है कृपाका भाव। कातरता दया नही, कृपा है। दया है वलवान्का धर्म और कृपा दुर्वलका। दयाके आवेशसे वुद्धदेवने स्त्री-पुत्र, पिता-माता व वन्धु-वान्धवोंको दु:खी और हृतसर्वस्व कर जगत्का दु:ख दूर करनेके लिए घर त्यागा था। तीव्र

दयाके आवेशसे उन्मत्त कालीने मसार-भरके असुरोका सहार कर, पृथ्वीको रक्तप्लावित कर किया था सबका दु.खमोचन। परंतु अर्जुनने शस्त्र-परित्याग किया था कृपाके आवेशसे।

यह भाव है अनार्यद्वारा प्रशसित, अनार्यद्वारा आचरित। आर्यशिक्षा है उदार, वीरोचित, देवताओकी शिक्षा। अनार्य मोहमें पड़, अनुदार भावको धर्म मान उदार धर्मका परित्याग करते हैं। अनार्य राजसिक भावसे भावान्वित हो अपना, अपने प्रियजनोका, अपने परिवार या कुलका हित देखते हैं, विराट् कल्याण नही देखते, कृपावश धर्मविमुख हो, अपनेको पुण्यवान् कह गर्व करते हैं, कठोरव्रती आर्योको निष्ठुर और विधर्मी कहते है। अनार्य तामसिक मोहसे मुग्ध हो अप्रवृत्तिको निवृत्ति कहते हैं, सकाम पुण्यप्रियताको धर्मनीतिके उच्चतम आसनपर बिठाते हैं। दया आर्योका भाव है, कृपा अनार्योका।

पुरुष दयावश वीरकी तरह दूसरोंके अमगल और दु.खका नाश करनेके लिए अमगलके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त होता है। नारी दयावश दूसरेका दु.ख हल्का करनेमें, सेवा-शुश्रूषा और देखभाल करनेमें एवं परहित चेष्टामें अपनी पूरी शक्ति और जी-जानसे लग जाती है। जो कृपावश अस्त्र त्यागता है, धर्मसे विमुख होता है, रोने बैठ जाता है और यह सोचता है कि मैं अपना कर्तव्य कर रहा हूँ, मैं पुण्यवान् हूँ, वह है क्लीव। यह भाव क्षुद्र है, दुर्बलता है। विषाद कभी धर्म नही हो सकता। जो विषादको आश्रय देता है वह पापको आश्रय देता है। यह चित्तकी मलिनता, यह अशुद्ध और दुर्बल भाव त्यागकर युद्धकी चेष्टा करना, कर्तव्यपालनद्वारा जगत्की रक्षा करना, धर्मकी रक्षा करना, पृथ्वीके भारको हल्का करना ही है श्रेयस्कर। यही है श्रीकृष्णकी इस उक्तिका मर्म।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥4॥

अर्जुनने कहा—

हे मधुसूदन! हे शत्रुनाशक! भीष्म और द्रोणका प्रतिरोध कर उन पूजनीय गुरुजनोंके विरुद्ध युद्धमें मैं कैसे अस्त्र चलाऊँगा?

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥5॥

इन उदारचेता गुरुजनोका वध न कर पृथ्वीपर भिखारी बनकर रहना ही अच्छा है। यदि मैं गुरुजनोका वध करूँ तो धर्म और मोक्ष खो केवल अर्थ और कामका भोग करूँगा, वह भी रुधिर-सना विषय-भोग, पृथ्वीपर ही भोग्य जो मरनेतक ही तो रहता है।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥6॥

इसलिए हमारी जय या पराजय कौन-सी है अधिक प्रार्थनीय, हम समझ नही पा रहे। जिनका वध कर देनेपर हम लोगोकी जीनेकी कोई इच्छा नही रह जायगी, वे ही विपक्षी सेनाके अग्रभागमें उपस्थित हैं, धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सेनानायक हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥7॥

मेरा क्षत्रिय-स्वभाव दीनता-दोषसे अभिभूत हो उठा है, धर्माधर्मके विषयमें बुद्धि विमूढ़ हो गयी है, इसीलिए मैं तुमसे पूछता हूँ कि किसमें मेरा श्रेय है यह निश्चित रूपसे बताओ। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, तुम्हारी शरण आया हूँ, मुझे शिक्षा दो।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥8॥

क्योंकि पृथ्वीपर असपत्न राज्य और देवताओंपर आधिपत्य प्राप्त कर लेनेपर भी यह शोक मेरी इन्द्रियोका तेज सोख लेगा, इस शोकको दूर करनेका कोई उपाय मुझे नहीं दिखायी देता।

शिक्षाके लिए अर्जुनकी प्रार्थना

अर्जुनने श्रीकृष्णकी उक्तिका उद्देश्य समझा, अब और राजनीतिक आपत्ति नही उठायी; परतु दूसरी आपत्तियोका कोई उत्तर न पा शिक्षा प्राप्त करनेके लिए श्रीकृष्णकी शरणमें आये। उन्होने कहा: "स्वीकार करता हूं कि मै क्षत्रिय हूं, कृपाके वशीभूत हो महान् कार्यसे विमुख होना मेरी नपुसकताका ही सूचक है, अपकीर्तिजनक और धर्मविरुद्ध। परंतु मन भी नही मानता, प्राण भी नही मानता। मन कहता है. गुरुजनोकी हत्या महापाप है, अपने सुखके लिए गुरुजनोको मारनेसे अधर्मका भागी बनूंगा, मेरा धर्म, मोक्ष, परलोक, जो कुछ वाछनीय है सब कुछ जाता रहेगा। कामनाएं तृप्त होगी, अर्थलिप्सा तृप्त होगी पर कबतकके लिए? अधर्मद्वारा प्राप्त भोग मृत्युतक ही टिकता है, उसके बाद होती है अकथनीय दुर्गति। और जब भोग करूंगा तब उस भोगमें गुरुजनोके रक्तका स्वाद मिलनेपर क्या सुख या शान्ति मिलेगी? प्राण कहता है: ये है मेरे प्रियजन, इनकी हत्या करनेसे इस जन्ममें फिर न कोई सुख भोग सकूगा न जीवित ही रहना चाहूंगा। तुम चाहे मुझे समस्त पृथ्वीके साम्राज्यका भोग करने दो या स्वर्ग जीतकर इन्द्रका ऐश्वर्य, मै नही मानूगा। जो शोक मुझे अभिभूत करेगा उसके द्वारा सभी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां अभिभूत और अवसन्न हो अपना-अपना कार्य करनेमें शिथिल और असमर्थ हो जायंगी, तब तुम क्या सुख भोगोगे? मेरे चंचल चित्तमें दीनता आ गयी है, महान् क्षत्रिय-स्वभाव उस दीनतामें डूब गया है। मैं तुम्हारी शरणमें आया हूं। मुझे ज्ञान, शक्ति और श्रद्धा दो, श्रेयस्कर पथ दिखा मेरी रक्षा करो।"

संपूर्णतः भगवान्‌की शरण लेना है गीतोक्त योगमार्गका पथ। इसे कहते है आत्मसमर्पण या आत्म-निवेदन। जो भगवान्‌को गुरु, प्रभु, सखा, पथ-प्रदर्शक मान अन्य सब धर्मोको तिलाजलि देनेके लिए तैयार है, पाप-पुण्य, कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, मंगल-अमगलका विचार न कर अपने ज्ञान, कर्म और साधनाका सारा भार श्रीकृष्णके हाथोमें सौंप देते है, वही है गीतोक्त योगके अधिकारी। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, "यदि तुम गुरुहत्या करनेके लिए भी कहो तो मुझे समझा दो कि यह है धर्म और कर्तव्य कर्म, मै वही करूगा।" इसी गभीर श्रद्धाके बलपर अर्जुन समकालीन सभी महापुरुषोको अतिक्रम कर गीताकी शिक्षाके श्रेष्ठ पात्रके रूपमें चुने गये थे।

उत्तर देते हुए पहले श्रीकृष्णने अर्जुनकी दो आपत्तियोका खण्डन किया और फिर गुरुका भार ग्रहण कर उन्हें असली ज्ञान देना आरम्भ किया। 38वें श्लोकतक आपत्तियोका खण्डन है, उसके बाद आरम्भ होती है गीताकी शिक्षा। किन्तु इन आपत्तियोंके खण्डनमें कई अमूल्य शिक्षाएँ मिलती हैं जिन्हें समझे विना गीताकी शिक्षा हृदयंगम नही होती। इन कतिपय बातोकी विस्तृत आलोचनाकी आवश्यकता है।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।9।।

सञ्जयने कहा—

परन्तप गुडाकेश हृषीकेशको ऐसा कहकर फिर उन गोविन्दसे बोले, "मैं युद्ध नहीं करूँगा" और चुप हो गये।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।।10।।

श्रीकृष्णने दोनो सेनाओंके बीच अवस्थित विषण्ण अर्जुनको मुस्कराते हुए यह उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।11।।

श्रीभगवान्ने कहा—

जिनके लिए शोक करनेका कोई कारण नही उनके लिए तुम शोक करते हो, और ज्ञानीकी तरह तात्त्विक विषयोपर वादविवाद करनेकी चेष्टा करते हो, किन्तु तत्त्वज्ञानी मृत या जीवित किसीके लिए भी शोक नही करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।12।।

ऐसा भी नही है कि मैं पहले नही था या तुम नही थे या ये नृपतिवृन्द नही थे, यह भी नही कि हम सब देहत्याग करनेके वाद फिर नही रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।13।।

जैसे इस जीव-अधिष्ठित शरीरमें बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था कालकी गतिसे आती हैं वैसे ही दूसरी देहप्राप्ति भी कालकी गतिसे होती है, इससे स्थिरबुद्धि ज्ञानी पुरुष विमूढ नही होते।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।14।।

मृत्यु कुछ भी नही, जिस विषय-स्पर्शसे शीत, उष्ण, सुख, दु.ख आदि सस्कार उत्पन्न होते हैं वे स्पर्श अनित्य हैं, आते-जाते हैं, अविचलित रह उन सबको ग्रहण करनेका अभ्यास करो।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।15।।

जो स्थिरबुद्धि पुरुष इन स्पर्शोंको भोगकर भी व्यथित नही होते, इनके द्वारा सृष्ट सुख-दु.खको समभावसे ग्रहण करते है, वही होते हैं मृत्युको जीतनेमें समर्थ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।16।।

जो असत् है उसका अस्तित्व नहीं होता, जो सत् है उसका विनाश नही होता, फिर भी सत् और असत् दोनोका अत होता है, तत्त्वदर्शियोंने इसका दर्शन किया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्त्तुमर्हति ।।17।।

परन्तु जिसने इस समस्त दृश्य जगत्का अपने अन्दर विस्तार किया है उस आत्माका क्षय नही होता, कोई उसका ध्वंस नही कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धयस्व भारत ।।18।।

नित्य देहाश्रित आत्माके इन सब शरीरोका अंत है, आत्मा असीम और अनश्वर है, इसलिए हे भारत, युद्ध करो।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।19।।

जो आत्माको हंता कहते हैं और जो देहके नाशपर आत्माको निहत हुआ समझते हैं वे दोनों ही भ्रान्त हैं, अज्ञ हैं, यह आत्मा हत्या भी नही करता और हत भी नही होता।

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।20।।

इस आत्माका जन्म नही, मृत्यु नही, इसका न कभी उद्भव हुआ और न कभी लोप होगा। यह जन्मरहित है, नित्य है, सनातन है, पुरातन है, देहनाश होनेपर हत नही होता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं सः पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।21।।

जो इसे नित्य, अनश्वर और अक्षय जानते हैं, वह कैसे किसीकी हत्या करते या कराते हैं ?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।22।।

जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्र उतार नया वस्त्र पहनता है वैसे ही जीव जीर्ण देह छोड़ नयी देहका आश्रय लेता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।23।।

शस्त्र इसे छेद नही सकते, आग जला नही सकती, जल भिगो नही सकता, वायु सुखा नही सकती।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।24।।

आत्मा है अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥25॥

आत्मा है अव्यक्त, अचिन्त्य और विकाररहित, आत्माको इस रूपमें जान शोक करना छोड दो।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥26॥

और यदि तुम यह मानते हो कि जीव बार-बार जनमता और मरता है, तब भी उसके लिए शोक करना उचित नही।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥27॥

जिसका जन्म होता है, उसकी निश्चय ही मृत्यु होती है, जिसकी मृत्यु होती है, उसका निश्चय ही जन्म होता है, अतएव जब मृत्यु अपरिहार्य परिणाम है तो उसके लिए शोक करना है अनुचित।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥28॥

सभी प्राणी प्रारम्भमें अव्यक्त होते है मध्यमें व्यक्त होते हैं और फिर अन्तमें अव्यक्त होते हैं, इस स्वाभाविक क्रममें शोक करनेका कोई कारण ही नहीं।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥29॥

आत्माको कोई एक आश्चर्यके रूपमें देखता है, कोई एक आश्चर्य कहकर उसके विषयमें बोलता है, कोई एक आश्चर्य समझकर इसके बारेमें सुनता है, किन्तु सुनकर भी कोई आत्माको नही जान पाता।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥30॥

आत्मा सदा सबकी देहमें अवध्य होकर रहता है, अतएव सब प्राणियोंके लिए शोक करना कभी उचित नही।

मृत्युकी असत्यता

अर्जुनकी वात सुन श्रीकृष्णके आननपर हंसीकी झलक दिखायी दी, वह हंसी परिहासमय होते हुए भी प्रसन्नतापूर्ण थी—अर्जुनके भ्रममें मानव-जातिके प्राचीन भ्रमको पहचान अंतर्यामी हसे। वह भ्रम श्रीकृष्णकी माया-से ही उत्पन्न हुआ है, जगत्‌में अशुभ, दु:ख या दुर्बलताका भोग और संयम-द्वारा क्षय करनेके लिए ही उन्होंने मनुष्यको इस मायाके वशीभूत किया है। प्राणकी ममता, मरनेका भय, सुख-दुःखकी अधीनता और प्रिय-अप्रियका बोध आदि अज्ञान अर्जुनकी वातोंसे साफ झलकता था, इसी अज्ञानको मनुष्यकी बुद्धिसे दूर कर जगत्‌को अशुभसे मुक्त करना आवश्यक था, इसी शुभ कार्यके अनुकूल अवस्था प्रस्तुत करनेके लिए श्रीकृष्ण आये थे, गीताको प्रकट करने जा रहे थे। परन्तु पहले, अर्जुनके मनमें जो भ्रम उत्पन्न हुआ था उसका भोगद्वारा क्षय करना था आवश्यक। अर्जुन श्रीकृष्णके सखा थे, मानव-जातिके प्रतिनिधि थे, उन्हीको गीता सुनानी थी, वही थे श्रेष्ठ पात्र; किन्तु मानव-जाति अभीतक गीताका अर्थ ग्रहण करनेके योग्य नही हुई है, अर्जुन भी संपूर्ण अर्थ ग्रहण नही कर सके। जो शोक, दुःख और कातरता उनके मनमें उठी थी उसे कलियुगके आरम्भसे ही मानवजाति पूर्ण मात्रामें भोगती आ रही है, ईसाई धर्म प्रेमसे, बौद्ध धर्म दयासे और इस्लाम धर्म शक्तिसे इस दु:खके भारको हलका करनेके लिए आये हैं। आज कलियुगातर्गत सत्ययुगका प्रथम खण्ड आरम्भ होगा, भगवान् फिरसे भारतको, कुरुजातिके वंशधरोको गीता प्रदान कर रहे हैं; यदि इसे ग्रहण करनेमें, धारण करनेमें समर्थ हों तो इससे भारतका, जगत्‌का मंगल सुनिश्चित फल है।

श्रीकृष्णने कहा: अर्जुन! तुम पण्डितोकी तरह पाप-पुण्यका विचार कर रहे हो, जीवन और मरणके तत्त्वकी चर्चा कर रहे हो, किस बातसे राष्ट्रका कल्याण या अकल्याण होता है इसको प्रतिपादित करनेकी चेष्टा कर रहे हो, किन्तु वास्तविक ज्ञानका परिचय तुम्हारी वातोंसे नही मिलता, वल्कि तुम्हारी प्रत्येक वात है घोर अज्ञानपूर्ण। साफ-साफ कहो कि मेरा हृदय दुर्बल है, शोकसे कातर है, वुद्धि कर्तव्य-विमुख हो गयी है; ज्ञानीकी भाषामें अज्ञानी-की तरह तर्क कर अपनी दुर्बलताका समर्थन करनेका कोई प्रयोजन नही। शोक मनुष्यमात्रके हृदयमें उत्पन्न होता है, मनुष्यमात्रके लिए ही मरण और विच्छेद है अत्यंत भयकर, जीवन अत्यंत मूल्यवान्, शोक असह्य और कर्तव्य एक कठोर वस्तु होता है, स्वार्थसिद्धिको मधुर जानकर हर्षित होता है, दु:खित

होता है, हसता है, रोता है, किन्तु इन सब वृत्तियोंको कोई ज्ञानप्रसूत नही कहता। जिनके लिए शोक करना अनुचित है उनके लिए तुम शोक कर रहे हो। ज्ञानी किसीके लिए भी शोक नही करते—न मृत व्यक्तिके लिए, न जीवितके लिए। वे तो यह जानते है कि न मृत्यु है, न विच्छेद और न दुःख; हम अमर है, हम सदा एक है, हम आनन्दकी संतान है, अमृतकी सन्तान है, इस पृथ्वीपर जीवन-मरणके साथ, सुख-दुःखके साथ आख-मिचौली खेलने आये हैं—प्रकृतिके विशाल रगमचपर रोने-हसनेका अभिनय करते हैं, शत्रु-मित्र बन युद्ध और शान्ति, प्रेम और कलहका रसास्वादन करते है। यह जो हम थोड़े समयतक बचे रहते हैं, कल-परसो देह त्याग कहाँ चले जायेंगे पता नही, यह है हमारी अनन्त क्रीड़ाका एक मुहूर्तमात्र, क्षणिक खेल, कुछ ही क्षणोका भाव। हम थे, हम हैं, हम रहेंगे—सनातन नित्य, अनश्वर—हम है प्रकृतिके ईश्वर, जीवन-मरणके कर्ता, भगवान्‌के अंश, भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी। जैसे शरीरकी बाल्य, युवा और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही देहान्तरप्राप्ति भी—मरण नाममात्र है, हम नाम सुनकर डरते हैं, दुःखी होते हैं, यदि ठीक-ठीक समझते तो न डरते, न दुःखी ही होते। यदि हम बालककी यौवनप्राप्तिको मरण समझें और रोतें हुए यह कहें कि हाय! हमारा वह प्रिय बालक कहां चला गया, यह युवा पुरुष तो वह बालक नही, हमारा वह सोनेका चाँद किधर गया, तो हमारे इस व्यवहार को सभी हास्यास्पद और घोर अज्ञानप्रसूत ही कहेंगे; क्योकि यह अवस्थांतर-प्राप्ति प्रकृतिका नियम है, बालक-शरीरमें और युवक-शरीरमें एक ही पुरुष बाह्य परिवर्तनसे अतीत स्थिरतापूर्वक विराजमान है। ज्ञानी साधारण मनुष्यमें मृत्युका भय और मृत्युका दुःख देख उसके इस व्यवहारको ठीक उसी तरह हास्यास्पद और घोर अज्ञानजनित मानता है, क्योकि देहान्तर-प्राप्ति प्रकृतिका नियम है, स्थूल देह और सूक्ष्म देहमें एक ही पुरुष बाह्य परिवर्तनसे अतीत स्थिरतापूर्वक विराजमान है। अमृतकी सन्तान है हम, कौन मरता-मारता है? मृत्यु हमारा स्पर्श नही कर सकती—मृत्यु एक निरर्थक शब्द है, मृत्यु भ्रम है, मृत्यु नामकी कोई चीज नही।

मात्रा

पुरुष अचल है और प्रकृति सचल। सचल प्रकृतिमें अचल पुरुष अव-स्थित है। प्रकृतिस्थ पुरुष पंचेन्द्रियद्वारा जो कुछ देखता, सुनता, सूघता,

स्वाद लेता और स्पर्श करता है उसीका भोग करनके लिए वह प्रकृतिकी सहायता लेता है। हम रूप देखते है, शब्द सुनते है, गध सूघते है, रसका स्वाद लेते हैं, स्पर्शका अनुभव करते है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ ही है इंद्रियभोगके विषय। छठी इन्द्रिय है मनका विशेष विषय संस्कार। बुद्धिका विषय है चिंतन। पंच तन्मात्राओ और सस्कार एवं चिंतनका अनुभव और भोग करनेके लिए है पुरुष-प्रकृतिका पारस्परिक समोग और अनंत क्रीड़ा। यह भोग है दो प्रकारका, शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध भोगमें सुख-दुःख नही होता, पुरुषका चिरन्तन स्वभावसिद्ध धर्म आनंद ही होता है। अशुद्ध भोगमें सुख-दुःख होता है, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हर्ष-शोक इत्यादि द्वन्द्व अशुद्ध भोग-भोगियोको विचलित और विक्षुब्ध करते है। कामना है अशुद्धताका कारण। कामिमात्र ही है अशुद्ध, जो निष्काम है वह है शुद्ध। कामनासे राग और द्वेष पैदा होते है, राग-द्वेषके वशमें हो पुरुष विषयोंमें आसक्त होता है और आसक्तिका फल है बन्धन। पुरुष विचलित और विक्षुब्ध, यहांतक कि व्यथित और यन्त्रणासे पीड़ित होनेपर भी आसक्तिका अभ्यस्त हो जानेके कारण अपने क्षोभ, व्यथा या यन्त्रणाके कारणका परित्याग करनेमें असमर्थ होता है।

समभाव

श्रीकृष्णने पहले आत्माकी नित्यताका उल्लेख किया और फिर अज्ञानके बंधनको ढीला करनेका उपाय बताया। मात्रा अर्थात् विषयके नाना स्पर्श है सुख-दुःख आदि द्वन्द्वके कारण। ये सब स्पर्श है अनित्य, इनका आरम्भ भी है और अन्त भी। इन्हें अनित्य जान आसक्ति त्यागनी चाहिये। अनित्य वस्तुमें जब हम आसक्त होते हैं तब उस वस्तुके आगमनसे खुश होते और उसका नाश या अभाव होनेपर दु खित और व्यथित होते हैं। इस अवस्था-को अज्ञान कहते हैं। अज्ञानद्वारा अनश्वर आत्माका सनातन भाव और यथार्थ आनन्द आच्छादित हो जाता है, केवल क्षणभगुर भाव और वस्तुमें ही मत्त हुए रहते है, उसका नाश होनेपर मारे दुःखके शोकसागरमें डूब जाते है। इस प्रकार अभिभूत न हो जो विषयोंके स्पर्शोंको सह सकता है, अर्थात् जो द्वन्द्वोकी प्राप्ति होनेपर भी सुख-दु खमें, सर्दी-गर्मीमें, प्रिय-अप्रियमें,

मगल-अमगलमें, सिद्धि-असिद्धिमें हर्ष और शोकका अनुभव न कर उनको समान भावसे, प्रफुल्लित चित्तसे, हंसते हुए ग्रहण कर सकता है वह पुरुष राग-द्वेषसे मुक्त हो जाता है, अज्ञानके वन्धनोको काट सनातन भाव और आनन्दको उपलब्ध करनेमें समर्थ होता है—अमृतत्वाय कल्पते।

समताकी विशेषता

यह समता है गीताकी पहली शिक्षा। समता ही है गीतोक्त साधनाका आधार। यूनानके स्टोइक (Stoic) संप्रदायने भारतसे यही समताकी शिक्षा प्राप्त कर यूरोपमें समतावादका प्रचार किया था। यूनानी दार्शनिक एपिक्युरसने श्रीकृष्णद्वारा प्रचारित शिक्षाका एक और पक्ष लेकर शान्त भोगकी शिक्षा, (Epicureanism) या भोगवादका प्रचार किया था। ये दो मत, समतावाद और भोगवाद प्राचीन यूरोपमें श्रेष्ठ नैतिक मत माने जाते थे और आधुनिक यूरोपमें भी नया आकार धारण कर उन्होने Puritanism (पवित्रतावाद) और Paganism (मूर्तिपूजावाद) के चिरद्वंद्वकी सृष्टि की है। परन्तु गीतोक्त साधनामें समतावाद और शान्त या शुद्ध भोग एक ही वात हैं। समता कारण है और शुद्ध भोग कार्य। समतासे आसक्ति नष्ट होती है, रागद्वेष प्रशमित होता है और आसक्तिका नाश तथा रागद्वेषका प्रशमन होनेसे शुद्धता उत्पन्न होती है। शुद्ध पुरुषका भोग कामना और आसक्तिसे रहित होता है, अतएव शुद्ध होता है। इसी कारण समताकी यह विशेषता है कि समताके साथ आसक्ति और रागद्वेष एक ही आधारमें साथ-साथ नहीं रह सकते। समता ही है शुद्धिका बीज।

दु:खजय

यूनानी स्टोइक सम्प्रदायने यह भूल की कि वे दु:खविजयका यथार्थ उपाय न समझ सके। उन्होने दु:खको निग्रहद्वारा दबा, पददलित कर

जीतनेकी चेष्टा की। किंतु गीतामें अन्यत्र कहा गया हैं: **प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।** भूतमात्र अपनी-अपनी प्रकृतिका अनुसरण करते हैं, निग्रह करनेसे क्या होगा? दुःखके निग्रहसे मनुष्यका हृदय शुष्क, कठोर और प्रेमशून्य हो जाता हैं। दुःखमें आंसू नहीं बहाऊँगा, यंत्रणा-बोधको नहीं स्वीकारूंगा, 'यह कुछ नहीं हैं' कह चुपचाप सहन कर लूंगा, स्त्रीका दुःख, संतानका दुःख, बन्धुका दुःख, जातिका दुःख अविचलित चित्तसे देखूंगा—इस प्रकारका भाव है बलगर्वित असुरका तपस्या-भाव; इसका भी महत्त्व है, मनुष्यकी उन्नतिके लिए इसकी भी आवश्यकता है, किंतु यह दुःखजयका वास्तविक उपाय नहीं, अंतिम या चरम शिक्षा नहीं। दुःखजयका वास्तविक उपाय है ज्ञान, शांति और समता। शांत भावसे सुख-दुखको ग्रहण करना ही है वास्तविक पथ। प्राणमें होनेवाले सुख-दुःखके संचारको रोकना नहीं चाहिये, बल्कि बुद्धिको अविचलित रखना चाहिये। समताका स्थान बुद्धि है, चित्त और प्राण नहीं। बुद्धि सम होनेपर चित्त और प्राण अपने-आप सम हो जाते हैं और प्रेम आदि प्रकृतिजात प्रवृत्तियाँ भी नहीं सूखती, मनुष्य पत्थर नहीं हो जाता, जड़ और निर्जीव नहीं बन जाता। **प्रकृति यान्ति भूतानि**—प्रेम इत्यादि प्रवृत्तियाँ हैं प्रकृतिकी चिरन्तन प्रवृत्तियां, उनके हाथसे परित्राण पानेका एकमात्र उपाय है परब्रह्ममें विलीन हो जाना। प्रकृतिमें रहते हुए प्रकृतिका त्याग करना है असंभव। यदि हम कोमलताका परित्याग करें तो कठोरता हृदयको अभिभूत कर लेगी—यदि बाहर दुःखके स्पन्दनको पास न आने दें तो दुःख भीतर जमा रहेगा और अलक्षित रूपसे प्राणको सुखा देगा। इस प्रकारकी कृच्छ्र साधनासे उन्नतिकी कोई संभावना नहीं। ऐसी तपस्यासे शक्ति तो प्राप्त होगी पर इस जन्ममें जिस चीजको दबाकर रखेंगे दूसरे जन्ममें वह सभी अवरोधोंको तोड़-फोड़ दूने वेगके साथ उमड़ आयगी।

धर्म

जगन्नाथका रथ

आदर्श समाज ही है मनुष्य-समष्टिके अंतरात्मा भगवान्‌का वाहन, जगन्नाथका यात्रा-रथ। एकता, स्वाधीनता, ज्ञान और शक्ति हैं इस रथके चार चक्र।

मनुष्यकी बुद्धिद्वारा गठित अथवा प्रकृतिके अशुद्ध प्राणस्पंदनकी क्रियासे रचा समाज है दूसरी तरहका। यह समाज समष्टिके नियंता भगवान्‌का रथ नहीं, बल्कि जो बहुरूपी देवता मुक्त अंतर्यामीको आच्छादित कर भगवत्-प्रेरणाको विकृत करता है उस समष्टिगत अहंकारका वाहन है। यह नाना भोगपूर्ण लक्ष्यहीन कर्म-पथपर, बुद्धिके असिद्ध और अपूर्ण संकल्पके आकर्षणसे, निम्न प्रकृतिकी प्राचीन या नवीन प्रेरणावश चलता है। जबतक अहंकार ही कर्ता है तबतक प्रकृत लक्ष्यका अनुसन्धान पाना है असंभव—लक्ष्यका पता लगनेपर भी रथको उस ओर सीधे ले जाना है असाध्य। अहंकार है भागवत पूर्णतामें प्रधान बाधक। यह जैसे व्यष्टिके लिए सत्य है वैसे ही समष्टिके लिए भी।

साधारण मनुष्य-समाजके तीन मुख्य भेद दिखायी देते हैं। पहला, निपुण कारीगरकी सृष्टि, यह है सुन्दर, चमचमाता, उज्ज्वल, निर्मल, सुखकर जिसे खींच रहा है बलवान् सुशिक्षित अश्व, वह अग्रसर हो रहा है सुपथपर, सयत्न, धीर-स्थिर गतिसे। सात्त्विक अहंकार इसका स्वामी है, आरोही है। जिस उपरिस्थ उत्तुंग प्रदेशमें भगवान्‌का मंदिर है, रथ उसके चारों ओर घूम रहा है, किन्तु घूमता है थोड़ा दूर ही दूर रहकर, उस उच्च भूमिके बिलकुल पास नहीं पहुँच पाता। यदि इस स्थानसे भी ऊपर उठना हो तो नियम यही है कि रथसे उतर अकेले पैदल जाया जाये। वैदिक युगके बाद प्राचीन आर्य जातिके समाजको ऐसा ही रथ कहा जा सकता है।

दूसरा है विलासी कर्मठकी मोटरगाडी। धूलका अम्बार उड़ाती, भीमवेगसे वज्र निर्घोष करती, राजपथको चूर-चूर करती अशान्त अश्रान्त गतिसे वह दौड रही है। भोंपूकी आवाजसे कान फटे जा रहे हैं, जिसे

भी सामने पाती है उसे ही रौंदती-पीसती चली जाती है। यात्रीके प्राण सकटमें है, अनवरत दुर्घटनाएँ होती है, रथ टूट जाता है, किसी तरह मरम्मत हो जानेपर फिर सदर्प चल पड़ता है। इसका कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नही, किन्तु जो भी नवीन दृश्य आंखोंके सामने पड जाता है उसे ही रथका स्वामी राजसिक अहकार 'यही है लक्ष्य, यही है लक्ष्य' चिल्लाता उस ओर दौड़ पडता है। इस पथपर चलनेमें यथेष्ट भोग-सुख मिलता है, विपत्ति भी अनिवार्य है, परन्तु भगवान्‌के निकट पहुँच पाना है असम्भव। आधुनिक पाश्चात्य समाज है ऐसी ही मोटरगाड़ी।

तीसरा है मैली, पुरानी, कछुएकी चाल चलनेवाली, अध-टूटी बैलगाडी। इसे खीच रहे हैं दुबले-पतले, भूखके मारे अधमरे बैल, यह चल रही है सकीर्ण ग्राम्य पथपर। मैला-कुचैला कपड़ा पहने, अत्यन्त सुखपूर्वक कीचड़-सने हुक्केको पीता, गाडीकी कर्कश घड-घड़ आवाज सुनता, अतीतकी कितनी ही विकृत-बिखरी स्मृतियोमें खोया बैठा है उदरसर्वस्व एक दुर्बल अन्धा बूढा। इस मालिकका नाम है तामसिक अहंकार। गाडीवानका नाम है पुस्तकी ज्ञान, वह पचांग देख-देखकर चलनेका समय और दिशाका निर्देश करता है, उसके मुहमें एक ही बात 'जो कुछ है या था वही अच्छा, जो कुछ होनेकी चेष्टा करता है वह खराब'। इस रथकी भगवान्‌के निकट न सही, शून्य ब्रह्मके निकट शीघ्र ही पहुँच जानेकी समावना है।

तामसिक अहंकारकी बैलगाड़ी जबतक गाँवोकी कच्ची सड़कपर चलती है तभीतक खैर है। जिस दिन वह चली आयेगी जगत्‌के राजपथपर जहाँ असख्य वेगवान् मोटरें दौड़ती है, उस दिन क्या परिणाम होगा उसका सोचते ही प्राण सिहर उठते है। दु.ख यही है कि रथको बदल देनेका समय पहचानना या स्वीकारना तामसिक अहकारकी अक्लके बाहरकी बात है। समयको पहचाननेकी प्रवृत्ति भी उसमें नहीं, क्योकि इससे उसका व्यवसाय और मालिकपन मिट्टीमें मिल जायेंगे। जब-जब समस्या उपस्थित होती है तो कोई-कोई यात्री बोल उठता है, "नही, रहने दो, यही अच्छा है क्योकि यह हम लोगोका ही है।" ये है लकीरके फकीर या भावुक देशभक्त। कोई-कोई कहता है, "इधर-उधरसे कुछ मरम्मत कर लो न।" इसी सहज उपायसे मानो बैलगाडी तुरत एक अनिन्द्य, अमूल्य मोटरगाड़ीमें परिणत हो जायेगी!—इनका नाम है सुधारक। कोई-कोई कहता है, "प्राचीन कालका सुन्दर रथ ही क्यो न लौट आये।" इस असाध्य साधनका उपाय भी ढूंढ़ निकालनेका प्रयास बीच-बीचमें करते रहते है। किंतु आशाके अनुसार फल होगा इसका कोई विशेष लक्षण कही भी दिखायी नही देता।

इन तीनोंमेंसे ही यदि एकको पसन्द करना अनिवार्य हो और उच्चतर चेष्टाको भी यदि हम छोड़ दें, तो सात्त्विक अहंकारका एक नवीन रथ निर्मित करना युक्तिसंगत होगा। किंतु जबतक जगन्नाथका रथ सृष्ट नही होता तबतक आदर्श समाज भी संगठित नही होगा। वही आदर्श है, वही है चरम, गभीरतम, उच्चतम सत्यका विकास और उसकी प्रतिकृति। गुप्त विश्वपुरुषकी प्रेरणासे मनुष्यजाति उसे ही गढनेमे सचेष्ट है, किंतु प्रकृतिके अज्ञानवश वह दूसरे ही प्रकारकी प्रतिमा गढ़ डालती है—यह प्रतिमा या तो विकृत, असिद्ध और कुत्सित होती है या कामचलाऊ, अर्द्धसुन्दर या सौन्दर्ययुक्त होनेपर भी असपूर्ण। शिवके बदले या तो वह वानरको गढ डालती है या किसी राक्षसको या किसी मध्यम लोकके अर्द्धदेवताको।

जगन्नाथके रथकी प्रकृत आकृति या नमूना कोई नही जानता, कोई भी जीवन-शिल्पी उसे आकनेमें समर्थ नही। यह छवि विश्वपुरुषके हृदयमें विद्यमान है, किंतु नाना आवरणोसे आवृत। द्रष्टा और कर्ताकी, अनेक भगवद्-विभूतियोकी अनेक चेष्टाओद्वारा धीरे-धीरे उसे बाहर ला स्थूल जगत्मे प्रतिष्ठित करना ही है अन्तर्यामीकी अभिसन्धि।

* * *

जगन्नाथके इस रथका असली नाम समाज नही, सघ है। यह बहुमुखी शिथिल जनसंघ या जनता नही, बल्कि आत्मज्ञानकी, भागवत ज्ञानकी ऐक्यमुखी शक्तिद्वारा सानंद गठित, बन्धनरहित, अच्छेद्य सहति है, है भागवत सघ।

अनेक समवेत मनुष्योके मिलकर कर्म करनेके साधनस्वरूप सहति ही है समाज। शब्दकी उत्पत्ति समझ लेनेसे उसका अर्थ भी समझमें आ जाता है। 'सम' उपसर्गका अर्थ है 'एकत्र', 'अज्' धातुका अर्थ है 'गमन्, धावन, युद्ध'। हजारो मनुष्य कर्मके लिए और कामनाकी पूर्तिके लिए एकत्रित होते हैं, एक ही क्षेत्रमे नाना लक्ष्योकी ओर दौडते है, कौन आगे बढे, कौन बड़ा हो, इसीको लेकर लाग-डाट होती है, जैसे अन्य समाजोके साथ वैसे ही आपसमें भी युद्ध और झगडा होता है—इस कोलाहलमें ही शृंखलाके लिए, सहायताके लिए, मनोवृत्तिकी चरितार्थताके लिए नाना सबंध स्थापित किये जाते हैं, नाना आदर्शोकी प्रतिष्ठा होती है, फलतः कष्टसिद्ध, असंपूर्ण, अस्थायी कुछ तैयार होता है—यही है समाजका, प्राकृत ससारका स्वरूप।

भेदकी भित्तिपर प्रतिष्ठित है प्राकृत समाज। उसी भेदपर निर्मित होता है उसका आंशिक, अनिश्चित और अस्थायी ऐक्य। किंतु आदर्श समाजका गठन है ठीक इसके विपरीत। उसकी भित्ति है ऐक्य; वहाँ पार्थक्यका खेल होता है आनन्द-वैचित्र्यके लिए, भेदके लिए नही। समाजमें हमें शारीरिक, मानस-कल्पित और कर्मगत ऐक्यका आभास मिलता है, किंतु संघका प्राण है आत्मगत ऐक्य।

आंशिक रूपसे, सकीर्ण क्षेत्रमें संघ-स्थापनाकी निष्फल चेष्टा तो कई बार हुई है। वह या तो हुई बुद्धिगत चिंतनकी प्रेरणासे—जैसा पाश्चात्य देशोंमें हुआ; अथवा निर्वाणोन्मुख कर्मविरतिके स्वच्छंद अनुशीलनसे—जैसा बौद्धोंने किया; या भागवत भावके आवेगसे—जैसा प्रथम ईसाई-संघने किया। परन्तु थोड़े समयमें ही समाजके जितने दोष, अपूर्णताएँ और प्रवृत्तियाँ है वे संघमें घुस आती हैं और उसे समाजमें परिणत कर देती हैं। चचल बुद्धिका चिंतन नही टिक पाता, वह जाता है प्राचीन या नवीन प्राणप्रवृत्तिके अदम्य स्रोतमें। भावके आवेगसे इस चेष्टाको सफल करना असंभव है, भाव अपनी तीव्रताके वश क्लांत हो उठता है। निर्वाणको अकेले ही ढूंढ़ना अच्छा है, निर्वाण-प्रेमियोका किसी संघकी सृष्टि करना है एक विपरीत काड। संघ स्वभावतः है कर्मकी, संबंधकी लीलाभूमि।

जिस दिन समष्टिगत विराट् पुरुषको इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे, ज्ञान, कर्म और भावके सामंजस्य और एकीकरणद्वारा आत्मगत ऐक्य दिखायी देगा उसी दिन जगन्नाथका रथ जगत्के रास्तेपर बाहर आ आलोकित कर देगा दसो दिशाओंको। उस दिन पृथ्वीके वक्षपर उतर आयेगा सत्ययुग, मर्त्य मनुष्यकी पृथ्वी होगी देवताका लीला-शिविर, भगवान्‌की मन्दिर-नगरी, temple city of God—आनन्दपुरी।

मानव समाजके तीन क्रम

मनुष्यका ज्ञान और शक्ति क्रमविकासमें नाना रूप धारण करती है। उस विकासकी तीन अवस्थाएँ देखते हैं—शरीर-प्रधान प्राणनियंत्रित प्राकृत अवस्था, बुद्धि-प्रधान उन्नत मध्य अवस्था, आत्मप्रधान श्रेष्ठ परिणति।

शरीर-प्रधान प्राणनियंत्रित मनुष्य है काम और अर्थका दास। वह जानता है सहज स्वार्थ साधारण भाव और प्रेरणा (instinct और impulse); कामना-कामनामें, अर्थ-अर्थमें संघर्ष उठ खड़ा होनेके कारण घटना-परम्पराद्वारा सृष्ट जो व्यवस्था सुविधाजनक मालूम होती है उसे ही वह पसंद करता है, ऐसी थोड़ी या बहुत-सी व्यवस्थाओंकी संहतिको वह कहता है 'धर्म'। रुचि-परंपरागत, कुलगत या सामाजिक आचार ऐसी ही निम्न प्राकृत अवस्थाके धर्म हैं। प्राकृत मनुष्यमें मोक्षकी कल्पना नहीं होती, आत्माका उसे संधान नहीं मिलता। उसकी अबाध शारीरिक और प्राणिक प्रवृत्तियोंका अबाध लीलाक्षेत्र है एक कल्पित स्वर्ग। उस ओर उसकी विचारधारा नहीं जा पाती। देहपात होनेपर स्वर्ग जाना ही है उसके लिए मोक्ष।

बुद्धिप्रधान मनुष्य काम और अर्थको विचारद्वारा नियंत्रित करनेके लिए सचेष्ट रहता है। वह बराबर ही इस गवेषणामें संलग्न रहता है कि कामकी श्रेष्ठ चरितार्थता कहाँ है, जीवनके अनेक भिन्नमुखी अर्थोंमें किस अर्थको प्राधान्य देना उचित है और आदर्श जीवनका स्वरूप क्या है,—बुद्धि-चालित किस नियमकी सहायतासे उस स्वरूपको परिस्फुट एवं उस आदर्शको सिद्ध किया जाता है; बुद्धिमान् मनुष्य इसी स्वरूप, आदर्श नियमके किसी एक श्रृंखलाबद्ध अनुशीलनको समाजका धर्म कह स्थापित करनेका इच्छुक है। ऐसी धर्मबुद्धि ही होती है मानस-ज्ञानसे आलोकित उन्नत समाजकी नियंत्री।

आत्मप्रधान मनुष्य बुद्धि, मन, प्राण और शरीरसे अतीत गूढ आत्माका संधान पा चुका होता है, आत्मज्ञानमें ही जीवनकी गति प्रतिष्ठित करता

है,—मोक्ष, आत्मप्राप्ति, भगवत्प्राप्तिको ही जीवनकी परिणति समझ आत्म-प्रधान मनुष्य उस ओर अपनी समस्त गतिविधि परिचालित करना चाहता है, जो जीवन-प्रणाली और आदर्श-अनुशीलन आत्मप्राप्तिके लिए उपयोगी है, जिससे मानवीय क्रमविकासके चक्रके उस उद्देश्यकी ओर अग्रसर होनेकी सभावना है, उसे ही वह कहता है 'धर्म'। श्रेष्ठ समाज ऐसे ही आदर्श, ऐसे ही धर्मसे चालित होता है।

प्राणप्रधानसे बुद्धिमें, बुद्धिसे बुद्धिके अतीत आत्मामें, एक-एक सीढ़ी करके भागवत पर्वतपर ऊर्ध्वगामी नियम द्वारा होता है मनुष्य-यात्रीका आरोहण।

* * *

किसी भी एक समाजमें एक ही धारा नही दिखायी देती। प्रायः सभी समाजोमें ऐसे तीन प्रकारके मनुष्य वास करते है, उस मनुष्य-समष्टिका समाज भी मिश्र-जातीय होता है।

प्राकृत समाजमें भी बुद्धिमान् और आत्मवान् पुरुष रहते हैं। वे यदि विरल हो, सहति-रहित या असिद्ध हो तो समाजपर विशेष कुछ प्रभाव नही पडता। यदि वे बहुत-से लोगोको संहतिबद्ध कर शक्तिमान् सिद्ध हो तभी वे प्राकृत समाजको मुट्ठीमें धरकर थोड़ी-बहुत उन्नति करानेमे सक्षम होते हैं। पर प्राकृत जनकी अधिकताके कारण बुद्धिमान् या आत्मवान्का धर्म प्राय. विकृत हो जाता है, बुद्धिका धर्म convention (परंपरा) में परिणत हो जाता है, आत्मज्ञानका धर्म रुचि और बाह्य आचारके बोझसे दब क्लिष्ट, प्लावित, प्राणहीन और स्वलक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है—सदा यही परिणाम दिखायी देता है।

जब बुद्धिका प्राबल्य होता है तब बुद्धिको समाजकी नेत्री बन अबोध रुचि और आधारको तोड-फोड, उलट-पलटकर मानसज्ञानसे आलोकित धर्मकी प्रतिष्ठा करनेकी चेष्टा करते हुए देखते हैं। पाश्चात्य ज्ञानका आलोक (enlightenment) साम्य-स्वाधीनता-मैत्री—इस चेष्टाका एक रूपमात्र है, सिद्धि असंभव है। आत्मज्ञानके अभावमें बुद्धिमान् भी प्राण, मन, शरीरके खिचावसे अपने आदर्शको अपने-आप ही विकृत करते हैं। निम्न प्रकृतिके हाथसे बच निकलना है कठिन। मध्य अवस्था, मध्य अवस्थामें स्थायित्व नहीं—या तो है नीचेकी ओर पतन या ऊपरकी ओर उत्थान। इन्हीं दो खिचावोंके बीच डोलती रहती है बुद्धि।

अहंकार

हमारी भाषामे 'अहंकार' शब्दका अर्थ इतना विकृत हो गया है कि आर्य-धर्मके प्रधान-प्रधान तत्त्व समझानेमें कभी-कभी बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। गर्व राजसिक अहकारका एक विशेष परिणाम है केवल, किंतु साधारणतया 'अहकार' शब्दका यही अर्थ समझा जाता है। अहंकार-त्यागकी बात कहते ही गर्वके त्याग या राजसिक अहंकारके वर्जनकी बात मनमे उठती है। वास्तवमें समस्त अह-ज्ञान ही है अहंकार। अहं-बुद्धि मानवकी विज्ञानमय आत्मामें सृष्ट होती है और प्रकृतिके अतर्गत तीन गुणोकी क्रियासे उसकी तीन प्रकारकी वृत्तिया विकसित होती हैं: सात्त्विक अहकार, राजसिक अहकार और तामसिक अहकार। सात्त्विक अहकार है ज्ञानप्रधान और सुखप्रधान। मुझे ज्ञान मिल रहा है, मुझे आनद मिल रहा है, ये सब भाव है सात्त्विक अहंकारकी क्रिया। साधकका अहं, भक्तका अह, ज्ञानीका अह, निष्काम-कर्मीका अहं सत्त्वप्रधान, ज्ञानप्रधान, सुखप्रधान है। राजसिक अहकार है कर्मप्रधान। मैं क़र्म कर रहा हूँ, मैं जीत रहा हूँ, पराजित हो रहा हूँ, चेष्टा कर रहा हूँ, मेरी ही कार्य-सिद्धि हो रही है, मेरी ही असिद्धि हो रही है, मैं बलवान हूँ, मै सिद्ध हूँ, मै सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ—ये सब भाव हैं रज.प्रधान, कर्मप्रधान और प्रवृत्तिजनक। तामसिक अहंकार है अज्ञता और निश्चेष्टतासे पूर्ण। मैं अधम हूँ, मैं निरुपाय हूँ, मैं आलसी, अक्षम, हीन हूँ, मेरे लिए कोई आशा नही, मैं प्रकृतिमें लीन हो रहा हूँ, लीन होना ही है मेरी गति—ये सब भाव है तमःप्रधान, अप्रवृत्ति और अप्रकाशजनक। जो तामसिक अहकारसे ग्रसित हैं, उन्हें गर्व नही होता, पर उनमें अहकार पूर्ण मात्रामें होता है, किन्तु वह अहकार है अधोगति, विनाश और शून्य ब्रह्मकी ओर ले जानेवाला। जैसे गर्वका अहकार होता है, वैसे ही नम्रताका भी, जैसे बलका वैसे ही दुर्बलताका भी। जो तामसिक भावके कारण गर्वहीन है, वे अधम और दुर्बल होते हैं, भय और निराशावश दूसरोंके पैरोमे लोटते हैं। तामसिक

नम्रता, तामसिक क्षमा, तामसिक सहिष्णुताका न कोई मूल्य है न कोई सुफल। जो सर्वत्र नारायणके दर्शन करते हुए सबके सामने नम्र रहते हैं, सहिष्णु और क्षमावान् होते है, उन्हे ही मिलता है पुण्य। जो ये सब अहङ्कृत वृत्तियाँ त्याग त्रैगुण्यमयी मायाको अतिक्रम कर जाते हैं उनमें न गर्व होता है न नम्रता, भगवान्‌की जगन्मयी शक्ति उनके मन-प्राण-रूप आधारमें जो भाव देती है उसे ही ले वे संतुष्ट और अनासक्त रहते हैं, अटल शाति और आनदमें मग्न। तामसिक अहंकार है सर्वथा वर्जनीय। राजसिक अहंकारको जगा, सत्त्वप्रसूत ज्ञानकी सहायतासे उसे निर्मूल करना ही है उन्नतिका प्रथम सोपान। राजसिक अहकारके हाथसे मुक्ति पानेका उपाय है ज्ञान, श्रद्धा और भक्तिका विकास। सत्त्वप्रधान व्यक्ति यह नही कहते कि मैं सुखी हूँ; वे कहते हैं: मेरे प्राणोंमें सुखका प्रसार हो रहा है; वे यह नही कहते कि मैं ज्ञानी हूँ, वे कहते हैं, मुझमें ज्ञानका सचार हो रहा है। वे जानते हैं कि वह सुख और ज्ञान उनका नही, जगन्माताका है। फिर भी सब प्रकारके अनुभवके साथ जब आनन्दोपभोगके लिए आसक्ति रहती है तब उसी ज्ञानी या भक्तका भाव अहकारमय हो जाता है। जब यह कहा जाता है कि 'मेरा कुछ हो रहा है', तब अहंबुद्धिका त्याग नही हुआ। गुणातीत व्यक्ति ही है सपूर्ण अहकार-विजयी। वे जानते हैं कि जीव साक्षी और भोक्ता है, पुरुषोत्तम अनुमन्ता और प्रकृति कर्त्री, इसके अदर 'मैं' नही, सभी है एकमेवाद्वितीयम्, ब्रह्मकी विद्या-अविद्यामयी शक्तिकी लीला। अहंज्ञान है जीव-अधिष्ठित प्रकृतिमें मायाप्रसूत एक भावमात्र। इस अहंज्ञानरहित भावकी अन्तिम अवस्था है सच्चिदानदमें लय हो जाना। किंतु जो गुणातीत होकर भी पुरुषोत्तमकी इच्छासे लीलामें रहते है, वे पुरुषोत्तम और जीवके स्वतंत्र अस्तित्वकी रक्षा करते हुए अपनेको प्रकृति-विशिष्ट भगवदंश समझ लीलाकार्य सम्पन्न करते हैं। इस भावको अहंकार नही कहा जा सकता। यह भाव परमेश्वरमें भी है, उनमें अज्ञान या लिप्तता नही, किंतु उनकी आनदमय अवस्था आत्मस्थ न हो जगन्मुखी होती है। जिनमें यह भाव होता है वही है जीवनमुक्त। लयरूप मुक्ति देहपात होनेपर प्राप्त की जा सकती है। जीवन्मुक्तकी अवस्था देहमें रहते हुए ही अनुभूत होती है।

पूर्णता

पूर्णयोगके पथपर जब पदार्पण किया है तब एक बार गहरे पैठ यह खोजबीन भी कर लो कि पूर्णयोगका अर्थ और उद्देश्य है क्या, फिर अग्रसर होओ। जिसके अन्दर सिद्धिके उच्च शिखरपर आरूढ़ होनेकी महान् आकांक्षा है उसे ये दो बातें सम्यक् रूपसे जान लेनी चाहियें—उद्देश्य और पथ। पथकी बात पीछे कहूंगा, पहले उद्देश्यका पूर्ण चित्र तुम्हारी आंखोंके सामने पूर्ण रूपसे स्पष्ट रेखाओंमें अंकित कर देनेकी आवश्यकता है।

क्या है पूर्णताका अर्थ ? पूर्णता है भागवत सत्ताका स्वरूप, भागवती प्रकृतिका धर्म। मनुष्य है अपूर्ण, पूर्णताका प्रयासी, पूर्णताकी ओर क्रम-विकास और आत्माकी क्रम-अभिव्यक्तिकी धारामें अग्रसर। पूर्णता है उसका गंतव्य स्थान; मनुष्य है भगवान्का एक अर्धविकसित रूप, इसीलिए वह है भागवत पूर्णताकी ओर जानेवाला पथिक। इस मनुष्यरूपी कलीमें भागवत पद्मकी पूर्णता छिपी है, उसे क्रमशः, धीरे-धीरे खिलानेमें प्रकृति सचेष्ट है। योगाभ्यास और योगशक्तिसे वह महान् वेगके साथ शीघ्राति-शीघ्र खिलना आरंभ कर देता है। लोग जिसे पूर्ण मनुष्यत्व कहते हैं—मानसिक उन्नति, नैतिक साधुता, चित्तवृत्तिका ललित विकास, चरित्रका तेज, प्राणका बल, शारीरिक स्वास्थ्य—वह भागवत पूर्णता नहीं। वह है प्रकृति-के एक खंड-धर्मकी पूर्णता। आत्माकी पूर्णतासे, मानसातीत विज्ञानशक्तिकी पूर्णतासे आती है प्रकृत अखंड पूर्णता। कारण, अखंड आत्मा ही है असली पुरुष, मनुष्यका मानसिक, प्राणिक और दैहिक पुरुषत्व है उसका केवल एक खंड विकास। और मनका विकास है विज्ञानका एक खंड, बाह्य और विकृत खेल है, मनकी यथार्थ पूर्णता तब आती है जब वह विज्ञानमें परि-णत हो जाता। अखंड आत्मा विज्ञान-शक्तिद्वारा जगत्की सृष्टि कर उसे नियंत्रित करती है, विज्ञान-शक्तिद्वारा खंडको अखंडमें ले आती है। आत्मा मनुष्यके अन्दर मानस-रूपी पर्देके पीछे छिपी बैठी है, पर्दा हटनेपर आत्माका स्वरूप दिखायी देता है। आत्मशक्ति मनमें क्षीणप्राय, अर्धप्रकाशित, अर्ध-

स्तव-स्तोत्र

साधक, साधन और साध्य—इन्ही तीन अंगोको लेकर है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। साधकोका स्वभाव भिन्न-भिन्न होनेके कारण भिन्न भिन्न साधनाएं आदिष्ट हैं, भिन्न-भिन्न साध्योंका भी अनुसरण किया जाता है। परन्तु स्थूल दृष्टिसे नाना प्रकारके साध्य होनेपर भी, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर पता चलता है कि सब साधकोका साध्य एक है—वह साध्य है आत्मतुष्टि। उपनिषद्में याज्ञवल्क्य अपनी सहधर्मिणीको समझाते हैं कि आत्माके लिए है सब कुछ, आत्माके लिए स्त्री, आत्माके लिए धन, आत्माके लिए प्रेम, आत्माके लिए सुख, आत्माके लिए दुःख, आत्माके लिए जीवन, आत्माके लिए मरण। इसीलिए है इस प्रश्नकी गुरुता और प्रयोजनीयता कि आत्मा है क्या।

बहुत-से विज्ञ और पंडित व्यक्ति कहते हैं कि आत्मज्ञानके लिए इतनी वृथा माथा-पच्ची क्यों? इन सब सूक्ष्म विचारोंमें समय नष्ट करना है पागलपन, संसारके आवश्यक विषयों और मानवजातिके कल्याणकी चेष्टामें लगे रहो। परन्तु संसारके लिए क्या-क्या विषय आवश्यक हैं और मानवजातिका कल्याण किससे होगा—इन प्रश्नोंकी मीमांसा भी आत्मज्ञानपर निर्भर है। जैसा हमारा ज्ञान, वैसा ही होगा हमारा साध्य। यदि हम अपनी देहको आत्मा समझें तो उसकी तुष्टिके लिए अन्य सभी विचारो और विवेचनाओको तिलांजलि दे स्वार्थपरायण नर-पिशाच बन जायंगे। अगर स्त्रीको ही आत्मवत् देखें, आत्मवत् प्यार करें तो स्त्रैण हो, न्याय-अन्यायका कोई विचार न कर उसके मनके संतोषके लिए प्राणपण चेष्टा करेंगे, दूसरोको कष्ट पहुंचा उसे ही सुख देंगे, दूसरोका अनिष्ट कर उसीका अभीष्ट सिद्ध करेंगे। यदि देशको ही आत्मवत् देखें तो हम एक बहुत बड़े देशहितैषी होंगे, संभवतः इतिहासमें अमर कीर्ति छोड़ जायंगे, परन्तु अन्यान्य धर्मोका परित्याग कर दूसरे देशोंका अनिष्ट, धन-लुण्ठन और स्वाधीनता-अपहरण कर सकते हैं। यदि भगवान्को आत्मा समझें या आत्मवत् प्यार करें—

दोनो एक ही बात हैं, क्योंकि प्रेम है परम-दृष्टि—तो हम भक्त, योगी, निष्काम-कर्मी बन साधारण मनुष्यके लिए अप्राप्य शक्ति, ज्ञान या आनंदका उपभोग कर सकते हैं। यदि निर्गुण परब्रह्मको आत्मा मानें तो परम शांति और लयको प्राप्त हो सकते हैं। यो यच्छ्रद्धः स एव सः—जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही बन जाता है। मानवजाति चिरकालसे साधना करती आ रही है, पहले छोटे, फिर अपेक्षाकृत बडे, अन्तमें सर्वोच्च परात्पर साध्यकी साधना कर गन्तव्य स्थान श्रीहरिके परम धामको प्राप्त होनेके लिए अग्रसर हो रही हैं। एक युग था जब मानवजाति केवल शरीर-साधना करती थी, शरीर-साधना थी उस समयका युगधर्म, अन्य धर्मोकी अवहेलना करके भी शरीरकी साधना करना उस समय श्रेय पथ माना जाता था। कारण, यदि वैसा न किया जाता तो शरीर, जो शरीर धर्म-साधनका उपाय और आधार है, उत्कर्षको प्राप्त न होता। उसी तरह एक दूसरे युगमें स्त्री-परिवार, और एक युगमें कुल, एक और दूसरे युगमें—जैसे कि आधुनिक युगमें—राष्ट्र ही साध्य है। सर्वोच्च परात्पर साध्य है परमेश्वर, भगवान्। भगवान् ही है सबके प्रकृत और परम आत्मा, अतएव प्रकृत और परम साध्य। इसीलिए गीतामें कहा गया है कि सब धर्मोका परित्याग करो, मेरी ही शरणमें आओ। भगवान्मे सब धर्मोका समन्वय होता है, उन्हे उपलब्ध कर लेनेपर वही हमारा भार ग्रहण कर, हमें अपना यंत्र बना, स्त्री, परिवार, कुल, राष्ट्र और मानव-समष्टिकी परम तुष्टि और परम कल्याण साधित करेंगे।

एक साध्यके नाना साधकोका स्वभाव भिन्न-भिन्न होनेके कारण साधनाए भी नाना होती हैं। भगवत्-साधनाका एक प्रधान साधन है स्तव-स्तोत्र। स्तव-स्तोत्र सबके लिए उपयोगी साधन नही। ज्ञानीके लिए है ध्यान और समाधि; कर्मीके लिए कर्मसमर्पण है श्रेष्ठ साधन; स्तव-स्तोत्र है भक्तिका अंग—श्रेष्ठ अग न सही, क्योकि अहैतुक प्रेम है भक्तिका चरम उत्कर्ष। वह प्रेम स्तव-स्तोत्रद्वारा भगवान्के स्वरूपको आयत्त कर लेनेके बाद स्तव-स्तोत्र-की आवश्यकताको अतिक्रम कर उस स्वरूपके भोगमें लीन हो जाता है; तथापि ऐसा कोई भक्त नही जो स्तव-स्तोत्र किये विना रह सके, जब अन्य किसी साधनकी आवश्यकता नही रहती तब भी स्तव-स्तोत्रमें प्राणोका उच्छ्वास उमड पडता है। केवल इतना स्मरण रखना चाहिये कि साधन साध्य नहीं, जो मेरा साधन है वह दूसरेका साधन नही भी हो सकता। अनेक भक्तोंकी यह धारणा होती है कि जो भगवान्का स्तव-स्तोत्र नहीं करते, स्तोत्र सुन आनंद प्रकट नही करते, वे धार्मिक नही। यह है भ्रांति और

सकीर्णताका लक्षण। बुद्ध स्तव-स्तोत्र नही करते थे, पर बुद्धको कौन अधार्मिक कह सकता है? भक्ति-मार्गकी साधनाके लिए स्तव-स्तोत्रकी सृष्टि हुई है।

भक्त भी नाना प्रकारके होते हैं, स्तव-स्तोत्रके भी नाना प्रयोग होते हैं। आर्त्त भक्त दुःखके समय रोनेके लिए, सहायता मागनेके लिए, उद्धारकी आशासे भगवान्का स्तव-स्तोत्र करते हैं; अर्थार्थी भक्त किसी भी अर्थ-सिद्धिकी आशासे, धन, मान, सुख, ऐश्वर्य, जय, कल्याण, भुक्ति, मुक्ति इत्यादिके लिए संकल्प कर स्तव-स्तोत्र करते है। इस तरहके भक्त बहुत बार भगवान्को प्रलोभन दिखा सतुष्ट करना चाहते हैं, कोई-कोई तो अभीष्ट-सिद्धि न मिलनेसे परमेश्वरपर बहुत क्रोधित हो उठते हैं, उन्हें निष्ठुर, प्रवंचक इत्यादि गालियाँ देकर कहते है कि अब और भगवान्की पूजा नही करूगा, उनका मुह नही देखूगा, किसी भी तरह नही मानूगा। बहुत-से हताश हो नास्तिक बन जाते हैं, यह सिद्धान्त बना लेते है कि यह जगत् दुःखका राज्य है, अन्याय-अत्याचारका राज्य, भगवान् है ही नही। यह दो प्रकारकी भक्ति अज्ञ भक्ति है पर इसी कारण उपेक्षणीय नही, क्षुद्रसे ही महत्में उठा जाता है। अविद्याको सिद्ध करना है विद्याका प्रथम सोपान। बालक भी अज्ञ होता है, किन्तु बालककी अज्ञतामे माधुर्य है, बालक भी माके पास रोने आता है, दुःखका प्रतिकार चाहता है, नाना सुखो और स्वार्थसिद्धिके लिए दौडा आता है, सावता है, रोता-धोता है, न पानेपर क्रोध करता है, और उपद्रव भी। जगज्जननी भी हसते हुए अज्ञ भक्तका सारा हठ और उपद्रव सहन करती है।

जिज्ञासु भक्त किसी अर्थसिद्धिके लिए या भगवान्को सतुष्ट करनेके लिए स्तव-स्तोत्र नही करते, उनके लिए स्तव-स्तोत्र है केवल भगवान्के स्वरूपकी उपलब्धि और अपने भावकी पुष्टिका साधन। ज्ञानी भक्तको उसकी भी आवश्यकता नही होती, क्योकि उन्हें स्वरूपकी उपलब्धि हो चुकी होती है, उनका भाव सुदृढ़ और सुप्रतिष्ठित हो चुका होता है, उन्हें केवल भावोच्छ्वासके लिए स्तव-स्तोत्रकी आवश्यकता होती है। गीतामें कहा गया है कि इन चारो श्रेणियोंके भक्त उदार हैं, कोई उपेक्षणीय नही, सभी भगवान्के प्रिय हैं, फिर भी ज्ञानी भक्त है सर्वश्रेष्ठ, क्योकि ज्ञानी और भगवान् है एकात्मा। भगवान् भक्तके साध्य हैं, अर्थात् आत्मरूपमें ज्ञातव्य और प्राप्य, ज्ञानी भक्त और भगवान्में आत्मा और परमात्माका सबध होता है। ज्ञान, प्रेम और कर्म—इन्ही तीन सूत्रोंसे आत्मा और परमात्मा है परस्पर आवद्ध। कर्म है, वह कर्म है भगवत्प्रदत्त, उसमें कोई प्रयोजन या स्वार्थ नही, कुछ भी

प्रार्थनीय नहीं; प्रेम है, वह प्रेम है कलह और मानसे शून्य—निःस्वार्थ, निष्कलंक, निर्मल; ज्ञान है, वह ज्ञान शुष्क और भावरहित नहीं, गभीर, तीव्र आनन्द और प्रेमसे पूर्ण। साध्य एक होनेपर भी जैसा साधक वैसा ही साधन होता है, उसी तरह भिन्न-भिन्न साधक एक ही साधनका भिन्न-भिन्न प्रयोग करते हैं।

हमारा धर्म

हमारा धर्म है सनातन धर्म। यह धर्म है त्रिविध, त्रिमार्गगामी और त्रिकर्मरत। हमारा धर्म है त्रिविध। भगवान्ने अन्तरात्मा, मानसिक जगत् और स्थूल जगत्—इस त्रिधाममें प्रकृतिसृष्ट महाशक्ति चालित विश्व-रूपमे अपने-आपको प्रकट किया है। इस त्रिधाममें उनके साथ युक्त होनेकी चेष्टा है सनातन धर्मका त्रिविधत्व। हमारा धर्म है त्रिमार्गगामी। ज्ञान, भक्ति और कर्म—इन तीन स्वतंत्र या सम्मिलित उपायोंसे वह युक्तावस्था मनुष्यके लिए साध्य है। इन तीन उपायोंसे आत्मशुद्धि कर भगवान्के साथ युक्त होनेकी लिप्सा है सनातन धर्मकी त्रिमार्गगामी गति। हमारा धर्म है त्रिकर्मरत। मनुष्यकी सब प्रधान वृत्तियोंमे तीन हैं ऊर्ध्वगामिनी, ब्रह्म-प्राप्ति-बलदायिनी—सत्य, प्रेम और शक्ति। इन्ही तीन वृत्तियोंके विकासद्वारा मानवजातिकी क्रमोन्नति साधित होती आ रही है। सत्य, प्रेम और शक्तिद्वारा त्रिमार्गपर अग्रसर होना ही है सनातन धर्मका त्रिकर्म।

सनातन धर्ममें अनेक गौण धर्म निहित हैं; सनातनका अवलम्बन कर परिवर्तनशील महान् और क्षुद्र नानाविध धर्म अपने-अपने कर्ममे प्रवृत्त होते हैं। सब तरहके धर्म-कर्म हैं स्वभावसृष्ट। सनातन धर्म जगत्के सनातन स्वभावपर आश्रित है और ये नाना धर्म हैं नानाविध आधारगत स्वभावके फल। व्यक्तिगत धर्म, राष्ट्रधर्म, वर्णाश्रित धर्म, युगधर्म इत्यादि है नाना धर्म। ये अनित्य हैं इसलिए उपेक्षणीय वा वर्जनीय नही, बल्कि इन्ही अनित्य परिवर्तनशील धर्मोंद्वारा सनातन धर्म विकसित और अनुष्ठित होता है। व्यक्तिगत धर्म, राष्ट्रधर्म, वर्णाश्रित धर्म, युगधर्म परित्याग करनेसे सनातन धर्मकी पुष्टि न हो अधर्मकी ही वृद्धि होती है और गीतामे जिसे संकर कहा गया है अर्थात् सनातन प्रणालीका भंग और क्रमोन्नतिकी विपरीत गति वसुंधराको पाप और अत्याचारसे दग्ध करती है। जब उस पाप और अत्याचारकी अतिरिक्त मात्रासे मनुष्यकी उन्नतिकी विरोधिनी धर्मदलनी आसुरिक शक्तियां स्फीत और बलशाली हो स्वार्थ, क्रूरता और अहंकारसे

दसों दिशाओंको आच्छन्न करती हैं, जब जगत्में अनीश्वर ईश्वरका रूप ग्रहण करना आरम्भ करता है, तब भारार्त्त पृथिवीका दु:ख कम करनेके लिए भगवान्के अवतार या विभूतियाँ मानव-शरीरमें प्रकट हो पुनः धर्मपथको निष्कंटक बनाती हैं।

सनातन धर्मका ठीक-ठीक पालन करनेके लिए व्यक्तिगत धर्म, राष्ट्रधर्म, वर्णाश्रित धर्म और युगधर्मका आचरण सर्वदा रक्षणीय है। परन्तु इन नानाविध धर्मोंमें क्षुद्र और महान् दो रूप हैं। महान् धर्मके साथ क्षुद्र धर्मको मिला और संशोधित कर उसका अनुष्ठान करना है श्रेयस्कर। व्यक्तिगत धर्मको राष्ट्रधर्मके अंकाश्रित कर आचरण करनेसे राष्ट्र नष्ट हो जाती है और राष्ट्रधर्म लुप्त होनेसे व्यक्तिगत धर्मका क्षेत्र और सुयोग नष्ट होता है। यह भी है धर्मसंकर—जिस धर्मसंकरके प्रभावसे राष्ट्र और संकरकारी दोनों ही अतल नरकमें निमग्न होते हैं। पहले राष्ट्रकी रक्षा करनी चाहिये, तभी व्यक्तिकी आध्यात्मिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति निरापद बनायी जा सकती है। वर्णाश्रित धर्मको भी युगधर्मके साँचेमें ढालकर गढ न पानेसे, महान् युगधर्मकी प्रतिकूल गतिसे वर्णाश्रित धर्मके चूर्ण और विनष्ट होनेपर समाज भी चूर्ण और विनष्ट होता है। क्षुद्र सदा ही महान्का अंश या सहायक है; इस सम्बन्धकी विपरीत अवस्थामें धर्मसंकरसंभूत घोर अनिष्ट घटता है। क्षुद्र धर्म और महान् धर्मके बीच विरोध होनेपर क्षुद्र धर्म परित्याग कर महान् धर्मका अनुष्ठान है मंगलप्रद।

हमारा उद्देश्य है सनातन धर्मका प्रचार और सनातन धर्माश्रित राष्ट्रधर्म और युगधर्मका अनुष्ठान। हम भारतवासी हैं आर्यजातिके वंशधर, आर्यशिक्षा और आर्यनीतिके अधिकारी। यह आर्यभाव ही है हमारा कुलधर्म और राष्ट्रधर्म। ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म है आर्यशिक्षाके मूल, ज्ञान, उदारता, प्रेम, साहस, शक्ति, विनय हैं आर्यचरित्रके लक्षण। मानव-जातिको ज्ञान देना, जगत्में उन्नत उदार चरित्रका निष्कलंक आदर्श रखना, दुर्बलकी रक्षा करना, प्रबल अत्याचारीको दण्ड देना है आर्यजातिके जीवनका उद्देश्य, उसी उद्देश्यकी सिद्धिमें है उसके धर्मकी चरितार्थता। हम धर्मभ्रष्ट, लक्ष्यभ्रष्ट, धर्मसंकर होकर और भ्रांतिसंकुल तामसिक मोहमें पड़कर आर्यशिक्षा और आर्यनीतिको खो बैठे हैं। हम आर्य होकर भी शूद्रत्व और शूद्रधर्मरूप दासत्वको अंगीकार कर जगत्में हेय, प्रबल-पददलित और दु:ख-परम्परा-प्रपीडित हैं। अतएव यदि हमें जीवित रहना है, यदि अनन्त नरकसे मुक्त होनेकी लेशमात्र भी अभिलाषा है तो राष्ट्रकी रक्षा है हमारा प्रथम कर्तव्य। और राष्ट्रकी रक्षाका उपाय है आर्यचरितका पुनर्गठन।

समस्त राष्ट्रको, विशेषकर युवकोंको, ऐसी उपयुक्त शिक्षा, उच्च आदर्श और आर्यभाव-उद्दीपक कर्म-प्रणाली देना है हमारा प्रथम उद्देश्य जिससे जननी जन्मभूमिकी भावी सन्तान ज्ञानी, सत्यनिष्ठ, मानवप्रेमपूर्ण, भ्रातृ-भावयुक्त, साहसी, शक्तिमान् और विनीत बने। इस कार्यमें सफल न होनेतक सनातन धर्मका प्रचार है ऊसर क्षेत्रमें बीज-वपनमात्र।

राष्ट्रधर्मके अनुष्ठानसे युगधर्मकी सेवा सहजसाध्य हो जायगी। यह युग है शक्ति और प्रेमका युग। जब कलिका आरम्भ होता है तब ज्ञान और कर्म भक्तिके अधीन और सहायक हो अपनी-अपनी प्रवृत्ति चरितार्थ करते हैं, सत्य और शक्ति प्रेमका आश्रय ले मानवजातिमें प्रेमका विकास करनेके लिए सचेष्ट होते हैं। बौद्धधर्मकी मैत्री और दया, ईसाईधर्मकी प्रेम-शिक्षा, मुसलमानधर्मका साम्य और भ्रातृभाव, पौराणिक धर्मकी भक्ति और प्रेमभाव हैं इसी चेष्टाके फल। कलियुगमें सनातन धर्म मैत्री, कर्म, भक्ति, प्रेम, साम्य और भ्रातृभावकी सहायता ले मनुष्यजातिका कल्याण साधित करता है। ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्मसे गठित आर्यधर्ममें ये सारी शक्तियाँ प्रविष्ट और विकसित हो प्रसारित होनें और अपनी प्रवृत्तिको चरितार्थ करनेका मार्ग खोज रही हैं। शक्ति-स्फुरणके लक्षण हैं कठिन तपस्या, उच्चाकांक्षा और महत्कर्म। जब यह राष्ट्र तपस्वी, उच्चाकांक्षी, महत्कर्मप्रयासी होगा, तब समझना होगा कि जगत्की उन्नतिके दिन आरम्भ हो गये हैं, धर्मविरोधिनी आसुरिक शक्तियोंका ह्रास और देवशक्तियोंका पुनरुत्थान अवश्यम्भावी है। अतएव इस प्रकारकी शिक्षा भी वर्तमान समयके लिए आवश्यक है।

युगधर्म और राष्ट्रधर्मके साधित होनेपर सारे जगत्में सनातन धर्म अबाध रूपसे प्रचारित और अनुष्ठित होगा। पूर्वकालसे विधाताने जो निर्दिष्ट किया है, जिसके सब धर्म शास्त्रोंमें भविष्य-वाणी लिखित है, वह भी कार्यमें अनुभूत होगा। समस्त जगत् आर्यदेश-सभूत ब्रह्मज्ञानियोंके पास ज्ञान-धर्मका शिक्षाप्रार्थी बन, भारतभूमिको तीर्थ मान, अवनत-मस्तक हो इसका प्राधान्य स्वीकार करेगा। उस दिनको ले आनेके लिए ही हो रहा है भारतवासियोंका जागरण, आर्यभावका नवोत्थान।

माया

हमारे पुरातन दार्शनिक जब जगत्के मूल तत्त्वोंके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए तब वे इस प्रपंचके मूलमें एक अनश्वर व्यापक वस्तुके अस्तित्वसे अवगत हुए। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक बहुत दिनोंके अनुसन्धानके बाद इस निश्चयपर पहुँचे हैं कि बाह्य जगत्में भी यह अनश्वर सर्वव्यापी एकत्व वर्तमान है। उन्होंने आकाशको ही भौतिक प्रपंचका मूल तत्त्व स्थिर किया है। भारतके पुरातन दार्शनिक भी कई हजार वर्ष पहले इसी सिद्धान्तपर पहुँचे थे कि आकाश ही है भौतिक प्रपंचका मूल, इसीसे अन्य सब भौतिक अवस्थाएँ प्राकृतिक परिणामद्वारा उद्भूत होती हैं। पर वे इस सिद्धांतको अंतिम सिद्धान्त मानकर सन्तुष्ट नहीं हो गये। वे योगबलसे सूक्ष्म जगत्में प्रवेश कर जान पाये कि स्थूल भौतिक प्रपंचके पीछे है एक सूक्ष्म प्रपंच, इस प्रपंचका मूल भौतिक तत्त्व है सूक्ष्म आकाश। यह आकाश भी अंतिम वस्तु नहीं, उन्होंने अंतिम वस्तुको प्रधान नामसे अभिहित किया। प्रकृति या जगन्मयी क्रियाशक्ति अपने सर्वव्यापी स्पन्दनसे इस प्रधानकी सृष्टि कर उसीसे परमाणु अणुओंको उत्पन्न करती है और इन्हीं अणुओंसे सूक्ष्म भूत गठित होते हैं। प्रकृति या क्रियाशक्ति अपने लिए कुछ नहीं करती—जो जिसकी शक्ति है उसीकी तृप्तिके लिए इस प्रकारकी सृष्टि और नानाविध गति है। आत्मा या पुरुष है इस प्रकृतिका संचालक अव्यक्त और साक्षी। पुरुष और प्रकृति जिसके स्वरूप और शक्ति हैं वही अनिर्वचनीय परब्रह्म है अनादि अनन्त अक्रिय शुद्ध सत्। सत्य-पूर्ण उपनिषदोंमें आर्य-ऋषियोंके तत्त्वानुसन्धानमें जो सत्य आविष्कृत हुए थे उनके केन्द्रमें स्थित यही ब्रह्मवाद और पुरुष-प्रकृतिवाद प्रतिष्ठित हैं। तत्त्व-दर्शियोंने इन्हीं मूल सत्योंसे ही नाना तर्क और शास्त्रविचारद्वारा भिन्न-भिन्न विचारप्रणालियोंकी सृष्टि की। जो ब्रह्मवादी थे, वे वेदान्त-दर्शनके प्रवर्तक हुए, जो प्रकृतिवादके पक्षपाती थे उन्होंने सांख्य-दर्शनका प्रचार किया। इन्होंने प्रधान अणुओं और परमाणुओंको ही भौतिक प्रपंचका मूल तत्त्व मान

स्वतंत्र पथके पथिक हो गये। इस प्रकार नाना मार्गोंके आविष्कृत हो जानेके बाद, श्रीकृष्णने गीतामें इन्ही सब विचारधाराओंका समन्वय और सामंजस्य स्थापित कर व्यासदेवके मुखसे उपनिषदोंके सत्योंको पुनः प्रवर्तित किया। पुराणकारोंने भी व्यासदेवद्वारा रचित पुराणोंको आधार बना उन्ही सत्योंकी नाना व्याख्याएं—कथोपन्यास और रूपकके बहाने—जनसाधारणके सामने उपस्थित कीं। इससे विद्वान्-मडलीका वाद-विवाद बद नही हो गया, वे अपने-अपने मतोंको प्रकट करते हुए दर्शनशास्त्रकी विभिन्न शाखाओंके सिद्धान्तोंको तर्कद्वारा विशद रूपमें प्रतिपादित करने लगे। हमारे षड्दर्शनका आधुनिक स्वरूप है इसी परवर्ती विचारधाराका फल। अंतमें शंकराचार्यने सारे देशमें वेदांतके प्रचारकी अपूर्व और स्थायी व्यवस्था कर साधारण लोगोंके हृदयमें वेदान्तका आधिपत्य बद्धमूल किया। इसके बाद अन्य पांचों दर्शन थोड़े-से विद्वानोंके बीच प्रतिष्ठित रहे सही, पर उनका आधिपत्य और प्रभाव विचार-जगत्से प्राय. तिरोहित हो गया। सर्वजनसम्मत वेदातदर्शनमें मतभेद उत्पन्न होनेसे तीन मुख्य शाखाएँ और बहुत-सी गौण शाखाएँ स्थापित हुईं। ज्ञानप्रधान अद्वैतवाद एव भक्तिप्रधान विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैतवादका विरोध आज भी हिंदूधर्ममें वर्तमान है। ज्ञानमार्गी, भक्तके उद्दाम प्रेम और भाव-प्रवणताको उन्मादका लक्षण कह उडा देते हैं, भक्त, ज्ञानमार्गीकी तत्त्वज्ञानस्पृहाको शुष्क तर्क कह उपेक्षा करते हैं। दोनो मत ही हैं भ्रान्त और संकीर्ण। भक्तिशून्य तत्त्वज्ञानसे अहकारकी वृद्धि होनेके कारण मुक्तिपथ अवरुद्ध हो जाता है, ज्ञानशून्य भक्ति अध-विश्वास और भ्रमसंकुल तामसिकता उत्पन्न करती है। सच्चे उपनिषत्प्रदर्शित धर्म-मार्गमें ज्ञान, भक्ति और कर्मका सामजस्य और परस्पर सहायता सुरक्षित हैं।

यदि सर्वव्यापी और सर्वजनसम्मत आर्यधर्मका प्रचार करना हो तो उसे सच्चे आर्यज्ञानपर संस्थापित करना होगा। दर्शनशास्त्र सदा ही एकपक्ष-प्रतिपादक और अपूर्ण होता है। समस्त जगत्को एक सकीर्ण मतानुयायी तर्कद्वारा सीमाबद्ध करनेकी चेष्टासे सत्यका एक पहलू विशद रूपसे व्याख्यात होता है अवश्य किंतु दूसरे पहलूका अपलाप होता हैं। अद्वैतवादियोंका मायावाद है इसी प्रकारके अपलापका उदाहरण। 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या', यही है मायावादियोंका मूल मत्र। यह मत्र जिस राष्ट्रकी चिंतन-प्रणालीके मूल मंत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, उस राष्ट्रमें ज्ञानलिप्सा, वैराग्य और सन्यासप्रियता बढ़ जाती है, रज.शक्ति तिरोहित होती और सत्त्व तथा तमका प्राबल्य होता है। एक ओर ज्ञानप्राप्त संन्यासियोंकी, संसारसे विरक्त प्रेमिक भक्तों और शातिप्रार्थी वैरागियोंकी संख्या बढ जाती है, दूसरी

ओर तामसिक, अज्ञ, अप्रवृत्तिमुग्ध, अकर्मण्य साधारण प्रजाकी दुर्दशा ही होती है। भारतमें मायावादके प्रचारसे यही हुआ है। जगत् यदि मिथ्या ही हो तो फिर ज्ञानपिपासाके अतिरिक्त अन्य सभी चेष्टाओको निरर्थक एव अनिष्टकर ही कहना होगा। किन्तु मनुष्यके जीवनमें ज्ञान-पिपासाके सिवा और भी बहुत-सी प्रबल और उपयोगी वृत्तियाँ क्रीडा कर रही हैं, उन सबकी उपेक्षा कर कोई भी राष्ट्र टिक नही सकता। इसी अनर्थके भयसे शकराचार्यने पारमार्थिक और व्यावहारिक नामसे ज्ञानके दो अग बता अधिकार-भेदसे ज्ञान और कर्मकी व्यवस्था की। परन्तु उनके उस युगके क्रियासकुल कर्ममार्गका तीव्र प्रतिवाद करनेसे उलटा फल फला। शकरके प्रभावसे वह कर्ममार्ग लुप्तप्राय हो गया, सब वैदिक क्रियाएं तिरोहित हो गयी, किंतु जनसाधारणके मनमें ये तम-प्रवर्तक विचार कि जगत् मायाकी सृष्टि है, कर्म अज्ञानप्रसूत और मुक्ति-विरोधी है, अदृष्ट ही सुख-दु.खका कारण है इत्यादि, ऐसी दृढताके साथ बैठ गये कि रज.शक्तिका पुनराविर्भाव असभव हो उठा। आर्यजातिके रक्षार्थ भगवान्‌ने पुराण और तंत्रका प्रचार कर मायावादका प्रतिरोध किया। पुराणोमें उपनिषत्प्रसूत आर्यधर्मके विभिन्न अंग कुछ अशतक रक्षित हुए, तंत्रने शक्ति-उपासनाद्वारा मुक्ति और भुक्ति-रूपी द्विविध फलकी प्राप्तिके लिए लोगोको कर्ममें प्रवृत्त कराया। प्रायः सभी लोग, जिन्होने राष्ट्रकी रक्षाके लिए युद्ध किया, प्रताप सिंह, शिवाजी, प्रतापादित्य, चांदराय, इत्यादि थे शक्तिके उपासक या तांत्रिक योगियोंके शिष्य। तमःप्रसूत अनर्थको रोकनेके लिए गीतामें श्रीकृष्णने कर्मसंन्यास-विरोधी उपदेश दिया।

मायावाद है सत्यपर प्रतिष्ठित। उपनिषदोमें भी कहा गया है कि ईश्वर परम मायावी हैं, अपनी मायासे उन्होने इस दृश्य जगत्‌की सृष्टि की है। गीतामें भी श्रीकृष्णने कहा है कि त्रैगुण्यमयी माया ही सारे जगत्‌में व्याप्त है। एक ही अनिर्वचनीय ब्रह्म जगत्‌का मूल सत्य है, समस्त प्रपंच उसकी अभिव्यक्तिमात्र है, अपने-आपमें परिणामशील और नश्वर। यदि एक ब्रह्म ही सनातन सत्य हो तो फिर भेद और बहुत्व कहाँसे उत्पन्न हुए, किसमें प्रतिष्ठित हैं और कैसे उत्पन्न हुए—ये प्रश्न अनिवार्य हो जाते हैं। ब्रह्म यदि एकमात्र सत्य हो तो फिर ब्रह्मसे ही भेद और बहुत्वका जन्म हुआ, ब्रह्ममें ही ये प्रतिष्ठित हैं और ब्रह्मकी ही किसी अनिर्वचनीय शक्तिसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है—यही है उपनिषदोका उत्तर। उसी शक्तिको कहा गया है कही मायावीकी माया, कही पुरुष-अधिष्ठित प्रकृति, कही ईश्वरकी विद्या-अविद्यामयी इच्छाशक्ति। इससे तार्किकोका मन सन्तुष्ट नही हो पाता;

कैसे 'एक' 'बहु' होता है, अभेदमें भेद उत्पन्न होता है, इसकी सन्तोषजनक व्याख्या नहीं हुई। अतमें एक सहज उत्तर मनमें उदय हुआ—'एक' 'वहु' नहीं हो सकता, सनातन अभेदमें भेद उत्पन्न नहीं हो सकता, 'बहु' मिथ्या है, भेद अलीक है, सनातन अद्वितीय आत्मामें स्वप्नकी तरह भासमान माया-मात्र है, आत्मा ही सत्य है, आत्मा ही सनातन है। यहाँ भी घांधली, आखिर यह माया है क्या, कहाँसे उत्पन्न हुई, किसमें प्रतिष्ठित है और कैसे उत्पन्न हुई? शंकरने उत्तर दिया कि माया क्या है यह कहा नहीं जा सकता, माया अनिर्वचनीय है, माया उत्पन्न नहीं हुई, माया सदासे है भी और नहीं भी। घाघली घाघली ही रही, कोई सतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका। इस तर्कसे एक अद्वितीय ब्रह्ममें और एक सनातन अनिर्वचनीय वस्तु प्रतिष्ठित हो गयी, एकत्वकी रक्षा नहीं हुई।

शकरकी युक्तिसे उपनिषदोकी युक्ति है उत्कृष्ट। भगवान्की प्रकृति है जगत्का मूल, वही प्रकृति है शक्ति, सच्चिदानदकी सच्चिदानदमयी शक्ति। आत्माके लिए भगवान् परमात्मा है और जगत्के लिए परमेश्वर। परमेश्वर-की इच्छा शक्तिमयी है, उस इच्छाद्वारा ही एकसे बहु, अभेदसे भेद उत्पन्न होता है। परमार्थकी दृष्टिसे ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या, परामाया-प्रसूत, कारण यह ब्रह्मसे उत्पन्न होता है और ब्रह्ममें विलीन। देश-कालके अन्दर ही है प्रपचका अस्तित्व, ब्रह्मकी देशकालातीत अवस्थामें उसका कोई अस्तित्व नहीं। ब्रह्ममें प्रपंचयुक्त देश-काल है; ब्रह्म देश-कालमें आबद्ध नहीं। जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, ब्रह्ममें विद्यमान है, सनातन अनिर्देश्य ब्रह्ममे आद्यन्तविशिष्ट जगत्की स्थिति है, यह वहाँ ब्रह्मकी विद्या-अविद्यामयी शक्ति-द्वारा सृष्ट हो विराजमान है। जैसे मनुष्यमे प्रकृत सत्यकी उपलब्धि करने-की शक्तिके अलावा कल्पनाद्वारा अलीक वस्तुकी उपलब्धि करनेकी शक्ति विद्यमान है, वैसे ही ब्रह्ममें भी विद्या और अविद्या, सत्य और अनृत वर्तमान है। फिर भी अनृत है देश-कालकी सृष्टि। जैसे मनुष्यकी कल्पना देश-कालकी गतिसे सत्यमें परिणत होती है, उसी प्रकार जिसे हम अनृत कहते हैं वह सर्वथा अनृत नहीं, सत्यका अननुभूत पहलूमात्र है। वास्तवमें **सर्वं सत्यम्**—सब कुछ सत्य है; देशकालातीत अवस्थामें जगत् मिथ्या है, किन्तु हम देशकालातीत नहीं, हम जगत्को मिथ्या कहनेके अधिकारी नहीं। देश-कालमें जगत् मिथ्या नहीं, जगत् सत्य है। जब देशकालातीत हो ब्रह्ममे विलीन होनेका समय आयगा और शक्ति उत्पन्न होगी, तब हम जगत्को मिथ्या कह सकेंगे, अनधिकारीका ऐसा कहना मिथ्याचार और धर्मकी विपरीत गति है। हमारे लिए 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' कहनेकी अपेक्षा 'ब्रह्म सत्य,

निवृत्ति

हमारे देशमें मनीषिगण धर्मकी संकीर्ण और जीवनकी महत् कर्म-विरोधी व्याख्या कभी भी ग्रहण नही करते थे। सारा जीवन ही है धर्मक्षेत्र, यह महान् और गभीर तत्त्व निहित था हिन्दू ज्ञान और शिक्षाके मूलमें। आज हमारा ज्ञान और हमारी शिक्षा पाश्चात्य शिक्षाके स्पर्शसे कलुषित हो विकृत और अस्वाभाविक हो गयी है। हम प्रायः ही इस भ्रांत धारणाके वशीभूत होते हैं कि सन्यास, भक्ति और सात्त्विक भावके सिवा और कुछ भी धर्मका अग नही हो सकता। पश्चिमके लोग इसी सकीर्ण धारणाको मनमें रख धर्मकी आलोचना करते हैं। हिन्दू अपने जीवनके सभी कार्योंको धर्म और अधर्म—इन दो भागोमें विभक्त किया करते थे; पाश्चात्य देशोमें धर्म, अधर्म और धर्माधर्मसे बहिर्भूत जीवनकी अधिकांश क्रियाओ और वृत्तियोका अनुशीलन—ये तीन भाग किये गये है। वहाँ भगवान्की प्रशंसा, प्रार्थना, संकीर्तन करने तथा गिरजाघरमें जाकर पादरियोकी वक्तृता सुननेको धर्म या religion कहते है, morality या सत्कर्म करना वहाँ धर्मका अंग नही माना जाता, वह एक अलग चीज है, फिर भी बहुत-से लोग religion (धर्म) और morality (सत्कर्म) दोनोको धर्मका गौण अग मानते हैं। गिरजेमें न जाना, नास्तिकवाद या संशयवाद तथा religion की निन्दा या उसके विषयमें उदासीनता वहाँ अधर्म (irreligion) माना जाता है, कुकार्यको immorality कहा जाता है, पूर्वोक्त मतानुसार वह भी अधर्मका अंग है। किन्तु अधिकाश कर्म और वृत्तियाँ धर्माधर्मसे बहिर्भूत हैं। Religion और life, धर्म और कर्म, भिन्न-भिन्न हैं। हममेंसे बहुत लोग इसी तरह 'धर्म' शब्दका विकृत अर्थ करते है। साधु-सन्यासीकी चर्चा, भगवान्की चर्चा, देवी-देवताओकी चर्चा, संसारत्यागकी चर्चाको वे 'धर्म' नामसे अभिहित करते हैं; परन्तु और कोई प्रसग उठनेपर वे कहते है कि ये दुनियादारीकी बातें है, धर्मकी नही। उनके मनमें पाश्चात्य 'रिलिजन' शब्दका भाव बैठा हुआ है, 'धर्म' शब्द सुनते ही 'रिलिजन'की बात उनके मनमें

उदय होती है, न जानते हुए भी उसी अर्थमें 'धर्म' शब्दका व्यवहार करते हैं। किंतु अपनी स्वदेशी वातोमें इस प्रकारका विदेशी भाव ले आनेसे हम उदार और सनातन आर्य-भाव और शिक्षासे भ्रष्ट होते है। सारा जीवन ही धर्मक्षेत्र है, ससार भी धर्म है। केवल आध्यात्मिक ज्ञानालोचना और भक्तिकी भावना धर्म नही, कर्म भी धर्म है। यही महती शिक्षा सनातन कालसे हमारे समस्त साहित्यमें व्याप्त रही है—**एष धर्मः सनातनः।**

बहुतोकी धारणा है कि कर्म धर्मका अंग तो है सही, किन्तु सर्वविध कर्म नही; जो कर्म सात्त्विकभावापन्न हैं, निवृत्तिके अनुकूल हैं केवल वे ही इस नामके योग्य हैं। यह भी है भ्रान्त धारणा। जैसे सात्त्विक कर्म धर्म हैं वैसे ही राजसिक कर्म भी धर्म हैं। जैसे जीवपर दया करना धर्म है वैसे ही धर्मयुद्धमें देशके शत्रुका हनन करना भी धर्म है। जैसे परोपकारके लिए अपने सुख, धन और प्राणतकको तिलाजलि देना धर्म है वैसे ही धर्मके साधन शरीरकी उचित रक्षा करना भी धर्म है। राजनीति भी धर्म है, काव्यरचना भी धर्म है, चित्राकन भी धर्म है, मधुरगानसे दूसरोका मनोरजन करना भी धर्म है। जिसमें स्वार्थ नही वही है धर्म, चाहे वह कर्म वडा हो या छोटा। छोटे-वड़ेका हिसाव हम करते है, भगवान्‌के लिए छोटा-वड़ा कुछ नही, वह तो वस इसी ओर ध्यान रखते है कि मनुष्य अपना स्वभावोचित या अदृष्टद्वारा दत्त कर्म किस प्रकार सम्पादित करता है। चाहे हम कोई भी कर्म क्यो न करें उसे उन्हींके चरणोमें अर्पण करना, यज्ञके रूपमें करना, उन्हीकी प्रकृतिद्वारा किया गया मान समभावसे स्वीकार करना —यही है उच्च धर्म, श्रेष्ठ धर्म।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

अर्थात् जो कुछ देखते है, जो कुछ करते हैं, जो कुछ सोचते है वह सव है उनमे देखना, उन्हीके चिंतनसे सव कुछको वस्त्रकी तरह आच्छादित करना ही है श्रेष्ठ पथ, उस आवरणको भेदनेमें पाप और अधर्म असमर्थ हैं। मनसे सभी कर्मोकी इच्छा और आसक्तिको निकाल, कोई कामना न रख कर्मके स्रोतमें जो कुछ मिल जाय उसीका भोग करना, सभी कर्म करना, देहकी रक्षा करना—ऐसा आचरण ही है भगवान्‌को प्रिय और यही है श्रेष्ठ धर्म। यही है वास्तविक निवृत्ति। वुद्धि ही है निवृत्तिका स्थान, प्राण और इन्द्रियां हैं प्रवृत्तिके क्षेत्र। वुद्धि प्रवृत्तिद्वारा स्पृष्ट होती है इसीलिए है इतना घपला।

बुद्धि निर्लिप्त रहती हुई साक्षी और भगवान्का prophet या spokesman (*संदेशवाहक या प्रतिनिधि*) *बनकर रहेगी, निष्काम हो भगवान्द्वारा अनु*-मोदित प्रेरणाको प्राण और इन्द्रियोंतक पहुंचा देगी; प्राण और इन्द्रियाँ तदनुसार अपना-अपना कार्य करेंगी। कर्मत्याग है अत्यंत क्षुद्र, कामनाका त्याग ही है प्रकृत त्याग। शरीरकी निवृत्ति निवृत्ति नहीं, निर्लिप्तता ही है सच्ची निवृत्ति।

प्राकाम्य

I

जब लोग अष्टसिद्धियोकी बात करते हैं तब उनका तात्पर्य अलौकिक योगप्राप्त कतिपय अपूर्व शक्तियोंसे होता है। निस्सदेह अष्टसिद्धियोका पूर्णविकास योगीमें ही होता है, किन्तु ये शक्तियां प्रकृतिके साधारण नियमके बहिर्भूत नही, बल्कि हम जिसे प्रकृतिका नियम कहते है वह है अष्टसिद्धियोका समावेश।

अष्टसिद्धियोंके नाम है—महिमा, लघिमा, अणिमा, प्राकाम्य, व्याप्ति, ऐश्वर्य, वशिता, और ईशिता। ये ही परमेश्वरकी आठ स्वभावसिद्ध शक्तियाँ मानी जाती है। प्राकाम्यकी बात लें—प्राकाम्यका अर्थ है सभी इन्द्रियोका पूर्ण विकास और अबाध क्रिया। वास्तवमें पच ज्ञानेन्द्रिय और मनकी सकल क्रियाएँ है प्राकाम्यके अंतर्गत। प्राकाम्यके बलसे हम आंखोंसे देखते हैं, कानोंसे सुनते हैं, नाकसे सूघते है, त्वचासे स्पर्शका अनुभव करते है, रसनासे रसास्वादन करते है और मनसे सारे बाह्य स्पर्शोको ग्रहण करते हैं। साधारण मनुष्य समझता है कि स्थूल इद्रियोमें ही ज्ञान-धारणकी शक्ति है, पर तत्त्वविद् जानते है कि आँखें नही देखती, मन देखता है, कान नही सुनते, मन सुनता है; नाक नही सूघती, मन सूघता है। जो और भी बडे तत्त्वज्ञानी होते हैं वे जानते है कि मन भी नही देखता, सुनता व सूघता; जीव देखता है, सुनता है, सूघता है। जीव ही ज्ञाता है। जीव ईश्वर है, भगवान्का अश है। भगवान्की अष्टसिद्धियाँ जीवकी भी अष्टसिद्धियाँ हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनञ्च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

मेरा सनातन अंश जीवलोकमें जीव बन प्रकृतिमें मन और पचेन्द्रियोको पा आकर्षित करता है (अपने उपयोगमें लाता है और भोगके लिए आयत्त करता है)। जब जीवरूप ईश्वर शरीरमें आते या शरीरसे बाहर निकलते हैं, तब जिस तरह वायु गन्धको पुष्प आदिसे ग्रहण कर चली जाती है उसी तरह वह भी शरीरसे इन्द्रियोंको लेकर चले जाते हैं। कान, आँख, त्वचा, रसना, घ्राण और मनमें अधिष्ठित हो यह ईश्वर विषयोका भोग करते हैं। दृष्टि, श्रमण, आघ्राण, आस्वादन, स्पर्श, मनन—ये ही हैं प्राकाम्यकी क्रियाएं। भगवान्‌के सनातन अंश जीव इस प्रकृतिकी क्रियाद्वारा प्रकृतिके विकारसे पचेन्द्रिय और मनका सूक्ष्म शरीरमें विकास करते है, स्थूल शरीर प्राप्त करनेके समय इन षड् इन्द्रियोको ले प्रवेश करते हैं, मृत्युके समय इन्ही षड् इन्द्रियोंको साथ ले वाहर निकल जाते हैं। सूक्ष्म देहमें हो या स्थूल देहमें, वे इन्ही षडिन्द्रियोमें अधिष्ठान कर विषयोका उपभोग करते हैं।

कारण-देहमें संपूर्ण प्राकाम्य-सिद्धि रहती है, वही शक्ति सूक्ष्म देहमें विकसित हो फिर स्थूल देहमें प्रकट होती है। किन्तु आरम्भसे ही वह स्थूल देहमें पूर्णरूपेण प्रकट नही होती, जगत्‌के क्रमविकासके साथ-साथ इन्द्रियाँ क्रमशः विकसित होती हैं और अन्तमें ये कुछ पशुओंके अन्दर मनुष्य-के उपयोगी विकास और प्राखर्यको प्राप्त होती है। मनुष्यमें पचेन्द्रियाँ कुछ निस्तेज हो जाती हैं, क्योकि हम मन और बुद्धिके विकासमें अधिक शक्ति प्रयोग करते हैं। परन्तु यह असपूर्ण अभिव्यक्ति प्राकाम्यके विकास-की अन्तिम अवस्था नही। योगद्वारा सूक्ष्म देहमें प्राकाम्यका जितना विकास होता है वह स्थूल देहमें भी प्रकट होता है। इसे ही कहते हैं योगप्राप्त प्राकाम्य-सिद्धि।

II

परमेश्वर अनन्त और अव्याहत-पराक्रम है, उनकी स्वभाव-सिद्ध शक्तिका क्षेत्र भी अनंत और क्रिया अव्याहत है। जीव ईश्वर हैं, भगवान्‌के अश हैं, सूक्ष्म देह और स्थूल देहमें आवद्ध हो क्रमश: ईश्वरीय शक्तिका विकास कर रहे हैं। स्थूल शरीरकी सब इन्द्रियाँ विशेषत: सीमाबद्ध होती हैं, मनुष्य जबतक स्थूल देहकी शक्तिद्वारा आवद्ध रहता हैं तबतक बुद्धिके विकासमें ही वह पशुकी अपेक्षा उत्कृष्ट है, अन्यथा इन्द्रियोंके प्राखर्यमें तथा मनकी अभ्रान्त क्रियामें—एक शब्दमें कहें तो प्राकाम्य-सिद्धिमें—पशु ही उत्कृष्ट है। विज्ञानविद् जिसे instinct (सहजप्रेरणा) कहते हैं वह यही प्राकाम्य है। पशुमें बुद्धिका अत्यल्प विकास हुआ है, फिर भी इस जगत्‌में यदि वचे रहना हो तो किसी ऐसी वृत्तिकी आवश्यकता होगी जो पथप्रदर्शिका बन यह दिखा दें कि सब कार्योंमें क्या करणीय है और क्या वर्जनीय। पशुका मन ही यह कार्य करता है। मनुष्यका मन कुछ निर्णय नहीं करता, बुद्धि ही निश्चयात्मिका है, बुद्धि ही निर्णय करती है, मन है केवल संस्कार उत्पन्न करनेवाला यंत्र। हम जो कुछ देखते, सुनते और अनुभव करते हैं वह हममें संस्कारके रूपमें परिणत होता है, बुद्धि उन्ही संस्कारोंको ग्रहण करती है, प्रत्याख्यान करती है, उनसे विचारोंकी सृष्टि करती है। पशुकी बुद्धि इस निर्णय-क्रियामें असमर्थ है; पशु वुद्धिसे नही, मनसे समझता है, सोचता है। मनमें एक अद्‌भुत शक्ति है, दूसरोंके मनमें जो कुछ हो रहा है उसे पल भरमें जान सकता है, बिना विचारे ही जो आवश्यक है उसे समझ लेता है और कर्मकी उपयुक्त प्रणाली निश्चित करता है। हम किसीको घरमें प्रवेश करते हुए नही देखते, फिर भी समझते हैं मानो कोई घरमें छिपा बैठा है; भयका कोई कारण नही, फिर भी सशंक बने रहते हैं, मानो कही कोई गुप्त भयका कारण मौजूद हो; मित्रने एक वात भी नहीं कही, पर उसके वोलनेसे पहले ही समझ गये कि वह क्या कहेगा, इत्यादि वहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह सब मनकी शक्ति है, एकादश इन्द्रियोंकी स्वाभाविक अवाघ क्रिया। परन्तु वुद्धिकी सहायतासे सब कार्य करनेके हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि यह क्रिया, यह प्राकाम्य हममें प्राय: लुप्त हो गयी है। पशु यदि इस प्राकाम्यका आश्रय ग्रहण न करे तो दो दिनमें ही मर जाय। क्या पथ्य है, क्या अपथ्य, कौन मित्र है, कौन शत्रु, कहाँ भय है, कहाँ अभय—यह ज्ञान प्राकाम्य ही पशुको देती है। इसी प्राकाम्यसे कुत्ता अपने मालिक-

की भाषा न समझनेपर भी उसकी बातका अर्थ या मनका भाव समझ जाता है। इसी प्राकाम्यसे घोडा जिस पथसे एक वार जाता है उस पथकी पहचान रखता है। यह सारी प्राकाम्य क्रिया है मनकी। परन्तु पचेन्द्रियोकी शक्तिमें भी पशु मनुष्यको हरा देता है। भला कौन मनुष्य कुत्तेकी तरह केवल गधका अनुसरण कर सौ मीलतक दूसरे सब रास्तोको छोड़ एक विशिष्ट जन्तुके पीछे-पीछे बिना भूले-भटके जानेमें समर्थ हो सकता है? या पशुकी तरह अंधकारमें देख सकता है? या केवल श्रवणद्वारा गुप्त शब्द-कारीको ढूढ़ सकता है? टेलीपैथी (telepathy) या दूरसे विचार ग्रहण करनेकी सिद्धिकी बात कहते हुए किसी एक अंग्रेजी समाचारपत्रने लिखा है कि टेलीपैथी मनकी प्रक्रिया है, पशुमें वह सिद्धि है, मनुष्यमें नही, अतएव टेलीपैथीके विकाससे मनुष्यकी उन्नति नही, अवनति होगी। सच, स्थूल-बुद्धि अग्रेजके उपयुक्त ही है यह तर्क! अवश्य ही बुद्धिके विकासके लिए मनुष्यने एकादश इंद्रियोंके पूर्ण विकाससे मुंह मोड लिया है, यह अच्छा ही हुआ, अन्यथा प्रयोजनके अभावमें उसकी बुद्धिका विकास इतना शीघ्र न हो पाता। परन्तु जव बुद्धिका संपूर्ण और निर्दोष विकास हो गया है तव एकादश इन्द्रियोका पूर्ण विकास करना मनुष्य-जातिका कर्तव्य है। इससे बुद्धिका विचार्य ज्ञान विस्तारित होगा, मनुष्य भी मन और बुद्धिका पूर्ण अनुशीलन कर अन्तर्निहित देवत्वकी अभिव्यक्तिका उपयुक्त पात्र वनेगा। किसी भी शक्तिका विकास अवनतिका कारण नही हो सकता—केवल शक्ति-के अवैध प्रयोगसे, मिथ्या व्यवहारसे, असामंजस्यके दोषसे अवनति संभव है। ऐसे वहुत-से लक्षण दिखायी दे रहे है जिनसे यह मालूम होता है कि एकादश इन्द्रियोंके पूर्ण विकासका, प्राकाम्यकी वृद्धि आरम्भ करनेका समय आ गया है।

राष्ट्रीयता

पुरातन और नूतन

देख रहे हैं कि हम जो पुरातनके कारागारको तोड नूतनकी सृष्टि करनेके लिए देशको पुकार रहे हैं, उससे बहुतोंके मनमें क्रोध, भय और आशंका उमड पडी है। उनकी धारणा है कि पुरातन ही है सर्वमगलकारी, निर्दोष सत्य, पूर्ण ज्ञान, धर्म, ऐश्वर्यका अनिदनीय समृद्धि-शाली कोषागार; पुरातनतामें ही है भारतका भारतीयपन। हम, जो भगवान् तथा भागवत शक्तिपर अटल भरोसा रख उन्नति-पथपर अग्रसर होनेके लिए उद्यत हैं, अकुठ साहसके साथ भविष्यका नवीन आकार गढनेके इच्छुक है, उनकी दृष्टिमें हैं यौवनके मदमें उन्मत्त, पाश्चात्य ज्ञानसे पुष्ट, उच्छृखल पथके पथिक। पुरातनको हटा नवीनके आगमनको सहज बनाना अत्यंत विपज्जनक है, सर्वनाशका पथ है। पुरातन यदि चला गया तो फिर भारतका सनातन धर्म रहा कहाँ? पुरातनसे चिपके रहनेमें ही है श्रेय—वही चिरन्तन मोक्षपरायणता, वही अतुल्य कल्याणकर मायावाद, वही अचल स्थितिशीलता जो है भारतकी एकमात्र संपदा। कह सकता था कि भारतकी जो वर्तमान अवस्था है उससे और अधिक सर्वनाश, और अधिक शोचनीय परिणाम क्या हो सकता है, यह समझना या कल्पना करना है दुष्कर। पुरातनसे चिपके रहनेसे जब यह अवस्था हुई तब भला नूतनके लिए चेष्टा करनेमें क्या दोष? राष्ट्रकी मृत्युकी आशका सामने है, ऐसे समय पुरातनपर निर्भर रह निश्चेष्ट बन जाना अच्छा है या इस जालको छिन्न-विच्छिन्न कर स्वाधीनताके जीवनके मुक्त पथपर चलनेकी प्रवृत्ति श्रेयस्कर है? किंतु जो आपत्ति करते हैं, उनमेंसे बहुतेरे पडित, विचारशील, गण्यमान्य व्यक्ति है, उनकी उक्तिको इस प्रकार उड़ा देनेकी इच्छा नही होती। हम तो अपनी बातका तात्पर्य, अपने इस आह्वानका गभीरतर तत्त्व समझानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

सनातन और पुरातन एक ही नही। सनातन है चिरकालीन, जो त्रिकालातीत है, जो अविनश्वर है, जो सकल परिवर्तनोमें अविच्छिन्न धारा-

रूपसे विद्यमान रहता है, जिसे हम **विनश्यत्सु अविनश्यन्तम्** देखते हैं, वही है सनातन। पुरातन होनेके कारण भारतके धर्म और मूल विचारको हम सनातन धर्म, सनातन सत्य नही कहते। आत्मानुभूतिलब्ध सनातन आत्म-ज्ञान होनेके कारण वह विचार तथा सनातन ज्ञानपर प्रतिष्ठित होनेके कारण वह धर्म सनातन है। पुरातन तो है सनातनका एक समयोपयोगी रूपमात्र।

अतीतकी समस्या

इधर प्रायः सौ वर्षोंसे शिक्षित संप्रदायपर पाश्चात्य भावके पूर्ण आधिपत्यके कारण भारतवासी आर्यज्ञान और आर्यभावसे वचित हो शक्तिहीन, पराश्रय-प्रवण और अनुकरणप्रिय हो रहे थे। अब यह तामसिक भाव तिरोहित हो रहा है। एक बार मीमासा करनी आवश्यक है कि आखिर इसका प्रादुर्भाव हुआ ही क्यों था। अठारहवी शताब्दीमें तामसिक अज्ञान और घोर राजसिक प्रवृत्तिने भारतवासियोको ग्रस लिया था, देशमें हजारो स्वार्थपर, कर्तव्यविमुख, देशद्रोही, शक्तिमान् असुरप्रकृति मनुष्योने जन्म ले पराधीनताके अनुकूल अवस्थाको तैयार किया था। उसी समय भगवान्की गूढ अभिसधिको सफल करनेके लिए सुदूर-द्वीपातरवासी अगरेज वणिकोका भारतमें आविर्भाव हुआ। पापभारार्त भारतवर्ष अनायास ही विदेशियोके हाथ आ गया। इस अद्भुत काण्डका विचार मनमें उठते ही आज भी ससार आश्चर्यान्वित हो जाता है। इस बातकी कोई भी संतोषजनक मीमासा न कर सकनेसे सभी लोग अगरेज-जातिके गुणोकी अशेष प्रशसा करते है। अगरेज-जातिके अनेक गुण हैं; अगर वे गुण न होते तो वह आज पृथिवीकी श्रेष्ठ दिग्विजयी जाति न हो पाती। किंतु जो यह कहते हैं कि इस अद्भुत घटनाका एकमात्र कारण भारतवासियोकी निकृष्टता और अगरेजोकी श्रेष्ठता है, भारतवासियोका पाप और अंगरेजोका पुण्य है, उन्होने, स्वयं पूर्णत. भ्रात न होनेपर भी लोगोके मनमें कुछ एक भ्रात धारणाएँ विठा दी है। अतएव इस विषयका सूक्ष्म अनुसधान कर इसकी सही-सही मीमांसा करनेकी चेष्टा की जानी चाहिये। अतीतका सूक्ष्म अनुसंधान किये विना भविष्यकी गतिका निर्णय करना दु.साध्य है।

अगरेजोकी भारत-विजय है जगत्के इतिहासमें एक अतुलनीय घटना। यह वृहत् देश यदि किसी असभ्य, दुर्वल या निर्वोध और अक्षम जातिका वासस्थान होता तो फिर ऐसी वात नही कही जाती। किंतु भारतवर्ष राजपूत, मराठा, सिख, पठान, मुगल आदिका निवास-स्थान है; तीक्ष्ण-

वुद्धि वगाली, चितनशील मद्रासी, राजनीतिज्ञ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण भारत-जननीकी संतान हैं। अगरेजोकी विजयके समय नाना फडनवीस-जैसे विचक्षण राजनीतिविद्, माधोजी सिंधिया-जैसे युद्धविशारद सेनापति, हैदर अली और रणजीत सिह्-जैसे तेजस्वी और प्रतिभाशाली राज्यनिर्माता प्रात-प्रातमें जनमे थे। अठारहवी शताब्दीमें भारतवासी तेजमें, शौर्यमें, बुद्धिमें किसी भी जातिसे कम नही थे। अठारहवी शताब्दीका भारत था सरस्वतीका मदिर, लक्ष्मीका भंडार, शक्तिका क्रीडाङ्गण। फिर भी जिस देशको प्रवल और वर्धनशील मुसलमानोने सैकडो वर्षोके प्रयाससे बडे कष्टसे जीता था और जहाँ वे कभी भी निर्विघ्न शासन नही कर सके, उसी देशने पचास वर्षमें ही अनायास मुट्ठीभर अगरेज वनियोका आधिपत्य स्वीकार कर लिया. सौ वर्षोमें ही उनके एकछत्र साम्राज्यकी छायामें निश्चेष्ट हो सो गया! कोई कह सकता है कि एकताका अभाव है इस परिणामका कारण। स्वीकार करते हैं कि एकताका अभाव हमारी दुर्गतिका एक प्रधान कारण है सही पर भारतवर्षमें कभी भी एकता नही रही। महाभारतके समयमें भी एकता नही थी, चद्रगुप्त और अशोकके समयमें भी नही, मुसलमानोकी भारत-विजयके समय भी नही, अठारहवी शताब्दीमें भी नही। एकताका अभाव इस अद्भुत घटनाका एकमात्र कारण नही हो सकता। यदि कहा जाय कि अगरेजोका पुण्य इसका कारण है तो हम पूछते हैं कि जो उस समयका इतिहास जानते हैं वे क्या यह कहनेका साहस करेंगे कि उस समयके अगरेज वणिक तत्कालीन भारतवासियोकी अपेक्षा गुण और पुण्यमें श्रेष्ठ थे? जिन क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स प्रमुख अंगरेज वणिको और दस्युओने भारतभूमिको जीता और लूटा, जगत्में अतुलनीय साहस, उद्यमशीलता और आत्मम्भरिता तथा अतुलनीय दुर्गुणोका भी दृष्टांत दिखाया उन्ही निष्ठुर, स्वार्थपर, अर्थलोलुप, शक्तिमान् असुरोके पुण्यकी बात सुन हँसी रोकना कठिन हो जाता है। साहस, उद्यमशीलता, आत्मम्भरिता असुरका गुण है, असुरका पुण्य है, यह पुण्य क्लाइव आदि अंगरेजोमें था। किंतु उनका पाप भारत-वासियोंके पापसे तनिक भी न्यून नही था। अतएव अगरेजोंके पुण्यसे यह अघटन नही घटा।

अगरेज भी असुर थे, भारतवासी भी असुर थे, उस समय देवताओ और असुरोमें युद्ध नही हुआ था, असुरो-असुरोमें युद्ध हुआ था। तव भला पाश्चात्य असुरोमें ऐसा कौन-सा महान् गुण था जिसके प्रभावसे उनका तेज, शौर्य और बुद्धि सफल हुई और भारतीय असुरोमें ऐसा कौन-सा

सांघातिक दोष था जिसके प्रभावसे उनका तेज, शौर्य और बुद्धि विफल हुई ? पहला उत्तर यह है कि भारतवासी अन्य सभी गुणोमें अगरेजोंके समान होनेपर भी राष्ट्रीय भावरहित थे, अगरेजोमें यह गुण पूर्णतः विकसित था, परंतु इसका अर्थ कोई यह न लगा बैठे कि अंगरेज स्वदेशप्रेमी थे, स्वदेशप्रेमकी प्रेरणासे भारतमें विराट् साम्राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हुए थे। स्वदेशप्रेम और जातीयभाव दो स्वतन्त्र वृत्तियाँ है। स्वदेशप्रेमी स्वदेशके सेवाभावमें उन्मत्त रहते है, सर्वत्र स्वदेशको देखते है, स्वदेशको इष्टदेवता मान अपने सभी कर्म यज्ञरूपमें समर्पण कर देशके हितके लिए कर्म करते है, देशके स्वार्थमें अपने स्वार्थको डुबा देते हैं। अठारहवी शताब्दीके अंगरेजोमें यह भाव नही था; यह भाव किसी जड़वादी पाश्चात्य राष्ट्रके प्राणोमें स्थायी नही रह सकता। अगरेज स्वदेशहितके लिए भारत नही आये थे, न स्वदेशहितके लिए उन्होने भारतको जीता था, वे आये थे वाणिज्यके लिए, अपने-अपने आर्थिक लाभके लिए; स्वदेश-हितकी दृष्टिसे उन्होने भारतको न जीता था और न लूटा था, जीता था वहुत कुछ अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए। परंतु स्वदेशप्रेमी न होनेपर भी वे राष्ट्रीयभावापन्न थे। उनमें यह अभिमान था कि हमारा देश श्रेष्ठ है, हमारे राष्ट्रके आचार, विचार, धर्म, चरित्र, नीति, वल, विक्रम, बुद्धि, मत और कर्म उत्कृष्ट है, अतुल्य है तथा अन्य जातिके लिए दुर्लभ है। उनमें यह विश्वास था कि हमारे देशके हितमें हमारा हित है, हमारे देशके गौरवमें हमारा गौरव और हमारे देशभाइयोकी उन्नतिमें हमारी उन्नति; केवल अपना स्वार्थसाधन न कर साथ-साथ अपने देशका स्वार्थ सिद्ध करना, देशके मान, गौरव और उन्नतिके लिए युद्ध करना प्रत्येक देशवासीका कर्तव्य है, आवश्यक होनेपर उस युद्धमें निर्भय हो प्राणविसर्जन करना वीरका धर्म है,—यही कर्तव्यवुद्धि है राष्ट्रीय भावका प्रधान लक्षण। राष्ट्रीय भाव राजसिक भाव है और स्वदेशप्रेम सात्त्विक। जो अपने 'अहं'को देशके 'अह'में विलीन कर देते है वे है आदर्श स्वदेशप्रेमी; जो अपने 'अह'को सपूर्णतः सुरक्षित रखते हुए उसके द्वारा देशके 'अह'को वर्धित करते है वे हैं राष्ट्रीयभावापन्न। उस समयके भारतवासी राष्ट्रीय भावसे शून्य थे। अवश्य ही हमारे कहनेका अर्थ यह नही कि वे कभी अपनी राष्ट्रका हित नही देखते थे; परतु राष्ट्रके और अपने हितके बीच जरा भी विरोध उठनेपर वे प्राय. ही राष्ट्रके हितका त्याग कर अपना हित साधित करते थे। एकताके अभावकी अपेक्षा राष्ट्रीयताका यह अभाव है, हमारी रायमें, मारात्मक दोप। पूर्ण राष्टीय भाव देशभरमें फैल जानेपर नाना भेदोसे

भरे इस देशमें भी एकताका आना सभव है; केवल 'एकता चाहिये, एकता चाहिये' कहनेसे ही एकता नही आ जाती; यही है अगरेजोकी भारत-विजयका प्रधान कारण। असुर-असुरमें सघर्ष होनेपर राष्ट्रीयभावापन्न, एकताप्राप्त असुरोने राष्ट्रीयभावशून्य, एकताशून्य, समानगुणविशिष्ट असुरोंको पराजित किया। विधाताका यही नियम है, जो दक्ष और शक्तिमान् हैं वे ही कुश्तीमें विजयी होते हैं, जो क्षिप्रगति और सहिष्णु हैं वे ही दौड़में सबसे पहले गतव्य स्थानपर पहुँचते हैं। सच्चरित्र या पुण्यवान् होनेसे ही कोई दौड या कुश्तीमें विजयी नही होता, उपयुक्त शक्तिका होना आवश्यक है। उसी तरह राष्ट्रीय भावके विकाससे दुर्वृत्त और आसुरिक राष्ट्र भी साम्राज्य स्थापित करनेमें समर्थ होता है, राष्ट्रीय भावका अभाव होनेपर सच्चरित्र और गुणसंपन्न राष्ट्र भी पराधीन हो अंतमें चरित्र और गुण खो अधोगतिको प्राप्त होता है।

राजनीतिकी दृष्टिसे यही है भारत-विजयकी श्रेष्ठ मीमासा,—किंतु इसमें एक और भी गभीर सत्य निहित है। मैं कह चुका हूँ कि तामसिक अज्ञान और राजसिक प्रवृत्ति उस समय भारतमें बहुत प्रबल हो उठी थी। यही अवस्था है पतनकी अग्रगामी अवस्था। रजोगुणकी सेवासे राजसिक शक्तिका विकास होता है; किंतु अमिश्र रजोगुण शीघ्र ही तमोमुखी हो जाता है। उद्धत, शृंखलाविहीन राजसिक चेष्टा अति शीघ्र अवसन्न और श्रांत हो अप्रवृत्ति, शक्तिहीनता, विषाद और निश्चेष्टतामें परिणत हो जाती है। सत्त्वमुखी होनेपर ही रज.शक्ति स्थायी होती है। सात्त्विक भाव यदि न भी हो तो सात्त्विक आदर्शका होना आवश्यक है; उस आदर्श-द्वारा रज.शक्ति शृंखलित होती और स्थायी बल प्राप्त करती है। स्वाधीनता और सुशृंखलता अगरेजोंके ये दो महान् सात्त्विक आदर्श उनमें सदासे थे, उन्हीके बलसे अगरेज जगत्में प्रधान और चिरविजयी हैं। उन्नीसवी शताब्दीमें उस राष्ट्रमें परोपकारकी कामना भी जागृत हुई थी, उसके बलसे इगलैण्ड राष्ट्रीय महत्त्वकी चरमावस्थापर पहुँच गया था। इसके अतिरिक्त यूरोपकी जिस ज्ञानपिपासाकी प्रबल प्रेरणासे पाश्चात्य देशोने सैकडो वैज्ञानिक आविष्कार किये हैं, कणमात्र ज्ञान प्राप्त करनेके लिए सैकड़ो लोग प्राणतक देनेके लिए सम्मत होते हैं, वह बलीयसी सात्त्विक ज्ञानतृष्णा अगरेजजातिमें विकसित थी। इसी सात्त्विक शक्तिसे अगरेज बलवान् थे, इसी सात्त्विक शक्तिके क्षीण होनेसे अंगरेजोंका प्राधान्य, तेज और विक्रम क्षीण हो रहा है और बढ रहा है भय, विषाद और आत्मशक्तिपर अविश्वास। सात्त्विक लक्ष्यसे भ्रष्ट हो उनकी रजःशक्ति तमोमुखी हो रही है। दूसरी ओर

भारतवासी महान् सात्त्विक थे; उसी सात्त्विक वलसे ज्ञान, शौर्य, तेज और वलमें वे अतुलनीय हो रहे थे और एकताविहीन होनेपर भी हजारो वर्षोंसे विदेशी आक्रमणोका प्रतिरोध और दमन करनेमें समर्थ थे। अंततः उनमे रज शक्तिकी वृद्धि और सत्त्वका ह्रास होने लगा। मुसलमानोंके आगमनके समय ज्ञानका विस्तार सकुचित होना आरभ हो गया था, उस समय रज प्रधान राजपूत-जाति भारतके सिंहासनपर आसीन थी; उत्तर भारतमें युद्ध-विग्रह, गृह-कलहका प्राधान्य था, वगदेशमें वौद्धधर्मकी अवनति होनेसे तामसिक भाव प्रवल हो रहा था। अध्यात्मज्ञानने दक्षिणमें आकर आश्रय लिया था; उसी सत्त्ववलसे दक्षिण भारत वहुत दिनोतक अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें समर्थ हुआ था। धीरे-धीरे ज्ञानपिपासा और ज्ञानकी उन्नति बद हो चली, उसके स्थानपर पाडित्यका सम्मान और गौरव वढ गया, आध्यात्मिक ज्ञान, योगशक्तिके विकास और आतरिक उपलब्धिके स्थानपर तामसिक पूजा और सकाम राजसिक व्रतोद्यापनका वाहुल्य होने लगा, वर्णाश्रमधर्म लुप्त होनेपर लोग वाह्य आचार और क्रियाको अधिक मूल्यवान् समझने लगे। इसी तरह राष्ट्रधर्मका लोप हो जानेसे ग्रीस, रोम, मिस्र, असीरिया आदिकी मृत्यु हुई; किंतु सनातनधर्मावलम्वी आर्यजातिके अदर उसी सनातन मूल स्रोतसे वीच-वीचमें सजीवनी सुधाधारा निर्गत हो जातिकी प्राणरक्षा करती थी। शकर, रामानुज, चैतन्य, नानक, रामदास, तुकारामने उसी अमृतका सिंचन कर मरणाहत भारतमें प्राणका सचार किया था। फिर भी रज. और तमः के स्रोतमें इतना वल था कि उसके वहावमें पड उत्तम भी अधम वन गया; साधारण लोग शकरप्रदत्त ज्ञानद्वारा तामसिक भावका समर्थन करने लगे, चैतन्यका प्रेमधर्म घोर तामसिक निश्चेष्टताका आश्रयस्थल वन गया, रामदासकी शिक्षा पाये हुए महाराष्ट्रियोने महाराष्ट्र-धर्मको भूल, स्वार्थसाधन और गृहकलहमें अपनी शक्तिका अपव्यय कर, शिवाजी तथा वाजीरावद्वारा प्रतिष्ठित साम्राज्यको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। अठारहवी शताव्दीमें इस स्रोतका पूर्ण वेग दिखायी दिया था। समाज और धर्म उस समय कुछ विधानदाताओंकी क्षुद्र सीमामें आवद्ध था, वाहरी आचार और क्रियाका आडम्वर धर्मके नामसे अभिहित था, आर्यज्ञान लुप्तप्राय हो गया था और आर्यचरित्र नष्टप्राय। सनातन धर्म समाजका परित्याग कर सन्यासीकी अरण्यकुटी और भक्तके हृदयमें जा छिपा था। भारत उस समय घोर तमके अधकारसे आच्छन्न था। प्रचण्ड राजसिक प्रवृत्ति वाहरी धर्मके परदेकी आडमे स्वार्थ, पाप, देशका अमगल, दूसरोका अनिष्ट पूर्ण वेगके साथ साधित कर रही थी। देशमें

शक्तिका अभाव नही था, परतु आर्यधर्मका, सत्त्वका लोप हो जानेसे वह शक्ति आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ हो आत्मविनाशको प्राप्त हुई। अतमें अगरेजोकी आसुरिक शक्तिसे पराजित हो भारतकी आसुरिक शक्ति शृखलित और मुमूर्षु हो गयी। भारत पूर्ण तमोभावकी गोदमें सो गया। अप्रकाश, अप्रवृत्ति, अज्ञान, अकर्मण्यता, आत्मविश्वासका अभाव, आत्मसम्मानका विसर्जन, दासत्वप्रियता, परधर्मसेवा, परानुकरण, पराश्रय ग्रहण कर आमोन्नतिकी चेष्टा, विषाद, आत्मनिंदा, क्षुद्राशयता, आलस्य इत्यादि सभी हैं तमोभाव-सूचक गुण। उन्नीसवी शताब्दीके भारतमें इन सब गुणोमेंसे किस गुणका अभाव था? उस शताब्दीके सभी प्रयास इन गुणोंके प्रावल्यके कारण तम शक्तिके चिह्नसे सर्वत्र चिह्नित हैं।

भगवान्ने जब भारतको जगाया तब उस जागरणके प्रथम आवेगसे राष्ट्रीय भावके उद्दीपनकी ज्वालामयी शक्ति राष्ट्रकी शिरा-शिरामें द्रुततर वेगसे प्रवाहित होने लगी। उसके साथ-साथ स्वदेशप्रेमके उन्मत्तकारी आवेगने युवकोको अभिभूत कर दिया। हम पाश्चात्य जाति नही, हम एशियावासी हैं, हम भारतवासी हैं, हम आर्य है। हमने राष्ट्रीय भाव प्राप्त किया है, किंतु उसमें स्वदेशप्रेमका सचार हुए बिना, हमारा राष्ट्रीय भाव प्रस्फुटित नही होगा। उस स्वदेशप्रेमका आधार है मातृपूजा। जिस दिन वकिमचद्रका 'वन्दे मातरम्' गान वाह्येन्द्रियको अतिक्रम कर हमारे प्राणोमें गूंज उठा उसी दिन हमारे हृदयमें स्वदेशप्रेम जाग उठा, मातृ-मूर्ति प्रतिष्ठित हो गयी। स्वदेश है माता, स्वदेश है भगवान्, यही वेदात-शिक्षान्तर्गत महती शिक्षा है राष्ट्रीय अभ्युत्थानका बीज। जैसे जीव भगवान्का अश है, उसकी शक्ति भगवान्की शक्तिका अश है, वैसे ही यह सात कोटि वगवासियोका, तीस कोटि भारतवासियोका समुदाय है सर्वव्यापी वासुदेवका अश, इन तीस कोटि मनुष्योकी आश्रयदायिनी, शक्ति-स्वरूपिणी, वहुभुजान्विता, वहुवलधारिणी भारतजननी भगवान्की एक शक्ति है, माता, देवी, जगज्जननी कालीकी देहविशेष हैं। इसी मातृप्रेम, मातृमूर्तिको राष्ट्रके मन और प्राणमें जागरित और प्रतिष्ठित करनेके लिए इन कुछ वर्षोकी उत्तेजना, परिश्रम, कोलाहल, अपमान, लाछना और निर्यातनका विधान भगवदिच्छाके अनुसार हुआ था। वह कार्य पूरा हो गया है। और इसके वाद?

इसके वाद होगा आर्यजातिकी सनातन शक्तिका पुनरुद्धार। पहला, आर्यचरित्र और आर्यशिक्षा, दूसरा, योग-शक्तिका पुनर्विकास, तीसरा, आर्योचित ज्ञानपिपासा और कर्म-शक्तिद्वारा नवयुगके लिए आवश्यक

सामग्रीका सचय और इन कुछ वर्षोकी उन्मादिनी उत्तेजनाको सुश्रृंखलित कर और स्थिर लक्ष्यकी ओर मोड मातृकार्यका सम्पादन। आजकल देशभरमें जो युवक पथान्वेषण और कर्मान्वेपण कर रहे हैं वे उत्तेजनाको अतिक्रम कर कुछ दिनोतक शक्तिसंचय करनेका पथ ढूंढ निकालें। जो महत् कार्य सपन्न करना है वह केवल उत्तेजनाद्वारा सपादित नही हो सकता, उसके लिए चाहिये शक्ति। तुम्हारे पूर्वपुरुषोकी शिक्षासे जो शक्ति प्राप्त होती है वही शक्ति है अघटनघटनपटीयसी। वह शक्ति तुम्हारे शरीरमें अवतरित होनेके लिए उद्यत हो रही है। माँ ही है वह शक्ति। उन्हें आत्मसमर्पण करनेका उपाय सीख लो। माँ तुम लोगोको यन्त्र बना इतना शीघ्र, इतने बलके साथ कार्य सपन्न करेंगी कि जगत् स्तंभित हो उठेगा। उस शक्तिके अभावमें तुम्हारे सारे प्रयास विफल हो जायेंगे। मातृमूर्ति तुम्हारे हृदयमें प्रतिष्ठित है, तुमने मातृपूजा और मातृसेवा करना सीख लिया है, अब अंतर्निहित माताको आत्मसमर्पण करो। कार्यसिद्धिका दूसरा कोई पथ नही।

देश और राष्ट्रीयता

देश ही है राष्ट्रीयताकी प्रतिष्ठा-भूमि, राष्ट्र नही, धर्म नही, और कुछ भी नही, एकमात्र देश। राष्ट्रीयताके और सव उपकरण गौण है पर है उपयोगी, देश ही है मुख्य और आवश्यक। बहुत-सी परस्पर-विरोधी जातिया एक देशमें निवास करती हैं, उनमें कभी भी सद्भाव, एकता, मैत्री नही थी, परन्तु इसमें भय क्या? जव एक देश, एक मा है तव एक दिन एकता आकर ही रहेगी, अनेक जातियोंके मिलनेसे एक वलवान् अजेय राष्ट्र उत्पन्न होगा ही। धर्ममत एक नही है, संप्रदाय-सप्रदायमें चिर-विरोध है, मेल नही, मेलकी आशा भी नही है, फिर भी भयकी कोई बात नही, एक दिन स्वदेश-मूर्तिधारिणी माके प्रबल आकर्षण-से, छल, वल, साम, दण्ड और दानसे मेल होकर ही रहेगा, सांप्रदायिक विभिन्नता भ्रातृभावमें, मातृप्रेममें डूब जायगी। एक देशमें विभिन्न भाषाए हैं, भाई-भाईकी वात समझनेमें असमर्थ है, हम एक दूसरेके भावमें प्रवेश नही कर पाते, हृदयमें हृदयके आबद्ध होनेके पथमें अभेद्य प्राचीर खडी हुई है, बडे कष्टसे उसे पार करना होता है, फिर भी डरनेकी कोई बात नही; एक देश, एक जीवन, एक विचारकी धारा सबके मनमें प्रवाहित है, प्रयोजनकी प्रेरणासे साधारण भाषाकी सृष्टि होगी ही, या तो वर्तमान किसी भाषाका आधिपत्य स्वीकृत होगा या एक नयी भाषाकी सृष्टि होगी, मांके मंदिरमें सव उसी भाषाका व्यवहार करेंगे। इन सब बाधाओंसे कार्य हमेशाके लिए नही रुका करता, माका प्रयोजन, माका आकर्षण, माके प्राणोकी कामना विफल नही होती, वह सभी बाधाओ और सभी विरोधो-को अतिक्रम करती है, विनष्ट करती है, विजयी होती है। एक माके गर्भसे जन्म हुआ है, एक माकी गोदमें निवास करते है, एक माके पचभूत-में मिल जाते हैं, आतरिक सहस्र विवाद होनेपर भी माकी पुकारपर हम एक हो जायंगे। यही है प्राकृतिक नियम, सभी देशोंके इतिहासकी शिक्षा, देश ही है राष्ट्रीयताकी प्रतिष्ठा-भूमि; वह सवंध अव्यर्थ है, स्वदेश रहने-

पर राष्ट्रीयताका आना अवश्यंभावी है। एक देशमें दो जातियां चिरकाल नही रह सकतीं, मिलन होगा ही। दूसरी ओर यदि एक देश न हो, जाति, धर्म, भाषा एक हो भी तो उससे कोई लाभ नही, एक दिन एक स्वतंत्र जातिकी सृष्टि होकर ही रहेगी। अलग-अलग देशोंको युक्त कर एक बृहत् साम्राज्य बनाया जा सकता है, पर एक बृहत् राष्ट्र नही बनाया जा सकता। साम्राज्य-ध्वंस हो जानेपर फिरसे स्वतंत्र राष्ट्र उत्पन्न होता है, कई बार वह अतर्निहित स्वाभाविक स्वतंत्रता ही साम्राज्य-नाशका कारण बनती है।

परंतु यह फल अवश्यभावी होनेपर भी मनुष्यके प्रयाससे, मनुष्यकी बुद्धिसे या बुद्धिके अभावसे वह अवश्यभावी प्राकृतिक क्रिया देर या सवेर फलवती होती है। हमारे देशमें कभी भी एकता नही रही किंतु चिरकाल एकताकी ओर एक झुकाव था, प्रवाह था, हमारे इतिहासमें भारतके विभिन्न अंगोंने एक-दूसरेको आकृष्ट किया। इस प्राकृतिक प्रयासकी कुछ प्रधान बाधाएं थीं; पहली बाधा थी प्रादेशिक विभिन्नता, दूसरी थी हिन्दू-मुसलमानका विरोध और तीसरी थी मातृदर्शनका अभाव। देशका बृहत् आकार, यातायातमें कठिनाई और विलंब, भाषाकी विभिन्नता हैं प्रादेशिक विभिन्नताके प्रधान सहायक। शेषोक्त बाधाके अतिरिक्त अन्य सभी बाधाएं आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओंसे निस्तेज पड गयी है। हिन्दू-मुसलमान-का विरोध होनेपर भी अकबर भारतको एक करनेमें समर्थ हुए थे, यदि औरंगजेब निकृष्ट बुद्धिके वश न होता तो कालके माहात्म्यसे, अभ्याससे, विदेशी आक्रमणके भयसे, इंगलैंडके कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टोंकी तरह भारत-में भी हिन्दू और मुसलमान सदाके लिए एक हो जाते। औरंगजेबकी बुद्धिके दोषसे और कुछ आधुनिक कूटबुद्धि अंगरेज राजनीतिज्ञोंके उकसाने-से वह विरोध प्रज्वलित हो अब बुझना ही नही चाहता। परंतु प्रधान बाधा है मातृदर्शनका अभाव। हमारे प्रायः सभी राजनीतिज्ञ माके संपूर्ण स्वरूपका दर्शन करनेमें असमर्थ थे। रणजीत सिंह या गुरु गोविन्दने भारतमाताको न देख पंचनद-माताको देखा था। शिवाजी और बाजीरावने भारतमाताको न देख हिन्दुओंकी माताको देखा था। अन्यान्य महा-राष्ट्रीय राजनीतिज्ञोंने महाराष्ट्र-माताको देखा था। हमने भी बंग-भंगके समय बंगमाताका दर्शन किया था—वह दर्शन अखंड दर्शन था, अतएव बंगदेशकी भावी एकता और उन्नति अवश्यभावी है, किंतु भारतमाताकी अखंड मूर्ति अभी भी प्रकट नहीं हुई है। कांग्रेसमें हम नाना स्तव-स्तोत्र-द्वारा जिस भारतमाताकी पूजा करते थे वह कल्पित थी, अंगरेजोंकी

सहचरी और प्रिय दासी, म्लेच्छवेशभूषासज्जित दानवी माया थी, वह हमारी मा नही थी, उसके पीछे निविड़ अस्पष्ट आलोकमें छिपी हमारी सच्ची मा मन-प्राणको आकर्षित करती थी। जिस दिन हम अखडस्वरूप मातृ-मूर्तिके दर्शन करेंगे, उसके रूप-लावण्यसे मुग्ध हो उसके कार्यमें जीवन उत्सर्ग करनेके लिए उन्मत्त हो उठेंगे, उस दिन वह बाधा तिरोहित हो जायगी, भारतकी एकता, स्वाधीनता और उन्नति सहजसाध्य हो जायगी। तब भाषा-भेदसे कोई बाधा उपस्थित नही होगी, सभी अपनी-अपनी मातृ-भाषाकी रक्षा करते हुए साधारण भाषाके रूपमें हिन्दीभाषाको ग्रहण कर उस बाधाको दूर करेंगे। हम हिन्दू-मुसलमानके भेदकी वास्तविक मीमांसा कर सकेंगे। मातृदर्शनके अभावमें उस बाधाको दूर करनेकी बलवती इच्छा न होनेसे ही कोई उपाय नही सूझता, विरोध तीव्र होता जा रहा है। किंतु अखण्ड स्वरूप चाहिये, यदि हम केवल हिन्दूकी माता, हिन्दू राष्ट्रीयताकी नीवके रूपमें मातृदर्शनकी आकांक्षाका पोषण करें तो फिर उसी पुराने भ्रममें पतित हो राष्ट्रीयताके पूर्ण विकाससे वंचित रह जायंगे।

स्वाधीनताका अर्थ

हमारी राजनीतिक चेष्टाका उद्देश्य है स्वाधीनता, परंतु स्वाधीनता है क्या, इसमें मतभेद है। कोई स्वायत्त शासनको स्वाधीनता कहता है, कोई औपनिवेशिक स्वराज्यको तो कोई सपूर्ण स्वराज्यको। आर्य ऋषि सपूर्ण व्यावहारिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता और उसके फलस्वरूप अक्षुण्ण आनदको स्वराज्य कहा करते थे। राजनीतिक स्वाधीनता है स्वराज्यका एक अगमात्र—उसके दो पक्ष है, बाह्य स्वाधीनता और आतरिक स्वाधीनता। विदेशी शासनसे पूर्ण मुक्ति है बाह्य स्वाधीनता, प्रजातंत्र है आंतरिक स्वाधीनताका चरम विकास। जबतक दूसरेका शासन या राज्य रहता है तबतक किसी राष्ट्रको स्वराज्यप्राप्त स्वाधीन राष्ट्र नही कहा जाता। जबतक प्रजातत्र नही स्थापित हो जाता तबतक राष्ट्रके अतर्गत प्रजाको स्वाधीन मनुष्य नही कहा जाता। हम चाहते हैं पूर्ण स्वाधीनता, विदेशी आदेश और बधनसे पूर्ण मुक्ति और अपने घरमें प्रजाका पूर्ण आधिपत्य, यही है हमारा राजनीतिक लक्ष्य।

इस आकाक्षाका कारण सक्षेपमें बतलायेंगे। जातिके लिए पराधीनता है मृत्युका दूत और आज्ञा-वाहक, स्वाधीनतामें ही है जीवन-रक्षा, स्वाधीनतामें ही है उन्नतिकी सभावना। स्वधर्म अर्थात् स्वभावनियत जातीय कर्म और प्रयास है जातीय उन्नतिका एकमात्र पथ। विदेशी यदि देशको अधिकृत कर अत्यत दयालु और हितैषी भी बनं रहें तो भी वे हमारे सिरपर परधर्मका बोझ लादे बिना नही छोड़ेंगे। उनका उद्देश्य चाहे भला हो या बुरा, उससे हमारा अहित ही होगा, हित नही। दूसरेके स्वभावनियत पथपर चलनेकी शक्ति और प्रेरणा हममें नही है, उस पथपर चलनेसे हम बहुत सुन्दर रूपमें उसका अनुकरण कर सकते हैं, उसकी उन्नतिके लक्षण और वेशभूषामें बड़ी दक्षताके साथ अपनी अवनतिको आच्छादित कर सकते हैं, परतु परीक्षाके समय परधर्मसेवासे उत्पन्न हमारी दुर्बलता और असारता प्रकाशित होगी। हम भी उस असारतावश विनाश-

को प्राप्त होंगे। रोमके आधिपत्यमें रहकर रोमकी सभ्यता प्राप्त कर यूरोपकी प्राचीन राष्ट्रोंने बहुत दिनोतक सुख-स्वच्छन्दतासे जीवन यापन तो किया, परतु उनकी अतिम अवस्था बडी भयानक हुई, मनुष्यत्वके विनाशसे उनकी जो घोर दुर्दशा हुई, वही मनुष्यत्व-विनाश और घोर दुर्दशा प्रत्येक पराधीनतापरायण राष्ट्रके लिए अवश्ययभावी है। पराधीनताका प्रधान आधार है जातिका स्वधर्मनाश और परधर्मसेवा। यदि पराधीन अवस्थामें हम स्वधर्मकी रक्षा या स्वधर्मको पुनरुज्जीवित कर सकें तो फिर पराधीनताका बधन अपने-आप खुल जायगा—यह है अलघनीय प्राकृतिक नियम। अतएव यदि कोई राष्ट्र अपने दोषसे पराधीनतामें जा पडे तो अविकल और पूर्णाग स्वराज्य ही होना चाहिये उसका प्रथम उद्देश्य और राजनीतिक आदर्श। औपनिवेशिक स्वायत्त शासन स्वराज्य नही, पर, यदि विना शर्त पूरा-पूरा अधिकार दिया जाये और राष्ट्र आदर्शभ्रष्ट और स्वधर्मभ्रष्ट न हो तो वह स्वराज्यकी अनुकूल और पूर्ववर्ती अवस्था हो सकता है। आजकल यह वात उठी है कि व्रिटिश साम्राज्यसे वाहर स्वाधीनताकी आशा करना है धृष्टताका परिचायक और राजद्रोहका सूचक। जो औपनिवेशिक स्वायत्त शासनसे सतुष्ट नही वे निश्चय ही राजद्रोही राष्ट्र-विप्लवी है और सर्वविध राजनीतिक कार्योंसे अलग रखे जाने योग्य है। किंतु उस तरहकी आशा और आदर्शके साथ राजद्रोहका कोई सवध नही। अगरेजी राजत्वके आरभसे ही वडे-वडे अंगरेज राजनीतिज्ञ यह कहते आ रहे है कि उस तरहकी स्वाधीनता अगरेज राजपुरुषोका भी उद्देश्य है, अव भी अगरेज विचारक मुक्त कंठसे कह रहे हैं कि स्वाधीनताके आदर्शका प्रचार और स्वाधीनता प्राप्त करनेकी वैध चेष्टा कानूनन उचित और दोषरहित है। किंतु हमारी स्वाधीनता व्रिटिश साम्राज्यसे वाहर या उसके भीतर रहकर होगी—इस प्रश्नकी मीमासा राष्ट्रीय दल कभी आवश्यक नही समझता। हम पूर्ण स्वराज्य चाहते हैं। यदि व्रिटिश एक ऐसे युक्त साम्राज्यकी व्यवस्था करे जिसके अंतर्गत भारतवासी वैसा ही स्वराज्य पा सकें तो फिर उसमें आपत्ति ही क्या? अंग्रेजोंके प्रति विद्वेष होनेके कारण हम स्वराज्यकी चेष्टा नही कर रहे, देशकी रक्षाके लिए कर रहे हैं। परतु हम पूर्ण स्वराज्यके अतिरिक्त अन्य किसी आदर्शको स्वीकार कर देशवासियोको मिथ्या राजनीति और देशरक्षाका गलत मार्ग दिखानेके लिए प्रस्तुत नही।

समाज

मनुष्यका जन्म समाजके लिए नही, समाज मनुष्यके लिए सृष्ट हुआ है। जो मनुष्यके अन्तरस्थ भगवान्को भूल समाजको बड़ा बना देते हैं वे अपदेवताकी पूजा करते हैं। अथवा समाज-पूजा मनुष्य-जीवनकी कृत्रिमताका लक्षण है, स्वधर्मकी विकृति है।

मनुष्य समाजका नही, मनुष्य है भगवान्का। जो समाजकी दासता, समाजकी अनेक बाह्य शृखलाओको मनुष्यकी आत्मा, मन और प्राणपर लाद उसके अत स्थ भगवान्को खर्व करनेकी चेष्टा करते है, वे मनुष्य-जातिके यथार्थ लक्ष्यको खो बैठे हैं। इस अत्याचारके दोषके कारण अत-र्निहित देवता जागृत नही होते; शक्ति भी सो जाती है। दासत्व ही यदि करना हो तो समाजका नही, भगवान्का दास्य स्वीकार करो। उस दास्यमें माधुर्य भी है, उन्नति भी। परम आनद, बधनमें भी मुक्ति और अबाध स्वाधीनता हैं उसका चरम परिणाम।

समाज उद्देश्य नही हो सकता, समाज साधन है, यत्र है। मनुष्यके आत्मप्रणोदित कर्मस्फुरित भगवद्-गठित ज्ञान और शक्ति ही जीवनके सच्चे नियता हैं जिनकी उत्तरोत्तर वृद्धि जीवनके आध्यात्मिक क्रमविकासका उद्देश्य है। यही ज्ञान, यही शक्ति समाज-रूपी यत्रको चलायेगी, समाज-को गठित करेगी, आवश्यकतानुसार बदल भी देगी, यही है स्वाभाविक अवस्था। निश्चल स्थगित समाज मृत मनुष्यत्वकी कब्र बन जाता है, जीवनके स्फुरणसे, ज्ञानशक्तिके विकाससे समाजका भी रूपातर अवश्यंभावी है। समाज-यत्रमें सहस्र बधनोंके अदर असख्य मनुष्योको फेंककर कुचल डालनेसे निश्चलता और अवनति अनिवार्य है।

हमने मनुष्यको छोटा कर समाजको बडा बना दिया है। परन्तु समाज इससे बडा नही बनता, वल्कि क्षुद्र, निश्चल और निष्फल हो जाता है। हमने समाजको उत्तरोत्तर उन्नतिका साधन नही वरन् निग्रह और वधन वना डाला है, यही है हमारी अवनति, निश्चेष्टता, निरुपाय दुर्वलताका

भ्रातृत्व

आधुनिक सभ्यताके जो तीन आदर्श या चरम उद्देश्य फ्रासीसी राष्ट्र-विप्लवके समय प्रचारित हुए थे वे साधारणतः हमारी भाषामें तीन तत्त्वों—स्वाधीनता, साम्य और मैत्री—के नामसे परिचित हैं। परतु पाश्चात्य भाषामें जिसे 'फ्रेटर्निटी' (Fraternity) कहते हैं वह ठीक मैत्री नही। मैत्री मनका भाव है, जो सर्वभूतके कल्याणकी इच्छा करता है, किसीका भी अनिष्ट नही करता, उसी दयावान्, अहिंसापरायण, सर्वभूत-हितरत पुरुषको 'मित्र' कहते हैं, मैत्री है उसके मनका भाव। ऐसा भाव व्यक्तिकी मानसिक संपत्ति होती है—यह व्यक्तिके जीवन और कर्मको नियन्त्रित कर सकता है; पर इस भावका राजनीतिक या सामाजिक शृंखला-का मुख्य बंधन बन सकना असभव है। फ्रासीसी राष्ट्रविप्लवके तीन तत्त्व व्यक्तिगत जीवनके नैतिक नियम नही हैं, बल्कि समाज और देशकी व्यवस्थाको नये रूपमें गठित करनेके उपयुक्त तीन सूत्र हैं, समाजकी, देशकी वाह्य अवस्थितिमें प्रकट होनेवाले प्राकृतिक मूल तत्त्व। 'फ्रेटर्निटी' (Fraternity)का अर्थ है भ्रातृत्व।

फ्रासीसी विप्लवकारी राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता और समता प्राप्त करनेके लिए लालायित थे, भ्रातृत्वपर उनका उतना अधिक ध्यान नही था, भ्रातृत्वका अभाव ही था फ्रासीसी राष्ट्रविप्लवकी अपूर्णता-का कारण। उस अपूर्व उत्थानके फलस्वरूप राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता यूरोपमें प्रतिष्ठित हुई, राजनीतिक साम्यने भी कुछ परिमाणमें, कुछ देशोंके शासनतत्र और कानूनकी पद्धतिको अधिकृत किया। परतु भ्रातृत्वका अभाव होनेपर सामाजिक साम्य प्राप्त नही हो सकता; भ्रातृत्व-के अभावमें यूरोप सामाजिक साम्यसे वचित रह गया। इन तीन मूल तत्त्वोका पूर्ण विकास उनके पारस्परिक विकासपर निर्भर करता है; साम्य है स्वाधीनताका आधार, साम्यके न होनेपर स्वाधीनता प्रतिष्ठित नही हो सकती। साम्यका आधार है भ्रातृत्व, भ्रातृत्वके न होनेपर साम्य प्रतिष्ठित

नही हो सकता। भ्रातृ-भाव होनेपर ही तो भ्रातृत्व रहेगा। यूरोपमें भ्रातृभाव नही, यूरोपमें साम्य और स्वाधीनता कलुषित, अप्रतिष्ठित और असपूर्ण है—इसीलिए तो यूरोपमें गडवड और विप्लव नित्यकी वस्तु वन गये है। इस गोलमालको, विप्लवको यूरोप गर्वके साथ कहता है progress या उन्नति।

यूरोपमें जितना भी भ्रातृभाव है वह है देशपर प्रतिष्ठित—हम एक देशके है, हमारा हिताहित एक है, एकतासे राष्ट्रीय स्वाधीनता निरापद रहती है—यही ज्ञान है यूरोपकी एकताका कारण। उसके विरुद्ध एक और ज्ञान उठ खडा हुआ है, वह है: हम सव मनुष्य है, सव मनुष्योको एक होना चाहिये, मनुष्य-मनुष्यमें भेद अज्ञानसभूत है, अनिष्टकर है; जातीयता भेदका कारण है, राष्ट्रीयता अज्ञानजनित है, अनिष्टकारक है, अतएव राष्ट्रीयताको त्याग मनुष्यजातिका एकत्व प्रतिष्ठित करे। विशेपत. जिस फ्रासमें स्वाधीनता, समता और भ्रातृत्वरूपी महान् आदर्श सवसे पहले प्रचारित हुआ था उसी भावप्रवण देशमें इन दो परस्पर-विरोधी ज्ञानोका सघर्ष चल रहा है। पर वास्तवमें ये दोनो ज्ञान और भाव परस्पर-विरोधी नही। राष्ट्रीयता भी सत्य है और मानवजातिकी एकता भी; इन दो सत्योका सामजस्य होनेमें ही है मानवजातिका कल्याण। यदि हमारी वुद्धि इस सामजस्यको स्थापित करनेमें असमर्थ हो, अविरोधी तत्त्वोंके विरोधमें आसक्त हो तो उस वुद्धिको भ्रात राजसिक वुद्धि कहना होगा।

समताशून्य राजसिक और सामाजिक स्वाधीनतासे ऊव यूरोप आजकल सोशलिज्म (समाजवाद) की ओर दौड़ रहा है। दो दल उत्पन्न हुए हैं—अनार्किस्ट और सोशलिस्ट। अनार्किस्ट (अराजकतावादी) कहते है—यह राजनीतिक स्वाधीनता माया है, गवर्नमेण्टके नामसे वड़े लोगों के अत्याचारका यन्त्र स्थापित कर राजनीतिक स्वाधीनताकी रक्षा करनेके वहाने व्यक्तिगत स्वाधीनताको पददलित करना है इस मायाका लक्षण, अत: सव प्रकारकी सरकारोको उठा दो, सच्ची स्वाधीनता स्थापित करो। कोई सरकार न होनेपर स्वाधीनता और समताकी रक्षा कौन करेगा, वलवान्के अत्याचारका निवारण कौन करेगा? इस आपत्तिके उत्तरमें अनार्किस्ट कहते हैं कि शिक्षा-प्रसारसे पूर्ण ज्ञान और भ्रातृभावका विस्तार करो, ज्ञान और भ्रातृभाव स्वाधीनता और समताकी रक्षा करेंगे, यदि कोई भ्रातृभावका उल्लंघन कर अत्याचार करे तो कोई भी उसे मृत्युदण्ड दे सकता है। सोशलिस्ट यह वात नही कहते; वे कहते हैं कि गवर्नमेण्ट रहे, गवर्नमेण्टकी आवश्यकता है, किंतु समाज और शासनतन्त्रको पूर्णत. साम्य-

पर प्रतिष्ठित करो, अभी समाज और शासनतन्त्रमें जो दोष हैं वे सब संशोधित होंगे, मानवजाति पूर्ण सुखी, स्वाधीन और भ्रातृभावापन्न होगी। इसलिए सोशलिस्ट समाजको एक करना चाहते हैं, व्यक्तिगत सपत्ति न रह यदि समाजकी सपत्ति रहे—जैसे सम्मिलित परिवारकी सपत्ति किसी व्यक्तिकी न हो परिवारकी होती है, परिवार होता है देह और व्यक्ति देहका अग,—तो समाजमें भेद नही रह जायगा, समाज एक हो जायगा।

अनार्किस्टकी भूल यह है कि भ्रातृभाव स्थापित होनेसे पहले ही वह गवर्नमेण्टको नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। पूर्ण भ्रातृभाव स्थापित होनेमें अभी बहुत देर है, इस बीच शासनतन्त्र उठानेका निश्चित फल होगा घोर अराजकताके कारण पशुत्वका आधिपत्य। राजा समाजका केंद्र होता है, शासनतन्त्रकी स्थापनासे मनुष्य पशुत्वको अतिक्रम करनेमें सफल होता है। जब पूर्ण भ्रातृभाव स्थापित होगा तब भगवान् कोई पार्थिव प्रतिनिधि नियुक्त न कर, स्वय पृथ्वीपर राज्य कर सबके हृदयमें सिंहासन बिछा उसपर आसीन होंगे, ईसाइयोका Reign of the Saints—सतोका राज्य, हमारा सत्ययुग स्थापित होगा। मनुष्यजातिने इतनी उन्नति अभी नही की है कि यह अवस्था शीघ्र ही आ सके, इस अवस्थाकी केवल आंशिक उपलब्धि ही संभव है।

सोशलिस्टोकी भूल यह है कि वे भ्रातृत्वपर साम्यको प्रतिष्ठित न कर साम्यपर भ्रातृत्वको प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा करते हैं। साम्यहीन भ्रातृत्व सभव है; भ्रातृत्वहीन साम्य नही टिक सकता, मतभेद, कलह और अधिकारकी उद्दाम लालसासे वह विनष्ट हो जायगा। पहले पूर्ण भ्रातृत्व फिर पूर्ण साम्य।

भ्रातृत्व है बाहरकी अवस्था—अगर हम भ्रातृभावसे रहें, यदि सबकी एक सपत्ति, एक हित, एक प्रयास हो तो वह कहलायेगा भ्रातृत्व। बाहरकी अवस्था अतरके भावपर प्रतिष्ठित होती है। भ्रातृप्रेमसे भ्रातृत्व सत्य और सजीव हो उठता है। उस भ्रातृप्रेमका भी एक आधार होना चाहिये। हम एक माकी सतान हैं, देशभाई हैं—यह भाव है एकरूप भ्रातृप्रेमका आधार; इस भावसे राजनीतिक एकता तो आ सकती है पर सामाजिक एकता नही। और भी गभीर स्थानमें प्रवेश करना होगा, जैसे अपनी माको अतिक्रम कर हम सब देशभाइयोकी माकी उपासना करते हैं, वैसे ही देशको अतिक्रम कर जगज्जननीकी उपलब्धि करनी होगी। खण्ड शक्तिको अतिक्रम कर पूर्ण शक्तितक पहुचना होगा। किंतु, जिस तरह भारतजननीकी उपासना करनेके लिए हम शरीरकी जननीको अतिक्रम करके भी

उसे भूल नही जाते, उसी तरह जगज्जननीकी उपासना करनेके लिए हम भारतजननीको अतिक्रम करके भी उसे भूल नही जायगे। वे भी काली हैं—वे भी मां हैं।

धर्म ही है भ्रातृभावका आधार। सभी धर्म यह बात कहते हैं कि हम एक हैं, भेद अज्ञानसे, द्वेषसे उत्पन्न हुआ है; प्रेम है सभी धर्मोंकी मूल शिक्षा। हमारा धर्म भी कहता है कि हम सब एक हैं, भेदबुद्धि अज्ञान-का लक्षण है, ज्ञानी सबको समान दृष्टिसे देखते हैं, सबके अदर एक आत्माके, समभावसे प्रतिष्ठित एक नारायणके दर्शन करते हैं। इसी भक्ति-पूर्ण समतासे विश्वप्रेमकी उत्पत्ति होती है। किंतु यह ज्ञान मानवजातिके परम गतव्य स्थान, हमारी अतिम अवस्थामें जाकर सर्वव्यापी होगा, इस बीच हमें उसकी आशिक अनुभूति ही प्राप्त करनी होगी—भीतर, बाहर, परिवारमें, समाजमें, देशमें, सर्वभूतमें। मनुष्यजाति परिवार, कुल, देश, सप्रदाय इत्यादिकी सृष्टि कर शास्त्र या नियमके बधनद्वारा उसे दृढ़ बना इस भ्रातृत्वका स्थायी आधार स्थापित करनेका प्रयास सदासे करती आ रही है। अबतक यह प्रयास विफल ही रहा है। प्रतिष्ठा है, आधार हैं, किंतु चाहिये भ्रातृत्वकी प्राणरक्षक कोई अक्षय शक्ति जिससे वह प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रहे, वह आधार चिरस्थायी बना रहे या नित्य नया होता रहे। भगवान्ने अभीतक उस शक्तिको प्रकट नही किया है। वे राम, कृष्ण, चैतन्य, रामकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हो मनुष्यके कठोर स्वार्थपूर्ण हृदय-को प्रेमका उपयुक्त पात्र बनानेके लिए तैयार करते आ रहे हैं। कब आयेगा वह दिन जब वे फिरसे अवतीर्ण हो चिरप्रेमानदको मानवहृदयमें सचारित और प्रस्थापित कर पृथ्वीको स्वर्गतुल्य बनायेंगे?

भारतीय चित्रविद्या

आज पाश्चात्य और प्राच्य सभी राष्ट्र यह स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए हैं कि हमारी यह भारतजननी थी ज्ञानका, धर्मका, साहित्य-का, शिल्पका अक्षय भंडार। किंतु पहले यूरोपकी यह धारणा थी कि जितनी ऊची कोटिका हमारा साहित्य और शिल्प था उतनी उत्कृष्ट भारतीय चित्रविद्या नही थी, वरन् वह थी जघन्य, सौन्दर्यहीन। हम भी पाश्चात्य ज्ञानसे ज्ञानी बन, अपनी आखोपर यूरोपीय चश्मा चढा, भार-तीय चित्र और स्थापत्यको देखते ही नाक सिकोड़ लेते थे और इस तरह अपनी मार्जित बुद्धि और दोषरहित रुचिका परिचय देते थे। हमारे धनियोंके घर ग्रीक प्रतिमाओ और अंगरेजी चित्रोंके cast या निर्जीव अनुकरणसे भर गये, साधारण लोगोंके घरोकी दिवालें जघन्य तैलचित्रोसे सुसज्जित होने लगी। जिस भारतीय जातिकी रुचि और शिल्प चातुरी जगत्में अनुपम थी, वर्ग और रूपको ग्रहण करनेमें जिस भारतीय जातिकी रुचि स्वभावतः ही निर्दोष थी, उसी जातिकी आखें अंधी हो गयी, बुद्धि भाव ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गयी, रुचि इटलीके कुली-मजदूरोकी रुचिसे भी हीन हो गयी। राजा रविवर्मा भारतके श्रेष्ठ चित्रकारके रूपमें विख्यात हो गये। सम्प्रति कुछ रसज्ञ व्यक्तियोंके प्रयाससे भारतवासियो-की आखें खुल रही हैं, उन्होने अपनी क्षमता, अपना ऐश्वर्य समझना आरभ कर दिया है। श्रीयुत अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी असाधारण प्रतिभाकी प्रेरणा-से अनुप्राणित हो कुछ युवक लुप्त भारतीय चित्रकलाका पुनरुद्धार कर रहे हैं, उनकी प्रतिभाके गुणसे बगालमें (साथ ही भारतमें भी) नवीन युगके लक्षण दिखायी दे रहे हैं। इसके बाद, आशा है, भारत अगरेजोकी आखो-से न देख अपनी आखोसे देखेगा, पाश्चात्यका अनुकरण छोड अपनी प्राजल बुद्धिपर निर्भर रह फिरसे चित्रित रूप और वर्णद्वारा अपना सनातन भाव व्यक्त करेगा।

भारतीय चित्रविद्याके प्रति पाश्चात्य लोगोकी अरुचिके दो कारण हैं।

हिरोवूमि इतो*

मानवजातिमें दो प्रकारके जीव जन्म ग्रहण करते हैं। जो धीरे-धीरे क्रमविकासके स्रोतमें अग्रसर हो अन्तर्निहित देवत्वको प्रकट करते हैं वे हैं साधारण मनुष्य। जो इस क्रम विकासके सहायतार्थ विभूति-रूपमें जन्म ग्रहण करते हैं—वे होते हैं इनसे पृथक्। इस दूसरे प्रकारके जीव जिस राष्ट्र या युगमें अवतरित होते हैं, वे उस राष्ट्रके चरित्र और आचार तथा उस युगके धर्मको ग्रहण करते हुए, ईश्वरीय शक्ति और स्वभावके बलसे ऐसे कर्म करते है जो साधारण मनुष्यके लिए असाध्य हैं, और इस प्रकार जगत्की गति किंचित् परिवर्तित कर इतिहासमे अमर नाम छोड निज धामको लौट जाते है। उनके कर्म और चरित्र होते हैं मनुष्यकी प्रशसा या निन्दाके परे। हम प्रशंसा करें या निन्दा, वे भगवान्के सौंपे कार्यको कर गये। उसी कार्यद्वारा मानवजातिका भविष्य नियन्त्रित हो अपने निर्दिष्ट पथपर द्रुत-गतिसे प्रवाहित होगा। सीजर, नेपोलियन, अकवर और शिवाजी थे इसी प्रकारकी विभूतियाँ। जापानके महापुरुष हिरोवूमि इतो भी इसी श्रेणी-के अन्तर्गत हैं और ऊपर मैंने जिन नामोका उल्लेख किया है उनमेंसे एक भी गुणमें, प्रतिभामें या कर्मके महत्त्व और भावी फलके हिसाबसे इतोकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ नही थे। इतोका इतिहासमें और जापानके अभ्यु-दयमें प्रधान स्थान है इसे सभी जानते हैं, किन्तु इसे शायद सब न जानते हो कि इतोने ही जापानके इस अभ्युदयके क्रम, साधन और उद्देश्यकी उद्-भावना कर, अन्ततक अकेले ही, इस महान् परिवर्तनको सिद्ध किया है। जापानके और सभी महापुरुष थे उनके हाथके यन्त्रमात्र। इतोने ही जापानकी एकता और स्वाधीनता, जापानका विद्याबल, सैन्यबल, नौसेना-बल, अर्थबल, वाणिज्य और राजनीतिकी कल्पना कर कार्यमें परिणत किया

---

* देखिये परिशिष्ट "कोरिया और जापान"। — अनु०

था। वे ही भावी जापानके साम्राज्यको तैयार कर रहे थे। परन्तु उन्होंने जो कुछ किया वह प्राय: परदेके पीछे रहकर। जर्मनीके कैसर विलियम या इंगलैंडके लायड जार्ज जो कुछ करते, जो कुछ सोचते हैं उसे सारा ससार तुरत ही जान जाता है। परन्तु इतो जो कुछ सोचते थे, जो कुछ करते थे, उसे कोई भी नही जान पाता था—जब उनकी निभृत कल्पना और चेष्टा फलीभूत हुई तब जगत् विस्मित हो समझ सका कि इतने दिनोंतक क्या तैयार हो रहा था। कैसा प्रकांड कार्य, कैसी अद्‌भुत प्रतिभा उस कार्यसे प्रकट हो रही है! यदि इतो अपनी कल्पनाओं-को अपने ही हाथोसे कार्यमें परिणत करनेके अभ्यासी होते तो सारा संसार बात-बातमें उन्हें उन्मत्त, असाध्यसाधनप्रयासी और व्यर्थस्वप्नविलासी कहकर उनकी हसी उडाता। इस बातपर भला किसे विश्वास होता कि पचास वर्षोंमें ही जापान अपनी दुर्लभ स्वाधीनताकी रक्षा करता हुआ समस्त पाश्चात्य सभ्यताको आयत्त कर लेगा, इगलैंड, जर्मनी और फ्रासके समकक्ष एक प्रबल पराक्रमशाली राष्ट्र बन जायेगा, चीनको पराजित करेगा, रूस-को पराभूत करेगा, दूर देश-विदेशोमें जापानी वाणिज्य, जापानी चित्रकला, जापानी बुद्धिकी प्रशसा और जापानी साहसके भयका विस्तार करेगा, कोरियापर अधिकार करेगा, फारमोसाको दखल करेगा, वृहत् साम्राज्यकी भित्ति स्थापित करेगा; एकता, स्वाधीनता, साम्य और राष्ट्रीय शिक्षाकी चरम उन्नति साधित करेगा? नेपोलियन कहा करते थे—"मैंने 'असाध्य' शब्दको अपने कोषसे निकाल दिया है।" इतोने यह बात कही तो नही पर इसे कार्यमें परिणत कर दिखाया। इतोका कार्य नेपोलियनके कार्यसे महान् है, ऐसे महापुरुष किसी हत्यारेकी गोलीसे मारे गये इसमें दु:ख मानने-की कोई बात नही। जिसने जापानके लिए प्राणोका उत्सर्ग किया, जापान ही जिसके चिन्तनका विषय रहा, जापान ही जिसका उपास्य देवता था उसने जापानके लिए प्राणत्याग किया, यह है बडे ही सुख, सौभाग्य और गौरवकी बात।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

हिरोबूमि इतोके भाग्यसे ये दो परम फल एक ही जीवनवृक्षमें फले।

राष्ट्रीय उत्थान

हमारे प्रतिपक्षी अगरेज हमारे वर्तमान महत् और सर्वव्यापी आंदोलनके विषयमें आरभसे ही कहते आ रहे हैं कि यह विद्वेषके कारण उत्पन्न हुआ है और उनके अनुकरणप्रिय कुछ भारतवासी भी इस मतकी पुनरावृत्ति करनेमें त्रुटि नही करते। हम धर्म-प्रचारमें प्रवृत्त हैं; राष्ट्रीय उत्थानस्वरूप आदोलन धर्मका ही एक प्रधान अग है, इसीलिए हम उसमें अपनी शक्ति लगा रहे हैं। यह आदोलन अगर विद्वेषसे उत्पन्न हुआ होता तो इसे धर्मका अग मान हम कभी इसका प्रचार करनेका साहस न करते। विरोध, युद्ध और हत्यातक धर्मका अग हो सकते हैं; किन्तु विद्वेप और घृणा धर्मके बाहरकी चीज हैं; विद्वेष और घृणा जगत्की क्रमोन्नतिके विकासमें वर्जनीय होती हैं, अतएव जो स्वय इन वृत्तियोका पोषण करते है या राष्ट्रमें इन्हें जाग्रत् करनेकी चेष्टा करते हैं वे अज्ञानके मोहमें पड पापको प्रश्रय देते है। हम यह नही कह सकते कि इस आदोलनमें कभी विद्वेष प्रविष्ट हुआ ही नही। जब एक पक्ष विद्वेष और घृणा करता है तब दूसरे पक्षमें भी उसके प्रतिघातमें विद्वेष और घृणाका उत्पन्न होना अनिवार्य है। इस प्रकारके पापकी सृष्टिके दायी है बगालके कतिपय अंगरेजी सवादपत्र और कुछ उद्धतस्वभावके अत्याचारी व्यक्तियोंके आचरण। प्रतिदिन सवाद-पत्रोमें उपेक्षा, घृणा और विद्वेषसूचक तिरस्कार और बहुत समयतक रेलमें, वाटमें, हाटमें, घाटमें गालियां, अपमान और मारपीटतक सहन करते-करते अतमें यह उपद्रव सहिष्णु और धीर-स्वभाव भारतवासियोके लिए भी असह्य हो उठा और 'गालीके वदले गाली और मारके वदले मार'का प्रतिदान आरम्भ हो गया। अनेक अगरेजोने भी अपने देश-भाइयोंके इस दोष और अशुभ दृष्टिके दायित्वको स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त राजपुरुषगण दारुण भ्रमवश वहुत दिनोंसे प्रजाके स्वार्थ-विरोधी, असतोषजनक और मर्मवेदनादायक कार्य करते आ रहे हैं। मनुष्यका स्वभाव है क्रोधप्रवण; स्वार्थमें आघात लगनेपर, अप्रिय आचरणसे या

प्राण-प्रिय वस्तु या भावपर अत्याचार होनेसे वह सर्वप्राणी-निहित क्रोध-वह्नि प्रज्वलित हो उठता है। क्रोधकी अतिशयता और अधगतिसे विद्वेष और विद्वेषजात आचरण भी उत्पन्न होता है। भारतवासियोंके प्राणोंमें बहुत दिनोंसे कुछ विशिष्ट अगरेजोंके अनुचित आचरण और उद्धत बातोंके कारण एव वर्तमान शासनतत्रमें प्रजाका कोई भी सच्चा अधिकार या क्षमता न रहनेके कारण भीतर-ही-भीतर असतोष बढता जा रहा था। अतमें लार्ड कर्जनके शासनकालमें इस असतोषने भीषण मूर्ति धारण कर ली और बग-भग-जात असह्य मर्मवेदनासे असाधारण क्रोध देशभरमें प्रज्वलित हो राजपुरुषोंकी दमननीतिके कारण विद्वेषमें परिणत हो उठा। हम यह भी स्वीकारते है कि बहुतोंने क्रोधसे अधीर हो उस विद्वेषाग्निमें प्रचुरतासे घृता-हुति दी है। भगवान्‌की लीला अति विचित्र है, उनकी सृष्टिमें शुभ और अशुभके द्वन्द्वद्वारा जगत्‌की क्रमोन्नति परिचालित होती है फिर भी अशुभ प्राय. ही शुभकी सहायता करता है, भगवान्‌के अभीप्सित मगलमय फलको समुत्पन्न करता है। इस परम अशुभ-विद्वेष-सृष्टिका भी यह शुभ फल हुआ कि तमोभिभूत भारतवासियोंमें राजसिक शक्तिके जागरणके उपयुक्त उत्कट राजसिक प्रेरणा उत्पन्न हुई। परतु ऐसा कह हम अशुभकी या अशुभकारियोंकी प्रशसा नही कर सकते। जो राजसिक अहकारवश अशुभ कार्य करते हैं उनके कार्यसे ईश्वर-निर्दिष्ट शुभ फलके उत्पन्न होनेमें सहा-यता पहुचती है कहनेसे उनका दायित्व और फलभोगका बधन तनिक भी कम नही हो जाता। जो राष्ट्रगत विद्वेषका प्रचार करते है वे भ्रात हैं; विद्वेषके प्रचारसे जो फल होता है उसका दसगुना फल नि.स्वार्थ धर्मप्रचार-से होता है एवं अधर्मजनित पापफल भोगना नही पडता, बल्कि उससे धर्म-की वृद्धि तथा विशुद्ध पुण्यकी सृष्टि होती है। हम राष्ट्रगत विद्वेष और घृणा-जनक बात नही लिखेंगे, दूसरोंको भी वैसे अनर्थकी सृष्टि करनेसे मना करेंगे। राष्ट्र-राष्ट्रमें स्वार्थका विरोध उत्पन्न होनेपर अथवा वर्त-मान अवस्थाका अपरिहार्य अग बन जानेपर हम कानून और धर्मनीतिके अनुसार परराष्ट्रका स्वार्थ नष्ट करने तथा अपने राष्ट्रका स्वार्थ सिद्ध करनेके अधिकारी है। अत्याचार या अन्यायपूर्ण कार्य घटित होनेपर हम कानून और धर्मनीतिके अनुसार उसका तीव्र उल्लेख करने तथा राष्ट्रीय शक्ति-सघात, सर्वविध वैध उपाय एवं वैध प्रतिरोधद्वारा उसका खण्डन करनेके अधिकारी हैं। कोई व्यक्तिविशेष, चाहे वह राजपुरुष हो या देश-वासी, यदि अमगलजनक, अन्यायपूर्ण और अयौक्तिक कार्य करे या मत प्रकट करे तो हम भद्रसमाजोचित आचारानुकूल विद्रूप और तिरस्कारद्वारा

उस कार्य या उस मतका प्रतिवाद और खण्डन करनेके अधिकारी हैं। परतु किसी जाति या व्यक्तिके लिए विद्वेष या घृणाका पोषण करने या सृष्टि करनेके अधिकारी हम नही। अतीतमें यदि ऐसा दोष हो गया हो तो वह अतीतकी बात है; भविष्यमें यह दोष न घटे इस लिए हम सबको तथा विशेषकर राष्ट्रीय पक्षके समाचारपत्रो और कार्यक्षम युवकोको यह उपदेश देते हैं।

आर्यज्ञान, आर्यशिक्षा, आर्य-आदर्श जड़ज्ञानवादी राजसिक भोगपरायण पाश्चात्य जातिके ज्ञान, शिक्षा और आदर्शसे बिलकुल भिन्न है। यूरोपीय लोगोंके मतानुसार स्वार्थ और सुखान्वेषणके विना कर्म अनाचरणीय है, विद्वेषके विना विरोध और युद्ध होना असभव है। उनकी धारणा है कि या तो सकाम कर्म किया जा सकता है या कामनाहीन सन्यासी बनकर बैठा जा सकता है। उनके विज्ञानका मूलमन्त्र है—जीविकाके लिए सघर्ष-द्वारा जगत् गठित हुआ है, उसीके द्वारा जगत्की क्रमोन्नति साधित हो रही है। जिस दिन आर्योंने उत्तर मेरुसे दक्षिणकी यात्रा कर पचनदभूमिको अधिकृत किया था उसी दिनसे इस सनातन शिक्षाको प्राप्त कर उन्होने सनातन प्रतिष्ठा भी प्राप्त की है कि यह विश्व आनदधाम है, प्रेम, सत्य और शक्तिके विकासके लिए सर्वव्यापी नारायण स्थावर और जगममे, मनुष्य, पशु, कीट और पतगमे, साधु और पापीमे, शत्रु और मित्रमें, देव और असुरमें प्रकट हो जगत्भरमें क्रीडा कर रहे हैं। क्रीडाके लिए ही सुख है, क्रीडाके लिए ही दु ख, क्रीडाके लिए ही पाप है, क्रीडाके लिए ही पुण्य, क्रीडाके लिए ही मित्रता है, क्रीड़ाके लिए ही शत्रुता, क्रीडाके लिए ही देवत्व है, क्रीडाके लिए ही असुरत्व। मित्र-शत्रु सभी क्रीडाके सहचर है, दो दलोमें विभक्त हो उन्होने स्वपक्ष और विपक्षकी सृष्टि की है। आर्य मित्रकी रक्षा करते हैं और शत्रुका दमन, परंतु उनमें आसक्ति नही होती। वे सर्वत्र, सब भूतोमें, सब वस्तुओमें, सभी कर्मों और सभी फलोमें नारायणके दर्शन कर इष्ट-अनिष्ट, शत्रु-मित्र, सुख-दु.ख, पाप-पुण्य, सिद्धि-असिद्धिके प्रति समभाव रखते हैं। परतु इसका यह अर्थ नही कि सब परिणाम उन्हें इष्ट हैं, सब उनके मित्र है, सब घटनाएँ उन्हें सुख देती हैं, सब कर्म उनके लिए आचरणीय हैं, सब फल उनके लिए वाछनीय हैं। पूर्णरूपेण योगकी प्राप्ति हुए बिना द्वन्द्वका नाश नही होता, उस अवस्थाको बहुत कम लोग ही प्राप्त कर पाते हैं, परतु आर्यशिक्षा है साधारण आर्योंकी संपत्ति। आर्य इष्टको साधने और अनिष्टको वर्जित करनेकी चेष्टा करते हैं, परंतु इष्टकी प्राप्तिपर विजय-मदसे मत्त नही हो

जाते और न अनिष्टके घटित होनपर भयभीत ही होते हैं। मित्रकी सहायता करना और शत्रुको पराजित करना उनके प्रयासका उद्देश्य होता है पर वे शत्रुके प्रति विद्वेष और मित्रके प्रति अन्यायपूर्ण पक्षपातका भाव नही रखते, कर्तव्यके लिए वे स्वजनोका सहार भी कर सकते हैं, विपक्षियोकी प्राणरक्षाके लिए प्राणतक त्याग सकते है। सुख उन्हें प्रिय है और दु.ख अप्रिय, फिर भी वे सुखमें अधीर नही होते, दु खमें भी उनकी धीरता और प्रसन्नता अविचलित रहती है। वे पापका त्याग और पुण्यका सचय करते हैं, किंतु पुण्य कर्मके लिए गर्वित नही होते, न पापमें गिर जानेपर दुर्बल बालककी भाँति रोते हैं, बल्कि हँसते-हँसते कीचडसे निकल, कीचभरे शरीरको पोछ, परिष्कृत और शुद्ध हो पुन· आत्मोन्नतिकी चेष्टा करते है। आर्य कार्यसिद्धिके लिए विपुल प्रयास करते हैं, हजार पराजय होनेपर भी पैर पीछे नही हटाते, परतु असिद्धिसे दु.खित होना, विषण्ण या असतुष्ट होना उनके लिए अधर्म है। निस्सदेह, जब कोई मनुष्य योगारूढ हो गुणातीतकी तरह कर्म करनेमें समर्थ होता है तव उसके लिए द्वन्द्वका अत हो जाता है, जगन्माता जो कार्य देती हैं उसे ही वह विना विचारे करता है, जो फल देती हैं उसका ही सानद उपभोग करता है, जिन्हें माँ उसके पक्षमें निर्दिष्ट कर देती हैं उन्हीको ले वह माँका कार्य सपन्न करता है, जिन्हें माँ विपक्षीके रूपमें उसे दिखाती हैं उनका आदेशानुसार दमन या सहार करता है। यही शिक्षा है आर्यशिक्षा। इस शिक्षामें विद्वेष या घृणाका स्थान नही। सर्वत्र नारायण हैं। भला किससे विद्वेष और किससे घृणा? अगर हम पाश्चात्य ढगका राजनीतिक आदोलन करें तो फिर विद्वेष और घृणाका आना अनिवार्य है और यह पाश्चात्य मतानुसार निंदनीय नही, क्योकि स्वार्थका विरोध है, एक ओर उत्थान और दूसरी ओर दमन हो रहा है। परंतु हमारा उत्थान केवल आर्यजातिका उत्थान नही, प्रत्युत आर्यचरित्र, आर्यशिक्षा, आर्यधर्मका उत्थान है। आदोलनकी प्रारभिक अवस्थामें भी यह सत्य अनुभूत हुआ है, मातृपूजा, मातृप्रेम और आर्य अभिमानके तीव्र अनुभवसे धर्मप्रधान द्वितीय अवस्था प्रस्तुत हुई है। राजनीति धर्मका अग है, परतु उसका आचरण आर्य-भावके साथ, आर्य-धर्मानुमोदित उपायसे करना चाहिये। हमारी भावी आशा—युवको—से कहते हैं कि यदि तुम्हारे प्राणोमें विद्वेष हो तो उसे शीघ्र ही जडसे निकाल फेंको। विद्वेषकी तीव्र उत्तेजनासे क्षणिक रज.पूर्ण बल आसानीसे जागृत होता है और शीघ्र ही क्षीण हो दुर्बलतामें परिणत हो जाता है। जिन्होने देशोद्धार करनेकी प्रतिज्ञा की है और उसके लिए अपने प्राण उत्सर्ग करना

चाहते हैं उनके अंदर प्रबल भ्रातृभाव, कठोर उद्यमशीलता, लौहसम दृढता और ज्वलंत-अग्नितुल्य तेजका संचार करो, उसी शक्तिसे हमें अटूट बल प्राप्त होगा और हम होंगे चिरविजयी।

हमारी आशा

हमारे पास बाहुबल नही, युद्धके उपकरण नही, शिक्षा नही, राजशक्ति नही। किसमें है हमारी आशा, कहाँ है वह बल जिसके भरोसे हम प्रबल शिक्षित यूरोपीय जातिके लिए भी असाध्य कार्यको सिद्ध करनेके प्रयासी है? पंडित और विज्ञ कहते है कि यह बालकोकी उद्दाम दुराशा है, उच्च आदर्शके मदमें उन्मत्त अविवेकी लोगोका सारहीन स्वप्न है, युद्ध ही स्वाधीनता प्राप्त करनेका एकमात्र पथ है, हम युद्ध करनेमें असमर्थ हैं। स्वीकार करते है कि हम युद्ध करनेका परामर्श नही देते। किंतु क्या यह सत्य है कि बाहुबल ही है शक्तिका आधार? अथवा शक्ति और भी गूढ, गभीर मूलसे नि.सृत होती है? यह सभी स्वीकार करनेके लिए बाध्य है कि केवल बाहुबलसे कोई भी विराट् कार्य साधित होना असभव है। यदि दो परस्परविरोधी समानबलशाली शक्तियोका संघर्ष हो तो जिसमें नैतिक और मानसिक बल अधिक होगा,—जिसका ऐक्य, साहस, अध्यवसाय, उत्साह, दृढ़ प्रतिज्ञा, स्वार्थत्याग उत्कृष्ट होगा—जिसमें विद्या, बुद्धि, कुशलता, तीक्ष्ण दृष्टि, दूरदर्शिता, साधन उद्भावन करनेकी शक्ति विकसित होगी, निश्चय ही उसकी विजय होगी। यहाँतक कि बाहुबलमें, सख्यामें, उपकरणमें, जो अपेक्षाकृत हीन होगा वह भी नैतिक और मानसिक बलके उत्कर्षके सहारे प्रबल प्रतिद्वन्द्वीको हटा सकता है। इसका दृष्टात इतिहासके पन्ने-पन्नेपर लिखा हुआ है। यह कहा तो जा सकता है कि बाहुबलकी अपेक्षा नैतिक और मानसिक बलका गुरुत्व अधिक है, पर बाहुबल न होनेपर नैतिक और मानसिक बलकी रक्षा कौन करेगा? बात ठीक है। परंतु यह भी देखा गया है कि दो चिंतनप्रणालियो, दो संप्रदायों, दो परस्परविरोधी सभ्यताओमें संघर्ष होनेपर जिस पक्षकी ओर बाहुबल, राजशक्ति, युद्धका उपकरण इत्यादि साधन पूर्ण मात्रामें थे उसकी तो हार हो गयी और जिस पक्षकी ओर ये सब साधन बिल्कुल नही थे उसकी जीत हुई। इस तरह फलकी विपरीतता क्यो होती है? 'यतो धर्मस्ततो

जय.'—जहाँ धर्म है वही है विजय, परतु धर्मके पीछे शक्ति भी होनी चाहिये, *अन्यथा अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी ग्लानि स्थायी* वनी रह सकती है। बिना कारण कोई कार्य नही होता। जयका कारण शक्ति है। किस शक्तिसे दुर्बल पक्षकी जीत होती है और प्रवल पक्षकी शक्ति पराजित या विनष्ट? अगर हम ऐतिहासिक दृष्टातोंकी परीक्षा कर देखें तो मालूम होगा कि आध्यात्मिक शक्तिके वलसे यह अघटन घटित होता है, आध्यात्मिक शक्ति ही बाहुबलको तुच्छ कर मानवजातिको यह वतलाती है कि यह जगत् भगवान्का राज्य है, अंध स्थूल प्रकृतिका लीला-क्षेत्र नही। शुद्ध आत्मा है शक्तिका मूल स्रोत, जो आद्याप्रकृति आकाशमें असख्य सूर्योंको घुमाया करती है, अगुलीस्पर्शद्वारा पृथ्वीको हिलाकर मानव-सृष्ट अतीतके गौरव-चिह्नोका ध्वस करती है, वह आद्याप्रकृति है शुद्ध आत्माके अधीन। वह प्रकृति असभवको सभव करती है, मूकको वाचाल, पगुको गिरि-लघनकी शक्ति देती है। सारा जगत् है उस शक्तिकी सृष्टि। *जिसकी आध्यात्मिक शक्ति विकसित होती है उसकी विजयके उपकरण* स्वय ही उत्पन्न हो जाते है, बाधा-विपत्तियाँ स्वय ही दूर हो अनुकूल अवस्था ले आती है, कार्य करनेकी क्षमता स्वयं ही प्रस्फुटित हो तेजस्विनी और क्षिप्रगतिवाली होती है। यूरोप आजकल इस soul-force या आत्म-शक्तिका आविष्कार कर रहा है, अभी भी उसमे उसका पूर्ण विश्वास नही, उसके भरोसे कार्य करनेकी प्रवृत्ति उसमे नही। किंतु भारतकी शिक्षा, सभ्यता, गौरव, वल और महत्त्वका मूल यह आध्यात्मिक शक्ति ही है। जब-जब लोगोंको यह विश्वास होने लगा कि भारतजातिके विनाशका काल निकट आ गया है, तव-तव आध्यात्मिक शक्तिने गुप्त मूल स्रोतसे तीव्र गतिके साथ प्रवाहित हो मुमूर्षु भारतको पुनरुज्जीवित किया है और सभी उपयोगी शक्तियोकी सृष्टि भी की है। अभी भी वह मूल स्रोत सूख नही गया है, आज भी उस अद्‌भुत मृत्युजय शक्तिकी क्रीडा हो रही है।

किंतु स्थूल जगत्की सभी शक्तियोंका विकास समयसापेक्ष होता है, अवस्थाके उपयुक्त क्रमानुसार, समुद्रके ज्वार-भाटेकी तरह घटता-वढता अतमें पूर्णरूपेण सफल होता है। हमारे अदर भी वही हो रहा है। अभी पूर्ण भाटेका समय है, हम ज्वारके मुहूर्तकी प्रतीक्षा कर रहे है। महापुरुषो-की तपस्या, स्वार्थत्यागियोका कष्ट-स्वीकार, साहसियोका आत्मविसर्जन, योगियोकी योगशक्ति, ज्ञानियोका ज्ञानसचार, साधुओकी शुद्धता ही है आध्यात्मिक शक्तिका मूल स्रोत। एक वार नाना प्रकारके इन पुण्योने भारतको सजीवनी सुधामें डुवा मृत जातिको जीवित, वलिष्ठ और तेजस्वी

वनाया था, फिरसे वही तपोवल अपने अदर निरुद्ध होनेके कारण अदम्य, अजेय वन बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुआ है। इन कुछ वर्षोंके निपीडन, दुर्वलता और पराजयके फलस्वरूप भारतवासी अपने अदर शक्तिका मूल स्रोत खोज निकालना सीख रहे हैं। वक्तृताकी उत्तेजनासे नही, म्लेच्छदत्त विद्यासे नही, सभा-समितिकी भावसचारिणी शक्तिसे नही, समाचारपत्रोकी क्षणस्थायी प्रेरणासे नही अपितु अपने अदर आत्माकी विशाल नीरवतामे भगवान् और जीवके मिलनसे जो गभीर, अविचलित, अभ्रात, शुद्ध सुख-दुःख-विजयी, पाप-पुण्यवर्जित शक्ति सभूत होती है, वही महासृष्टिकारिणी, महाप्रलयकरी, महास्थितिशालिनी, ज्ञानदायिनी महासरस्वती, ऐश्वर्यदायिनी महालक्ष्मी, शक्तिदायिनी महाकाली, वही सहस्र-तेजसयोजनद्वारा एकीभूत चण्डी प्रकट हो भारतके कल्याण और जगत्के कल्याणके लिए प्रयास करेगी। भारतकी स्वाधीनता है गौण उद्देश्यमात्र, मुख्य उद्देश्य है भारतकी सभ्यताकी शक्तिको दिखाना और जगत्भरमें उस सभ्यताको फैला उसका आधिपत्य स्थापित करना। अगर हम पाश्चात्य सभ्यताके बलपर, सभा-समितिके बलपर, वक्तृताके जोरसे, बाहु-वलसे स्वाधीनता या स्वायत्त शासन प्राप्त कर सकते तो उससे वह मुख्य उद्देश्य साधित न होता। भारतीय सभ्यताके बलपर, आध्यात्मिक शक्ति-द्वारा सृष्ट सूक्ष्म और स्थूल उपायोसे स्वाधीनता प्राप्त करनी होगी। इसी-लिए भगवान्ने हमारे पाश्चात्यभावापन्न आदोलनको नष्ट कर वहिर्मुखी शक्तिको अन्तर्मुखी कर दिया है। ब्रह्मबाधव उपाध्यायने दिव्य दृष्टिसे जो कुछ देखा था, उसे देखकर बार-बार वह कहते थे, शक्तिको अतर्मुखी करो, परतु समयके फेरसे उस समय कोई उसे कर न सका, स्वय भी न कर सके, किंतु उसे ही आज भगवान्ने स्वय कर दिया है। भारतकी शक्ति अतर्मुखी हो गयी है। जब फिर वहिर्मुखी होगी तव फिर वह स्रोत नही मुडेगा, कोई उसे रोक नही सकेगा। वह त्रिलोकपावनी गगा भारतको परिप्लावित कर, पृथ्वीको परिप्लावित कर ले आयेगी अपने अमृतस्पर्शसे जगत्में नूतन यौवन।

प्राच्य और पाश्चात्य

हमारे देश और यूरोपमें प्रधान भेद यह है कि हमारा जीवन अंतर्मुखी है और यूरोपका बहिर्मुखी। हम भावका आश्रय ले पाप-पुण्य इत्यादिका विचार करते हैं और यूरोप कर्मका आश्रय लेकर पाप-पुण्य इत्यादिका विचार करता है। हम भगवान्‌को अंतर्यामी और आत्मस्थ मान उन्हें अपने भीतर खोजते हैं और यूरोप भगवान्‌को जगत्‌का राजा समझ उन्हें बाहर देखता और उपासना करता है। यूरोपका स्वर्ग स्थूल जगत्‌में है, पृथ्वीका ऐश्वर्य, सौंदर्य, भोगविलास उसके लिए आदरणीय और अन्वेषणीय है; यदि वह अन्य स्वर्गकी कल्पना करता है तो वह इस पार्थिव ऐश्वर्य, सौंदर्य, भोगविलासकी ही प्रतिमूर्ति होता है, उसके भगवान् हमारे इन्द्रके समान हैं, पार्थिव राजाकी तरह रत्नमय सिंहासनपर बैठ, हजारों वंदना-कारियोंकी स्तुतिसे फूल विश्वका साम्राज्य चलाते हैं। हमारे शिव परमेश्वर हैं, फिर भी भिक्षुक, पागल, भोलानाथ; हमारे कृष्ण बालक हैं, हास्यप्रिय, रंगमय, प्रेममय; क्रीड़ा करना है उनका धर्म। यूरोपके भगवान् कभी नहीं हँसते, क्रीड़ा नहीं करते, ऐसा करनेसे उनका गौरव नष्ट होता है, उनका ईश्वरत्व चला जाता है। वही बहिर्मुखी भाव है इसका कारण—ऐश्वर्यका चिह्न है उसके ऐश्वर्यका आधार, चिह्न देखे बिना उसे वस्तु नहीं दिखायी पड़ती, उसे दिव्य-चक्षु प्राप्त नहीं, सूक्ष्म-दृष्टि नहीं, सब है स्थूल। हमारे शिव भिक्षुक हैं, किंतु तीनों लोकोंका सारा धन और ऐश्वर्य थोड़ेमें ही साधकोंको दे देते हैं—वह भोलानाथ हैं, किंतु ज्ञानियोंके लिए जो अप्राप्य ज्ञान है वह है उनकी स्वभावसिद्ध संपत्ति। हमारे प्रेममय, रंगप्रिय श्यामसुंदर कुरुक्षेत्रके नायक हैं, जगत्‌के पिता, अखिल ब्रह्माण्डके सखा और सुहृद्। भारतका विराट् ज्ञान, तीक्ष्ण सूक्ष्म दृष्टि,

अप्रतिहत दिव्य चक्षु स्थूल आवरणको भेद आत्मस्थ भाव, वास्तविक सत्य, अन्तर्निहित गूढतत्त्व बाहर निकाल लाता है।

*
**

पाप-पुण्यके विषयमें भी यही क्रम दिखायी देता है। हम अतरका भाव देखते हैं। निंदित कर्मके अंदर पवित्र भाव, बाह्य पुण्यके अदर पापिष्ठका स्वार्थ छिपा रह सकता है; पाप-पुण्य, सुख-दु.ख मनका धर्म, कर्म, आवरणमात्र हैं। हम यह जानते हैं; हम सामाजिक सुश्रृंखलाके लिए बाह्य पाप-पुण्यको कर्मका प्रमाण समझ उसका अनुसरण करते हैं, किंतु अतरका भाव ही हमारे लिए आदरणीय होता है। जो सन्यासी आचार-विचार, कर्तव्य-अकर्तव्य, पाप-पुण्यके परे चले जाते हैं, जो जड़ोन्मत्त-पिशाचवत् आचरण करते हैं, उन्ही सर्वधर्मपरित्यागी पुरुषको हम श्रेष्ठ कहते हैं। पाश्चात्य बुद्धि इस तत्त्वको ग्रहण करनेमें असमर्थ होती है; जो जड़वत् आचरण करता है उसे वह जड़ समझती है, जो उन्मत्तवत् आचरण करता है उसे विकृतमस्तिष्क समझती है, जो पिशाचवत् आचरण करता है उसे घृणित, अनाचारी पिशाच समझती है, कारण सूक्ष्म दृष्टि नही है, वह अंतरका भाव देखनेमें असमर्थ होती है।

*
**

उसी तरह बाह्यदृष्टिपरवश हो यूरोपके पंडित यह कहते है कि भारतमें प्रजातंत्र किसी भी युगमें नही था। प्रजातंत्रसूचक कोई भी बात सस्कृत भाषामें नही पायी जाती, आधुनिक पार्लियामेण्टकी तरह कोई कानून बनानेवाली सभा भी नही थी, प्रजातंत्रका कोई बाहरी चिह्न नही मिलनेसे प्रजातंत्रका अभाव सिद्ध होता है। हम भी इस पाश्चात्य युक्तिको यथार्थ मानते आ रहे हैं। परंतु हमारे प्राचीन आर्य-राज्यमें प्रजातत्रका अभाव नही था; प्रजातंत्रके बाहरी उपकरण अपूर्ण अवश्य थे, किंतु प्रजातत्रका भाव हमारे समस्त समाज और शासनतत्रके अदर व्याप्त हो रहा था और प्रजाका सुख और देशकी उन्नति साधित करता था। पहले तो प्रत्येक गाँवमें पूर्ण प्रजातंत्र था, गाँवके लोग सम्मिलित हो, सर्वसाधारणके परामर्शसे, वृद्ध तथा नेतृस्थानीय पुरुषोंके अधीन रहते हुए गाँवकी व्यवस्था, समाजकी

व्यवस्था किया करते थे; यह ग्राम्य प्रजातन्त्र मुसलमानोंके अमलमें अक्षुण्ण बना रहा, ब्रिटिश शासनतन्त्रके निष्पेषणसे वह अभी उस दिन ही नष्ट हुआ है। दूसरे, प्रत्येक छोट-छोटे राज्योंमें भी, जहाँ सर्वसाधारणको सम्मिलित करनेकी सुविधा थी, वैसी ही प्रथा विद्यमान थी, बौद्ध साहित्यमें, ग्रीक इतिहासमें, महाभारतमें इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। तीसरे, बडे-बडे राज्योंमें, जहाँ ऐसे बाहरी उपकरणका होना संभव नही था, वहाँ प्रजातंत्रका भाव राजतंत्रको परिचालित करता था। प्रजाकी कानून बनानेवाली सभा नही थी, परंतु राजाको भी कानून बनानेका या प्रचलित कानूनको बदलनेका लेशमात्र भी अधिकार नही था। प्रजा जिस आचार-व्यवहार, रीति-नीति, कानून-कायदेको पहलेसे मानती आती थी, उसीकी रक्षा राजा करता था। ब्राह्मण आधुनिक वकील और जजकी तरह राजाको प्रजा-अनुष्ठित नियम समझाते, संशय होनेपर निर्णय करते, क्रमश. जो परिवर्तन दिखायी देता उसे शास्त्रके रूपमें लिपिबद्ध करते। शासनका भार राजापर ही था, किंतु वह क्षमता भी कानूनकी कठोर जंजीरसे बँधी हुई थी; उसके अतिरिक्त यह नियम था कि राजा वही कार्य करेंगे जिसे प्रजा अनुमोदित करेगी, वह ऐसा कार्य कभी नही करेंगे जिससे प्रजाको असंतोष हो; इस राजनीतिक नियमको सभी मानते और तदनुसार आचरण करते थे। अगर राजा इस नियमको भंग करते तो प्रजा राजाको माननेके लिए बाध्य नही थी।

*
**

प्राच्य और पाश्चात्यका एकीकरण है इस युगका धर्म। परंतु इस एकीकरणमें यदि हम पाश्चात्यको आधार या मुख्य अंग बनावें तो हम भयानक भूल करेंगे। प्राच्य ही आधार है, प्राच्य ही है मुख्य अंग। बहिर्जगत् अंतर्जगत्पर प्रतिष्ठित है, अंतर्जगत् बहिर्जगत्पर प्रतिष्ठित नही। भाव और श्रद्धा है कर्मके मूल स्रोत, भाव और श्रद्धाकी रक्षा करनी होगी, पर शक्ति प्रयोग और कर्मके बाहरी आकार और उपकरणमें आसक्त नही होना चाहिये। पाश्चात्य लोगोंको प्रजातन्त्रके बाहरी आकार और उपकरणसे ही फुर्सत नही। भावको परिस्फुट करनेके लिए है बाहरी आकार और उपकरण; भाव आकारका गठन करता है, श्रद्धा उपकरणका सृजन। परंतु पाश्चात्य लोग आकार और उपकरणमें कुछ ऐसे आसक्त

हो गये हैं कि वे इस बातको देख ही नहीं पाते कि उस बाहरी प्राकट्यके अदर भाव और श्रद्धा दम तोड रही हैं। आजकल प्राच्य देशोमें प्रजातंत्रका भाव और श्रद्धा प्रबल वेगसे प्रस्फुटित हो बाहरी उपकरणका सृजन कर रहे हैं, बाह्य आकारका गठन कर रहे हैं, परतु पाश्चात्य देशोमें यह भाव मलिन हो रहा है, वह श्रद्धा क्षीण हो रही है। प्राच्य प्रभातोन्मुख हो रहा है, आलोककी ओर दौड़ रहा है और पाश्चात्य लौट रहा है तिमिर-गामी रात्रिकी ओर।

*
**

इसका कारण है बाह्य आकार और उपकरणकी आसक्तिसे उत्पन्न प्रजातंत्रका दुष्परिणाम। प्रजातंत्रके पूर्ण अनुकूल शासनतंत्रका सृजन कर अमेरिका इतने दिन गर्व करता था कि उसके समान स्वाधीन देश जगत्-में दूसरा नही। परंतु यदि वास्तवमें देखा जाय तो वहां प्रेसिडेण्ट और कर्मचारीगण कांग्रेसकी सहायतासे स्वेच्छानुसार शासन करते हैं, धनीके अन्याय, अविचार और सर्वग्रासी लोभको आश्रय देते हैं, स्वय भी क्षमता-का अपव्यवहार कर धनी होते हैं। एकमात्र प्रतिनिधियोंके निर्वाचनके समय प्रजा स्वाधीन होती है, और उस समय भी धनी प्रचुर मात्रामें अर्थ व्यय कर अपनी क्षमता अक्षुण्ण बनाये रखते हैं, बादमें भी प्रजाके प्रति-निधियोको खरीदकर इच्छानुसार अर्थशोषण करते हैं, आधिपत्य करते हैं। फ्रास प्रजातंत्र और स्वाधीनताकी जन्मभूमि है, किंतु जिन कर्मचारियो और पुलिसकी सृष्टि प्रजाकी इच्छासे विभिन्न शासनकार्य चलानेवाले यन्त्रके रूप-में हुई थी अब वे ही बहुसंख्यक क्षुद्र स्वेच्छाचारी राजा बनकर बैठ गये हैं, प्रजा उनके भयसे कातर हो रही है। इंगलैंडमें अवश्य ही ऐसा कोई विभ्राट् उपस्थित नही हुआ है, किंतु प्रजातंत्रकी अन्यान्य विपत्तिया धीरे-धीरे बढ़ रही हैं। चंचलमति, अर्धशिक्षित प्रजाके प्रत्येक मतपरिवर्तनके कारण वहाँ शासनकार्य और राजनीति आलोड़ित होती है और इस कारण ब्रिटिश जाति पुरानी राजनीतिक कुशलताको खो बाहर-भीतर विपत्तिग्रस्त हो रही है। शासनकर्ता कर्तव्यज्ञानरहित हो गये हैं, वे अपने स्वार्थ और प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेके लिए निर्वाचकोंको प्रलोभन दिखा, भय दिखा, गलत बात समझा ब्रिटिश जातिकी बुद्धि विकृत कर रहे हैं, उसकी मतिकी अस्थिरता और चंचलता बढा रहे हैं। इन सब कारणोंसे एक ओर तो प्रजातंत्रवादको भूल समझ एक दल स्वाधीनताके विरुद्ध हथियार उठा रहा

है तो दूसरी ओर अनार्किस्ट, सोशलिस्ट विप्लवकारियोकी सख्या बढ रही है। इन दो दलोका सघर्ष इगलैंडमें चल रहा है—राजनीति-क्षेत्रमें; अमेरिकामें श्रमजीवी और लखपतियोके विरोधसे, जर्मनीमें मत-सघटनसे, फ्रासमें सेना और नौसेनाके सग्रामसे, रूसमें पुलिस और हत्याकारीके सघर्ष-से—सर्वत्र फैल रही है धाधली, चचलता और अशाति।

*
**

बहिर्मुखी दृष्टिका यह परिणाम होना अनिवार्य है। कुछ दिन राज-सिक तेजसे तेजस्वी बन असुर महान्, श्रीसपन्न, अजेय हो जाते हैं, पर उसके बाद अंतर्निहित दोष प्रकट होता है, सब कुछ टूट-फूटकर चूर-मार हो जाता है। भाव और श्रद्धा, सज्ञान कर्म, अनासक्त कर्म जिस देशकी शिक्षाका मूलमंत्र है, उसी देशमें अंतर और बाह्यके, प्राच्य और पाश्चात्य-के एकीकरणद्वारा समाज, अर्थनीति, राजनीतिकी सभी समस्याओकी सतोषजनक मीमासा कार्यतः हो सकती है। किंतु पाश्चात्य ज्ञान और शिक्षाके अधीन हो हम वह मीमासा नही कर सकते। प्राच्यपर खड़े हो पाश्चात्यको आयत्त करना होगा। अतर होगी प्रतिष्ठा और बाहर होगा प्रकाश। अगर हम भावके पाश्चात्य उपकरणका अवलंबन लेंगे तो हम विपत्तिमें पड़ेंगे, हमें अपने स्वभाव और प्राच्य बुद्धिके उपयुक्त भावकी सृष्टि करनी होगी।

गुरु गोविन्द सिंह

श्रीयुत वसतकुमार वन्द्योपाध्याय-प्रणीत गुरु गोविन्द सिंहकी जीवनी हाल ही हमारे हाथ आयी है। इस पुस्तकमें गुरु गोविन्द सिंहकी राजनीतिक चेष्टा और चरित्रका सरल और सहज भापामें अति सुदर ढंगसे वर्णन किया गया है, किंतु सिक्खोंके दसवें गुरु सिर्फ योद्धा और राजनीतिविद् ही नही थे, वे धार्मिक महापुरुष और भगवदादिष्ट धर्मोपदेष्टा भी थे। नानकके सात्त्विक वेदात-शिक्षाबहुल धर्मको उन्होने एक नूतन आकार दिया था; अतएव उनका धर्ममत और उससे बना सिक्ख धर्म और सिक्ख-समाजके परिवर्तनका वर्णन यदि विशद रूपसे किया जाता तो यह सुदर जीवनी असपूर्णताके दोषसे दूषित न होती। लेखकने सक्षेपमें सिक्ख जातिका पूर्व वृत्तात लिख गोविंद सिंहके चरित्र व आगमनके ऐतिहासिक बीज और कारणको समझनेमें सुविधा कर दी है। उसी तरह परवर्ती वृत्तात भी लिखते तो दसवें गुरुके असाधारण कार्यके फलाफल और उनकी महती चेष्टाकी परिणतिको समझनेमें विशेष सुविधा होती। सिक्ख इतिहासके केंद्रस्थलमें हैं गुरु गोविंद सिंह। उन्होने जिस जातिके सगठनमें अपनी समग्र प्रतिभा व शक्ति लगा दी उस जातिका इतिहास ही तो है इस महापुरुषका प्रकृत जीवन-चरित्र। जैसे जड और शाखारहित तनेकी शोभा नही होती वैसे ही सिक्ख सप्रदायके पूर्व व परवर्ती वृतातके विना गोविंद सिंहका जीवन-चरित्र असपूर्ण लगता है। आशा है, द्वितीय सस्करणमें लेखक यह अश जोड देंगे एव सिक्ख महापुरुषके धर्ममत और समाज-सस्कारकी विशद वर्णना कर अपनी लिखी पुस्तकको सर्वांग सुन्दर बनायेंगे। उनकी पुस्तकको पढते हुए खालसा-संस्थापक स्वदेश-हितैषी महावीरोंके उदार चरित्र व अद्‌भुत कार्य-कलापोकी ओर मन प्रबल रूपसे आकृष्ट होता है। जिन्होंने देशके कार्यके लिए आत्मोत्सर्ग किया है या करना चाहते हैं, यह जीवनी उनकी शक्ति बढायेगी और ईश्वरीय प्रेरणाको दृढ बनायेगी।

पत्रावली

मृणालिनीको
बारीनको
'न' और 'स' को

प्रियतमा मृणालिनी,

तुम्हारी २४ अगस्तकी चिट्ठी मिली। तुम्हारे मां-बापको फिर वही दु:ख हुआ है—सुनकर दु:खी हुआ। तुमने यह नही लिखा कि कौन-सा लड़का परलोकवासी हुआ है। दु:ख होनेसे भी क्या बनता है? संसार-में सुखकी खोजमें जानेसे ही सुखके बीच दु:ख दिखायी देता है, दु:ख सदा ही सुखको घेरे रहता है यह नियम केवल पुत्रकामनाके विषयमें ही लागू नही होता, सब सासारिक कामनाओंका फल यही होता है। धीर चित्त-से सब दु.ख-सुख भगवान्‌के चरणोमें अर्पण करना ही है मनुष्यके लिए एक-मात्र उपाय।

मैंने बीस रुपयोंकी जगह दस रुपये पढ़ा था, इसलिए दस रुपये भेजने-की बात लिखी थी। अगर पन्द्रह रुपयोकी जरुरत है तो पन्द्रह रुपये ही भेजूंगा। इस महीने सरोजिनीने दार्जिलिगमें तुम्हारे लिए कपड़ा खरीदा था उसके लिए रुपया भेज चुका हूँ। इधर जो तुम उधार कर बैठी हो यह भला कैसे जानूं? पंद्रह रुपये लगे थे वे भेज दिये हैं; और तीन-चार रुपये जो लगेंगे वे आगामी महीने भेज दूंगा। इस बार तुम्हें बीस रुपये भेजूंगा।

अब उस वातपर आवें। अबतक तुम्हें पता चल गया होगा कि जिसके भाग्यके साथ तुम्हारा भाग्य जुड़ा है वह बड़े विचित्र ढगका मनुष्य है। इस देशमें आजकलके लोगोका जैसा मनोभाव है, जीवनका उद्देश्य और कर्मका क्षेत्र है, मेरा वैसा नहीं; सब कुछ ही भिन्न है, असाधारण है। सामान्य लोग असाधारण मत, असाधारण प्रयास, असाधारण उच्च आशा-के बारेमें जो कहते हैं वह शायद तुम जानती हो। इन सव भावोको वे पागलपन कहते हैं, परन्तु पागलके कर्मक्षेत्रमें सफलता मिलनेपर उसे पागल न कह प्रतिभावान् महापुरुष कहते हैं। किंतु कितनोका प्रयास सफल होता है? हजारोमें दस असाधारण होते हैं, उन दसमें कोई एक कृतकार्य होता है। मेरे कर्मक्षेत्रमें सफलता तो दूरकी वात, कर्मक्षेत्रमें पूर्णतः उतर

देता वह चोर है। आजतक मैं भगवान्‌को दो आने दे, चौदह आने अपने सुखमें खर्च कर, हिसाब चुकता कर, सासारिक सुखमें मत्त था। जीवन-का अर्द्धाश वृथा ही गया, पशु भी अपना और अपने परिवारका उदर भर कृतार्थ होता है।

मैं अबतक पशुवृत्ति और चौर्यवृत्ति करता आ रहा था, यह जान गया हूँ। यह जान बडा अनुपात और अपनेपर घृणा हो रही है, अब और नही, वह पाप जन्मभरके लिए छोड़ दिया। भगवान्‌को देनेका अर्थ क्या है? अर्थ है धर्मकार्यमें व्यय करना। जो रुपया सरोजिनी या उषाको दिया है उसके लिए मुझे कोई अनुताप नही, परोपकार धर्म है, आश्रित-की रक्षा करना महाधर्म है, किंतु केवल भाई-बहिनको देनेसे हिसाब नही चुक जाता। इस दुर्दिनमें समस्त देश मेरे द्वारपर आश्रित है, इस देशमें मेरे तीस कोटि भाई-बहिन है, उनमेंसे बहुत-से अनाहार मर रहे हैं, अधि-काश कष्ट और दु खसे जर्जरित हो किसी तरह बचे हुए हैं, उनका हित करना होगा।

क्या कहती हो, इस विषयमें मेरी सहधर्मिणी बनोगी? केवल सामान्य लोगोकी तरह खाना-पहनना, जिस चीजकी सचमुच जरूरत हो उसे ही खरीदना और सब भगवान्‌को दे देना—यही है मेरी इच्छा, तुम्हारी राय मिलने और त्याग स्वीकार कर सकने पर ही मेरी अभिसन्धि पूरी हो सकती है। तुमने कहा था, "मेरी कोई उन्नति नही हुई", यह एक उन्नतिका पथ दिखा दिया, चलोगी इस पथपर?

दूसरा पागलपन हाल ही सिरपर सवार हुआ है: चाहे जैसे भी हो भगवान्‌का साक्षात् दर्शन प्राप्त करना। आजकलका धर्म है, बात-बातमें भगवान्‌का नाम लेना, सबके सामने प्रार्थना करना, लोगोको दिखाना कि मैं कितना धार्मिक हूँ। वह मैं नही चाहता। ईश्वर यदि हैं तो उनके अस्तित्वको अनुभव करनेका, उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त करनेका कोई-न-कोई पथ होगा, वह पथ कितना भी दुर्गम क्यो न हो, उस पथपर जाने-का दृढ सकल्प कर बैठा हूँ। हिंदूधर्मका कहना है कि अपने शरीरके, अपने मनके भीतर ही है वह पथ। जानेके नियम दिखा दिये है, उन सबका पालन करना आरभ कर चुका हूँ, महीनेभरमें अनुभव करने लगा हूँ कि हिंदूधर्मकी बात झूठी नही, जिन-जिन चिह्नोकी बात कही गयी है उन सबको उपलब्ध करने लगा हूँ। अब मेरी इच्छा है कि तुम्हें भी उस पथपर ले चलूँ; ठीक साथ-साथ नही चल सकोगी, क्योकि तुममें अभी उतना ज्ञान नही है, किंतु मेरे पीछे-पीछे आनेमें कोई बाधा नही, उस पथ-

पर सबको सिद्धि मिल सकती है, किंतु प्रवेश करना अपनी इच्छापर निर्भर है, कोई तुम्हें जबरदस्ती नही ले जा सकता, यदि तुम सहमत होओ तो इस सबधमें फिर और लिखूंगा।

तीसरा पागलपन है: अन्य लोग स्वदेशको एक जड पदार्थ, कुछ मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदीभर मानते है; मै स्वदेशको मा मानता हूँ, उसकी भक्ति करता हूँ, पूजा करता हूँ। माकी छातीपर बैठ यदि कोई राक्षस रक्तपान करनेके लिए उद्यत हो तो भला बेटा क्या करता है? निश्चित हो भोजन करने, स्त्री-पुत्रके साथ आमोद-प्रमोद करनेके लिए बैठ जाता है या माका उद्धार करनेके लिए दौड़ पड़ता है? मै जानता हू कि इस पतित जातिका उद्धार करनेका बल मेरे अन्दर है, शारीरिक बल नही, तलवार या बदूक ले मै युद्ध करने नही जा रहा, ज्ञानका बल। क्षात्र तेज ही एकमात्र तेज नही, ब्रह्मतेज भी है, यह तेज है ज्ञानपर प्रतिष्ठित। यह भाव नया नही, आजकलका नही, इस भावके साथ ही मै जनमा था, यह भाव मेरी नस-नसमें भरा है, भगवान्‌ने इसी महाव्रतको पूरा करनेके लिए मुझे पृथ्वीपर भेजा है। चौदह वर्षकी उम्रमें बीज अकुरित होने लगा था, अठारह वर्षकी उम्रमें इसकी प्रतिष्ठा दृढ और अचल हो गयी थी। तुमने न-मौसी (चौथी मौसी)की बात सुन यह सोचा था कि न मालूम कहांका बदजात मेरे सरल भलेमानस स्वामीको कुपथपर खीचे ले जा रहा है। परंतु तुम्हारा भलामानस स्वामी ही उस आदमीको तथा और सैंकड़ो आदमियोको उस पथपर, कुपथ हो या सुपथ, खीच ले आया था तथा और भी हजारों आदमियोको खीच ले आयेगा। कार्यसिद्धि मेरे रहते ही होगी यह मैं नही कहता, पर होगी अवश्य।

अब पूछता हू इस विषयमें तुम क्या करना चाहती हो? स्त्री स्वामी-की शक्ति है। तुम उषाकी शिष्या बन साहबी पूजा-मन्त्रका जप करोगी? उदासीन हो स्वामीकी शक्तिको खर्व करोगी? या सहानुभूति और उत्साह द्विगुणित करोगी? तुम कहोगी कि इन सब महत् कर्मोमें भला मेरे जैसी एक सामान्य लड़की क्या कर सकती है? मुझमें मनका बल नही, बुद्धि नही, उन बातोका विचारतक आनेसे भय होता है। उसका सहज उपाय है भगवान्‌का आश्रय लो, ईश्वर-प्राप्तिके पथमें एक बार प्रवेश करो, तुममें जो-जो अभाव हैं उन्हें वे शीघ्र पूरा कर देंगे, जो भगवान्‌का आश्रय ले चुका है उसे भय धीरे-धीरे छोड देता है। अगर मेरा विश्वास करो, दस जनोकी बात न सुन यदि मेरी ही बात सुनो तो मै अपना ही बल तुम्हें दे सकता हू, इससे मेरे बलकी हानि न हो वृद्धि ही होगी। हम

कहते हैं कि स्त्री स्वामीकी शक्ति है, यानी, स्वामी स्त्रीमें अपनी प्रतिमूर्ति देख उसमें अपनी महत् आकाक्षाकी प्रतिध्वनि पा दुगुनी शक्ति पाता है।

चिरदिन क्या वैसी ही रहोगी? मैं अच्छा पहनूंगी, अच्छा खाऊंगी, हसूगी, नाचूगी, सब प्रकारके सुख भोगूगी, मनकी ऐसी अवस्थाको उन्नति नही कहते। आजकल हमारे देशकी स्त्रियोंके जीवनने ऐसा ही संकीर्ण और अति हेय रूप धारण कर लिया है। तुम यह सब छोड़ दो, मेरे साथ आओ, जगत्में भगवान्का कार्य करनेके लिए आये हैं, आओ, वही कार्य आरंभ करें।

तुम्हारे स्वभावमें एक दोष है, तुम जरूरतसे ज्यादा सरल हो। जो कोई जो कुछ कहता है वही मान लेती हो। इससे मन सर्वदा अस्थिर रहता है, बुद्धिका विकास नही हो पाता, किसी काममें एकाग्रता नही आती। इसे सुधारना होगा, एक आदमीकी ही बात मान ज्ञान संचय करना होगा, एक लक्ष्य बना अविचलित चित्तसे कार्य सिद्ध करना होगा, लोगोकी निन्दा और कटाक्षकी परवाह न कर स्थिर भक्ति रखनी होगी।

और एक दोष है, तुम्हारे स्वभावका नही, कालका दोष। बंगालमें ऐसा ही समय आया है। लोग गंभीर बातको भी गभीर भावसे नही सुन पाते; धर्म, परोपकार, महती आकांक्षा, देशोद्धार, जो कुछ गभीर, जो कुछ उच्च और महत् है उन सभी बातोका हंसी-मजाक और कटाक्ष, सब कुछ हंसकर उड़ा देना चाहते हैं। ब्राह्म स्कूलमें रहते-रहते तुम्हारे अन्दर यह दोष थोड़ा-थोड़ा आ गया है, वारीनमें भी था, थोड़ी-बहुत मात्रामें हम सभी इस दोषसे दूषित हैं, देवघरके लोगोमें तो यह बुरी तरह बढ गया है। मनके इस भावको दृढ़ मनसे भगाना होगा, तुम सहज ही कर सकोगी, और एक बार चिन्तन करनेका अभ्यास कर लेनेपर तुम्हारा असली स्वभाव फूट उठेगा; परोपकार और स्वार्थत्यागकी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति है, केवल एक मनके जोरका अभाव है, ईश्वर-उपासनासे वह जोर पाओगी।

यही थी मेरी वह गुप्त बात। किसीके सामने प्रकट न कर अपने मनमें, धीर चित्तसे, इन सब बातोको सोचना, इसमें भय करनेका कुछ नही है, पर चिन्तनके लिए बहुत-सी बातें हैं। पहले और कुछ नही करना होगा, हर रोज आध घटा भगवान्का ध्यान करना होगा, उनके सामने प्रार्थना-रूप अपनी बलवती इच्छा प्रकट करनी होगी। मन धीरे-धीरे तैयार हो जायगा। उनके सामने सदा यह प्रार्थना करनी होगी कि मैं

स्वामीके जीवन, उद्देश्य और ईश्वर-प्राप्तिके पथमें बाधा न डाल सर्वदा सहायक होऊं, साधनभूत बनूं। करोगी यह?

तुम्हारा—

23, Scott's Lane,
CALCUTTA.
'th February, 1907.

प्रिय मृणालिनी,

वहुत दिनोसे पत्र नही लिखा, यह मेरा चिरंतन अपराध है, यदि तुम निज गुणसे क्षमा न करो तो मेरे लिए भला और चारा ही क्या? जो मज्जागत है वह एक दिनमें ही नही चला जाता, इस दोषको सुधारनेमें शायद मेरा यह जीवन वीत जाये।

८ जनवरीको आनेकी वात थी, पर आ नही सका, मेरी इच्छासे ऐसा नही हुआ। भगवान् जहां ले गये वहाँ जाना पड़ा। इस बार अपने कामसे नहीं गया था, उन्हींके कामसे गया था। आजकल मेरे मनकी अवस्था दूसरी तरहकी हो गयी है, यह बात इस पत्रमें प्रकट नही करूँगा। तुम यहाँ आ जाओ, तव जो कुछ कहना है वह कहूँगा; केवल इतना ही कहना है कि अव मैं अपनी इच्छाधीन नही रहा, भगवान् मुझे जहाँ ले जायंगे वही कठपुतलीकी तरह जाना होगा, जो करायेंगे वही कठपुतलीकी तरह करना होगा। अभी इस बातका अर्थ समझना तुम्हारे लिए कठिन होगा, परंतु कहना आवश्यक है, अन्यथा मेरी गतिविधि तुम्हारे आक्षेप और दुःखका कारण हो सकती है। तुम समझोगी कि मैं तुम्हारी उपेक्षा कर काम कर रहा हूँ परतु ऐसा मत समझना। आजतक मैंने तुम्हारे प्रति बहुत अपराध किये हैं, तुम जो इससे असतुष्ट हो गयी थी वह स्वाभाविक ही था, परंतु अब मुझे स्वाधीनता नही रही, अबसे तुम्हें यह समझना होगा कि मेरे सभी कार्य मेरी अपनी इच्छापर निर्भर न हो भगवान्के आदेशसे ही हो रहे है। तुम जब आओगी तब मेरा तात्पर्य हृदयगम कर सकोगी। आशा करता हूँ कि भगवान्ने अपनी अपार करुणाका जो आलोक मुझे दिखाया है उसे तुम्हें भी दिखायेंगे, पर वह उन्हीकी इच्छापर निर्भर है। यदि तुम मेरी सहधर्मिणी होना चाहती हो तो तुम प्राणपण चेष्टा करो जिससे तुम्हारी ऐकातिक इच्छाके वलसे तुम्हें भी करुणाका पथ दिखावें। यह पत्र किसीको भी देखने मत देना, कारण जो बात मैंने लिखी है वह है अत्यंत गोपनीय। तुम्हारे सिवा और किसीको भी नही कहा है, कहना मना है। आज इतना ही।

तुम्हारा स्वामी

पुनश्च—सासारिक बातें सरोजिनीको लिखी है, तुम्हें अलगसे लिखना अनावश्यक था, वह पत्र देखनेसे ही समझ जाओगी।

6th December, 1907.

प्रिय मृणालिनी,

मैंने परसो चिट्ठी पायी थी, उसी दिन रैपर भी भेजा गया था, क्यों तुम्हें नही मिला समझ नही पाया।......

*　　　*　　　*

यहाँ मुझे मुहूर्त्त भर भी समय नही; लिखनेका भार मुझपर, काग्रेस-सबधी कार्यका भार मुझपर, 'वदे मातरम्' का गोलमाल मिटानेका भार मुझपर। इतना अधिक काम है कि सभाले नही सभाल पा रहा। इसके अलावा मेरा अपना काम भी है, उसे भी नही छोड सकता।

मेरी एक बात मानोगी क्या? मेरे लिए यह बडी ही दुश्चिताका समय है, चारो ओरसे इतनी खीच-तान चल रही है कि पागल होनेकी नौबत आ गयी है। इस समय तुम्हारे अस्थिर होनेसे मेरी चिंता और फिक्र और भी बढ़ जायगी, उत्साह और सात्वनाभरी चिट्ठी लिखनेसे मुझे विशेष बल मिलेगा, प्रसन्न मन समस्त विपत्ति और भय अतिक्रम कर सकूगा। जानता हूँ कि देवघरमें अकेली रहनेसे तुम्हें कष्ट होता है, परतु मनको दृढ करने और विश्वासपर निर्भर रहनेसे दु:ख मनपर उतना आधिपत्य नही जमा सकेगा। जब तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ है, तुम्हारे भाग्यमें यह दु:ख अनिवार्य है, बीच-बीचमें विच्छेद होगा ही, कारण साधारण मनुष्यकी तरह परिवार और स्वजनोंके सुखको ही मैं जीवनका मुख्य उद्देश्य नही बना सकता। ऐसी अवस्थामें मेरा धर्म ही है तुम्हारा धर्म, मेरे निर्दिष्ट कार्य-की सफलतामें ही अपना सुख माननेके सिवा तुम्हारे लिए और कोई गति नही। और एक बात, जिनके साथ तुम अभी रहती हो उनमेंसे बहुत-से तुम्हारे और मेरे गुरुजन हैं, वे यदि कटु वचन कहें, अनुचित बात कहें तो भी उनपर क्रोध मत करना। और जो कुछ वे कहें उससे यह मत सोच बैठना कि वह सब कुछ उनके मनकी बात है अथवा बिना सोचे तुम्हें दु:ख देनेके लिए कहते हैं। बहुत बार क्रोधवश बिना सोचे समझे बात निकल जाती है, उसे पकडे रहना अच्छा नही। यदि रहना नितात कठिन मालूम हो तो मैं गिरीश बाबूसे कहूंगा, जबतक मैं काग्रेसमें हूं तब-तक तुम्हारे नानाजी घरपर रह सकते हैं।

मैं आज मेदिनीपुर जा रहा हूँ। लौटनेपर यहाँकी सारी व्यवस्था कर सूरत जाऊगा। सभवतः १५ या १६ तारीख तक जाना होगा। दो जनवरीको लौट आऊगा।

तुम्हारा स्वामी

थार्शनकों

7 अप्रैल, 1920

प्रिय—

तुम्हारी चिट्ठी मिल गयी थी, पर अबतक उत्तर देना न हो सका। आज जो लिखने बैठा हूं यह भी एक miracle (चमत्कार) ही है, क्योंकि मेरा चिट्ठी लिखना होता है once in a blue moon (कभी कभार ही); विशेषकर बंगलामें लिखना जो इधर पांच-सात वर्षोंमें एकबार भी नही हुआ। इसे समाप्त कर यदि post (डाक) में डाल सकू तभी यह miracle पूरा होगा।

पहले तुम्हारे योगकी बात लें। तुम मुझे ही अपने योगका भार देना चाहते हो; मैं भी लेनेके लिए राजी हूँ। इसका अर्थ है—जो मुझे और तुम्हें, प्रकट या गुप्त रूपमें, अपनी भागवती शक्तिद्वारा चला रहे हैं उन्हें ही देना। पर इसका यह फल अवश्यभावी जानना कि उन्हीका दिया जो मेरा योग-मार्ग है, जिसे पूर्णयोग कहता हूँ, उसी मार्गपर चलना होगा। ....जिससे मैंने आरंभ किया था, लेलेने जो दिया था....वह सब था पथ खोजनेकी अवस्था, इधर-उधर घूम-फिरकर देखना; पुराने सभी खंड योगोमेंसे इसे-उसे छूना, उठाना, हाथमें ले परखना; एककी एक तरहसे पूरी अनुभूति ले दूसरेका अनुसरण करना।

उसके बाद पांडिचेरी आनेपर यह चंचल अवस्था खतम हो गयी। अंतर्यामी जगद्गुरुने मुझे मेरे पथका पूर्ण निर्देश दिया। उसकी सपूर्ण theory (तत्त्व) है कि योग शरीरके दस अंग हैं; इन दस वर्षोंसे अनुभूतिद्वारा उन्हीका development (विकास) करा रहे है; अभीतक खतम नही हुआ, और दो वर्ष लग सकते हैं और जबतक शेष नही हो जाता, शायद तबतक मैं बंगाल न लौट पाऊ। पांडिचेरी ही है मेरी योग-सिद्धिका निर्दिष्ट स्थल—पर हां, एक बातको छोड़कर—वह है कर्म। मेरे कार्यका केन्द्र है बंगाल, पर आशा करता हूं उसकी परिधि होगा सारा भारत, सारी पृथ्वी।

योगमार्ग क्या है, यह पीछे लिखूंगा; या तुम अगर यहाँ आओ तो उस विषयमें बातचीत होगी। इस विषयमें लिखनेकी अपेक्षा जबानी बात करना अधिक अच्छा है। अभी मैं इतना ही कह सकता हूं कि पूर्ण ज्ञान, पूर्ण कर्म और पूर्ण भक्तिके सामजस्य और ऐक्यको मानसिक भूमि (level) से ऊपर उठा मनके परे विज्ञान-भूमिमें पूर्ण सिद्ध करना है इसका मूल-

तत्त्व। पुराने योगोका दोष यह था कि वे मन-बुद्धिको जानते थे और आत्माको जानते थे; मनके अन्दर ही आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर सतुष्ट रहते थे। किंतु मन खंडको ही आयत्त कर सकता है; अनंत, अखंडको संपूर्णतः ग्रहण नही कर सकता। उसे ग्रहण करनेके लिए समाधि, मोक्ष, निर्वाण इत्यादि ही है मनके साधन, और कोई उपाय नही। उस लक्ष्यहीन मोक्षको कोई-कोई प्राप्त कर सकते है सही किंतु उससे क्या लाभ? ब्रह्म आत्मा, भगवान् तो है ही। भगवान् मनुष्यसे जो चाहते है वह है उन्हें यहाँ ही मूर्तिमान करना, व्यक्तिमें, समष्टिमें—to realise God in life (जीवनमें भगवान्को मूर्त करना)।

पुरानी योगप्रणालियां अध्यात्म और जीवनमें सामंजस्य या ऐक्य स्थापित नही कर सकी; उन्होने जगत्को माया या अनित्य लीला कहकर उडा दिया है। इसका फल हुआ जीवन-शक्तिका ह्रास, भारतकी अवनति। गीतामें जिसे कहा गया है **उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्**, भारतके 'इमे लोकाः' सचमुचमें उत्सन्न हो गये है। कुछ सन्यासी और वैरागी साधु सिद्ध, मुक्त हो जायं, कुछ भक्त प्रेमसे, भावसे, आनदसे अधीर हो नृत्य करे और समस्त जाति प्राणहीन, बुद्धिहीन हो घोर तमोभावमें डूब जाय, यह भला कैसी अध्यात्म-सिद्धि है? पहले मानसिक level (स्तर) पर सभी खंड अनुभूतियोको या मनको अध्यात्म-रससे परिप्लावित, अध्यात्मके आलोकसे आलोकित करना होता है, उसके बाद ऊपर उठना। ऊपर अर्थात् विज्ञान-भूमिपर उठे विना जगत्का अतिम रहस्य जानना असभव है, जगत्की समस्या solved (की मीमासा) नही होती। वही आत्मा और जगत्, अध्यात्म और जीवन—इस द्वंद्वकी अविद्याका अत होता है। तब जगत् माया नही दिखायी देता; जगत् भगवान्की सनातन लीला, आत्माका नित्य विकास प्रतीत होता है। तब भगवान्को पूर्णतः जानना, पाना सभव होता है; गीतामें जिसे कहा है—**समग्रं मां ज्ञातुम्**। अन्नमय देह, प्राण, मन-बुद्धि, विज्ञान और आनद—ये है आत्माकी पाच भूमियां। मनुष्य जितना ही ऊपर उठता है उतना ही उसके spiritual evolution (आध्यात्मिक विकास)की चरम सिद्धिकी अवस्था समीप आती जाती है। विज्ञानमें पहुच जानेपर आनंदमें जाना सहज हो जाता है, अखड, अनत आनदकी अवस्थामें दृढ प्रतिष्ठा होती है; केवल त्रिकालातीत परब्रह्ममें नही—देहमें, जगत्में, जीवनमें भी। पूर्ण सत्ता, पूर्ण चैतन्य, पूर्ण आनद विकसित हो जीवनमें मूर्त होते है। यह प्रयास ही है मेरे योगमार्गका central clue (मूल बात)।

ऐसा होना आसान नही। इन पद्रह वर्षोंके बाद मैं अभीतक विज्ञानके तीन स्तरोमेंसे निम्नतर स्तरमें पहुंच नीचेकी सभी वृत्तियोको उसमें खीच ले जानेके उद्योगमें लगा हूं। पर जब यह सिद्धि पूर्ण होगी तब भगवान् मेरे through (द्वारा) दूसरोको थोड़े आयाससे ही विज्ञान-सिद्धि देंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। तब होगा मेरे असली कार्यका आरंभ। मैं कर्मसिद्धिके लिए अधीर नही। जो होना है वह भगवान्द्वारा निर्दिष्ट समयपर होगा, उन्मत्तकी नाई दौड़ क्षुद्र अहमिकाकी शक्तिके कर्मक्षेत्रमें कूद पडनेकी प्रवृत्ति मुझमें नही। यदि कर्मसिद्धि न भी हो तो भी मैं धैर्यच्युत नही हूगा; यह कर्म मेरा नही, भगवान्का है। मै और किसीकी पुकार नहीं सुनूगा; भगवान् जब चलायेंगे तभी चलूगा।

बंगाल अभी ठीक तैयार नही है, यह जानता हूँ। जिस अध्यात्मकी बाढ आयी है वह है बहुत-कुछ पुरानेका नया रूप, वास्तविक रूपांतर नही। पर इसकी भी जरूरत थी। बंगाल सभी पुराने योगोंको अपने अदर जगा उनका संस्कार exhaust (क्षय) कर असली सार ले जमीन उर्वर बना रहा है। पहले थी वेदातकी बारी—अद्वैतवाद, संन्यास, शंकरकी माया इत्यादि। अभी जो हो रहा है वह है वैष्णव धर्मकी बारी—लीला, प्रेम, भावके आनंदमें मत्त हो जाना। ये अत्यंत प्राचीन हैं, नवयुगके लिए अनुपयोगी, यह टिकनेका नही, कारण ऐसी उत्तेजना टिकने लायक नही। पर वैष्णव भावका यह गुण है कि यह भगवान्के साथ जगत्का एक संबंध बनाये रखता है, इसमें जीवनका एक अर्थ है; (किंतु) खडित भावके कारण इसमें पूर्ण संबंध, पूर्ण अर्थ नही। तुमने जो दलबदीका भाव देखा है वह अनिवार्य है। मनका धर्म ही है इस खंडको पूर्ण कहना, अन्य सभी खंडोको बहिष्कृत करना। जो सिद्ध पुरुष भावको ले आते हैं वे खडित भावका अवलंबन करनेपर भी, पूर्णको मूर्त न कर सकनेपर भी, पूर्ण भावका कुछ-कुछ पता रखते हैं। किंतु शिष्योको वह नही मिलता, (क्योंकि गुरुमें वह तत्त्व) मूर्त नही होता। गठरी बाँध रहा है तो बाँधे, जिस दिन भगवान् देशमें पूर्ण रूपसे अवतीर्ण होगे उस दिन गठरी अपने-आप खुल जायगी। यह सब है अपूर्णताका, कच्ची अवस्थाका लक्षण; उससे मैं विचलित नही होता। खेले देशमें अध्यात्म-भाव चाहे जिस भी रूपमें, चाहे जितने भी दल बनें—पीछे देखा जायगा। यह है नवयुगका शैशव, बल्कि embroyonic (भ्रूण) अवस्था। आभासमात्र है, आरंभ नही।

इस योगकी विशेषता यही है कि थोड़ी ऊपरकी सिद्धिके विना भित्ति भी पक्की नही होती। जो (मेरे योगकी) साधना करते है उनमें पहले वहुत-से पुराने संस्कार थे, कुछ तो दूर हुए है पर कुछ अवतक है। पहले (तुम लोगोमें) था सन्यासका सस्कार, (तुम लोगोने) अरविंद-मठ स्थापित करना चाहा था; अव (तुम लोगोंकी) वुद्धिने मान लिया है कि सन्यास नही चाहिये, (किंतु) अभीतक उस पुरातनकी छाप प्राणसे एकदम पुछ नही गयी है। इसीसे ससारमें रह त्यागी ससारी होनेके लिए कहते हो। तुम लोगोने कामनात्यागकी आवश्यकताको समझा है, किंतु कामनात्याग और आनदभोगके सामंजस्यको पूर्णतः नही पकड पाये हो। और मेरे योगको तुम लोगोने लिया था ठीक वैसे जैसे कि वगालीका साधारण स्वभाव होता है—ज्ञानकी दृष्टिसे उतना नही जितना कि भक्तिकी दृष्टिसे, कर्मकी दृष्टिसे। ज्ञान कुछ-कुछ हुआ है, परंतु वहुत-कुछ वाकी है, और भावुकताका कुहासा dissipated (छिन्न-भिन्न) नही हुआ है—छँट नही गया है। तुम लोग सात्त्विकताके घेरेको पूरी मात्रामें नही काट सके हो, अह अभीतक है; एक शब्दमें कह सकते है; उसका development (विकास) नही हुआ है। मुझे भी कोई जल्दवाजी नही, मै तुम लोगोको निजी स्वभावके अनुसार ही develop (विकसित) होने दे रहा हूँ। एक ही साँचेमें सवको ढालना नही चाहता, असली चीज ही सवमें एक होगी, नाना प्रकारसे नाना मूर्तियोमें प्रस्फुटित होगी। सव भीतरसे grow (वढ रहे) कर रहे है, गढे जा रहे है। मै वाहरसे गढना नही चाहता। तुम लोगोने मूलको पा लिया है, और सव आ जायगा।

मै भेद प्रतिष्ठ समाज नही चाहता, आत्मप्रतिष्ठ—आत्माके ऐक्यकी मूर्ति—सघ चाहता हूँ। इसी idea या भावको ले देवसंघ नाम दिया गया है, जो देवजीवन चाहते हैं उन्हीका सघ है देवसघ। ऐसा सघ एक जगह स्थापित कर पीछे सारे देशमें फैला देना होगा। ऐसे प्रयासपर यदि अहमिकाकी छाया पड़े तो फिर सघ दलमें परिणत हो जाता है। यह धारणा सहज ही की जा सकती है कि जो (शुद्ध) सघ अतमें दिखायी देगा वह यही है; मानो सव कुछ होगा एकमात्र इसी केंद्रकी परिधि, जो इसके वाहर है वे भीतरके लोग नही; (अथवा भीतरके) होनेपर भी वे भ्रात है, हमारा जो वर्तमान भाव है उसके साथ मेल न खानेके कारण (मानो भ्रात है)।

शायद तुम कहोगे कि संघकी क्या आवश्यकता है? मुक्त वनकर सर्वघटमें विद्यमान रहूँगा; सव एकाकार होकर रहें, उस वृहत् एकाकारमें

ही जो कुछ होना हो वह हो। यह बात ठीक है; किंतु (यह) है सत्यका केवल एक पक्ष। हमारा कारबार केवल निराकार आत्माके साथ ही नही, जीवनको भी चलाना होगा; और मूर्तिके विना जीवनकी effective (कार्यकरी) गति नहीं। अरूप जो मूर्त हुआ है, उसका यह नामरूपग्रहण मायाकी मनमौज नही; रूपका नितांत प्रयोजन है इसीलिए रूप ग्रहण किया गया है, हम जगत्‌के किसी भी कामको छोड़ना नही चाहते; राजनीति, वाणिज्य, समाज, काव्य, शिल्प-कला, साहित्य सब कुछ रहेगा; इन सबको देना होगा नवीन प्राण, नवीन आकार।

राजनीति मैंने क्यो छोड़ दी? क्योंकि हमारी राजनीति भारतकी असली चीज नही, विलायती आमदनी है, विलायती ढंगका अनुकरणमात्र। पर इसकी भी जरूरत थी। हमने भी विलायती ढंगकी राजनीति की है; नही करते तो देश न उठता; न हमें experience (अभिज्ञता) होता, न हमारा पूर्ण development (विकास) होता। अभी भी उसकी जरूरत है, बगालमें उतनी नही जितनी भारतके अन्य प्रदेशोंमें। किंतु अब समय आ गया है छायाका विस्तार न कर वस्तुको पकड़नेका। भारतके प्रकृत आत्माको जगा उसीके अनुरूप करने होंगे सब कार्य।

आजकल लोग राजनीतिको spiritualise (अध्यात्मभावापन्न) करना चाहते हैं... ..उसका फल होगा—अगर कोई स्थायी फल हो तो—एक प्रकारका Indianised Bolshevism (भारतीय बोल्शेविज्म)। ऐसे कार्यमें भी मुझे कोई आपत्ति नही; जैसी जिनकी प्रेरणा हो, वैसा ही करें। परतु यह भी असली वस्तु नहीं; अशुद्ध आधारमें spiritual (आध्यात्मिक) शक्ति ढालना कच्चे घड़ेमें कारणोदधिका जल ढालनेके समान है, चाहे तो वह कच्चा पात्र फूट जायगा, जल बिखरकर नष्ट हो जायगा या फिर अध्यात्म-शक्ति evaporate (लुप्त) हो जायगी और रह जायगा बस अशुद्ध आधार; सभी क्षेत्रोंमें यही होता है। Spiritual influence (आध्यात्मिक प्रेरणा) मैं दे सकता हूँ पर वह शक्ति expended (खर्च) होगी शिवमदिरमें बदरकी मूर्ति गढ़कर स्थापित करनेमें। हो सकता है, प्राणप्रतिष्ठासे वह बंदर शक्तिमान् हो भक्त हनुमान बन जितने दिन वह शक्ति रहे उतने दिन, रामके बहुत-से कार्य करे; परंतु हम भारत-मंदिरमें हनुमान नहीं चाहते—चाहते हैं देवता, अवतार, स्वयं राम।

सभीसे मिल सकता हूँ—किंतु सबको सच्चे पथपर खीच लानेके लिए, अपने आदर्शके spirit (भाव) और रूपको अक्षुण्ण रखते हुए। अगर

ऐसा नही हुआ तो मै पथभ्रष्ट हो जाऊँगा, वास्तविक कार्य नही होगा। Individually (व्यक्तिगत रूपसे) सर्वत्र रहते हुए कुछ होगा सही, किंतु सघ-रूपमें सर्वत्र रहते हुए उससे सौ गुना अधिक होगा। पर अभीतक वह समय नही आया। अगर ताबड-तोड रूप देनेकी चेष्टा करूँ तो ठीक जो चाहता हूँ वह नही होगा। सघ होगा साधारण आरभिक रूप; जिन्होने आदर्श पा लिया है वे ऐक्यबद्ध हो नाना स्थानोमें कार्य करेंगे; बादमें spiritual commune (आध्यात्मिक सघ)की तरह रूप दे, सघबद्ध हो सब कर्मोको आत्माके अनुरूप, युगके अनुरूप आकृति देंगे। कठोरतापूर्वक बँधा रूप नही, अचलायतन नही; स्वाधीन रूप, समुद्रकी तरह जो फैल सकेगा, नाना रूप धर, इसे घेर, उसे प्लावित कर, सबको आत्मसात् कर लेगा; करते-करते spiritual community (देवजाति) तैयार होगी। यही है मेरा वर्तमान idea (भाव), अभी भी पूरी तरह developed (विकसित) नही हुआ है। सब भगवान्के हाथमें है, वह जो करायें।

अब तुम्हारे पत्रकी कुछ-एक विशेष-विशेष बातोकी आलोचना करूँगा। अपने योगके विषयमें जो तुमने लिखा है उस विषयमें मै इस पत्रमें विशेष कुछ नही लिखना चाहता, मुलाकात होनेपर उसकी चर्चा करनेमें सुविधा होगी। देहको शवके रूपमें देखना सन्यासके निर्वाणपथका लक्षण है, इस भावके साथ घर-गृहस्थी नही चलती, सब वस्तुओमें आनन्द चाहिये— जैसे आत्मामें वैसे शरीरमें। देह चैतन्यमय है, देह भगवान्का रूप है। जगत्में जो कुछ है उसमें भगवान्को देखनेसे, **सर्वमिदं ब्रह्म—वासुदेवः सर्वमिति**—यह दर्शन प्राप्त करनेसे विश्वानद मिलता है। शरीरमें भी उसी आनदकी मूर्त तरगें उठती है; इस अवस्थामें अध्यात्मभावसे पूर्ण हो गृहस्थी, विवाह सब किया जा सकता है, सभी कर्मोमें प्राप्त हो सकती है भगवान्की आनदमय अभिव्यक्ति। (मै अपने अन्दर) बहुत दिनोंसे मानसिक भूमिमें मनके, इन्द्रियोंके सभी विषयो और अनुभूतियोको आनदमय बना रहा हूँ। अब वह सब विज्ञानानद (supramental)का रूप धारण कर रहा है। इसी अवस्थामें प्राप्त होता है सच्चिदानदका पूर्ण दर्शन और अनुभूति।

देवसघकी बात कहते हुए तुमने लिखा है—"मै देवता नही, बहुत ठुका, पिटा, सान चढाया लोहा हूँ।". ....कोई भी देवता नही फिर भी प्रत्येक मनुष्यके अदर देवता है, उन्हीको प्रकट करना है देवजीवनका लक्ष्य। यह सभी कर सकते है। माना कि आधार बडा है। तुमने

अपने विषयमें जो लिखा है उसे मैं accurate (ठीक) नही मानता। आधार चाहे जैसा भी हो, एक बार यदि भगवान्‌का स्पर्श मिल जाय, आत्मा यदि जाग्रत् हो जाय, तो फिर 'बड़ा-छोटा' इन सबसे विशेष कुछ आता-जाता नही। बाधाएँ अधिक हो सकती है, समय अधिक लग सकता है, विकासमें तारतम्य हो सकता है इसका भी कुछ ठीक नही। भीतरके देवता उन सब बाधाओ, न्यूनताओका हिसाब नही रखते; ठेलकर ऊपर उठ आते है। मुझमें भी क्या कम दोष थे, मनकी, चित्तकी, प्राणकी, देहकी क्या कम बाधाएँ थी? समय क्या नही लगा? भगवान्‌ने क्या कम पीटा है? दिन-पर-दिन, मुहूर्त-पर-मुहूर्त, देवता हुआ हूँ या क्या हुआ हूँ—यह नही जानता; पर कुछ हुआ हूँ या हो रहा हूँ—भगवान् गढना चाहते हैं यही यथेष्ट है। सबके लिए ऐसा ही होता है।......हमारी शक्ति नही, भगवान्‌की शक्ति ही है इस योगकी साधिका।

मैं जो कुछ बहुत दिनोंसे देख रहा हूँ उसीकी दो-एक बातें संक्षेपमें कहता हूँ। मेरी यह धारणा है कि भारतकी दुर्बलताका प्रधान कारण पराधीनता नही, दरिद्रता नहीं, अध्यात्मबोध या धर्मका अभाव नही, बल्कि है चिंतनशक्तिका ह्रास—ज्ञानकी जन्मभूमिमें अज्ञानताका विस्तार। सर्वत्र ही देखता हूँ inability या unwillingness to think (विचारनेकी अक्षमता या अनिच्छा) अथवा चिंतन-"फोबिया"। मध्ययुगमें चाहे जो हो, पर आजकल तो यह भाव घोर अवनतिका लक्षण है। मध्ययुग था रात्रिकाल, अज्ञानकी विजयका युग। आधुनिक जगत् है ज्ञानकी विजयका युग। जो जितना अधिक विचार करता है, विश्वके सत्यको गहराईमें पैठ सीख सकता है, उतनी ही उसकी शक्ति बढती है। यूरोपको देखो, देखोगे दो चीजें—अनंत विशाल चिंतनका समुद्र और प्रकाड वेगवती पर सुशृंखल शक्तिका खेल। यही है यूरोपकी समस्त शक्ति, उसी शक्तिके बलपर वह जगत्‌को ग्रस पा रहा है हमारे प्राचीन तपस्वियोकी तरह, जिनके प्रभावसे विश्वके देवता भी भयभीत, संदिग्ध और वशीभूत थे। लोग कह देते हैं कि यूरोप ध्वसकी ओर दौड़ा जा रहा है। मैं यह नहीं मानता। यह जो विप्लव है, यह जो उलट-पलट है—यह है नवसृष्टिकी पूर्वावस्था।

फिर देखो भारतको। कुछ solitary giants (जहाँ-तहाँ प्रतिभाशाली महापुरुषो)के अतिरिक्त सर्वत्र ही......सीधे-सरल मनुष्य हैं, अर्थात् average man (साधारण मनुष्य) है, जो विचारना नही चाहते, विचार ही नहीं सकते, जिनमें बिंदुमात्र भी शक्ति नही, है केवल क्षणिक

उत्तेजना। भारत चाहता है सरल विचार, सीधी बात; यूरोप चाहता है गंभीर विचार, गभीर बात। सामान्य कुली-मजूर भी सोचता है, सब कुछ जानना चाहता है, मोटे तौरपर जानकर ही सतुष्ट नही हो जाता, गहरे पैठकर देखना चाहता है। प्रभेद यही है कि यूरोपकी शक्ति और चिंतनकी *fatal limitation* (अलघ्य सीमा) है। अध्यात्मक्षेत्रमें पहुँचनेपर उसकी चिंतनशक्ति अब और नही चलती। वहाँ यूरोप देखता है सब कुछ गोरखधधा, nebulous metaphysics (कुहेलिकामय तत्त्वशास्त्र), yogic hallucination (योगजन्य मतिभ्रम); धुएँमें आँख रगड़ते हुए कही कोई ठहराव नही पाता। पर आजकल इस limitation (सीमा)को भी surmount (अतिक्रम) करनेकी चेष्टा यूरोपमें कुछ कम नही हो रही। अपने पूर्वपुरुषोंके गुणवश हममें अध्यात्मबोध है; और जिसमें यह बोध है उसके हाथके पास है ऐसा ज्ञान, ऐसी शक्ति जिसकी एक फूंकसे यूरोपकी समस्त प्रकाड शक्ति तिनकेके समान उड़ जा सकती है। किंतु उस शक्तिको पानेके लिए शक्तिकी उपासनाकी जरूरत है। परतु हम शक्तिके उपासक नही, सहजके उपासक हैं, सहजसे शक्ति नही मिलती। हमारे पूर्वपुरुषोने विशाल चिन्तन-समुद्रमें गोता लगा विशाल ज्ञान प्राप्त किया था, विशाल सभ्यता खडी कर दी थी। रास्ता चलते-चलते उनमें अवसाद आ जाने, क्लात हो जानेके कारण विचारका वेग कम हो गया, साथ-ही-साथ शक्तिका वेग भी कम गया। हमारी सभ्यता हो गयी है अचलायतन, बाह्य धर्मकी कट्टरता, अध्यात्मभाव हो गया है एक क्षीण आलोक या क्षणिक उत्तेजनाकी तरग। यह अवस्था जबतक रहेगी तबतक भारतका स्थायी पुनरुत्थान है असभव।

बगालमें ही इस दुर्बलताकी चरम अवस्था दिखायी देती है। बगालीमें क्षिप्र बुद्धि है, भावकी capacity (सामर्थ्य) है, intuition (अतर्ज्ञान) है; इन्ही गुणोसे वह भारतमें श्रेष्ठ है। ये सभी गुण चाहियें, किंतु इतना ही यथेष्ट नही। इनके साथ यदि विचारकी गभीरता, धीर शक्ति, वीरोचित साहस, दीर्घ परिश्रमकी क्षमता और आनद आकर मिल जायँ तो बगाली केवल भारतका ही क्यो, जगत्‌का नेता बन जायगा। किंतु बगाली उसे नही चाहता, सहज ही काम बना लेना चाहता है, विचार किये बिना ही ज्ञान, परिश्रम किये बिना ही फल, सहज साधना कर सिद्धि प्राप्त कर लेना चाहता है। उसका सबल है भावकी उत्तेजना, किंतु ज्ञानशून्य भावातिशय्य ही है इस रोगका लक्षण, उसके बाद है अवसाद, तमोभाव। इधर तो देशकी क्रमशः अवनति हुई है, जीवनी शक्तिका ह्रास

हुआ है, फिर बंगालीके अपने देशमें क्या हुआ है—खाना नही, पहननेके लिए कपड़ा नही, चारो ओर हाहाकार मचा हुआ है, धन-दौलत, वाणिज्य-व्यवसाय, जगह-जमीन, खेती-वारीतक दूसरोंके हाथोमें जाना आरभ हो गया है। (हमने) शक्ति-साधना छोड़ दी है; शक्तिने भी हमें छोड़ दिया है। प्रेमकी साधना करते हैं, परतु जहाँ ज्ञान और शक्ति नही वहाँ प्रेम भी नही रहता; सकीर्णता, क्षुद्रता आ जाती है; क्षुद्र, सकीर्ण मन, प्राण और हृदयमें प्रेमका स्थान नही। प्रेम भला कहाँ है वगदेशमें? जितना झगड़ा, मनोमालिन्य, ईर्ष्या, घृणा, दलबंदी इस देशमें है, उतना भेदक्लिष्ट भारतमें और कही भी नही।

आर्यजातिके उदार वीरयुगमें इतना हो-हल्ला, नाच-कूद नही था, जो प्रयास वे आरभ करते वह बहु शताब्दियोतक स्थायी रहता। वगालीका प्रयास दो दिनतक रहता है।

तुम कहते हो कि जरूरत है भावोन्मादकी, देशको मतवाला बना देनेकी। राजनीतिक क्षेत्रमें यह सब मैंने किया था, स्वदेशी समयमें जो किया था सब धूलिसात् हो गया है। अध्यात्म-क्षेत्रमें क्या शुभतर परिणाम होगा? मै नही कहता कि कोई भी फल नही हुआ। हुआ है; जितनी भी movement (आंदोलन) होती है उसका कुछ-न-कुछ फल होता ही है, पर वह है अधिकाशमें possibility (संभावनाओं)की वृद्धि; स्थिर भावसे actualise (वास्तव रूप प्रदान) करनेकी यह ठीक रीति नही। इसी कारण मैं अब emotional excitement (प्राणकी उत्तेजना, भावोन्माद), भाव, मनके मतवालेपनको base (आधार) बनाना नही चाहता। अपने योगकी प्रतिष्ठाके लिए मैं चाहता हूँ विशाल वीरसमता; उसी समतामें प्रतिष्ठित आधारमें सभी वृत्तियोंसे पूर्ण, दृढ़, अविचल शक्ति; शक्ति-समुद्रमें ज्ञानसूर्यकी रश्मियोका विस्तार; उस आलोकमय विस्तारमें अनत प्रेम, आनंद, ऐक्यकी स्थिर *ecstasy* (तीव्रानद)। लाख-लाख शिष्य मैं नही चाहता, सौ क्षुद्र-अहशून्य भगवान्के यंत्र-रूप पूर्ण मनुष्य यदि मुझे मिल जायँ तो यही यथेष्ट है। प्रचलित गुरुगिरीपर मेरी आस्था नही; मैं गुरु बनना नही चाहता। मेरे स्पर्शसे जगकर हो, चाहे दूसरेके स्पर्शसे जगकर हो, अपने भीतरसे अपने सुप्त देवत्वको प्रकट कर, भागवत जीवन प्राप्त करें, बस मैं यही चाहता हूँ। ऐसे मनुष्य ही इस देशको ऊपर उठायेंगे।

इस lecture (भाषण)को पढ़कर यह मत समझ बैठना कि मैं बंगालके भविष्यके बारेमें निराश हो गया हूँ। जो यह कहते हैं कि

बंगालमें ही इस बार महाज्योतिका आविर्भाव होगा, मैं भी ऐसी ही आशा करता हूँ। पर other side of the shield (विपरीत पहलू)को, कहाँ दोष-त्रुटि है, न्यूनता है यह भी देखनेकी चेष्टा की है। यह सब रहनेसे वह ज्योति न महाज्योति बनेगी, न स्थायी ही होगी।

इस असाधारण लबी चिट्ठीका तात्पर्य यही है कि मैं भी पोटली बाँध रहा हूँ। परतु मेरा विश्वास है कि वह पोटली St. Peter (सेण्ट पीटर, ईसाके प्रथम शिष्य, क्रिश्चियन स्वर्गके द्वारपाल)की चादरके समान है; अनतके जितने शिकार हैं उसमें किलबिल कर रहे हैं। अभी पोटली नही खोलूंगा, असमय खोलनेसे शिकार भाग सकते हैं। देश भी अभी नही लौट रहा, इसलिए नही कि देश तैयार नही बल्कि इसलिए कि मै तैयार नही हूँ। कच्चा कच्चोंके बीच जा क्या काम कर सकता है?

इति—
तुम्हारा 'सेजदा'

'न' और 'स' को

बाधा-विघ्न

विचार-शून्य विशालताकी अवस्थाको प्राण पसद नहीं करता। वह चाहता है गति, चाहे जैसी भी गति क्यो न हो, ज्ञान या अज्ञानकी। कोई भी अचचल स्थिर अवस्था उसे नीरस लगती है।

*

व्यथा, हताशा, निरानन्द और निरुत्साहद्वारा किसीने कभी योगपथमें उन्नति नही प्राप्त की। उनका न होना ही अच्छा है।

*

ऊर्ध्वकी अनुभूति होनी चाहिये, और होना चाहिये निम्न प्रकृतिका रूपांतर। हर्ष, विषाद, हताशा और निरानंद हैं साधारण प्राणके खेल, उन्नतिके बाधक इन सबको अतिक्रम कर ऊर्ध्वके विशाल ऐक्य और समत्वको प्राणके अन्दर और सर्वत्र उतारना चाहिये।

*

वासना, दावा, मौज और कल्पनाका जोर जबतक रहता है तबतक प्राणका आधिपत्य तो रहता ही है। यह सब है प्राणकी खुराक, खुराक मिलनेपर भला वह प्रकांड और बलवान् क्यो नही बनेगा?

*

यदि वासनाका पोषण करो, साधनाके फलके लिए अधीर हो उठो, तो फिर शांत, नीरव कैसे रह सकोगे? मनुष्य-स्वभावके रूपांतर-जैसा बडा काम क्या एक मुहूर्तमें ही हो सकता है? शात-स्थिर रहते हुए माकी शक्तिको कार्य करने दो, समय आनेपर सब हो जायगा।

*

तुम यदि भीतरसे शात और समर्पित बने रहो तो फिर बाधा-विघ्न आदि तुम्हें विचलित नहीं करेंगे। अशांति, चचलतासे और इस भावको कि "क्यों नहीं होता, कब होगा", घुसने देनेसे बाधा-विघ्न जोर पकड़ता है। तुम बाधा-विघ्नकी ओर इतना ध्यान क्यों देते हो? माकी ओर दृष्टि रखो। अपने भीतर शात-समर्पित बने रहो। निम्न प्रकृतिके छोटे-छोटे defects (दोष) आसानीसे नहीं जाते। उनके कारण विचलित होना वृथा है। माकी शक्ति जब समस्त सत्ता, अवचेतनातक पर पूर्ण अधिकार कर लेगी तब वे चले जायगे। इनमें चाहे जितने दिन लग जाय, कोई हानि नहीं। सपूर्ण रूपान्तरके लिए समयकी आवश्यकता होती है।

*

न तो हम दूर ही चले गये है और न हमने त्याग ही दिया है। तुम्हारा मन-प्राण जब अशान्त होता है, तब ये सब भ्रांत कल्पनाएं तुम्हारे मनमें उठती है। बाधा यदि उठे, अहकार यदि आये, तब मापर अपना भरोसा नहीं खोना चाहिये—स्थिर भावसे उन्हे पुकारते हुए अचचल बने रहो; बाधा और अहकार दूर हो जायेंगे।

*

असली बात है काम-काज करते हुए अहंकारके या बाह्य प्रकृतिके वशमें न होना। अगर वशमें हो गये तब काम साधनाका अग नहीं रह जायगा, वह हो जायगा साधारण काम जैसा। कामको भी समर्पित होकर भीतरसे करना होता है।

*

बहिश्चेतना अज्ञानमय होती है, जो कुछ ऊपरसे आता है उसका मानो एक गलत transcription, मानो गलत नकल या अशुद्ध अनुवाद करना चाहती है; अपनी इच्छाके अनुसार उसे गढ़ना चाहती है, अपने कल्पित भोग या बाहरी स्वार्थ या अहभावकी तृप्तिकी ओर मोड़ देनेकी चेष्टा करती है। यही है मानव-स्वभावकी दुर्बलता। भगवान्‌को भगवान्‌के लिए ही चाहना होगा, अपनी स्वार्थपरताके लिए नहीं। जब psychic being (चैत्य पुरुष) भीतर सबल हो जाता है तब बाह्य प्रकृतिसे ये सब दोष क्रम हौले-हौले अतमें निर्मूल हो जाते है।

*

यह तो मनुष्यमात्र ही करता है—प्रशंसासे प्रसन्न, निंदासे दु खी। यह कोई अद्‌भुत वात नही। पर साधकके लिए इस दुर्वलताको अतिक्रम करना नितात आवश्यक है, स्तुति-निंदामे, मान-अपमानमें अविचलित रहना। किंतु ऐसा आसानीसे नही होता—यथासमय होगा।

*

यही है सत्य-चेतनाकी अवस्था और दृष्टि, गभीरतामे रहने या वाहरी चेतनामें आनेपर यदि वनी रहे तो फिर सब ठीक-ठीक आगे बढ़ता जायगा भागवत उद्देश्यकी ओर।

*

इस योगपथमें मिथ्या ही है वड़ा अतराय, किसी तरहके मिथ्यात्वको स्थान नही देना चाहिए—न मनमें, न वचनमें, न कर्ममें।

*

तामसिक समर्पणके साथ तामसिक अहंकारका कोई संवंध नही। तामसिक अहकारका अर्थ है "मैं पापी हूँ, मै दुर्वल हूँ, मेरी कोई उन्नति नही होगी, मेरी साधना नही हो सकती, मै दु.खी हूँ, भगवान्‌ने मुझे ग्रहण नही किया है, मरण ही मेरा एकमात्र आश्रय है, मां मुझे प्यार नही करती, और सवको प्यार करती है" इत्यादि-इत्यादि सोचना। Vital nature (प्राण-प्रकृति) इस प्रकार अपनेको हीन दिखा अपने ऊपर आघात करती है। सवसे खराव, दु.खी, दुष्ट, निपीडित दिखा अहभाव को चरितार्थ करना चाहती है—विपरीत ढगसे। राजसिक अहकार ठीक इससे उलटा होता है। 'मै वड़ा' इत्यादि कह वह अपनेको फुलाकर दिखाना चाहता है।

*

अज्ञान, अहंकार और वासना ही हैं वाधा—मन, प्राण और शरीर यदि ऊर्ध्व चैतन्यके आधार वन जाय तो यह भागवत ज्योति शरीरमें उतर सकती है।

*

मनुष्यका मन ही अविश्वास, कल्पना, अशुद्ध विचार, अश्रद्धासे भरा होता है, अज्ञान और दुःखसे भी भरा होता है। वह अज्ञान ही है उस

अश्रद्धाका कारण, उस दु खका मूल। मनुष्यकी बुद्धि अज्ञानका यत्न है; प्राय: ही उसमें गलत विचार, गलत धारणा आती है, फिर भी वह समझता है कि मेरा ही विचार सत्य है। उसके विचारमें कोई भूल है या नही और भूल कहा है यह देखकर विवेचना करनेकी इच्छा ही उसे नही होती। यहाँतक कि भूल दिखा देनेपर उसके अहकारको चोट लगती है, उसे क्रोध आता है या दु.ख होता है, वह स्वीकार ही नही करना चाहता। पर दूसरेकी भूल, दोष-त्रुटि दिखा पानेपर उसे खूब तृप्ति मिलती है। दूसरेकी निंदा सुननेपर उसे वह तुरत सत्य मान लेता है, वह कहाँतक सच है इसका विचारतक नही करता। इस प्रकारके मनमें श्रद्धा-विश्वास आसानीसे नही आता। इसलिए मनुष्यकी बात नही सुननी चाहिये, न उसके प्रभावको अपने अन्दर ग्रहण करना चाहिये। यदि असली चीज सुननी हो तो अपने भीतर पैठ psychic being (चैत्य पुरुष)को जगाना चाहिये, उसके भीतरसे धीरे-धीरे सत्य-बुद्धि मनमें बढती है, सत्य भाव और feeling (अनुभव) हृदयमें आते है, सत्य प्रेरणा प्राणमें उठती है, psychic (चैत्य)के प्रकाशमें मनुष्य, वस्तु, घटना और जगत्पर नवीन दृष्टि पड़ती है, मनका अज्ञान, गलत देखना, गलत सोचना, अविश्वास और अश्रद्धा फिर नही आती।

*

सभवत. शरीरमें ध्यानके लिए कोई बाधा है, जिसके कारण वह बैठना नही चाहता, तब हाँ, बहुतोकी साधनामें ऐसा भी होता है कि साधना अपने-आप ही चलती है। जबरदस्ती बैठकर ध्यान करनेकी आवश्यकता नही होती। बल्कि चलते-फिरते, सोते-बैठते, यहाँतक कि नीदमें भी साधना उतरती है।

*

सभवत: बाहरके स्पर्शसे यह सब हुआ है। आजकल यह सब प्राणका गोलमाल कुछ लोगोमें बार-बार हो रहा है। यह एक आदमीसे निकलकर दूसरेमें जा रहा है एक रोग की तरह। विशेषकर यह भाव खूब प्रबल है कि मै मरूगा, मैं इस शरीरको नही रखूगा, इस शरीरमें मेरी योग-साधना नही होगी, इत्यादि। किंतु यह धारणा अत्यत गलत है कि इस देहका त्याग कर अन्य देहमें बिना बाधाके ही योगसिद्ध हो जाऊँगा। बल्कि इस प्रकार देह-त्याग करनेसे दूसरे जन्ममें और भी बाधाए

आयेंगी, और श्रीमांके साथ कोई संबंध ही नही रह जायगा। यह सब है विरोधी शक्तिका आक्रमण। इसका उद्देश्य है साधककी साधनाको भंग कर देना, माके स्वास्थ्यको भग करना, आश्रम और मेरे कार्यको भंग करना। तुम खूब सावधान होकर रहो। इन सबको अपने अन्दर मत घुसने दो।

बाहरके आदमी मुझे डांटते हैं, मुझे खूब चोट पहुंची है, मैं मर जाऊगा,—यह है प्राणके अहंकारकी बात, एक साधककी बात नही। मैंने तुम्हें सतर्क कर दिया है, अहंकारको अवकाश मत दो। यदि कोई कुछ कहे तो विचलित मत होओ, माके साथ युक्त रहते हुए शात मन हो निरहंकार बने रहो।

*

मर जाना कोई समाधान नही। इस जन्ममें जिन बाधाओंको तुमने नष्ट नही किया, क्या तुम समझते हो दूसरे जन्ममें वे सब तुम्हें छोड़ देंगी? इसी जन्ममें उन्हें दूर करना होगा।

*

प्राणके इन सब व्यर्थके विलापोंको यदि तुम उठने दो तो भला अनुभूति आयेगी किस तरह, आनेपर टिकेगी कैसे या सफल ही होगी कैसे? —प्राणका यह रोना-धोना केवल अतराय है।

यह विलाप और हाय-तोबा योगपथपर अग्रसर होनेमें बाधक है, और कुछ नही, केवल प्राणका एक प्रकारका तामसिक खेल है। इन सबको छोड़ शात-भावसे साधना करनेसे उन्नति शीघ्र होती है।

*

जो कुछ तुमने देखा है वह ठीक ही है—परंतु जिसे तुम खराब शक्ति कहते हो वह है साधारण प्रकृतिमात्र। वह प्रकृति ही मनुष्यसे प्रायः सब कुछ कराती है—साधनामें उसके प्रभावको अतिक्रम करना होता है—पर यह आसानीसे नही होता,—दृढ-स्थिर प्रयाससे यह अतमें पूर्ण रूपसे सिद्ध होता है।

*

नही सकेगी—यथासमय उसका जोर कम पड जायगा, वह नष्ट हो जायगी, और अधिक नही टिकेगी।

*

यह बाधा सबके सामने आती है। प्रति मुहूर्त युक्त रह पाना आसानी से नही होता। धीर भावसे साधना करते-करते हो जाता है।

*

बाधा तो कुछ विशेष नही—मनुष्यकी बहिः प्रकृतिमें जो कुछ होता है वही है—वह सब श्रीमाकी शक्तिकी working (क्रिया)के द्वारा क्रमश. दूर हो जायगा। उसके लिए चिन्तित या दु.खित होनेका कोई कारण नही।

*

सर्वदा माका स्मरण करो, माको पुकारो तो बाधा चली जायगी। बाधासे डरो मत, विचलित मत होओ—स्थिर हो माको पुकारो।

*

बाधा अनत अवश्य appear (प्रतीत) होती है। पर वह appearance (प्रतीति) सत्य नही, राक्षसी मायामात्र है—ठीक पथ पर चलते रहनेसे अतमें पथ परिष्कृत हो जाता है।

*

बहुत-कुछ ऐसा ही है, पर बाधा किसीको सहज ही नही छोडती, खूब बडे-बडे योगियोको भी नही। मनकी बाधाको अपेक्षाकृत आसानीसे दूर किया जा सकता है, किंतु प्राणकी बाधा, शरीरकी बाधा उतनी आसानीसे नही जाती, समय लगता है।

*

बडे-बडे साधकोपर भी बाधा आक्रमण कर सकती है, इससे क्या? Psychic (चैत्य) अवस्था रहनेपर, माके साथ युक्त रहनेपर इन सब आक्रमणोका प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है।

*

ये दो बाधाए साधकोंके सामने प्रायः ही रहती है। पहली प्राणकी, दूसरी शरीर-चेतनाकी—इनसे स्वतंत्र होकर रहनेमें ये कम होती-होती अंततः समाप्त हो जाती है।

*

ये सब बाधाए सबके सामने आती हैं, ऐसा न होता तो योगसिद्धि थोड़े दिनोमें ही हो जाती।

*

मनुष्यकी प्रकृति तो हर समय भीतर नही रह सकती—किंतु जब भीतर-बाहर सब अवस्थाओमें माको feel (अनुभव) करना सभव होता है तब फिर यह difficulty (कठिनाई) नही रहती। उसी अवस्थाको ले आओ।

*

अशुद्ध प्रकृति ही साधकके लिए बाधाकी सृष्टि करती है—कामभोग-की इच्छा, अज्ञानता इत्यादि मनुष्यकी अशुद्ध प्रकृतिके ही अतर्गत है। ये चीजें सबमें हैं—जब ये आती हैं तब विचलित न हो शातभावसे अपनेको पृथक् कर इनका प्रत्याख्यान करना होता है। यदि तुम "मैं पापी हू" इत्यादि कहो तो उससे दुर्बलता ही वढेगी। कहना चाहिये—यह है मनुष्य-की अशुद्ध प्रकृति। ये चीजें मनुष्यके साधारण जीवनमें रहती है, रहें—"मैं नही चाहता, मैं भगवान्को ही चाहता हूँ, भगवती माको चाहता हूँ—ये सब मेरी सत्य चेतनाकी चीजें नही। जवतक ये आयेंगी तबतक स्थिरभावसे इनका प्रत्याख्यान करूगा—विचलित नही हूँगा, इन्हें प्रत्युत्तर नही दूंगा।"

*

Sex force (काम-शक्ति) मनुष्यमात्रमें ही है, वह impulse (आवेग) प्रकृतिका एक प्रधान यंत्र है जिसके द्वारा वह मनुष्यको चलाती है। ससार, समाज, परिवारकी सृष्टि करती है, प्राणीका जीवन वहुत-कुछ उसपर निर्भर है। इसलिए सबके अदर sex impulse (काम-प्रवृत्ति) होती है। इससे कोई नही बच सकता—साधना करनेपर भी यह काम-प्रवृत्ति छोडना नही चाहती, आसानीसे नही छोडती, यह प्राण और शरीरमें प्रकृतिका

रूपान्तर न होनेतक बार-बार वापस आती है। तो भी साधक सावधान रहता है, संयम करता है, इसका प्रत्याख्यान करता है, जितनी वार यह आती है उतनी बार इसे भगा देता है—ऐसा करते-करते अतमें लुप्त हो जाती है।

*

स्थिर भावसे साधना करते रहो—पुरानी प्रकृतिका जो कुछ भी अभी रह गया है वह समयानुसार धीरे-धीरे चला जायगा।

*

बाधा सबके सामने है, आश्रममें ऐसा कोई साधक नही जिसके सामने बाधा न हो। भीतर स्थिर बने रहो, बाधाके रहते हुए भी सहायता पाओगे, सत्य चैतन्य सभी स्तरोंमें प्रस्फुटित होगा।

*

प्रत्येक क्षण बाधाकी बात, मैं खराब हूँ, मैं खराब हूँ इत्यादि बातोको सोचते रहना ही है तुम्हारा प्रधान अन्तराय।

*

शात भावसे मांपर निर्भर रह स्थिर भावसे साधारण प्रकृतिका प्रत्याख्यान कर धीरे-धीरे विजय पाना—बस, यही है परिवर्तनका एकमात्र उपाय।

*

सभी बाधाए तो विरोधी शक्तिकी सृष्टि नहीं—साधारण अशुद्ध प्रकृतिकी ही सृष्टि हैं, जो सबमें है।

सत्ताके अंश

सत्ताका कोई अंश त्यागा नही जा सकता, रूपातरित करना चाहिये। प्रकृतिकी किसी विशेष गतिको त्यागा जाता है, सत्ताके अश तो स्थायी होते हैं।

*

साधना करते-करते ऐसी अवस्था हो जाती है मानो दो स्वतत्र सत्ताएं हो, एक भीतरी चीजें लेकर रहती है, शात, विशुद्ध भागवत सत्यकी दृष्टि और अनुभूतिमें लीन या उसके साथ सयुक्त और दूसरी छोटी-मोटी वातोमें व्यस्त। उसके बाद इन दोनोंके बीच एक भागवत ऐक्य स्थापित किया जाता है—ऊर्ध्व जगत् और बहिर्जगत् एक हो जाते हैं।

*

साधारण मनुष्यका सामनेका अंश जाग्रत् होता है—किन्तु यह सामनेकी जाग्रत् चेतना सचमुचमें जाग्रत् नही, यह है अविद्यापूर्ण और अज्ञ। इसके पीछे विद्यमान है inner being (आतर पुरुष) का क्षेत्र—इस तरह कि मानो सोया हुआ हो। किंतु इस आवरणको हटानेपर यह पीछेकी चेतना ही खुलती दिखायी देती है, वही ज्योति-शक्ति, शाति इत्यादि पहले उतरती हैं। बाहरकी जाग्रत् सत्ता जो कुछ नही कर सकती उसे यह पीछेकी, आतरिक सत्ता सहज ही कर सकती है, भगवान्की ओर, विश्वचैतन्यकी ओर अपनेको खोल विशाल मुक्तचैतन्य बन सकती है।

*

ये सब आक्रमण यदि घुस न सकें या घुसनेपर भी वहां ठहर न सकें तो यह समझना होगा कि outer being (बाहरी सत्ता)की चेतना जाग्रत् हो गयी है और उसकी काफी मात्रामें शुद्धि हो चुकी है।

*

जब अवचेतनासे तमोभाव उठकर शरीरपर आक्रमण करता है तब इस तरह बीमारीके जैसा मालूम होता है—श्रीमाकी शक्तिको ऊपरसे शरीरके अन्दर पुकारो, सब दूर हो जायगा।

*

अवचेतनाकी बाधाओंसे मुक्त होनेका उपाय है पहले उन सबको पहचान लेना, उसके बाद उन सबको reject (त्याग) करना, अंतमें श्रीमांकी भीतरकी या ऊपरकी ज्योति-चेतनाको शरीर-चेतनाके अंदर उतारना। तब फिर अवचेतनामेंसे ignorant movements (अज्ञानपूर्ण गतियों)को निकाल देनेपर उनके बदले उस चेतनाकी movements (गतिया) स्थापित होगी। किंतु यह आसानीसे नही होता—धैर्यके साथ इसे करना होगा—सुदृढ patience (धैर्य)के साथ। श्रीमापर भरोसा ही है संबल। फिर भी यदि कोई अपने भीतर रह सके, भीतरी दृष्टि और चेतना बनायें रख सके तो कष्ट और परिश्रम नही होता—ऐसा करना सब समय संभव नही, उस समय श्रद्धा और धैर्यकी नितांत आवश्यकता होती है।

*

जब physical consciousness (भौतिक चेतना) प्रबल हो अन्य सबको ढक लेती है और सर्वत्र फैले रहनेकी चेष्टा करती है तब ऐसी ही अवस्था होती है—क्योंकि इस देह-चेतनाकी स्वतंत्र प्रकृति जब प्रकट होती है तब सब कुछ मालूम होता है जड़बद्ध, तमोमय, ज्ञानके प्रकाशसे रहित, शक्तिकी प्रेरणासे शून्य। इस अवस्थाको अनुमति मत देना—यदि आये तो पुकार लाना श्रीमाकी ज्योति और शक्तिको, इस देह-चेतनामें प्रवेश करा इसे आलोकमय और शक्तिमय बना देनेके लिए।

*

Physical (स्थूल सत्ता)का केन्द्र मेरुदडके अतिम भागमें है, जिसे मूलाधार कहते है—पर प्राय. वह वहाँ दिखायी नही देती, उसकी presence (उपस्थिति) अनुभव की जा सकती है।

*

यह तो प्राणमय पुरुष है, emotional vital (भावमय प्राण) में अधिष्ठित। प्राणमय पुरुषके तीन स्तर हैं—हृदयमें, नाभिमें और

नाभिसे नीचे। हृदयमें वह emotional being (भावमय पुरुष) है, नाभिमें वासनामय और नाभिसे नीचे sensational अर्थात् इंद्रियोंके आकर्षण और प्राणके क्षुद्र-क्षुद्र भावोंमें व्यस्त।

*

आत्मा ही है इस प्रकार असीम, विराट् इत्यादि। भीतरी मन, प्राण, physical consciousness (भौतिक चेतना) आदि जब संपूर्ण रूपसे खुल जाते है तब वे भी वैसे ही हो जाते हैं—बाहरी मन, प्राण और शरीर केवल यंत्र हैं इस जगत्की बाहरकी प्रकृतिके साथ व्यवहार और खेल करनेके लिए। बाहरी मन, प्राण और शरीर भी जब आलोकमय, चैतन्यमय हो जाते हैं तब सकीर्ण और आबद्ध नही मालूम होते। वे भी अतरके साथ युक्त हो जाते हैं।

*

मनकी अनेक प्रकारकी गतियाँ होती है, जिनमें कोई सामजस्य नही होता—साधकमें भी होती है, साधारण मनुष्यमें भी, सभीमें होती है; किंतु साधक उन्हें देखता और जानता है पर साधारण मनुष्य यह नही समझता कि उसके भीतर क्या हो रहा है। सबको भगवान्की ओर मोड़ते-मोडते मनुष्य एक-मन हो जाता है।

*

साधारण मनके तीन स्तर है। चिंतन या बुद्धिका स्तर, इच्छा-शक्तिका स्तर (बुद्धि-प्रेरित will) और बहिर्गामी बुद्धिका स्तर। ऊपरके मनके भी तीन स्तर हैं—higher mind (उच्चतर मन), illumined mind (प्रबुद्ध मन) और intuition (सबोधि)। सिरके भीतर जब देखते हो तो फिर वे उसी साधारण मनके तीन स्तर होंगे—ऊपरकी ओर खुले हुए प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर एक विशेष भागवती शक्ति काम करनेके लिए उतर रही है।

*

यह विराट् अवस्था जब मस्तकमें आती है तब उसका अर्थ है कि मन विशाल हो विश्व-मनके साथ युक्त हो रहा है। कठ आदिके विराट् होनेका अर्थ है उस-उस केन्द्रकी चेतनाकी भी वैसी ही अवस्था आरभ हो रही है।

*

Higher mind (उच्चतर मन)मे निवास करना उतना कठिन नही—चेतना जव सिरसे थोडी ऊपरकी ओर उठती है तव वह आरभ हो जाता है—किंतु Overmind (अधिमानस)में जानेमें वहुत समय लगता है, वहुत वड़ा साधक हुए विना नही होता। इन सव स्तरोमें निवास करनेपर मनके वधन भग हो जाते है, चेतना विशाल हो जाती है, क्षुद्र अहज्ञान कम हो जाता है, सभी एक है, सभी भगवान्के अदर है—इस तरहका भागवत या आध्यात्मिक ज्ञान सहज स्वाभाविक हो जाता है।

*

साधना होती है समयकी आवश्यकताके अनुसार। पहले थी भीतरकी साधनामें सहज ध्यानकी अवस्था—अव आवश्यकता है भीतर-वाहरको एक कर देनेकी—देह-चेतनातक को।

*

ज्ञान अनेक प्रकारके है—चेतना जैसी, ज्ञान भी वैसा। ऊर्ध्व चेतनाका ज्ञान सच्चा और स्पष्ट होता है—निम्न चेतनाका ज्ञान सत्य-मिथ्या-मिश्रित, अस्पष्ट होता है। वुद्धिका ज्ञान एक प्रकारका होता है, Supramental (अतिमानसिक) चेतनाका ज्ञान दूसरे प्रकारका, वुद्धिसे अतीत। शात ज्ञान होता है ऊर्ध्व-चेतनाका।

*

यही है ऊर्ध्व चेतनाका सोपान—इस चेतनाके अनेक स्तर या समतल भूमिकाएँ है, इस सोपानपर एकके वाद दूसरी भूमिकामें उठते हुए अंतमें अतिमानसमें पहुँचता है—भगवान्के सीमाहीन आलोकमय आनदमय अनन्तमें।

*

ऊपरका यह जगत् है ऊर्ध्व-चेतनाकी भूमि (plane); यह हमारी योगसाधनाद्वारा नीचे उतर रहा है। पार्थिव जगत् आजकल विरोधी प्राण-जगत्के ताडव-नृत्यमे पूर्ण और ध्वसोन्मुख हो रहा है।

*

Psychic being (चैत्य पुरुष) भगवान्का अंश है, उसका खिचाव होता है सत्यकी ओर, भगवान्की ओर, और वह खिचाव होता है वासना-

शून्य, कोई दावा नही, नीच कामना नही। Psychic emotion (चैत्य भावावेग) पवित्र, निर्मल होती है। Emotional vital (भावावेगमय प्राण)के वासना, दावा, अहकार, अभिमान इत्यादि वहुत-से अग है; वह भगवान्‌को चाहता है अपने अहकार, अपनी वासनाको चरितार्थ करनेके लिए—पर psychic (चैत्य पुरुष)के स्पर्शसे वह शुद्ध-पवित्र हो सकता है।

*

Psychic (चैत्य) सत्ता मन-प्राण-देहके पीछे और इन तीनोको ही स्पर्श किये हुए रहती है। मनके उस पार है अध्यात्म-सत्ता और ऊर्ध्व-चेतना।

*

पीछेकी ओर है psychic being (चैत्य पुरुष)का स्थान, और वहीं है सव केंद्र—जैसे, हृत्केंद्र, प्राण-केंद्र, शरीर-केंद्र, वही मेरुदडके साथ सश्लिष्ट है, वही है उनका प्रतिष्ठान। इसी कारण इस पीछेकी चेतनाकी अवस्था वहुत important (महत्वपूर्ण) है।

*

सव कुछ निर्भर करता है psychic (चैत्य पुरुष)की प्रधानता पर—वहि प्रकृति क्षुद्र अहकार और कामना-वासनाको चरितार्थ करनेमें व्यस्त रहती है; मानस-पुरुष आत्माको लेकर व्यस्त रहता है, किंतु क्षुद्र अहंको उससे कोई भी तृप्ति नही मिलती, वह क्षुद्रत्व ही पसद करता है। Psychic (चैत्य पुरुष) भगवान्‌को लेकर व्यस्त रहता है, समर्पण करना उसीका काम है—केवल psychic (चैत्य पुरुष) ही वहि प्रकृतिको वशमें कर सकता है।

*

या तो psychic (चैत्य पुरुष) आधारका नियामक (ruler, चालक, पथप्रदर्शक) वन वुद्धि, मन, प्राण और शरीर-चेतनाको भगवान्‌की ओर उन्मुख करेगा अथवा ऊर्ध्व-चैतन्य शरीर-चेतनातकमें उतरकर समस्त आधारपर अधिकार जमायेगा, तव स्थापित हो जायगा स्थूल चेतनामें दृढ आधार।

*

जो खुली है वह psychic (चैत्य) और heart (हृदय)की consciousness (चेतना) है—ऊपरसे आ रहे हैं higher mind (उच्चतर मानस) और भागवत चेतनाका प्रकाश और शांति। जो चादकी तरह ऊपर उठ रहा है वह है psychic (चैत्य)से उठनेवाली आध्यात्मिक aspiration (अभीप्सा)का स्रोत।

*

यही होना चाहिये—हृदय-पद्मका उद्घाटन, समस्त nature (प्रकृति) का हृदयस्थ psychic being (चैत्य पुरुष)के वशमें होना, इसीसे होता है नवजन्म।

योगकी नींव

अपनेको सयत रखो—किसीकी ओर आकर्षित न होने देना, किसीके भी vital (प्राणिक) आकर्षणको प्रश्रय न देना, स्वयं भी उसपर कोई भी vital (प्राणिक) मोह या आकर्षण न फेंकना—इसीको कहते है अपने अदर ठीक रहना।

*

पापकी बात क्यो?—पाप नही, मनुष्यकी दुर्बलता है यह। आत्मा सर्वदा शुद्ध है, psychic being (चैत्य पुरुष) भी शुद्ध है, साधनाद्वारा अंतर-सत्ता (inner mind, vital, physical आंतर मन, प्राण और शरीर) भी शुद्ध हो सकती है, फिर भी external being बाह्य सत्ता, बाह्य प्रकृतिमें उस चरित्रकी पुरानी दुर्बलता बहुत दिनोतक चिपकी रह सकती है, पूर्णतया शुद्ध करना कठिन है। चाहिये complete sincerity (पूर्ण सच्चाई), चाहिये दृढ़ता और धैर्य, चाहिये सदाजाग्रत् भाव। Psychic being (चैत्य पुरुष) यदि सामने रहे, सर्वदा जगा रहे, प्रभाव विस्तारित करता रहे, तो फिर कोई भय नही, किंतु हमेशा वैसा नही होता। राक्षसी माया उन्ही पुराने weak points (कमजोरियो)को पकड़, मनको भुला, भीतर घुसनेका रास्ता बना लेती है। प्रत्येक बार उसे भगाकर पथ रुद्धकर देना चाहिये।

*

प्राणको नष्ट नही करना चाहिये, प्राणके विना कोई काम नही होता, जीवन भी नही रहता; प्राणको रूपांतरित करना चाहिये, भगवान्‌का यंत्र वनाना चाहिये।

*

अपने अदर शाति, मांकी शक्ति और ज्योतिको प्रतिष्ठित कर शात भावसे सब करो,——फिर और किसी चीजकी जरूरत नही——सब कुछ स्वच्छ-स्पष्ट हो जायगा।

*

यह है दो विपरीत प्रभावोका द्वद्व——सत्य-शक्तिका प्रभाव जब शरीरका स्पर्श करता है तब सब स्वस्थ हो जाता है, अविद्याके प्रभावसे रोग, दर्द और स्नायविक विकार लौट आते हैं।

*

अविद्याके अदर जो कुछ रहता है वह सब एक विश्व-चैतन्यके अदर ही रहता है प्रकाश-अंधकारकी तरह, पर इससे यह मत समझ बैठना कि प्रकाश और अधकार सब समान है। अधकारका वर्जन करो, प्रकाशका वरण करो।

*

किसी नियमका पालन करनेसे कुछ नही होता। स्थिर, शात, दृढ-सकल्प होकर प्रत्याख्यान करते रहनेसे धीरे-धीरे अविद्याका प्रभाव जाता रहता है। उतावला होनेसे (घबरा जाने, अंध हो जाने, हताश हो जानेसे) अविद्या-शक्ति और भी जोर पाकर आक्रमण करनेका साहस पाती है।

*

बाधा सहज ही दूर नही होती। खूब बडे साधककी भी 'आज ही' एक मुहूर्तमें सारी बाधा दूर नही हो जाती। मैंने यह भी बहुत बार कहा है कि शांत, अचचल रहकर, मापर सपूर्ण भरोसा रखकर धीरे-धीरे आगे बढना होता है——एक मुहूर्तमें नही होता। आज ही सब हो जाना चाहिये——ऐसा दावा करनेसे और भी बाधाए आती हैं। धीर-स्थिर बने रहना चाहिये।

*

Psychic (चैत्य पुरुष)के पीछे, psychic (चैत्य) स्थितिके पीछे अहकार नही बना रह सकता। किंतु प्राणमेंसे अहकार आकर उसके साथ युक्त हो जानेकी चेष्टा कर सकता है। यदि वैसा कुछ देखो तो उसे ग्रहण न कर, त्याग करनेके लिए उसे माको समर्पित कर दो।

*

सीधा रास्ता psychic (चैत्य)का पथ है, समर्पणके बलसे और सत्य-दृष्टिके प्रकाशमें बिना मुड़े ऊपर चला जाता है—जो थोड़ा सीधा और थोड़ा घुमावदार है वह है मानसिक तपस्याका पथ और जो पूरी तरह घुमावदार है वह है प्राणका पथ, आकाक्षा-वासनासे पूर्ण, वहाँ ज्ञान भी नही, फिर भी प्राणमें सच्ची चाह होनेके कारण किसी प्रकार जाया जा सकता है।

*

पहले, चेतना शून्य और विशाल होनी चाहिये, तब उसके अदर ऊपर-की ज्योति, शक्ति इत्यादि स्थायी रूपसे स्थान पा सकती है—खाली नही होनेसे पुरानी movements (क्रियाए) ही खेलती रहती हैं, ऊपरकी चीजें सुविधानुसार स्थान नही पाती।

*

इस प्रकारकी शून्यता साधकमें उस समय आती है जब ऊर्ध्वकी चेतना उतरकर मन-प्राणको अधिकृत करनेके लिए तैयारी करती है, जब आत्माकी अनुभूति होती है, तब भी उसके प्रथम स्पर्शसे एक विशाल शात शून्यता आती है, उसके बाद उस शून्यताके अदर एक विशाल, गाढ शाति, नीर-वता, स्थिर-निश्चल आनद उतरता है।

*

केवल ऊर्ध्वमें जानेसे ही इस योगकी सिद्धि नही प्राप्त होती—ऊर्ध्व-के सत्य, प्रकाश, शाति इत्यादिके उतरकर मन-प्राण-देहमें प्रतिष्ठित होने-पर ही सिद्धि प्राप्त होती है।

यदि ऊर्ध्व चैतन्य उतर आवे और तुम मन-प्राण-शरीरके समस्त मिथ्या-का प्रत्याख्यान करो तो फिर सत्यकी प्रतिष्ठा होगी।

*

एकदम नीरव हो जानेसे काम नही चलता, वैसा होना अच्छा भी नही। अवश्य ही प्रथम अवस्थामें, जहाँतक सभव हो, नीरव, गभीर होना साधनाके लिए अनुकूल अवस्था है—जब बाहरकी प्रकृति मातृमय हो जायगी तब बातचीत, हसी इत्यादिमें भी सत्य-चेतना बनी रहेगी।

ऊपरके चैतन्यका स्पर्श—उस ऊपरके चैतन्यका भाव, शाति, ज्ञान, गभीरताका अवतरण ही है योगसिद्धिका उपाय। प्राणको सयत कर उस शक्तिको ही मन-प्राण-शरीरपर अधिकार जमाने देना होगा।

*

नीदकी यह अवस्था बहुत ही अच्छी है। ऐसी ही सचेतन नीद होनी चाहिये।

*

जब नीद सचेतन होती है तब ऐसा ही होता है—जैसे जाग्रत्में वैसे ही नीदमें साधना अनवरत चलती रहती है।

*

जाग्रत् अवस्थामें ही सब कुछ उतारना, सब भागवत अनुभूतिया पाना है इस योगका नियम। अवश्य ही आरभिक अवस्थामें ध्यान ही अधिक होता है और अततक उपयोगी हो सकता है—किंतु केवल ध्यानमें अनुभूति होनेसे समस्त सत्ताका रूपातर नही होता। इसलिए जाग्रत्में होना बहुत अच्छा लक्षण है।

*

पहले शाति आती है; सारा आधार शात हुए बिना ज्ञानका आना कठिन है, शाति स्थापित होनेपर माका विशाल, अनत, चैतन्य आता है, उसके अन्दर 'मैं'-पन निमग्न हो जाता है, लुप्त हो जाता है—अतमें उसका चिह्नतक नही रह जाता। रह जाती हैं केवल मा और माका सनातन अश भागवत अनंतमे।

*

यह बहुत अच्छा है। यही है असली अनुभूति। यही शाति जब समस्त आधारमें व्याप जाती है और दृढ, ठोस, स्थायी हो जाती है तभी स्थापित होती है भागवत चेतनाकी पहली नीव।

*

शरीरके स्नायु-मडल (nervous system)में शांति और शक्तिको उतार लेनेके सिवा nerves (स्नायुओ)को सबल बनानेका और कोई उपाय नही।

*

भीतरसे जो कुछ कहा गया है वह ठीक ही है। बहिश्चेतनाके अज्ञानसे ही होती है भूल-भ्रांति और मिथ्या कष्ट, वहाँ है सब क्षुद्र अहंका खेल। भीतर ही रहना होता है—असली सत्य चेतना, सत्य भाव, सत्य दृष्टि जिसमें होती है उसमें अहंकार, अभिमान, कामना-वासनाकी माग लेशमात्र भी नहीं रहेगी, उसे ही grow करने (बढ़ने) दो, तब माका चैतन्य तुममें प्रतिष्ठित होगा, फिर मानव-प्रकृतिका अहंकार, विरोध, गोलमाल नहीं रहेगा।

*

बाधाकी बात मनुष्य जितना अधिक सोचता है, बाधा भी उसपर उतने ही अधिक जोरसे टूटती है। माके प्रति अपनेको खोल अधिकाधिक भगवान्का चिंतन करो—ज्योति, शांति, आनंदका चिंतन।

*

यह असीम शांति जितनी बढ़े उतना ही अच्छा। शांति ही है योगकी नींव।

*

जब शून्य अवस्था आती है तब शांत रह माको पुकारो। सभी शून्य अवस्था अनुभव करते हैं फिर भी शांत शून्य अवस्था साधनाके लिए उपयोगी होती है—अशांत होनेसे उसका कोई लाभ नहीं होता।

अभिज्ञता, अनुभूति और उपलब्धि

अभिज्ञता व्यर्थ नही जाती—उसका भी अपना स्थान है, अर्थात् अनुभूति prepare (तैयार) करती है, आधारको खोलनेमें सहायता करती है, अन्य जगतोका, नाना स्तरोका ज्ञान देती है। असली अनुभूति है भागवत शाति, समता, प्रकाश, ज्ञान, पवित्रता, विशालता, भागवत सान्निध्य, आत्माकी उपलब्धि, भागवत आनन्द, विश्व-चैतन्यकी उपलब्धि (जिससे अहंकार नष्ट हो जाता है), निर्मल वासनाशून्य भागवत प्रेम, सर्वत्र भगवद्दर्शन इत्यादिकी सम्यक् अनुभूति और प्रतिष्ठा। इन सब अनुभूतियोका प्रथम सोपान है ऊपरकी शान्तिका अवतरण और समस्त आधारमें और आधारके चारो ओर उसकी दृढ प्रतिष्ठा।

*

इन सब अभिज्ञताओका मूल्य है, इनमें तथ्य है—इनसे साधनामें उन्नति होती है। पर वही यथेष्ट नही—चाहिये अनुभूति, भागवत शाति, समता, पवित्रता, ऊर्ध्व चैतन्य, ज्ञान, शक्ति और आनदका अवतरण, प्रतिष्ठा। यही है असली चीज।

*

पेडोमें प्राण है, चैतन्य है—पेड-पौधोके साथ भावका विनिमय सहज ही किया जा सकता है।

*

यह अनुभूति बहुत अच्छी है। प्रणामके समय मा भीतरसे दे रही है, यही feel (अनुभव) करना चाहिये—केवल बाहरी appearance (रूप)को देखकर लोग कितना न गलत समझते हैं, भीतरी दान लेना भूल जाते हैं या लेनेमें असमर्थ होते हैं।

*

हीरेका प्रकाश तो मांका ही प्रकाश है, at its strongest (अपने प्रखरतम रूपमें), इस प्रकार माके शरीरसे निकल साधकपर उसका पड़ना खूब स्वाभाविक है, यदि साधक अच्छी अवस्थामें हो।

*

नही, यह कल्पना या मिथ्या नही—ऊपरका मदिर ऊर्ध्व चेतनाका है, नीचेका मन्दिर है इस मन-प्राण-शरीरकी रूपातरित चेतना—मांने नीचे उतरकर इस मदिरकी सृष्टि की है और वहांसे सत्यका प्रभाव तुम्हारे अदर सर्वत्र फैला रही हैं।

*

वहुत अच्छा, इसी प्रकार ऊर्ध्व चेतनाको उतारना चाहिये, शात विश्व-मय भाव ग्रहण कर पहले सिरमें, (मानस क्षेत्रमें, फिर हृदयमें, emotional vital—भावमय प्राणमें और psychic—चैत्य-केन्द्रमें), उसके बाद नाभिमें और नाभिसे नीचे (vital—प्राणमें), फिर अतमें समस्त physical—शरीरमें फैला देना चाहिये।

*

यह change (परिवर्तन) (पीछेकी ओर) वहुत अच्छा है, वहुत वार पीछेसे इस प्रकारका आक्रमण होता है, किंतु मांकी शक्ति और चैतन्य वहा रहनेपर प्रवेश नही कर पाता। श्वेत पद्मका अर्थ यही है कि वहां माका चैतन्य प्रकट हो रहा है।

*

सिरपर इस प्रकार अनुभव होनेका अर्थ यह है कि मन पूर्णतः खुला हुआ है और उसने ऊपरकी चेतनाको ग्रहण किया है।

*

यही चाहिये—वाहरकी चीज भीतर जानी चाहिये, भीतरके साथ एक होना चाहिये, भीतरके भावको ग्रहण करना चाहिये।

*

देहको इस प्रकार देखना अच्छा है। पर देहके अदर चेतनाके आवद्ध न रहने और चेतनाके विशाल, असीम हो जानेपर भी देहको चेतनाका अश

और मांका यंत्र मानना चाहिये, शरीर-चेतनाको भी रूपांतरित करना होता है।

*

यह खूब अच्छा लक्षण है, यह निम्न-चेतना ही ऊपर उठ रही है ऊर्ध्व-चेतनाके साथ मिल जानेके लिए। ऊपरकी चेतना भी उतर रही है जाग्रत् चेतनाके साथ युक्त होनेके लिए।

*

यह तुम्हारा आज्ञाचक्र है अर्थात् भीतरकी बुद्धि, चिंतन, दृष्टि, इच्छा-शक्तिका केंद्र—वह इस समय (ऊपरके) दबावके कारण इस प्रकार खुल गया है, ज्योतिर्मय हो गया है कि ऊर्ध्व-चेतनाके साथ युक्त हो सके और ऊर्ध्व-चेतनाका प्रभाव समस्त आधारके ऊपर विस्तारित कर सके।

*

सिरपर है ऊर्ध्व-चेतनाका स्थान, ठीक सिरके ऊपरसे आरंभ हो वह जाता है और भी ऊपर अनंतकी ओर। वहा जो विशाल शाति और नीरवता है उसीकी presence (उपस्थिति) तुम अनुभव करते हो। वह शाति और चेतना समस्त आधारमें उतरनी चाहिये।

*

विस्तृत स्तर होगा अध्यात्म-चेतना, उसके भीतर है सत्यका मंदिर, तुम्हारे vital (प्राण)के साथ इस स्तरका सबध स्थापित हुआ है; ऊर्ध्वकी शक्ति vital (प्राण)में आ-जा रही है मानो किसी पुलपरसे।

*

बहुतोको कुंडलिनीके जागरणका अनुभव नहीं होता, किसी-किसीको होता है—इस जागरणका उद्देश्य है सभी स्तरोको खोल देना और ऊर्ध्व-चेतनाके साथ संयुक्त कर देना, किंतु यह उद्देश्य अन्य उपायोसे भी सिद्ध होता है।

*

माके भीतरसे ही एक emanation अर्थात् उनकी सत्ता और चेतना-का अंश, प्रतिकृति और प्रतिनिधि हो प्रत्येक साधकके सम्मुख व्यक्तिगत

रूपसे प्रकट होता है या रहता है उसकी सहायताके लिए—सच पूछा जाय तो मा ही वह रूप धारण करके आती है।

*

जिस विशालताका अनुभव करते हो उसके अंदर ऊर्ध्वमें निवास करना होगा, भीतर, गभीरतामे उसीके अदर निवास करना होगा—किंतु इसके अतिरिक्त सर्वत्र प्रकृतिके अंदर, यहाँतक कि निम्न प्रकृतिके अंदर भी, वह विशालता उतरनी चाहिये; उस समय निम्न प्रकृति और बहि:प्रकृतिके संपूर्ण रूपातरकी स्थायी प्रतिष्ठा हो सकती है। कारण, यह विशालता है माकी चेतनाकी विशालता—सकीर्ण निम्न प्रकृति जब माकी चेतनाके अंदर विशाल और मुक्त हो जायगी तब वह जडतक रूपातरित हो सकेगी।

*

अनुभूति यदि कहकर या लिखकर व्यक्त की जाय तो वह कम हो जाती है या बद हो जाती है, यही तो होता है अनेकोके साथ। इसलिए योगी प्राय: ही किसीको अपनी अनुभूति कभी नही बतलाते, अथवा सब कुछ दृढ हो जानेपर बतलाते है। परतु गुरुको, मांको कहनेसे कम नहीं होगी, बढेगी। बोलनेका यही अभ्यास डालना उचित है।

*

बालक है हृदयस्थ भगवान् और शक्ति तो मा ही होगी।

*

चक्र घूम रहा है, इसका अर्थ है outer being (बाहरी सत्ता)में मांकी शक्तिका कार्य चल रहा है—उसका रूपांतर होगा।

*

जब अनुभूति हो तब अविश्वास न कर ग्रहण करना ही अच्छा है। यह थी सच्ची अनुभूति—उपयुक्त अनुपयुक्तकी कोई बात नही, साधनामें इन सब बातोका कोई विशेष अर्थ नही, माकी ओर उद्घाटित हो पानेपर सब हो जाता है।

*

सिरमें जो अनुभव करते हो वह है बाह्य मन (physical mind), और नाभिके नीचेसे जो कुछ अनुभव करते हो वह है निम्न प्राण (lower vital)।

*

इस तरह माके अदर घुल-मिल जाना है वास्तविक मुक्तिका लक्षण।

*

इस प्रकार शरीरमें मांका प्रकाश भर जानेपर physical (भौतिक) चेतनाका रूपांतर सभव होता है।

*

यह अनुभूति खूब सुन्दर और सच्चा है—प्रत्येक आधार ऐसा ही मदिर होना चाहिये। तुमने यह जो सुना है कि मा ही सब करेंगी, केवल उनके अंदर डूबे रहना चाहिये, यह भी है बहुत बड़ा सत्य।

*

जिन बालिकाओंकी बात तुमने लिखी है वे नाना स्तरोंपर माकी शक्तिया हैं। तुम्हारी अभिज्ञताएं बहुत सुन्दर हैं—अवस्था भी अच्छी है—साधना अच्छी चल रही है—बाधाएं आती हैं बहि प्रकृतिसे, अवस्था-को disturb (अस्तव्यस्त) करनेके लिए—उन्हें स्वीकार मत करो।

*

यह कल्पना नही। माकी अनेक personality (व्यक्ति-सत्ताएं) हैं, उनमेंसे प्रत्येकका different (अलग-अलग) रूप है, वे सब समय-समयपर माके शरीरमें व्यक्त होती हैं। साडीका रंग जैसा होता है, मा उसी रगका प्रकाश या शक्ति लिये आती हैं। क्योंकि प्रत्येक रग है एक-एक शक्ति (force)का द्योतक।

*

जो कुछ तुमने देखा है वह संपूर्ण सत्य है। इसी गलेमें सत्ताका एक केंद्र है। वह केंद्र है externalising mind or physical-mental का, जो मन बुद्धिके सारे खेलको बाहर आकृति देता है, जो

मन speech (वाणी)का अधिष्ठाता है, जो मन physical (स्थूल) का सब कुछ देखता है, उसीमें व्यस्त रहता है। सिरका निम्न भाग और मुख उसके अधिकारमें रहता है। यही मन यदि ऊपरकी चेतना या भीतरके साथ सश्लिष्ट हो जाय, इनको व्यक्त करे तो अच्छा है। किंतु उसका और भी घनिष्ठ सबध है—निम्न अशके साथ, lower vital—निम्न प्राण और physical consciousness—भौतिक चेतना (जिसका केंद्र है मूलाधार)के साथ। इसीलिए ऐसा होता है। इसीलिए साधनामें वाणीको सयत करनेकी बहुत आवश्यकता है जिससे कि वह निम्न या बाहरी चेतनाको नही बल्कि ऊपर और भीतरकी चेतनाको व्यक्त करनेकी अभ्यस्त हो।

*

शारीरिक चेतनाका इस तरह नीचे उतरना सभी साधकोमें होता है—नीचे न उतरे तो उस चेतनाका रूपातर होना कठिन है।

*

यह बहुत बडा opening (उद्घाटन) है—सूर्यकी जो ज्योति उतर रही है वह सत्यकी ज्योति है—वह सत्य ऊर्ध्व मनसे भी बहुत ऊपर है।

*

चेतना ऊर्ध्वके सत्यकी ओर खुल रही है। स्वर्ण-मयूर—सत्यकी विजय। मांकी शक्ति physical (शरीर) तक उतर आयी है—उसके फलस्वरूप सत्यका प्रकाश (सुनहला प्रकाश) उतर रहा है और तुम मांकी ओर तेजीसे आगे बढ रहे हो।

*

शरीरका पिछला अंश सबसे अधिक अचेतन है—प्राय: ही सबसे अतमें आलोकित होता है। तुमने जो कुछ देखा है वह ठीक है।

*

हाँ, तुमने ठीक ही देखा है—सिरके ऊपर सात कमल या चक्र है पर ऊर्ध्व मनके खुले विना उन्हें नही देखा जा सकता।

*

ऊपर बहुत बड़ी जो एक चीज है वह है ऊर्ध्व चेतनाकी असीम विशालता। तुम जो यह अनुभव करते हो कि सिर घूमता हुआ उतर रहा है वह स्थूल सिर तो निश्चय ही नही, वह है मन-बुद्धि। वह उस विशालतामें उठकर इसी प्रकार नीचे उतरती है।

*

दो प्रकारकी शून्यावस्था होती है—physical (शारीरिक) तामसिक जड़ निश्चेष्टता और भीतर दूसरी एक शून्यता, निश्चेष्टता आती है ऊर्ध्व चेतनाकी विराट् शांति और आत्मबोधके उतरनेसे पहले। इन दोनोमेंसे कौन-सी आयी है यह देखना होगा, कारण दोनोंके ही आनेसे सब कुछ रुक जाता है, भीतरकी चेतना शून्य हो पड़ी रहती है।

*

महेश्वरीका दान है शांति, समता, मुक्तिकी विशालता—तुम्हें इन सबकी विशेष आवश्यकता है, इसीलिए वे तुम्हारे पुकारनेपर प्रकट होती हैं।

*

यह है तुम्हारे भीतरके मन और माँके भीतरके मनका योग—ललाटमें इसी मनका centre (केंद्र) है—जब यह योग होता है तब उस भीतरके मनमें भागवत सत्यकी ओर एक आकर्षण उत्पन्न होता है और वह ऊपर उठना आरंभ करता है।

*

हमेशा अच्छी अवस्था, हमेशा भीतर माँका दर्शन श्रेष्ठ साधकोंको भी नही मिलता—वह होगा साधनाकी पक्वावस्थामें, सिद्धिकी अवस्थामें। सभीकी बीच-बीचमें भरी-पूरी अवस्था होती है, बीच-बीचमें शून्यकी। शून्य अवस्थामें भी शांत बने रहना उचित है।

श्रीमांपर निर्भरता

कितनी दूर आया हूँ, और कितनी दूर है—इन सव प्रश्नोसे विशेष कोई लाभ नही। मांको खेवैया वनाकर स्रोतमें आगे वढते चलो, वह तुम्हें गंतव्य स्थानपर पहुँचा देंगी।

*

मां ही है गंतव्य स्थान, उनमें सभी कुछ है—उन्हें पा लेनेपर सव पाना हो जाता है, उनकी चेतनामें निवास करनेपर और सव अपने-आप खिल उठता है।

*

मांका भाव तो नही वदलता—एक ही रहता है। पर साधक अपने मनके भावके अनुसार देखता है कि वदल गया है—किंतु यह सत्य नही।

*

ध्वस होनेपर परिवर्तन किसका होगा? प्राणकी और शरीरकी पुरानी प्रकृतिका ध्वस करना होगा, प्राणका और शरीरका नही।

*

यह सच है कि सवके अदर मां है और उनके साथ एक संवध रहना चाहिये, पर वह सवध उन लोगोंके साथ personal (व्यक्तिगत) नही वल्कि मांके ही साथ होता है, एक विशाल ऐक्यका सवध।

*

एक ओर शाति और सत्य चेतनाकी वृद्धि, दूसरी ओर समर्पण—यही है सच्चा पथ।

*

प्राणको नष्ट करनेकी इच्छा है गलत इच्छा—प्राणको नष्ट करनेपर शरीर नही बचेगा, शरीरके न बचनेपर साधना नही की जा सकती।

मालूम होता है तुमने बहुत अधिक शक्ति खीच ली है—इसी कारण शरीर ठीक धारण नही कर पा रहा है। थोडा शात बने रहनेपर सब ठीक हो जायगा।

*

तुम मांसे, भगवान्‌से अलग नही हो—मां तो तुम्हारे साथ ही है—साधक नीचे पातालमें उतरता है वहां ऊपरकी ज्योति और चेतनाको ले आनेके लिए—इसी विश्वासको बनाये रखकर धीर चित्तके साथ चलो, वह ज्योति, वह चेतना अवश्य उतरेगी।

*

मां तो तुम्हारे भीतर ही है। Physical (भौतिक) प्रकृतिका जो पर्दा पडा है उसीपर शक्तिका कार्य हो रहा है, वह मांकी ज्योतिसे अतमें transparent (पारदर्शक) हो जायगा।

*

मांकी जय होगी ही—बस विश्वास हमेशा बनाये रखकर, शात, धीर, भयशून्य हो साधना करनी चाहिये।

*

पुरुप कुछ नही करता, प्रकृति या शक्ति ही सब कुछ करती है। पर पुरुपकी इच्छाके बिना कुछ भी नही हो सकता।

*

शरीरमें तो मां हैं ही—गूढ चेतनामें—किंतु जबतक बाहरी चेतनामें अविद्याकी छाप रहती है, तबतक अविद्याके परिणाम एक क्षणमें ही दूर नही हो जाते।

*

मां तुम्हें चाहती है और तुम मांको। मांको तुम पा रहे हो तथा और भी पाओगे। पर संभवत. तुम्हारी physical consciousness (भौतिक चेतना)में बीच-बीचमें यह आकाक्षा आ सकती है कि मांके साथ

बाहरका घनिष्ठ संबंध, शारीरिक सान्निध्य इत्यादि रहना चाहिये। माँ वह सब क्यों नहीं दे रही, शायद माँ मुझे नहीं चाहती। किंतु जीवन और साधनाकी इस अवस्थामें वह नहीं हो सकता, यहाँतक कि उसे देनेपर साधक उसीमें मस्त हो जायगा और भीतरकी असली साधना और रूपांतर नहीं होगा। चाहिये माँके साथ भीतरका घनिष्ठ संबंध, सान्निध्य और चाहिये रूपांतर—बाहरके मन, प्राण और शरीरतक उसे पूरा-पूरा अनुभव करेंगे और रूपांतरित होंगे। इसीको स्मरण रखते हुए चलते रहो।

*

यदि माँके प्रति शुद्ध प्रेम और भक्ति हो, माँपर निर्भरता हो, तो फिर माँको पाया जा सकता है। न हो तो फिर तीव्र चेष्टाद्वारा भी नहीं पाया जा सकता।

*

यह सब है बाहरकी प्रकृति जो भीतर घुस आनेके लिए साधकके चारों ओर घूमती रहती है। हमारा मन-प्राण-शरीर जब इस बाहरी प्रकृतिके पंजेमें रहता है तब उस तरहका पर्दा पड तो जाता है, किंतु माँपर निर्भर रहनेपर, माँके साथ युक्त रहनेपर, माँकी शक्ति उस पर्देको हटा मन-प्राण-शरीर-चेतनाको माँके यन्त्रके रूपमें परिणत कर देगी।

*

इस समय शक्ति physical consciousness (भौतिक चेतना) पर कार्य कर रही है, इसी कारण बहुत-से लोगोंमें इस physical consciousness (भौतिक चेतना)की बाधा प्रबल रूपसे उठ खड़ी हुई थी—तुम्हारी चंचलताका कारण यह है कि physical consciousness (भौतिक चेतना)के साथ तुमने अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया था, मानो तुम वह चेतना ही हो। किंतु असली सत्ता भीतर है जहाँ माँके साथ संयोग रहता है। इसीलिए भौतिक चेतनाके अज्ञान, तामसिकता, गलत-समझी इत्यादिको अपनी चीजके रूपमें ग्रहण नहीं करना चाहिये, वह तो मानो बाहरका यन्त्र है; उस यन्त्रकी जितनी त्रुटि है, अपूर्णता है उसे माँकी शक्ति सुधार देगी—बस यही ज्ञान रखते हुए भीतरसे साक्षीकी तरह अविचलित रह देखना होता है—माँपर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखकर।

*

मांपर पूर्ण विश्वास और श्रद्धा जिसे होती है वह सर्वदा मांकी गोदमें, मांके अंदर रहता है। बाधाएँ खडी हो सकती है, पर हजार बाधाएँ भी उसे विचलित नही कर सकती। उस विश्वासको, उस श्रद्धाको सदा-सर्वदा, सब अवस्थाओमें, सब घटनाओमें अटूट बनाये रखना ही है योगकी प्रधान बात, और सब बातें गौण है, यही है असली बात।

*

यह सब विलाप और क्रोध है तामसिक अहकारका लक्षण—मुझसे नही होगा, मै मर जाऊँगा, मै चला जाऊँगा इत्यादि कहते रहनेसे बाधा और भी घनीभूत हो तामसिक अहकारको बढ़ा देती है, इससे साधनाकी उन्नतिमें कोई सहायता नही मिलती। मैंने यह बात तुम्हें बार-बार लिखी है, असली बात एक बार और लिख दूं। तुम्हारी साधना नष्ट नही हुई है, जो कुछ तुमने पाया था वह चला भी नही गया है, केवल पर्देकी आडमें पड गया है। साधनाके पथमें एक समय ऐसा आता है जब चेतना एकदम physical plane (भौतिक स्तर) पर उतर आती है। उस समय भीतरी सत्ताके ऊपर, भीतरी अनुभूतिके ऊपर एक प्रकारकी अप्रवृत्ति और अप्रकाशका पर्दा पड जाता है, ऐसा मालूम होता है कि अब साधना नही चल रही, aspiration (अभीप्सा) नही, अनुभूति नही, मांका सान्निध्य नही, एकदम साधारण मनुष्यकी तरह हो गया हूँ। यह अवस्था केवल तुम्हारी ही हुई है ऐसी बात नही, सबकी होती है या हुई है, या होगी, यहांतक कि श्रेष्ठ साधककी भी। किंतु सच्ची बात यह है कि यह साधन-पथका एक passage (अवस्था) मात्र है, यद्यपि है बडा लंबा passage (अवस्था)। इस अवस्थामें पहुँचे बिना पूरा रूपातर नही होता। इसी भूमिकापर उतरकर, वहाँ स्थिर होकर, मांकी शक्तिकी क्रियाको, रूपातरके कार्यको पुकार लाना होता है, धीरे-धीरे सब cleared (साफ) हो जाता है, अप्रकाशके बदले दिव्य प्रकाश आता है, अप्रवृत्तिके बदले दिव्य लीला और अनुभूतिका प्राकट्य केवल भीतर ही नही, बाहर भी, केवल उच्च भूमियोमें ही नही, निम्न भूमिमें भी, शरीर-चेतनामें, अवचेतनामें भी होता है। और जिन सब अनुभूतियोपर पर्दा पड गया था वे सब बाहर आ इन सब भूमियोको भी अधिकृत कर लेती हैं। किंतु यह सब सहज ही, शीघ्र ही, नही होता, होता है धीरे-धीरे—धैर्य चाहिये, चाहिये मांपर विश्वास और दीर्घकाल-व्यापी सहिष्णुता। जो भगवान्‌को चाहता है उसे भगवान्‌के लिए कष्ट स्वीकार करना पडता है।

जो साधना चाहता है उसे साधनाके पथके कष्ट, बाधा-विघ्न, विपरीत अवस्थाको सहना ही पडता है। साधनामें केवल सुख और विलास चाहनेसे काम नहीं चलेगा, बाधा-विघ्न है, विपरीत अवस्था है,—इस कारण केवल रोने-धोने या निराशाका पोषण करनेसे काम नहीं चलेगा। उससे पथ और भी दीर्घ हो जाता है। चाहिये धैर्य, श्रद्धा और मांपर पूर्ण निर्भरता।

*

यही बात है, भीतरसे मांको पहले पाना होगा, बाहरसे नहीं—बाहरसे पानेकी चेष्टा करनेपर पाया तो जाता है पर भीतर कभी भी उनके सान्निध्यसे आलोकित नहीं होता। भीतर संपूर्णत पा जानेके बाद बाहर भी जो आवश्यक होता है वह realised (उपलब्ध) हो सकता है। इस सत्यको दो-एक आदमियोंके अतिरिक्त कोई भी अभीतक अच्छी तरह समझ नहीं सका है।

*

मांके साथ जब भीतर संयोग हो गया है तब और कोई भय नहीं। जो परिवर्तन करना होगा उसे मांकी शक्ति ही कर देगी। यह सब परिवर्तन करनेमें समय लगता है, किंतु उसके लिए चिंता करनेकी कोई बात नहीं। केवल मांके साथ संयुक्त, मांके प्रति समर्पित रहो। और सब अवश्य ही हो जायगा।

*

जब यह शून्य अवस्था आये तब मनको खूब शांत रखो, मांकी शक्ति और प्रकाशको बाहरी प्रकृतिमें उतर आनेके लिए पुकारो।

*

यही attitude (भाव) ही अच्छा है। जब कभी बाधा आये, चेतनाके ऊपर पर्दा आ पड़े, तब विचलित न हो शांत भावसे मांको पुकारना होता है जबतक कि पर्दा हट न जाय। पर्दा पड़ तो जाता है फिर भी पीछे सब कुछ बना रहता है।

*

यह याद रखो कि माँ कही दूर नही चली गयी। सर्वदा पास ही, भीतर ही है—जब वहि प्रकृतिमे किसी प्रकारकी चचलता आती है तब वह भीतरके सत्यको ढक देती है तरगकी तरह, तभी ऐसा बोध होता है। भीतर ही रहो, भीतरसे सब देखो, करो।

*

भीतर मांके साथ युक्त रहना चाहिये और वहांसे बाहरकी प्रकृतिके बाधा-विघ्न, दोष-त्रुटिको देखना चाहिये, देखकर विचलित, विषण्ण या निराश नही होना चाहिये। स्थिरताके साथ उसका प्रत्याख्यान कर मांकी ज्योति और शक्तिके जोरसे सुधार लेना चाहिये।

*

भीतर सब कुछ है और मांका कार्य भीतर हो रहा है। परतु बाहरी मनके साथ युक्त होनेपर उस सबका पता नही मिलता जबतक कि वह मन पूरा आलोकित नही हो जाता, भीतरके साथ एक नही हो जाता।

*

मांका प्रेम और साहाय्य सदा ही साथ है, उनका अभाव कभी नही होता।

*

कोई यदि सचेतन होकर बाधाका सामना करते हुए मांपर निर्भर रहे, जितनी बार बाधा आये, उसे धीर भावसे मांकी शक्तिके जोरसे परे ठेल दे तो अतमें वह बाधामुक्त होकर ही रहेगा।

*

चले जायेंगे कौन? जिनमें आतरिक भाव नही, जिन्हे मांपर विश्वास और श्रद्धा नही, जो अपनी कल्पनाको मांकी इच्छासे बढकर मानते हैं, वे जा सकते हैं; किंतु जो सत्यको चाहता है, जिसमें श्रद्धा और विश्वास है, जो मांको चाहता है, उसे कोई भय नही, चाहे हजार बाधाएँ आयें, वह उन्हें अतिक्रम कर जायगा, स्वभावमें अनेको दोष हो तो वह उन्हें सुधार लेगा, पतन भी हो तो वह फिरसे उठ खडा होगा और अंतमें एक दिन साधनाके गंतव्य स्थानपर पहुँचेगा ही।

*

यह right attitude (समुचित मनोभाव) नही, तुम्हारी साधना ध्वस्त नही हुई, मांने तुम्हारा त्याग नही किया, वे तुमसे दूर नही चली गयी, तुमपर नाराज भी नही—ये सब हैं प्राणकी कल्पनाएँ, इन कल्पनाओको स्थान नही देना चाहिये। मांपर शात-सरल भावसे निर्भर रहो, वाधासे भय न खा मांकी शक्तिको अपने अदर पुकारो—जो कुछ तुमने पाया है वह सब कुछ तुम्हारे भीतर है और नयी उन्नति भी होगी।

*

शात और सचेतन रहो, मांको पुकारो, अच्छी अवस्था लौट आयेगी। समर्पणको पूर्ण बनानेमें समय लगता है—जहां देखो कि समर्पण नही हुआ वहां भी समर्पण करो—इसी तरह करते-करते अतमें वह पूर्ण हो जायगा।

*

सर्वदा स्थिर रहकर मांकी ऊर्ध्व-चेतनाको उतरने दो—उसीसे बहिश्चेतना क्रमश रूपातरित हो जायगी।

*

शात भावसे समर्पण करते हुए चलते रहो, पुरानी चीजोंके जिस रूपातरकी आवश्यकता है वह धीरे-धीरे हो जायगा।

*

भगवान्की सतान होनेपर भी, ऐसा कोई भी साधक नहीं जिसमे प्रकृतिके छोटे-मोटे अनेक दोष न हो। जब इनका पता चले तब इन्हे reject करना (त्यागना) चाहिये, मांकी शक्तिका आश्रय और भी दृढताके साथ मांगना चाहिये जिससे धीरे-धीरे इस क्षुद्र प्रकृतिके सभी दोष विनष्ट हो जायें, पर विश्वास, मांपर निर्भरता और समर्पण सदा अटूट बनाये रखना चाहिये। इन सब दोषोको सपूर्णत. निकालनेमें समय लगता है। इनके कारण विचलित नही होना चाहिये।

*

इनसे विचलित मत होओ। योगपथमें इस तरहकी अवस्था आती ही है—जब निम्नतम शरीर-चेतनामें और अवचेतनामें उतरनेका समय आता है—यह बहुत दिनोतक टिकी रह सकती। किन्तु इस पर्देके पीछे

माँ विराजमान हैं, वादमें प्रकट होगी, यह निम्न राज्य ऊपरके आलोकके राज्यमें परिणत हो जायगा, यह दृढ विश्वास रख सब कुछ समर्पण करते हुए इस वाधापूर्ण अवस्थाके अततक वढते चलो।

*

वहिर्जगत्‌के साथ सवध तो रहना चाहिये, किंतु वह सव ऊपरी-ऊपरी (outer surface) ही रहना उचित है—तुम स्वय भीतरसे मांके पास वने रहो और वहीसे वह सव देखो—यही होना चाहिये,—यही है कर्म-योगका प्रथम सोपान—फिर भीतरसे मांकी शक्तिके द्वारा वाहरके सभी कर्म आदिको चलाते रहो, यही है द्वितीय अवस्था। ऐसा यदि कर सको तो फिर कोई गोलमाल नही रह जायगा।

*

भीतरसे पहले मांको पाना होगा। वादमें 'वाहर' भी पूर्ण वशमें आ जाता है तव वहाँ भी सर्वदा अनुभव किया जा सकता है।

*

इसे ही सर्वदा याद रखना चाहिये कि अवस्था चाहे जो हो, वाधाएँ चाहे जितनी आयें, समय चाहे जितना लगे पर मांपर संपूर्ण श्रद्धा रखते हुए चलना होगा, तव फिर गंतव्य स्थानपर पहुँचना अनिवार्य है—कोई भी वाधा, कोई भी विलंव, कोई भी वुरी अवस्था अतिम सफलताको व्यर्थ नही कर सकती।

*

जिस तरह इस साधनामें चचलताको दूर हटाना होता है, उसी तरह यहाँ दु:खको भी कोई स्थान नही देना चाहिये। मांपर निर्भर रहते हुए, स्थिर-चित्त और शांत प्रसन्न मनके साथ आगे वढना चाहिये। यदि मांपर निर्भरता हो तो फिर कहाँ रह जाता है दु:खके लिए स्थान? माँ कहीं दूर नही, सर्वदा पास ही है। यह ज्ञान, यह विश्वास सदा वनाये रखना चाहिये।

*

'प्रणाम' या 'दर्शन'के समय मांकी वाहरी appearance (चेहरे)को देखकर यह अनुमान करना उचित नही कि वे सुखी या दु:खी हैं। लोग

ऐसा कर केवल भूल ही करते हैं, झूठा अनुमान करते हैं, माँ असतुष्ट है, माँ कठोर है, माँ मुझे नही चाहती, मुझे दूर रखती हैं इत्यादि कितनी मिथ्या कल्पनाएँ करते हैं और उससे निराश हो अपने पथमें स्वय ही व्याघात उत्पन्न करते हैं। यह सव न कर अपने भीतर माँपर, माँके love (प्रेम) और help (साहाय्य) पर अटल विश्वास रख प्रफुल्ल-शात मनसे साधनामें आगे वढना चाहिये। जो ऐसा करते हैं वे निरापद रहते हैं—वाघा और अहकार अव और उनका स्पर्श नही कर पाते। वे कहते है, माँ ही हैं, वह जो करती है अच्छा ही करती है, उन्हें इस मुहूर्त नही देख पा रहा हूँ फिर भी वे मेरे पास ही हैं, मुझे घेरे हुई हैं, मुझे कोई भय नही। यही करना चाहिये। यह भरोसा रखकर ही साधना करनी चाहिये।

*

ऐसी अवस्था होनी चाहिये कि चेतना भीतर रहे माँके साथ युक्त और माँकी शक्ति कार्य करे; वाहरकी चेतना उस शक्तिका यत्र होकर कार्य करे—किंतु यह अवस्था पूरे रूपमें आसानीसे नही आती। साधना करते-करते आती है और धीरे-धीरे complete (सपूर्ण) होती जाती है।

सूक्ष्म दर्शन, प्रतीक और वर्ण

जिस तरह ध्यानमे नाना प्रकारके दृश्य दिखायी देते है, उसी तरह ध्यानमें लेख भी दिखायी देते हैं। इन सब लेखोको हम लिपि या आकाशलिपि कहते है। ये लेख वद आखोसे भी देखे जा सकते है और खुली आखोंसे भी।

*

ये है symbols (प्रतीक)—जैसे, सफेद फूल है चेतनाका प्रतीक, सूर्य ज्ञान या सत्यका, चन्द्र अध्यात्म-ज्योतिका, तारा सृष्टिका, अग्नि तपस्या या aspiration (अभीप्सा) का।

सुनहला गुलाब=सत्यचेतनामय प्रेम और समर्पण।

सफेद कमल=श्रीमाकी चेतना (Divine consciousness)।

*

गाय है चेतना और प्रकाशका प्रतीक। सफेद गायका अर्थ है ऊपर-की शुद्ध चेतना।

*

शिशु है तुम्हारा psychic being (चैत्य पुरुष), तुम्हारे भीतरसे सत्यकी चीजोको वाहर ले आ रहा है—रास्ता है higher mind (उच्चतर मन) का जो सत्यकी ओर जा रहा है।

*

वेदयज्ञमें पाच अग्निया होती है, ये पाचो न हो तो यज्ञ पूर्ण नही होता। हम कह सकते हैं कि psychic being (चैत्य पुरुष), मन, प्राण, देह और अवचेतनामें इन पाच अग्नियोकी आवश्यकता है।

*

पेड है आतरिक spiritual life (आध्यात्मिक जीवन), उसपर, प्रत्येक भागमें, बैठा है सत्यकी विजयका सूचक स्वर्ण-मयूर; चन्द्र है अध्यात्म-शक्तिकी ज्योति।

*

सिरके ऊपर एक पद्म है, वह है उस ऊर्ध्व चेतनाका केंद्र। वह पद्म ही शायद खिलना चाहता है।

*

प्राणमें जो आध्यात्मिकताका प्रकट होना आरभ हुआ था वही है अर्द्ध-चद्र। चद्रग्रहण हुआ था। हरे रगका अर्थ है शुद्ध प्राण-शक्ति। सूर्योदय=प्राणभूमिमे सत्य चेतनाका प्रकाश।

*

चन्द्र=अध्यात्मका आलोक।
हाथी=बलका प्रतीक।
सुनहला हाथी=सत्यचेतनाका बल।
हरा तो है emotion (भावावेग)के प्रकाशका रग।

*

अनेक रगोंके प्रकाशवाले सूर्यके हैं अनेक रूप; सूर्य जैसे लाल है वैसे ही हिरण्यमय, नीला, हरा आदि भी।

*

नीला=higher mind (उच्चतर मन)।
सूर्यका प्रकाश=Light of Divine Truth (भागवत सत्यका प्रकाश)।
उज्ज्वल लाल=Divine Love (भागवत प्रेम) या ऊर्ध्व चेतना-की force (शक्ति)।

*

प्राणकी ऊर्ध्वगामिनी अवस्था होती है भगवान्‌की ओर, सत्यकी ओर। सत्यका (सुनहला रग) और higher mind (उच्चतर मन)का (नीला

प्रकाश) प्रभाव मूर्त हो ऊपर-नीचे घूम रहा है, उसी ऊर्ध्वगामी प्राण-चेतनामें।

*

नीला प्रकाश मेरा है, सफेद प्रकाश मांका—जब ऊर्ध्व चेतना higher consciousness विश्वमय भाव ग्रहण कर आधारमें पहले-पहल उतरना आरम्भ करती है तब नीले प्रकाशका दिखना खूब स्वाभाविक है।

*

यह है मनसे ऊपरका ऊर्ध्व-चैतन्य, जहांसे आती है शांति, शक्ति, ज्योति इत्यादि—सफेद पद्म है मांका चैतन्य, नील पद्म है मेरा चैतन्य—वहां ज्ञान और सत्यका प्रकाश सदा रहता है।

*

नीला तो higher mind (उच्चतर मन)का रंग है—नील पद्म—उसी ऊर्ध्व मनका उन्मीलन है तुम्हारी चेतनामें।

*

श्वेत प्रकाश Divine consciousness (भागवत चेतना)का प्रकाश है—नीला प्रकाश higher consciousness (उच्चतर चेतना)का और चांदीके जैसा प्रकाश है आध्यात्मिकताका प्रकाश।

*

सांप है energy (शक्ति)का प्रतीक। ऊर्ध्वकी एक energy (शक्ति) सिरके ऊपर higher consciousness (उच्चतर चेतना)में स्थित है।

*

जल है चेतनाका प्रतीक—जो उठता है वह है चेतनाकी आकांक्षा या तपस्या।

*

यदि सफेदीके साथ नीला प्रकाश (whitish blue) हो तो वह मेरा प्रकाश है—यदि साधारण प्रकाश हो तो वह है ऊपरके ज्ञानका प्रकाश।

*

नारंगी रंगका अर्थ है Divine (भगवान्)के साथ मिलन और अपार्थिव चेतनाका स्पर्श।

*

मूलाधार है physical (शरीर)का inner centre (आंतरिक केंद्र)—पोखर है चेतनाकी एक प्रकारकी opening (उद्घाटन) या formation (आकार)। उस चेतनामें श्रीअरविन्दकी presence (उपस्थिति) है लाल पद्म, और inner physical (आंतरिक शरीर)में प्रेमका गुलाबी प्रकाश उतर रहा है।

*

साप है प्रकृतिकी शक्ति—मूलाधार (physical centre) है उसका एक प्रधान स्थान—वहां कुडलित अवस्थामें सोयी रहती है। जब साधनद्वारा जागृत होती है तब ऊपरकी ओर उठती है सत्यके साथ युक्त होनेके लिए। माकी शक्तिका अवतरण होनेमें वह इस बीच स्वर्णमय हो गयी है, अर्थात् भागवत सत्यके प्रकाशसे भरपूर।

*

इन सब अनुभवोंमें पार्थिव माता है पार्थिव प्रकृति, साधारण बहि-प्रकृतिकी प्रतीकमात्र।

*

Red Lotus (लाल कमल) = The Divine Harmony (भागवत सामजस्य)।

Blue Light (नीली ज्योति) = The Higher consciousness (उच्चतर चेतना)।

Golden Temple (सुनहला मंदिर) = The Temple of the Divine Truth (भागवत सत्यका मंदिर)।

धीर-स्थिर बने रहो तब तुम्हारे बाहर भी, तुम्हारी बाहरी प्रकृतिमें, तुम्हारे जीवनमें धीरे-धीरे यह सब फलीभूत होगा।

*

सफेद गुलाब है माके प्रति प्रेममय आत्म-समर्पण, उसका फल है आधारके अंदर सत्यके आलोकका विस्तार। सफेद पद्म है तुम्हारे मनके स्तरमें प्रस्फुटित माकी चेतना। नारंगी रंगका प्रकाश (red gold) है देह के भीतर परम सत्यकी दीप्ति (Supramental in physical)।

श्रद्धा, विश्वास और निर्भरता

शांतभावसे बैठ, माको स्मरण करते हुए माके प्रति अपनेको खुला रखो—यही है ध्यानका नियम।

*

दोनो प्रकारसे करना श्रेष्ठ है। यदि केवल दूर रहकर साधना करना सभव होता तो फिर वही श्रेष्ठ होता, किंतु वैसा सव समय करना सभव नही होता। परतु असली बात यह है कि psychic (चैत्य)में अपना सुदृढ स्थान या निरापद दुर्ग बनाकर साधना करनी होती है—अर्थात् धीर-स्थिर रूपमें मापर निर्भर रहना। अधीर न हो प्रसन्न चित्तसे कहना, "तुम जो कहती हो वह ठीक है—बडी-वडी वाधाओकी अपेक्षा अभी ये छोटी-छोटी अपूर्णताए ही असली वाधा है।" किंतु इन्हें धीरे-धीरे निकाल बाहर करना होता है, अपूर्णताको पूर्णतामें परिणत करना होता है, हठात् नही किया जाता। अतएव उन्हे देख दु खित या अधीर नही होना चाहिये, माकी शक्ति ही धीरे-धीरे वह कार्य कर डालेगी।

*

सत्यका सीधा पथ खुला है भीतर। जो समर्पित किया जाता है वह उसी अवस्थामें सहज-सरल-रूपमें ऊपर माके पास जा सत्यके साथ मिल जाता है, सत्यमय हो उठता है।

*

भयभीत या विचलित मत होओ, यही है योगपथका नियम, अधकार-की अवस्था अतिक्रम करके जाना होता है, अधकारमें भी शात बने रहो।

*

तपस्या बस यही है, स्थिर बने रहना, माको पुकारना, खूब शांति और दृढताके साथ अशांति, निराशा, कामना-वासनाका त्याग करते रहना।

*

शांति, सत्य इत्यादि पहले भीतर स्थापित होता है, उसके बाद बाहर कार्यमें परिणत होता है।

*

शून्य अवस्थासे डरना नही चाहिये। शून्य अवस्थामें ही भागवत शाति उतरती है। मां तुम्हारे भीतर सर्वदा ही विद्यमान हैं—परतु शाति, शक्ति, प्रकाश इत्यादि अपने अदर स्थापित न होनेके कारण हमेशा उसका अनुभव नही होता।

*

यह क्या बहुत बड़ा अहकार नही कि तुम्हारे लिए ही इतना सब काड हुआ है? मैं खूब अच्छा हूँ, खूब शक्तिशाली हूँ, मेरेद्वारा ही सब हो रहा है, मेरे बिना माका काम नही चल सकता, यह तो एक प्रकार-का अहकार है। मैं खराबसे भी खराब हूँ, मेरी बाधाके कारण ही सब बद हो गया है, भगवान् अपना कार्य नही चला सकते, यह एक और उल्टा अहकार है।

*

सदा स्थिर बने रहो—माँकी शक्तिको शांत भावसे पुकारते हुए, समस्त उद्वेगको त्यागते हुए।

*

यह feeling (बोध), यह श्रद्धा और विश्वास हर समय रखना चाहिये, साधककी यह श्रद्धा और विश्वास, faith, conviction हैं माकी शक्तिके प्रधान सहायक।

*

साधना करनी होती है दृढ और शात मनके साथ, माँपर अटूट श्रद्धा और निर्भरता रखते हुए। Depression (अवसाद)को कभी स्थान नही

देना चाहिये। यदि आये तो अस्वीकार कर दूर हटा देना चाहिये। मैं नीच हूँ, अधम हूँ, मुझसे नही होता, माँने मुझे दूर हटा दिया है, मैं चला जाऊंगा, मैं मर जाऊंगा—ये सब विचार यदि आयें तो समझना कि ये सब निम्न प्रकृतिकी suggestions (सुझाव) हैं, सत्य और साधना-विरोधी हैं। इन सब भावोको कभी प्रश्रय नही देना चाहिये।

*

दु.ख क्यो पाते हो? माँपर निर्भर रह समता बनाये रखनेसे दु.ख पानेका कोई कारण नही। मनुष्यसे सुख, शाति और आनद पानेकी आशा वृथा है।

*

इस चितन और भयके बदले यह निश्चयता और श्रद्धा रखनी चाहिये कि एक बार जब माके साथ भीतर योग हो गया है तब, हजार बाधाए क्यो न हों, बाहरी प्रकृतिमें चाहे जितने दोष या अपूर्णताएं हो, मेरे अदर माँकी विजय अवश्यभावी है, अन्यथा हो ही नही सकता।

*

सर्वदा माँपर पूरी आस्था रखनी चाहिये कि मैं उनके हाथोमें हूँ; उनकी शक्तिसे सब कुछ होगा, तब बाधाओंके कारण दुःख या निराशा नही आ पायेगी।

*

इससे चंचल मत होओ। प्रयास करके सदा स्मरण रखना आसान नही—जब माकी presence (उपस्थिति)से सारा आधार भर जायेगा तब वह स्मरण अपने-आप ही बना रहेगा, भूलना सभव ही नही होगा।

*

शात भावसे साधना करते-करते आगे बढो—दु.ख या निराशाको स्थान मत दो—अंतमें सब अंधकार दूर हो जायेगा।

*

ऐसा तो सबके साथ होता है—सर्वदा अच्छी अवस्थामें बने रहना बडा कठिन है, बहुत समय लगता है—स्थिर रह साधना करो, विचलित मत होओ। समय आनेपर हो जायगा।

*

साधना तो है माँको अपने पास और अपने भीतर feel (अनुभव) करना, माँ सब कर रही है यह अनुभव करना, माँसे सब कुछ अपने भीतर receive (ग्रहण) करना। यदि यह अवस्था हो तो पढनेमे मन लगानेसे कोई हानि नही हो सकती।

*

हां, उस तरह रोनेसे दुर्वलता आती है। सदा, सब अवस्थाओंमें धीर और शात रह, माँपर निर्भर हो माँको पुकारो। ऐसा करनेसे अच्छी अवस्था जल्दी लौट आती है।

*

मेरी बात—जिसे मैंने बहुत बार कहा है—भूल मत जाना। उतावले न हो स्थिर शात भावसे साधना करो, तब सब कुछ धीरे-धीरे ठीक रास्तेपर आ जायगा। ऊँचे स्वरमें रोना-धोना अच्छा नही—शात भावमे माँको पुकारो, उनके प्रति समर्पण करो। प्राण जितना ही शात होता है साधना भी उतनी ही steadily (स्थिरभावसे) एक पथपर चलती है।

चैत्य पुरुष

शिशु है तुम्हारा psychic being (चैत्य पुरुष), जो हृदयसे उठती और उतरती है वह है वहि:प्रकृतिकी वाधा, भीतरके सत्यको स्वीकार करना नही चाहती, ढके रखना चाहती है।

*

पीछे मेरुदडके वीचका वह स्थान है psychic being (चैत्य पुरुष) का स्थान। जो कुछ वर्णन तुमने किया है वह सब है psychic being (चैत्य पुरुष)का लक्षण।

*

हा, मनुष्यकी चेतनाका केंद्र हृदयमें है जहां psychic being (चैत्य पुरुष)का स्थान है।

*

वह सीधा आलोकमय पथ ही है असली पथ, परंतु वहां पहुचनेमें समय लगता है। एक वार उस पथपर पहुंच जानेपर फिर विशेष कोई कष्ट, वाधा स्खलन नही होता।

*

यदि गभीर हृदयका (psychic—चैत्य पुरुषका) पथ पकडो, मांकी गोदीमें शिशुकी तरह रहो, तो ये सब sex impulse (कामप्रवृत्ति) इत्यादि आक्रमण करनेपर भी कुछ नही कर पायेंगे, अतमें फिर आ ही नही सकेंगे।

*

इस बातका उत्तर मैंने पहले ही दे दिया है। भीतर रहो, भीतरसे सब देखो, बाहरी चक्षुसे नही। बाह्य चैतन्यमें रहनेपर चिन्तनके आवरणके पीछे भूल होनेकी संभावना है, भीतर रहनेपर psychic being (चैत्य पुरुष) क्रमश. प्रबल होता है, psychic being (चैत्य पुरुष) ही सत्यको देखता है, सब कुछ सत्यमय बना देता है।

*

ये अभिज्ञताएँ अच्छी हैं—यह अग्नि psychic fire (चैत्य अग्नि) है और जिस अवस्थाका वर्णन तुमने किया है वह अवस्था है psychic condition (चैत्य अवस्था) जिसमें अशुद्ध कुछ नही आ सकता।

*

(यह) सत्य देखना है।—Psychic consciousness (चैत्य चेतना) रास्तेके ऊपरकी सत्य चेतनामें है, उसी psychic (चैत्य) को केन्द्र बना सब स्तर एक हो भगवान्‌की ओर मुड़ने लगे है। वह रास्ता ऊपरकी ओर उठ रहा है—छोटा शिशु है तुम्हारा psychic being (चैत्य पुरुष)।

*

यही तो चाहिये—हृदय-पद्मका सर्वदा खुला रहना, समस्त nature (प्रकृति)का हृदयस्थ psychic being (चैत्य पुरुष)के वशमें होना, इसीसे होता है नवजन्म।

*

Yes, this is the true psychic attitude (हां, यह है सच्चा चैत्य भाव)। जो इस भावको हर समय, सब घटनाओमें बनाये रख सकता है वह सीधा चला जाता है गतव्य पथपर।

अहंकार, अशुद्धता, क्षोभ और निराशा

जब चेतना विशाल और विश्वमय हो जाती है और समस्त विश्वमें श्रीमांके दर्शन होते हैं तब अहकार नही रह जाता, रह जाती है केवल श्रीमांकी गोदमें तुम्हारी असली सत्ता, मांकी सतान, माका अश।

*

हमने तो तुम्हें छोड़ा नही है। जब depression (अवसाद) आता है तो तुम ये सब बातें सोचते हो। बीच-बीचमें तुम बाहरी चेतनामें आकर माँको feel (अनुभव) नही करते, किंतु इस कारण यह सोचना उचित नही कि माँने तुम्हें छोड़ दिया है। फिरसे अदर पैठो, वहाँ उन्हें feel (अनुभव) करोगे।

*

अर्थ यह है—जो अच्छा साधक अच्छी साधना करता है वह अच्छी साधनाके दौरान भी अहंकार, अज्ञान और वासनाकी छापको बहुत दिनो-तक ढोता रहता है—किंतु चेतना जब खुलते-खुलते शुद्ध होती है—जैसा कि तुम्हारे अंदर होना आरभ हुआ है—तब वह सब अज्ञानका मिश्रण दूर होने लगता है।

*

यह सब है प्राणीकी निरर्थक disturbance (उपद्रव), शांत हो योगपथपर चलना चाहिये, क्षोभ और निराशाको स्थान नही देना चाहिये।

*

अवश्य ही, इस प्रकारकी बातमें प्राणकी बहुत-सी अशुद्ध गतियां घुस सकती हैं, क्षोभ, माँसे असतोष, दूसरोंके प्रति हिंसा, विषाद, दु:ख आदिको लेकर रहना अच्छा नही।

*

यह अवस्था, यह बुद्धि ही सत्य है, इसे सदा बनाये रखना उचित है। अहकारकी बुद्धिसे लोगो और घटनाओंको न देख इस अध्यात्मबुद्धि और भीतरकी psychic (चैत्य पुरुष)की दृष्टिसे देखना चाहिये।

चेतनाके स्तर

मूलाधारसे पैरके तलवेतक physical (भौतिक) स्तर कहलाता है, पैरसे नीचे है अवचेतनाका राज्य।

*

बहुत-से स्तर है ऊपर और नीचे, परंतु मुख्य हैं नीचेके वे चार स्तर, मनका स्तर, psychic (चैत्य) स्तर, vital (प्राणिक) स्तर और शरीर-स्तर—और ऊपर है ऊर्ध्वमनके अनेक स्तर, उसके परे हैं विज्ञान-स्तर और सच्चिदानंद।

*

यदि नीचे उतर ही जाओ तो शांत रहकर माकी ज्योति, शक्तिको पुकार नीचे उतार लो। ऊपरकी तरह नीचे भी अपने अंदर माका राज्य स्थापित कर लो।

*

जब चेतना physical (भौतिक स्तर)में उतरती है तब ऐसी ही अवस्था होती है। इसका अर्थ यह नही कि सारी साधनाका फल व्यर्थ हो गया है अथवा ऊपर चला गया है—सब है, परंतु आवरणके अंदर पीछेकी ओर। इस obscure physical (अंधकारपूर्ण भौतिक स्तर)में मांकी चेतना, ज्योति और शक्तिको उतारना होता है—जब वह सब प्रतिष्ठित होगा तब फिर यह अवस्था वापस नही जायगी। किन्तु तुम यदि विचलित होओ, depressed (अवसन्न) होओ अथवा ये सब विचार प्रवेश करें कि इस जीवनमें अब मेरा कुछ नही होगा, मर जाना ही अच्छा है इत्यादि, तो फिर ये उस चेतना, शक्ति, ज्योतिके उतरनेके पथमें बाधा बन जाते हैं। इसलिए इन सबको reject (त्याग) कर मांपर निर्भर रहना तथा शात भावसे aspire (अभीप्सा) करना और उन्हें पुकारना ।

कारा-कहानी

कारा-कहानी

मैं पहली मई सन् १९०८ ई०, शुक्रवारके दिन 'वंदेमातरम्'के दफ्तरमें बैठा था, तभी श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्तीने मुजफ्फरपुरका एक टेलीग्राम मेरे हाथमें थमाया। पढकर मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुरमें बम फटा है, जिसमे दो मेमोकी मृत्यु हो गयी है। उसी दिनके 'एम्पायर' अंगरेजी अखबारमें यह भी पढा कि पुलिस कमिश्नरने कहा है—हम जानते है, इस हत्याकाण्डमे किन-किनका हाथ है और वे शीघ्र ही गिरफ्तार किये जायेंगे। तब यह नही जानता था कि मै ही था इस सदेहका मुख्य निशाना, पुलिसके विचारमें प्रधान हत्यारा, राष्ट्र-विप्लव-प्रयासी युवकदलका मन्त्र-दाता और युद्ध नेता। नही जानता था कि आजका दिन ही होगा मेरे जीवनके एक अंकका अंतिम पृष्ठ, मेरे सम्मुख था एक वर्षका कारावास, इस समयसे ही मनुष्य जीवनके साथ जितने बंधन है, सब छिन्न-भिन्न होगे, एक वर्षके लिए मानव समाजसे अलग पशुओकी तरह पिंजरेमें बंद रहना पडेगा। फिर जब कर्मक्षेत्रमे वापस आऊंगा तब वह पुराना परिचित अरविन्द घोष नही होगा वरन्, एक नया मनुष्य, नया चरित्र, नयी बुद्धि, नया प्राण, नया मन ले और नये कार्यका भार उठा अलीपुरस्थ आश्रमसे बाहर होगा। कहा है एक वर्षका कारावास पर कहना उचित था एक वर्षका वनवास, एक वर्षका आश्रमवास। बहुत दिनोसे हृदयस्थ नारायणके साक्षात् दर्शन करनेकी प्रबल चेष्टामें लगा था; उत्कट आशा सजोये हुए था कि जगद्धाता पुरुषोत्तमको बन्धुभावमें, प्रभुभावमे प्राप्त करूँ। किन्तु ससारकी सहस्रो वासनाओंके बंधन, नाना कर्मोमें आसक्ति और अज्ञानके प्रगाढ अंधकारके कारण कर न पाया। अंतमें परमदयालु सर्व मंगलमय श्री हरिने इन सब शत्रुओको एक ही वारमे समाप्त कर उसके लिए सुविधा कर दी, योगाश्रम दिखलाया और स्वयं गुरु रूपमें, सखा रूपमे उस क्षुद्र साधन कुटीरमें अवस्थान किया। वह आश्रम था अंग्रेजोका कारागार। मै अपने जीवनमें बराबर ही यह आश्चर्यमय असंगति देखता आ रहा हूँ

कि मेरे हितैषी बंधुगण मेरा जितना भी उपकार क्यो न करें, अनिष्ट-कारी—शत्रु किसे कहूँ, मेरा अब कोई शत्रु नही—शत्रुओंने ही अधिक उपकार किया है। उन्होने अनिष्ट करना चाहा पर इष्ट ही हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी कोप-दृष्टिका एकमात्र फल—मुझे भगवान् मिले। कारावासके आतरिक जीवनका इतिहास लिखना इस लेखका उद्देश्य नही, कुछ एक घटनाओंको वर्णित करनेकी ही इच्छा है, किन्तु कारावासके मुख्य भावका उल्लेख लेखके आरभमें ही करना उचित समझा, नही तो पाठक समझ बैठेंगे कि कष्ट ही है कारावासका सार। कष्ट नही था ऐसी बात नही। किन्तु अधिकाश समय आनदसे ही बीता।

शुक्रवारकी रातको मैं निश्चिततासे सो रहा था। सवेरे करीब पाँच बजे मेरी बहिन संत्रस्त-सी मेरे कमरेमें आयी और मेरा नाम ले मुझे पुकारने लगी। मैं जाग पड़ा। क्षण-भरमें मेरा छोटा-सा कमरा सशस्त्र पुलिससे भर गया; उनमें थे सुपरिण्टेण्डेण्ट क्रेगन, २४ परगनाके क्लार्क साहब, हमारे सुपरिचित श्रीमान् विनोदकुमार गुप्तकी आनदमयी और लावण्यमयी मूर्ति और कई एक इन्स्पेक्टर, लाल पगड़िया, जासूस और खानातलाशीके साक्षी। हाथोमें पिस्तौल लिये वे वीर-दर्पसे ऐसे दौड़े आये मानो तोपो और बदूकोंसे सुरक्षित किला दखल करने आये हो। आँखोंसे तो नही देखा पर सुना कि एक श्वेताग वीर पुरुषने मेरी बहिनकी छातीपर पिस्तौल तानी थी। मैं बिछौनेपर बैठा हुआ हूँ, अर्द्धनिद्रित अवस्था, क्रेगन साहबने पूछा, "अरविन्द घोष कौन है? क्या आप ही है?" मैंने कहा, "हा, मैं ही हूँ अरविन्द घोष।" तुरत उन्होने एक सिपाहीको मुझे गिरफ्तार करनेको कहा। उसके बाद क्रेगन साहबकी किसी एक अश्लील बातपर लहमे-भरके लिए आपसमें कहा-सुनी हो गयी। मैंने खानातलाशीका वारट मागा, पढ़कर उसपर सही की। वारटमें बमकी बात देखकर समझ गया कि इस पुलिस सेनाका आविर्भाव मुजफ्फरपुरमें हुए खूनसे सबधित है। परतु यह समझमें नही आया कि बम या कोई स्फोटक पदार्थ मेरे मकानमें पाये जानेके पहले ही और बिना 'बॉडी-वारट'के मुझे क्यो गिरफ्तार किया गया। तो भी इस बारेमें व्यर्थ कोई आपत्ति नही उठायी। इसके बाद ही क्रेगन साहबके हुकुमसे मेरे हाथोमें हथकडी और कमरमें रस्सी बाँध दी गयी। एक हिन्दुस्तानी सिपाही वह रस्सी पकडे मेरे पीछे खड़ा रहा। ठीक उसी समय श्रीयुत अविनाशचद्र भट्टाचार्य और श्रीयुत शैलेंद्र बसुको पुलिस ऊपर ले आयी, उनके भी हाथोमें हथकड़ी और कमरमें रस्सी थी। करीब आधे घटे बाद, न जाने किसके कहनेसे उन्होने हथकड़ी और रस्सी

खोल दी। क्रेगनकी बातोंसे ऐसा लगता था मानो वह किसी खूंखार मादमें घुस आये हो, मानो हम थे अशिक्षित, हिंस्र और स्वभावसे कानून-भगी, हमारे साथ भद्र व्यवहार या भद्रोचित बात करना है निष्प्रयोजन। परतु झगडेके बाद साहब जरा नरम पड गये थे। विनोद बाबूने मेरे बारेमें उन्हें कुछ समझानेकी चेष्टा की। तब क्रेगनने मुझसे पूछा, "आपने शायद बी० ए० पास किया है? ऐसे मकानमें, ऐसे सज्जाविहीन कमरेमें जमीन-पर सोये थे, इस तरह रहना आप जैसे शिक्षित व्यक्तिके लिए क्या लज्जा-जनक नही?" मैंने कहा, "मै दरिद्र हूँ, दरिद्रकी तरह ही रहता हूँ।" साहबने तुरत गरजकर कहा, "तो क्या आपने धनी बननेके लिए ही यह सब षड्यत्र रचा है?" देश-हितैषिता, स्वार्थत्याग या दारिद्रय-व्रतका माहात्म्य इस स्थूल बुद्धि अगरेजको समझाना असाध्य जान मैंने वैसी चेष्टा नही की।

इस बीच खानातलाशी चलती रही। यह सवेरे साढे पाँच बजे आरभ हुई और प्रायः साढे ग्यारह बजे समाप्त हुई। बक्सके बाहर, भीतर जितनी कापिया, चिट्ठिया, कागज, कागजके टुकडे, कविताएँ, नाटक, पद्य, गद्य, प्रवध, अनुवाद—जो कुछ भी मिला कुछ भी इन सर्वग्रासी खाना-तलाशियोंके कवलसे नही बच पाया। खानातलाशीके गवाहोमें रक्षित महाशय क्षुण्णमना-से थे। बादमें बडे दु खके साथ उन्होने मुझे बताया कि पुलिस अचानक बिना कुछ कहे-सुने उन्हें यहाँ घसीट लायी है, उन्हें रत्तीभर भी इसकी भनक नही थी कि ऐसे घृणित कार्यमें उन्हें योगदान करना होगा। रक्षित बाबूने बडे ही करुण भावसे इस हरण-काण्डकी कथा सुनायी। दूसरे साक्षी समरनाथका भाव कुछ और ही था। उन्होंने बडी स्फूर्तिसे एक सच्चे राजभक्तकी तरह यह खानातलाशीका कार्य सुसंपन्न किया मानो *to the manner born*—इसीके लिए जनमे हो। खानातलाशीके समय और कोई उल्लेखनीय घटना नही घटी। पर याद आती है गत्तेके एक छोटे डिब्बेमें दक्षिणेश्वर की जो मिट्टी रखी थी क्लार्क साहब उसे बडे सदिग्ध चित्तसे बहुत देरतक परखते रहे मानो उनके मनमें शका थी कि हो न हो यह कोई नया, भयकर, तेजविशिष्ट स्फोटक पदार्थ है। एक तरहसे क्लार्क साहबका सदेह निराधार भी नही कहा जा सकता। अतमें यह मान लिया गया कि यह मिट्टीके सिवा और कुछ नही, और इसे रासायनिक विश्लेषणकारियोंके पास भेजना अनावश्यक है। खाना-तलाशीके समय बक्स खोलनेके सिवा मैंने और कुछ नही किया। मुझे कोई भी कागज या चिट्ठी दिखलायी या पढकर सुनायी नही गयी, केवल

अलकधारीकी एक चिट्ठी क्रेगन साहबने अपने मनोरजनके लिए उच्च स्वर-में पढी। वधुवर विनोदगुप्त अपने स्वाभाविक ललित पदविन्याससे घरको कपाते हुए चक्कर काट रहे थे, शेल्फमें से या और कहीसे कागज या चिट्ठी निकालते, बीच-बीचमें "बहुत जरूरी, बहुत जरूरी" कह उसे क्रेगन साहब-को थमाते जाते। मैं जान नही पाया कि ये आवश्यक कागज क्या थे? इस बारेमें कोई कुतूहल भी नही था क्योकि मुझे पता था कि मेरे घरमे विस्फोटक पदार्थ बनानेकी प्रणाली या षड्यत्रमें हाथ होनेका कोई भी सबूत मिलना असभव है।

मेरे कमरेका कोना-कोना छान मारनेके बाद पुलिस हमे पासवाले कमरेमें ले गयी। क्रेगनने मेरी छोटी मासीका बक्स खोला, एक-दो बार चिट्ठियोपर नजर-भर डालकर "औरतोकी चिट्ठियोकी जरूरत नही" कह उन्हें छोड गये। इसके बाद एकतल्लेपर पुलिस महात्माओका आवि-र्भाव हुआ। वहाँ क्रेगनका चाय-पानी हुआ। मैंने एक प्याला कोको और रोटी ली। ऐसे सुअवसरपर साहब अपने राजनीतिक मतोको युक्ति-तर्कद्वारा प्रतिपादित करनेकी चेष्टा करने लगे। मैं अविचलित चित्तसे यह मानसिक यत्रणा सहता रहा। तो भी जिज्ञासा होती है कि शरीरपर अत्याचार करना तो पुलिसकी सनातन प्रथा रही है, मनपर भी ऐसा अमा-नुषिक अत्याचार करना unwritten law—अलिखित कानूनकी चौहद्दी-में पडता है क्या? आशा है हमारे परम मान्य देशहितैषी श्रीयुत योगेंद्रचद्र घोष इस बारेमे विधान सभामें प्रश्न उठायेंगे।

नीचेके कमरो और 'नवशक्ति कार्यालय'की खानातलाशीके बाद 'नव-शक्ति'के एक लौह-सदूकको खोलनेके लिए पुलिस फिरसे दोतल्लेपर गयी। आध घटेतक व्यर्थ सिर फोडनेके बाद उसे थाने ले जाना ही निश्चित हुआ। इस बार एक पुलिस साहबने एक द्विचक्र-यान ढूंढ निकाला, उसपर लगे रेलवे-लेबलपर 'कुष्टिया' लिखा था। तुरत ही कुष्टियामें साहबपर गोली चलानेवालेका वाहन मान इसे एक गुरुतर प्रमाण समझ सानद साथ ले गये।

प्राय. साढे ग्यारह बजे हम घरसे रवाना हुए। फाटकके बाहर मेरे मौसाजी एव श्रीयुत भूपेंद्रनाथ बसु गाडीमें उपस्थित थे। मौसाजीने मुझसे पूछा, "किस अपराधमें गिरफ्तार हुए हो?" मैंने कहा, "मैं कुछ नही जानता, इन्होने घरमें घुसते ही गिरफ्तार कर लिया, हाथोमें हथकडी पह-नायी, 'बॉडी वारण्ट' तक नही दिखाया।" मौसाजीके हथकडी पहनाये जानेका कारण पूछनेपर विनोद बाबू बोले, "महाशय, मेरा दोष नही, अरविन्द बाबूसे पूछिये, मैंने ही साहबसे कहकर हथकडी खुलवायी है।" भूपेन

वावूके क्या अपराध है पूछनेपर गुप्त महाशयने नरहत्याकी धारा दिखायी। यह सुन भूपेन बावू स्तंभित रह गये और कोई भी वात नही की। वादमें सुना, मेरे सौलिसिटर श्रीयुत हरेन्द्रनाथ दत्तने ग्रे स्ट्रीटमें खाना-तलाशीके समय मेरी ओरसे उपस्थित रहनेकी इच्छा प्रकट की थी पर पुलिसने उन्हें लौटा दिया।

हम तीनोको थाने ले जानेका भार था विनोद बावूपर। थानेमें उन्होने हमारे साथ विशेष भद्र व्यवहार किया। वही नहा-धोकर, खा-पीकर लालवाजारके लिए चले। कुछ घंटे लालबाजारमें विठा रखनेके वाद रायड स्ट्रीटमें ले गये, शामतक उसी शुभ स्थानपर अपना समय काटा। वही जासूस-पुङ्गव मौलवी शम्स-उल्-आलमके साथ मेरा पहला आलाप व प्रीति स्थापित हुई। मौलवी साहबका तवतक न इतना प्रभाव था और न उनमें इतना उत्साह और उद्यम, बम-केसके प्रधान अन्वेषक या नॉर्टन साहबके prompter (प्रेरक) या जीवन्त स्मरण-शक्तिके रूपमें तवतक नही चमके थे, रामसदय बावू ही थे इस केसके प्रधान पण्डा। मौलवी साहबने धर्म-पर अतिशय सरस वक्तृता सुनायी। हिन्दू-धर्म और इस्लाम धर्मका मूल-मंत्र एक ही है, हिंदुओंके ओंकार में तीन मात्राएं हैं—अ उ म्, कुरानके पहले तीन अक्षर हैं अ ल म, भाषातत्त्वके नियमसे ल के बदले उ व्यवहृत होता है अतएव हिन्दू और मुसलमानका मन्त्र एक ही है। तथापि अपने धर्मका पार्थक्य अक्षुण्ण रखना होता है, मुसलमानके साथ खाना खाना हिंदू-के लिए निन्दनीय है। सत्यवादी होना भी है धर्मका एक प्रधान अंग। साहब लोग कहते हैं कि अरविन्द घोष हत्याकारी दलके नेता है, भारतवर्ष-के लिए यह वडे दु:ख और लज्जाकी वात है, फिर भी सत्यवादिता अपनाने-से situation saved (स्थिति संभाली जा) हो सकती है। मौलवीका दृढ विश्वास था कि विपिन पाल और अरविन्द घोष जैसे उच्च चरित्रवान् व्यक्तियोने चाहे जो भी किया हो, उसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेंगे। श्रीयुत पूर्णचंद्र लाहिडी वही वैठे थे, उन्हें इसमें संदेह था किन्तु मौलवी साहव अपनी वातपर अडे रहे। उनकी विद्या-बुद्धि और उत्कट धर्मभाव देख मैं अतिशय चमत्कृत और हर्षित हुआ। ज्यादा वोलना धृष्टता होगी यह सोच मैंने नम्र भावसे उनका अमूल्य उपदेश सुना और उसे सयत्न हृदया-कित किया। धर्मके लिए इतने मतवाले होनेपर भी मौलवी साहवने जासूसी नही छोडी। एक वार कहने लगे, "अपने छोटे भाईको वम वनाने-के लिए आपने जो वगीचा दे दिया सो वडी भूल की, यह वुद्धिमानीका काम नही हुआ।" उनकी वातका आशय समझ मैं मुस्कराया; कहा,

"महाशय, बगीचा जैसा मेरा वैसा मेरे भाईका, मैंने उसे दे दिया है या दिया भी तो बम तैयार करनेके लिए दिया, यह खबर आपको कहाँसे मिली ?" मौलवी साहब अप्रतिभ हो बोले, "नही, नहीं, मैं कह रहा था यदि आपने ऐसा किया हो तो।" यह महात्मा अपने जीवन-चरितका एक पन्ना खोल, मुझे दिखाते हुए बोले, "मेरे जीवनमें जितनी नैतिक या आर्थिक उन्नति हुई है उसका मूल कारण है मेरे बापका एक अतिशय मूल्यवान् उपदेश। ये हमेशा कहा करते थे, परोसी थाली कभी नही ठुकराना। यही महावाक्य है मेरे जीवनका मूलमंत्र, इसे सदा याद रखनेके कारण ही हुई मेरी यह उन्नति।" ऐसा कहते समय मौलवी साहबने ऐसी तीव्र दृष्टिसे मेरी ओर घूरा मानो मै ही हूँ उनके सामने परोसी थाली। संध्या समय स्वनामधन्य श्रीयुत रामसदय मुखोपाध्यायका आविर्भाव हुआ। उन्होने मेरे प्रति अत्यन्त दया और सहानुभूति दिखायी, सभीको मेरे खाने और सोनेका प्रबध करनेको कहा। तुरत बाद कुछ लोग आकर मुझे और शैलेन्द्रको मूसलाधार वर्षामें लालबाजार हवालातमें ले गये। रामसदयके साथ बस यही एकबार ही मेरी बातचीत हुई। समझ गया कि आदमी बुद्धिमान् और उद्यमी है किन्तु उनकी बातचीत, भावभंगी, स्वर, चलन, सब कुछ है कृत्रिम और अस्वाभाविक, हमेशा जैसे रंगमचपर अभिनय कर रहे हो। ऐसे भी आदमी होते हैं जिनका शरीर, बात, क्रिया सब मानो अनृतके अवतार हो। कच्चे मनको भुलानेमें वे पक्के है, किन्तु जो मानव चरित्रसे अभिज्ञ हैं एव बहुत दिनोतक मनुष्योंके साथ मिलते-जुलते रहे है, उनकी पकड़में वे प्रथम परिचयमें ही आ जाते है।

लालबाजारमें दोतल्लेके एक बड़े कमरेमें हम दोनोको एक साथ रखा गया। खानेको मिला थोडा-सा जलपान। कुछ देर बाद दो अंगरेज कमरेमें घुसे, बादमें पता चला कि उनमेंसे एक थे स्वय पुलिस कमिश्नर हैलिडे साहब। हम दोनोको एक साथ देख हैलिडे सार्जटपर बरस पड़े, मुझे दिखाकर बोले, "खबरदार, इस व्यक्तिके साथ न कोई रहे न कोई बोले।" तुरत ही शैलेंद्रको दूसरे कमरेमें हटा बन्द कर दिया गया। और सब चले गये तो हैलिडे साहब मुझसे पूछते हैं—"इस कापुरुषोचित दुष्कर्ममें भाग लेते हुए आपको शर्म नही आती ?" "मै इसमें लिप्त था यह मान लेनेका आपको क्या अधिकार है ?" उत्तरमें हैलिडेने कहा, "मैंने मान नही लिया, मैं सब जानता हूँ।" मैंने कहा, "क्या जानते है या क्या नही यह आपको ही पता होगा पर मैं इस हत्याकाण्डके साथ अपना सपर्क पूर्णतया अस्वीकार करता हूँ।" हैलिडेने और कोई बात नही की।

उस रात मुझे देखने और कई दर्शक आये, सभी पुलिसके। इनके आनेमें एक रहस्य निहित था, उस रहस्यकी आजतक थाह नही ले पाया। गिरफ्तारीसे डेढ माह पहले एक अपरिचित सज्जन मुझसे मिलने आये थे। उन्होने कहा था, "महाशय, आपसे मेरा परिचय नही फिर भी आपके प्रति श्रद्धा-भक्ति है, इसीलिए आपको सतर्क करने आया हूँ और जानना चाहता हूँ कि कोननगरमें किसीसे आपका परिचय है क्या? वहाँ कभी गये थे या वहाँ कोई घर-बार है क्या?" मैंने कहा, "घर नही है, कोननगर एक बार गया था, कइयोसे परिचय भी है।" "और कुछ नही कहूँगा पर कोननगरमें अब और किसीसे मत मिलियेगा, आप और आपके भाई बारीन्द्रके विरुद्ध दुष्टजन षड्यन्त्र रच रहे हैं, शीघ्र ही आप लोगोको विपत्तिमें डालेंगे। मुझसे और कोई बात न पूछें।" मैंने कहा, "महाशय, मैं समझ नही पाया इस अधूरे सवादसे मेरा क्या उपकार हुआ, फिर भी आप उपकार करने आये थे उसके लिए धन्यवाद। मैं और कुछ नही जानना चाहता। भगवान्पर मुझे पूर्ण विश्वास है, वे ही सदा मेरी रक्षा करेंगे, उस विषयमें स्वय यत्न करना या सतर्क रहना निरर्थक है।"

उसके बाद इस सबधमें और कोई खबर नही मिली। मेरे इस अपरिचित हितैषीने मिथ्या कल्पना नही की थी, इसका प्रमाण उस रात मिला। एक इन्स्पेक्टर और कुछ पुलिस कर्मचारियोने आकर कोननगरकी सारी बात जान ली। उन्होने पूछा, "कोननगर क्या आपका आदि स्थान है? वहाँ मकान है क्या? वहाँ कभी गये थे? कब गये थे? क्यो गये थे? कोननगरमें वारीन्द्रकी कोई सम्पत्ति है क्या?"—इस तरहके अनेक प्रश्न पूछे गये। बात क्या है यह जाननेके लिए मैं इन सब प्रश्नोका उत्तर देता गया। इस चेष्टामें सफलता नही मिली, किन्तु प्रश्नोसे और पुलिसके पूछनेके ढगसे लगा कि पुलिसको जो खबर मिली है वह सच है या झूठ इसकी छानबीन चल रही है। अनुमान लगाया जैसे ताई महाराजके मुकदमेमें तिलकको भण्ड, मिथ्यावादी, प्रवचक और अत्याचारी करार कर देनेकी चेष्टा हुई थी एव उस चेष्टामें बबई सरकारने योग दे प्रजाके धनका अपव्यय किया था,—वैसे ही मुझे भी कुछ एक लोग मुसीबतमें डालनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

रविवारका सारा दिन हवालातमें कटा। मेरे घरके सामने सीढी थी। सवेरे देखा कि कुछ अल्पवयस्क लडके सीढीसे उतर रहे हैं। शक्लसे नही जानता था पर अदाज लगाया कि ये भी इसी मुकदमेमें पकडे गये हैं, बादमें जान पाया कि ये थे मानिकतला बगीचेके लडके। एक माह

बाद जेलमें उनसे बातचीत हुई। कुछ देर बाद मुझे भी हाथ-मुंह धोने नीचे ले जाया गया—नहानेका कोई प्रबंध नहीं था अत. नही नहाया। उस दिन सवेरे खानेको मिला दाल-भात, जबरदस्ती कुछ-एक कौर उदरस्थ किये, बाकी छोडना पड़ा। शामको मिले मुरमुरे। तीन दिन-तक यही था हमारा आहार। किन्तु इतना जरूर कहूँगा कि सोमवारको सार्जेंटने स्वयं ही मुझे चाय और टोस्ट खानेको दिये।

बादमें सुना कि मेरे वकीलने कमिश्नरसे घरसे खाना भेजनेकी अनुमति मागी थी पर हैलिडे साहब नही माने। यह भी सुना कि आसामियोंसे वकील या अटर्नीका मिलना निषिद्ध है। पता नही यह निषेध कानू-नन ठीक है या नही। वकीलका परामर्श मिलनेसे यद्यपि मुझे कुछ सुविधा होती फिर भी नितात आवश्यकता नही थी, किन्तु उससे अनेकोको मुकदमे-में क्षति पहुँची। सोमवारको हमें कमिश्नरके सामने हाजिर किया गया। मेरे साथ अविनाश और शैलेन थे। सबको अलग-अलग दलमें ले जाया गया। पूर्वजन्मके पुण्यफलसे हम तीनो पहले गिरफ्तार हुए थे और कानून-की जटिलता काफी अनुभव कर चुके थे इसलिए तीनोने ही कमिश्नरके आगे कुछ भी बोलनेसे इनकार कर दिया। अगले दिन हमें थौर्णहिल मजिस्ट्रेटकी कचहरीमें ले जाया गया। इसी समय श्रीयुत कुमारकृष्ण दत्त, मान्युएल साहब और मेरे एक संबधीसे भेंट हुई। मान्युएल साहबने मुझसे पूछा, "पुलिस कहती है आपके घरमें अनेक सदेहजनक चिट्ठी-पत्री मिली हैं। ऐसी चिट्ठिया या कागजात क्या सचमुचमें थे?" मैंने कहा, "निस्सदेह कह सकता हूँ, नही थे, होना विल्कुल असभव है।" निश्चय ही तब "मिष्टान्न पत्र" ('sweets letter') या scribbling (घसीट लेख)की बात नही जानता था। अपने सबधीसे कहा, "घरमें कह देना कि डरें नही, मेरी निर्दोषिता सपूर्णतया प्रमाणित होगी।" उस समयसे मेरे मनमें दृढ विश्वास उपजा कि यह होगा ही। पहले-पहल निर्जन-कारावासमें मन जरा विचलित हुआ किन्तु तीन दिन प्रार्थना और ध्यानमें वितानेके फलस्वरूप निश्चला शान्ति और अविचलित विश्वासने प्राणको पुनः अभिभूत किया।

थौर्णहिल साहवके इजलाससे हमें गाडीमें अलीपुर ले जाया गया। उस दलमें थे निरापद, दीनदयाल, हेमचद्र दास आदि। इनमें हेमचद्र दासको पहचानता था, एक बार मेदिनीपुरमें उनके यहाँ ठहरा था। तव किसे पता था कि इस तरह वंदीभावमें जेल जाते हुए उनसे मिलना होगा। अलीपुरमें मजिस्ट्रेटकी अदालतमें हमें काफी देर ठहरना पडा पर मजिस्ट्रेटके

सामने हाजिर नही किया, केवल अदरसे वे हुकुम लिखा लाये। हम फिरसे गाड़ीमें चढे, तब एक सज्जन मेरे पास आकर बोले, "सुनता हूँ कि इन्होने आपके निर्जन कारावासकी व्यवस्था की है, हुकुम लिखा जा रहा है। शायद किसीसे भी भेंट मुलाकात करने नही देंगे। इस बार यदि घरपर कुछ कहलाना चाहें तो मैं संदेश पहुंचा दूंगा।" मैंने उन्हें धन्यवाद दिया, किंतु जो कहना था वह मैं अपने आत्मीयद्वारा कहला चुका था अतः उनसे और कुछ नही कहा। अपने प्रति देशवासियोकी सहानुभूति और अयाचित अनुग्रहके दृष्टातके रूपमें मैंने इस घटनाका उल्लेख किया। इसके बाद कोर्टसे जेलमें पहुचा हमें जेलके कर्मचारियोंके हाथोमें सौंप दिया गया। जेलमें घुसनेसे पहले हमें स्नान कराया, जेलकी पोशाक पहननेको दी और हमारे कुर्ते, धोती आदि धोनेके लिए ले गये। चार दिन बाद स्नान करनेपर हमें स्वर्गसुखकी अनुभूति हुई। स्नानके बाद सबको अपनी-अपनी कोठरीमें पहुचा दिया गया। मैं भी अपने निर्जन कारागार-में घुसा, छोटी-सी कोठरीके लौह-कपाट बद हो गये। अलीपुर कारावास-का आरंभ हुआ था ५ मईको। मुक्त हुआ अगले साल ६ मईको।

मेरा निर्जन कारागृह था नौ फीट लबा और पाच-छ: फीट चौडा, इसमें कोई खिड़की नही, सामने था एक बृहत् लौह-कपाट; यह पिंजरा ही बना मेरा निर्दिष्ट वासस्थान। कमरेके बाहर था एक छोटा-सा पथरीला आगन और ईंटकी ऊची दीवार, सामने लकडीका दरवाजा। उस दरवाजेके ऊपरी भागमें मनुष्यकी आंखकी ऊँचाईपर था एक गोलाकार छेद, दरवाजा बद होनेपर सन्तरी उसमें आंख सटा थोडी-थोडी देरमें झाकता था कि कैदी क्या कर रहा है। किन्तु मेरे आगनका दरवाजा प्राय. खुला रहता। ऐसे छ. कमरे पास-पास थे, इन्हें कहा जाता था छ. 'डिक्री'। डिक्रीका अर्थ है विशेष दण्डका कमरा, न्यायाधीश या जेल सुपरिण्टेण्डेण्टके हुकुमसे जिन्हें निर्जन कारावासका दण्ड मिलता था उन्हें ही इन छोटे-छोटे गह्वरोमें रहना होता था। इन निर्जन कारावासोकी भी श्रेणी होती है। जिन्हें विशेष सजा मिलती है उनके आंगनका दरवाजा बद रहता है; मनुष्य ससारसे पूर्णतया वञ्चित हो जाते हैं, उनका जगत्से एकमात्र सपर्क रह जाता है संतरीकी आँखो और दो समय खाना लानेवाले कैदीसे। सी० आई० डी० की नजरोमें हेमेंद्र दास मुझसे भी ज्यादा आतककारी थे, इसीलिए उनके लिए ऐसी व्यवस्था की गयी। इस सजाके ऊपर भी सजा है—हाथ-पैरमें

हथकडी और वेडी पहन निर्जन कारावासमें रहना। यह चरम दण्ड केवल जेलकी शान्ति भग करनेवालो या मारपीट करनेवालो के लिए नही, वार-वार काममें गफलत करनेसे भी यह दण्ड मिलता है। निर्जन कारावासके मुकदमेके आसामीको शास्ति-स्वरूप ऐसा कष्ट देना नियमविरुद्ध है परतु स्वदेशी या 'वदेमातरम्'-कैदी नियमसे बाहर हैं, पुलिसकी इच्छासे उनके लिए भी सुवंदोबस्त होता है।

हमारा वासस्थान तो था ऐसा, साजसरंजाममें भी हमारे सहृदय कर्म-चारियोने आतिथ्य संस्कारमें कोई त्रुटि नही की। एक थाली और एक कटोरा आगनको सुशोभित करते थे। खूब अच्छी तरह माजे जानेपर मेरा सर्वस्व थाली और कटोरा चादीकी तरह इस कदर चमकते कि प्राण जुडा जाते और उस निर्दोष किरणमय उज्ज्वलतामें 'स्वर्गजगत्'में विशुद्ध ब्रिटिश राजतत्रकी उपमा पा राजभक्तिके निर्मल आनंदका अनुभव करता था। दोषोमें एक दोष था कि थाली भी उसे समझकर आनदमें इतनी उत्फुल्ल हो उठती थी कि अगुलीका जरा-सा जोर पडते ही वह घुमक्कड़ अरवी दरवेशियोकी तरह चक्कर काटने लगती, ऐसेमें एक हाथसे खाना और एक हाथसे थाली पकडे रहनेके सिवा कोई चारा नही रहता। नही तो चक्कर काटते-काटते जेलका अतुलनीय मुट्ठीभर अन्न लेकर वह भाग जानेका उपक्रम करती। थालीकी अपेक्षा कटोरा था और भी अधिक प्रिय और उपकारी। जड़ पदार्थोमें मानो यह था ब्रिटिश सिविलियन। सिविलियनोमें जैसे सव कार्योमें स्वभावजात निपुणता और योग्यता होती है, जज, शासनकर्ता, पुलिस, शुल्क-विभागके कर्ता, म्युनिसिपैलिटीके अध्यक्ष, शिक्षक, धर्मोपदेशक, जो चाहो वही, कहने-भरसे ही, बन सकते हैं—जैसे उनके लिए, एक शरीरमें, एक ही साथ अनुसंधाता, अभियोगकर्ता, पुलिस मजिस्ट्रेट और कभी-कभी वादीके परामर्शदाताका भी प्रीतिसम्मिलिन सहज-साध्य था, वैसा ही था मेरा प्यारा कटोरा भी। कटोरेकी जात नही, विचार नही। कारागृहमें उसी कटोरेसे पानी ले शौच किया, उसी कटोरेसे मुंह धोया, स्नान किया, कुछ देर वाद उसीमें खाना पडा, उसी कटोरेमें दाल या तरकारी डाली गयी, उसी कटोरेसे पानी पिया और कुल्ला किया। ऐसी सर्वकार्यक्षम मूल्यवान् वस्तु अगरेजोकी जेलमें ही मिलनी सभव है। कटोरा मेरे ये सव सासारिक उपकार कर योग-साधनामें भी सहायी वना। घृणा परित्याग करानेका ऐसा सहायी और उपदेशक कहा पाऊँगा? निर्जन कारावासकी पहली अवधिके वाद जव हमें एक साथ रखा गया तव मेरे सिविलियनके अधिकारोका पृथकीकरण हुआ,—अधिकारियोने शौचके लिए

अन्य उपकरण जुटाया। किंतु महीने-भरमें घृणापर काबू पानेका अयाचित पाठ पढ लिया था। शौचकी सारी व्यवस्था ही मानो इस सयमकी शिक्षाको ध्यानमें रखकर की गयी थी। पहले कहा है, निर्जन कारावास विशेष दण्डमें गिना जाता है और उस दण्डका मूल सिद्धात है यथासाध्य मनुष्य-ससर्ग और मुक्त आकाश-सेवनका वर्जन। बाहर शौचकी व्यवस्था करनेसे तो यह सिद्धात भग होता अत. कोठरीमें ही तारकोल पुती दो टोकरिया दी जाती थी। सवेरे-शाम मेहतर साफ कर जाता, तीव्र आदोलन और मर्मस्पर्शी भाषण देनेपर दूसरे समय भी सफाई हो जाती, किंतु असमय पाखाना जानेसे घटो-घंटोतक दुर्गन्ध भोगकर प्रायश्चित्त करना पडता। निर्जन कारावासकी दूसरी अवधिमें इसमें थोडा-बहुत सुधार हुआ किंतु सुधार होता है पुराने जमानेके मूलतत्त्वोको अक्षुण्ण रखते हुए शासनमें सुधार। किं बहुना, इस छोटी-सी कोठरीमें ऐसी व्यवस्था होनेसे हमेशा, विशेषकर खानेके समय और रातको, भारी असुविधा भोगनी पड़ती थी। जानता हूँ, शयनागारके साथ पाखाना रखना प्राय: विलायती सभ्यताकी विशेषता है किंतु एक छोटे-से कमरेमें शयनागार, भोजनालय और पाखाना—इसे कहते हैं too much of a good thing (भलाईकी भी सीमा पार कर जाना)। हम ठहरे कुअभ्यासग्रस्त भारतवासी, सभ्यताके इतने ऊचे सोपानपर पहुँचना हमारे लिए कष्टकर है।

गृह-सामग्रीमें और भी चीजें थी: एक नहानेकी बाल्टी, पानी रखनेको एक टीनकी नलाकार बाल्टी और दो जेलके कम्बल। स्नानकी बाल्टी आगनमें रखी रहती, वही नहाता था। पहले हमारे भाग्यमें पानीका कष्ट नही था पर बादमें यह भी भोगना पडा। पहले पासके गोहालघरके कैदी नहाते समय मेरी इच्छानुसार बाल्टीमें पानी भर देते थे, इसीलिए नहानेका समय ही था जेलकी तपस्याके बीच प्रतिदिन गृहस्थकी विलासवृत्ति और सुखप्रियताको तृप्त करनेका अवसर। दूसरे आसामियोंके भाग्यमें इतना भी नही जुटा था; एक बाल्टी पानीसे ही उन्हें शौच, बर्तन-मजाई, स्नान सब करना होता था। विचाराधीन कैदी थे इसीलिए इतना-सा विलास भी मिला हुआ था, कैदियोको तो दो-चार कटोरे पानीमें ही स्नान करना पडता था। अगरेज कहते हैं भगवत् प्रेम व शरीरकी स्वच्छदता (स्वाधीनता) प्राय समान और दुर्लभ गुण हैं, जेलोमें यह व्यवस्था इस प्रवादकी यथार्थताको सिद्ध करनेके लिए है या अतिरिक्त स्नानके सुखसे कैदियोंके अनिच्छा-जनित तपस्याके रस भग होनेके भयसे यह व्यवस्था प्रचलित की गयी है, यह निर्णय करना कठिन है।

आसामी अधिकारियोकी इस दयाको काक-स्नान कह खिल्ली उड़ाते थे। मनुष्यमात्र ही है असंतोषप्रिय। नहानेकी व्यवस्थासे पीनेके पानीकी व्यवस्था थी और भी निराली। गर्मीका मौसम, मेरे छोटे-से कमरेमें हवाका प्रवेश था लगभग निषिद्ध। किंतु मई महीनेकी उग्र और प्रखर धूप बेरोक-टोक घुस आती थी। कमरा जलती भट्टी-सा हो उठता था। इस भट्टीमें तपते हुए अदम्य जलतृष्णाको कम करनेका उपाय था वही टीनकी बाल्टीका अर्ध-उष्ण जल। बार-बार वही पीता था, प्यास तो नही ही बुझती थी वरन् पसीना छूटता और कुछ देरमें फिरसे प्यास लग आती थी। पर हाँ, किसी-किसीके आगनमें मिट्टीकी सुराही रखी होती, वे अपने पूर्वजन्मकी तपस्याका स्मरण कर अपनेको धन्य मानते। घोर पुरुषार्थवादीको भी भाग्यमें विश्वास करनेको बाध्य होना पड़ता था, किसीके भाग्यमें ठण्डा पानी बदा था तो किसीके भाग्यमें प्यास, सब था भाग्यका फेर। अधिकारीगण, किंतु, पूर्ण पक्षपातरहित हो कलसी या बाल्टी वितरण करते थे। इस यदृच्छा-लाभसे मेरे संतुष्ट होने या न होनेसे भी मेरा जल-कष्ट जेलके सहृदय डाक्टर बाबूको असह्य हो उठा। वे कलसी जुटानेमें लगे किंतु क्योंकि इस बंदोबस्तमें उनका हाथ नही था इसलिए बहुत दिनतक इसमें सफल नही हुए, अतमें उनके ही कहनेसे मुख्य जमादारने कहीसे कलसीका आविष्कार किया। उससे पहले ही तृषाके साथ अनेक दिनके घोर संग्रामसे मैं पिपासा-मुक्त हो चला था। तिसपर इस तप्त कमरेमें बिस्तरके नामको थे दो जेलके बने मोटे कम्बल। तकिया नदारद, एक कम्बलको नीचे बिछा लेता और दूसरेकी तह करके तकिया बना सोता। जब गर्मी असह्य हो उठती और बिस्तरपर न रहा जाता तब मिट्टीमें लोट लगा, बदन ठण्डा कर आराम पाता था। माता वसुंधराकी शीतल गोदके स्पर्शका क्या सुख है यह तभी जाना। फिर भी, जेलमें उस गोदका स्पर्श बहुत कोमल नही होता, उससे निद्राके आगमनमें बाधा आती अत. कम्बलकी शरण लेनी पडती। जिस दिन वर्षा होती वह दिन भारी आनदका दिन होता। इसमें भी एक असुविधा यह थी कि झड़ी-झंझा होते ही धूल, पत्ते और तिनकोंसे भरे प्रभंजनके ताण्डव नृत्यके बाद मेरे पिंजरेके अदर बाढ-सी आ जाती। ऐसेमें रातको भीगा कम्बल ले कमरेके एक कोनेमें दुबकनेके सिवा कोई चारा न रहता। प्रकृतिकी इस विशिष्ट लीलाके समाप्त होनेपर भी जलप्लावित धरती जबतक सूख नही जाती थी तबतक निद्रादेवीकी आशा छोड़ विचारोंका दामन पकड़ना पडता था। एकमात्र सूखी जगह थी शौचके आसपास किंतु वहाँ कम्बल बिछानेकी प्रवृत्ति न होती। इन

सब असुविधाओंके होते हुए भी झडी-झझाके दिन भीतर खूब हवा आती और कमरेकी जलती भट्टीका ताप दूर हो जाता इसलिए झडी-झझाका सादर स्वागत करता।

अलीपुरके गवर्नमेण्ट होटलका जो वर्णन मैंने किया है एव आगे और भी करूँगा वह निजी कष्ट-भोगकी विज्ञप्तिके लिए नही वरन् सुसभ्य ब्रिटिश राज्यमें विचाराधीन कैदियोंके लिए कितनी अद्‌भुत व्यवस्था थी, निर्दोषोको दीर्घकालव्यापी कितनी यन्त्रणा भोगनी पड सकती है, यह बतलानेके लिए ही है यह वर्णन। कष्टोंके जो कारण दिखलाये हैं, वे तो थे ही किंतु भगवान्‌की दया दृढ थी इसलिए थोड़े दिनोतक ही कष्ट अनुभव किया, उसके बाद तो—किस उपायसे वह बादमें बताऊँगा—मन उस दु:खसे अतीत हो कष्ट अनुभव करनेमें असमर्थ हो गया था। इसीलिए मनमें जेलकी स्मृति जगनेपर क्रोध या दु:ख नही, हसी ही आती है। पहले-पहल जब जेलकी विचित्र पोशाक पहन अपने पिंजरमें घुसकर रहनेका बन्दोबस्त देखा था तब यही भाव मनमें उदित हुआ था। मन-ही-मन हस रहा था। अगरेज जातिका इतिहास और आधुनिक आचरणका निरीक्षण कर बहुत पहले ही मैंने उनके विचित्र और रहस्यमय चरित्रको समझ लिया था, इसीलिए अपने लिए उनकी ऐसी व्यवस्था देखकर भी जरा भी आश्चर्यान्वित या दु:खी नही हुआ। साधारण दृष्टिसे हम लोगोंके साथ उनका ऐसा व्यवहार अतिशय अनुदार व निंदनीय था। हम सब थे कुलीन घरानोंके, बहुत-से थे जमीदारोंके बेटे, कितने ही वश, विद्या, गुण और चरित्रमें थे इगलैण्डके शीर्षस्थानीय व्यक्तियोके समकक्ष ! हम जिस अपराधमें पकडे गये थे वह भी सामान्य खून, चोरी, डकैती नही था, था देशके लिए विदेशी सरकारके विरुद्ध युद्ध-चेष्टा या समरोद्योगका षड्‌यन्त्र। तिसपर कइयोको दोषी ठहरानेमें प्रमाणका नितान्त अभाव था; पुलिसका सदेह ही था उनके पकडे जानेका एकमात्र कारण। ऐसे स्थानमें सामान्य चोर-डकैतोकी तरह रखना—चोर डकैत ही क्यो, पशुओकी तरह पिंजरेमें रख, पशुओका अखाद्य आहार खिलाना, जलकष्ट, क्षुत्पिपासा, धूप, वर्षा व शीत सहन कराना—इससे ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जातिकी गौरव-वृद्धि नही होती। यह है किंतु उनका जातीय चरित्रगत दोष। अगरेजोमे क्षत्रियोचित गुण होते हुए भी शत्रु या विरुद्धाचरणकारीके साथ व्यवहार करते समय वे हैं सोलह आने बनिये। मेरे मनमें तब विरक्तिकी भावनाने स्थान नही पाया बल्कि मुझमें और देशके साधारण अशिक्षित लोगोमे कुछ भेद नही रखा गया यह देखकर कुछ आनदित हुआ, और फिर इस व्यवस्थाने तो मातृभक्तिके प्रेमाभावमें आहुतिका काम किया। मैंने इसे योग-शिक्षा और

द्वन्द्व-जयका अपूर्व उपकरण और अनुकूल अवस्था माना, तिसपर मैं था चरमपंथी दलका जिनके मतमें प्रजातन्त्र एव धनी-दरिद्रका साम्य है राष्ट्रीय भावका एक प्रधान अंग। याद हो आया—मतको कार्यान्वित करना अपना कर्तव्य समझ सूरत जाते समय सभीने एक साथ तीसरे दर्जेमें यात्रा की थी, कैंपमें नेतागण अपना-अपना अलग प्रवंध न कर सबके साथ एकभावसे, एक ही कमरेमें सोते। धनी, दरिद्र, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, बंगाली, मराठी, पंजावी, गुजराती—सब दिव्य भ्रातृभावसे एक साथ रहते, सोते, खाते। जमीनपर सोना, दाल-भात, दही ही खाना, सब चीजोमें था स्वदेशीका वोलवाला। कलकत्ता और बबईके विदेशसे लौटे हुए लोग और मद्रासके तिलकधारी ब्राह्मण सब एक साथ मिल-जुल गये थे। इस अलीपुर जेलमें रहते समय अपने देशके कैंदी, अपने देशके किसान, लुहार, कुम्हार, डोम-वाग्दियोंके समान आहार, समान रहन-सहन, समान कष्ट, समान मानमर्यादा पा समझा कि सर्वशरीरवासी नारायणने इस साम्यवाद, इस एकता, इस देशव्यापी भ्रातृभावसे सहमत हो मानो मेरे जीवन-व्रतपर अपनी मुहर लगा दी हो। जिस दिन जन्मभूमिरूपिणी जगज्जननीके पवित्र मण्डपमें सारा देश भ्रातृ-भावमें एक प्राण हो जगत्के सामने उन्नतमस्तक हो खड़ा होगा, सहवासी आसामी और कैंदियोंके प्रेमपूर्ण आचरण एव सरकारके इस साम्यभावमें, इस कारावासमें उस शुभ दिनका हृदयमें पूर्वाभास पा कितनी ही वार हर्षित व पुलकित हो उठता था। अभी उसी दिन पूनाके "Indian Social Reformer" ने मेरी एक सहज वोधगम्य उक्तिपर व्यंग कसते हुए कहा था, "जेलमें तो भगवत्सान्निध्यकी वड़ी वाढ-सी आ गयी दीखती है।" हाय रे मान-सम्मानके अन्वेषी, अल्प विद्यासे, अल्प सद्गुणसे गर्वित मनुष्यके अहंकार और क्षुद्रता! जेलमें, कुटीरमें, आश्रममें, दु.खीके हृदयमें भगवान् प्रकट नही होंगे तो क्या धनीके विलास-भवनमें, सुखान्वेषी स्वार्थांध ससारीकी सुख-शय्यापर होंगे? भगवान् विद्या, सम्मान, लोकमान्यता, लोकप्रशसा, वाह्य स्वच्छदता व सभ्यता नही देखते। वे दु खीके सामने ही दयामयी मांका रूप धरते हैं। जो मानवमात्रमें, जातिमें, स्वदेशमें, दु.खी-गरीव, पतित-पापीमें नारायणको देख उनकी सेवामें जीवन समर्पित करते हैं उन्हींके हृदयमें आ वसते हैं नारायण और उत्थानोद्यत पतित जातिमें, देश-सेवककी निर्जन कारामें ही सभव है भगवत्-सान्निध्यकी वाढ।

कंवल, थाली-कटोरीका प्रवंध कर जेलरके चले जानेपर कवलपर वैठ मैं जेलका दृश्य देखने लगा। लालवाजारकी हवालातकी अपेक्षा यह निर्जन

कारावास अधिक अच्छा लगा। वहाँ उस विशाल कमरेकी निर्जनता मानो अपनी विशाल कायाको विस्तारित करनेका अवकाश पा निर्जनताको और भी गहन करे दे रही थी। यहाँ छोटे-से कमरेकी दीवारें मानो बधु-रूपमें पास आ, ब्रह्ममय हो आलिंगनमें भर लेनेको तैयार थी। वहाँ दोतल्लेके कमरेकी ऊची-ऊँची खिडकियोसे बाहरका आकाश भी नही दीखता था, इस ससारमें पेड-पत्ते, मनुष्य, पशु-पक्षी, घर-द्वार भी कुछ है, बहुत बार उसकी कल्पना करना भी कठिन हो जाता था। यहाँ आगनका दरवाजा खुला होनेपर सरियोंके पास बैठनेसे बाहर जेलकी खुली जगह और कैदियोका आना-जाना देखा जा सकता है। आगनकी दीवारसे सटा वृक्ष था, उसकी नयनरजक नीलिमासे प्राण जुडा जाते। छ. डिक्रीके छ· कमरोके सामने जो सतरी घूमता रहता उसका चेहरा और पदचाप बहुत बार परिचित बधुके चलने-फिरनेकी तरह प्रिय लगता। कोठरीकी पार्श्ववर्ती गोहालघरके कैदी कोठरीके सामनेसे गौएँ चराने ले जाया करते। गौ और गोपाल थे प्रतिदिनके प्रिय दृश्य। अलीपुरके निर्जन कारावासमें अपूर्व प्रेमकी शिक्षा पायी। यहाँ आनेसे पहले मनुष्योंके साथ मेरा व्यक्तिगत प्रेम अतिशय छोटे घेरेमें घिरा था और पशु-पक्षियोपर रुद्ध प्रेम-स्रोत तो बहता ही नही था। याद आता है, रवि बाबूकी एक कवितामें भैंसके प्रति एक ग्राम्य बालकका गभीर प्रेम बहुत सुदर ढगसे वर्णित हुआ है, पहली बार पढनेपर वह जरा भी हृदयङ्गम नही हुई थी, भाव-वर्णनमें अतिशयोक्ति और अस्वा-भाविकताका दोष देखा था। अब पढनेपर उसे दूसरी ही दृष्टिसे देखता। अलीपुरमें रहकर समझ सका कि सब तरहके जीवोपर मनुष्यके प्राणोमें कितना गभीर स्नेह स्थान पा सकता है, गौ, पक्षी, चीटीतकको देख कितने तीव्र आनन्दके स्फुरणमें मनुष्यका प्राण अस्थिर हो सकता है।

कारावासका पहला दिन शातिसे कट गया। सभी कुछ था नया, इससे मनमें स्फूर्ति जगी। लालबाजारकी हवालातसे तुलना करनेपर इस अवस्थामें भी प्रसन्नता हुई और भगवान्‌पर निर्भर था इसलिए यहाँ निर्जनता भी भारी नही पडी। जेलके खानेकी अद्भूत सूरत देखकर भी इस भावमें कोई व्याघात नही पडा। मोटा भात, उसमें भी भूसी, कंकड, कीडा, बाल आदि कितने तरहके मसालोंसे पूर्ण—स्वादहीन दालमें जलका अंश ही अधिक, तरकारीमें निरा घास-पातका शाक। मनुष्यका खाना इतना स्वादहीन और निस्सार हो सकता है यह पहले नही जानता था। शाककी यह विषण्ण गाढी कृष्ण मूर्ति देखकर ही डर गया, दो ही ग्रास खा उसे भक्तिपूर्ण नमस्कार कर एक ओर सरका दिया। सब कैदियोंके भाग्यमें एक ही तरकारी बदी

थी और एक वार कोई तरकारी शुरू हो जाय तो अनंत कालतक वही चलती थी। उस समय शाकका राज्य था। दिन वीते, पखवारे वीते, माह वीते किंतु दोनो समय वही शाक, वही दाल, वही भात। चीजें तो क्या वदलनी थी, रूपमें भी कतई परिवर्तन नही होता था, उसका वही नित्य, सनातन, अनाद्यनत, अपरिणामातीत अद्वितीय रूप! दो दिनमें ही कैदीमें इस नश्वर माया-जगत्के स्थायित्वपर विश्वास जनमने लगेगा। इसमें भी अन्य कैदियोकी अपेक्षा मैं भाग्यशाली रहा, यह भी डाक्टर वावूकी दयासे। उन्होने हस्पतालसे मेरे लिए दूधकी व्यवस्था की थी, इससे कुछ दिनके लिए शाक-दर्शनसे मुक्ति मिली।

उस रात जल्दी ही सो गया, किंतु निश्चित निद्रा निर्जन कारावास-का नियम नही, उससे कैदियोकी सुखप्रियता जग सकती है। इसीलिए नियम है कि जितनी वार पहरा वदले उतनी बार कैदीको हाक मारकर उठाया जाता है और हुकारा न भरनेतक छोडते नही। जो-जो छ· डिक्री-का पहरा देते थे उनमें बहुत-से इस कर्तव्य-पालनसे विमुख थे,—सिपाहियोमें प्राय: ही कठोर कर्तव्य ज्ञानकी अपेक्षा दया और सहानुभूति अधिक थी, विशेषत. हिंदुस्तानियोंके स्वभावमें। किंतु कुछ लोगोने नही वख्शा। वे हमें इस तरह जगा यह कुशल सवाद पूछते: "बाबू, ठीक हैं तो?" यह असमयका हसी-मजाक सदा नही सुहाता पर समझ गया था कि जो ऐसा करते हैं वे सरलभावसे नियमवश ही हमें उठाते हैं। कई दिन विरक्त होते हुए भी इसे सह गया। अतत. निद्राकी रक्षाके लिए धमकी देनी पड़ी। दो-चार वार धमकानेके वाद देखा कि रातको कुशल-क्षेम पूछनेकी प्रथा अपने-आप ही उठ गयी।

अगले दिन सवेरे सवा चार वजे जेलकी घटी वजी। कैदियोको जगानेके लिए यह पहली घटी थी। कुछ मिनट वाद दूसरी वजती, इसके वाद कैदी पक्तिवद्ध हो वाहर आ हाथ-मुँह धो, 'लपसी' खा दिनभरकी मश-क्कतमे लग जाते। इतनी घटियोंके वजते हुए सोना असभव जान मैं भी उठ जाता।

पाँच वजे लौह-द्वार खोला जाता, मैं हाथ-मुँह धो फिरसे कमरेमें आ वैठा। कुछ देर वाद मेरे दरवाजेपर लपसी हाजिर हुई किंतु उस दिन उसे खाया नही, केवल चाक्षुप परिचय हुआ। इसके कुछ दिन वाद पहली वार इस परमान्नका भोग लगाया। लपसी अर्थात् माडसहित उवला भात, यही थी कैदियोकी छोटी हाजिरी। लपसी की त्रिमूर्ति या तीन अवस्थाएँ हैं। पहले दिन लपसीका प्राज्ञभाव, अमिश्रित मूलपदार्थ, शुद्ध शिव शुभ्र-

मूर्ति। दूसरे दिन लपसीका हिरण्यगर्भ रूप, दालके साथ सीजा हुआ खिचडी-के नामसे अभिहित, पीतवर्ण, नाना धर्मसकुल। तीसरे दिन थोडे-से गुड-में मिश्रित लपसीकी विराट् मूर्ति, धूसर वर्ण, कुछ परिमाणमें मनुष्यके व्यवहार-योग्य। प्रज्ञ और हिरण्यगर्भका सेवन साधारण मर्त्य मनुष्यके बूतेसे बाहर मान मैंने उसे त्याग दिया था। कभी-कभार विराट्के दो ग्रास उदरस्थ कर ब्रिटिश राज्यके नाना सद्गुण और पाश्चात्य सभ्यताके उच्च दर्जेके humanitarianism (लोकहितवाद)के बारेमे सोच-सोचकर आनंदमग्न होता रहता था। कहना चाहिये कि लपसी ही था बगाली कैदियोका एकमात्र पुष्टिकर आहार, बाकी सब था सारशून्य। वह होनेसे भी क्या होगा? उसका जैसा स्वाद था, वह केवल भूखसे सताये जानेपर ही खाया जा सकता है, वह भी जोर-जबरदस्ती, मनको बहुत समझा-बुझाकर।

उस दिन साढे ग्यारह बजे स्नान किया। घरसे जो पहनकर आया था, पहले चार-पाच दिन वही पहने रहना पडा। नहाते समय गोहालघर-के जो वृद्ध कैदी वार्डर मेरी देखरेखके लिए नियुक्त हुए थे उन्होंने कहीसे डेढ हाथ चौडा एडीका कपडा जुटा दिया था, अपने एकमात्र कपडे सूखने-तक वही पहने बैठा रहता। मुझे कपडे धोने और बर्तन मांजने नही पडते थे, गोहालघरका एक कैदी यह कर देता था। ग्यारह बजे खाना। कमरे-की छितनीके सान्निध्यसे वचनेके लिए ग्रीष्मकी धूप सहते हुए प्राय. ही आगनमें खाया करता। सतरी भी इसमें बाधा न देते। शामका खाना होता पाच, साढे पाच बजे। उसके बाद लौह-द्वार खुलना निषिद्ध था। सात बजे शामका घण्टा बजता। मुख्य जमादार कैदी वार्डरोको इकट्ठा कर उच्च स्वरमें नाम पढते जाते थे, उसके बाद सब अपनी-अपनी जगह चले जाते। श्रात कैदी निद्राकी शरण ले जेलके इस एकमात्र सुखका अनुभव करते। इस समय दुर्बलचेता अपने दुर्भाग्य या भावी जेल-दु.ख-की चिंता कर रोया करते। भगवद्भक्त नीरव रात्रिमें ईश्वरका सान्निध्य अनुभव कर प्रार्थना या ध्यानमें आनद लूटते। रातको इन अभागे, पतित, समाज-पीडित तीन सहस्र ईश्वर-सृष्ट प्राणियोका यह अलीपुर जेल, प्रकाण्ड यन्त्रणा-गृह विशाल नीरवतामें डूब जाता।

जो मेरे साथ एक ही अभियोगके अभियुक्त थे उनसे जेलमें मिलना-जुलना नहीके बराबर था। उन्हे कहो और रखा गया था। छः डिग्रीके पिछली

तरफ छोटी-छोटी कोठरियोकी दो पंक्तियां थी, इन दोनो पक्तियोमें कुल मिलाकर थी ४४ कोठरिया, इसीलिए ये चवालीस डिक्री कहलाती थी, इसी डिक्रीकी एक पक्तिमें अधिकाश आसामियोका वासस्थान निर्दिष्ट था। कोठरीमें वद रहते हुए भी वे निर्जन कारावास नही भोग रहे थे, क्योकि एक-एक कमरेमें तीन-तीन थे। जेलके दूसरे भागमें और एक डिक्री थी, उसमें कुछ एक बडे कमरे थे, एक-एक कमरेमें बारह आदमीतक रह सकते थे। जिसके भाग्यमें यह डिक्री पडती वे अधिक सुखसे रहते। इस डिक्रीमें वहुत-से एक ही कमरेमें वद थे, वे रात-दिन बातचीत करनेका मौका और मनुष्य-ससर्ग पा सुखसे समय बिताते। तो भी, उनमें से एक इस सुखसे वचित थे। वह थे हेमचद्र दास। न जाने क्यो अधिकारियोको इनसे विशेष भय या इनपर क्रोध था, इतने लोगोमेंसे निर्जन कारावासकी यत्नणा भोगनेके लिए अधिकारियोने उन्हें ही चुना। हेमचद्रकी निजी धारणा थी कि पुलिस भरपूर चेष्टा करनेपर भी उनसे दोष स्वीकार न करा सकी इसीलिए था उनपर यह क्रोध। उन्हें इस डिक्रीके एक बहुत ही छोटे-से कमरेमें वद करके वाहरका दरवाजातक बद रखा जाता था। कह चुका हूँ कि यही थी इस विशेष सजाकी चरमावस्था। बीच-बीचमें पुलिस नाना जाति, नाना वर्ण, नाना आकृतियोंके साक्षी ला identification (शिनाख्त)के प्रहसनका नाटक कराती। उस समय हम सवको आफिसके आगे एक लवी कतारमें खडा किया जाता। जेलके अधिकारी हमारे साथ जेलके दूसरे-दूसरे मुकदमेके आसामियोको मिला उन्हें दिखाते थे। किन्तु यह था केवल नामके लिए। इन आसामियोमें शिक्षित और सज्जन तो एक भी नही था, जब उनके साथ एक ही पक्तिमें खडे होते तो दोनो तरहके आसामियोमें इतना भेद होता कि एक तरफ तो बम-केसके अभियुक्त लडकोका तेजस्वी, तीक्ष्णबुद्धि प्रकाशक चेहरेका भाव और गठन और दूसरी तरफ साधारण कैदियोकी मलिन पोशाक और निस्तेज मुखको देख जो यह न बता पाये कि कौन किस श्रेणीका है उन्हें मूर्ख तो क्या निकृष्ट मनुष्यबुद्धिसे भी रहित कहना होगा। यह शिनाख्तकी परेड आसामियोको अप्रिय नही लगती थी। इससे जेलके एकरस जीवनमें वैचित्र्य आता और आपसमें दो-एक वात कहनेका भी मौका मिल जाता। गिरफ्तारीके बाद पहली बार ऐसी एक परेडमें अपने भाई वारीन्द्रको देख पाया किंतु तब उसके साथ कोई बातचीत नही हुई। प्रायः नरेंद्रनाथ गोस्वामी ही मेरी बगलमें खड़े होते थे इसलिए उस समय उनके साथ बातचीत जरा ज्यादा हुई। गोसाई अतिशय सुन्दर, लंबे, गोरे, वलिष्ठ,

पुष्टकाय थे किन्तु उनकी आखोंसे कुवृत्ति झलकती थी, वातोंमें भी बुद्धिमत्ताका कोई लक्षण नही मिला। इस बारेमें उनमें और अन्य युवकोंमें विशेष अतर था। उनके चेहरेमें प्राय· ही उच्च और पवित्र भाव अधिक और बातचीतमें प्रखरबुद्धि, ज्ञानलिप्सा और महत् स्वार्थहीन आकाक्षाकी अभिव्यक्ति पाता। गोसाईंकी बात मूर्खतापूर्ण और लघुचेता मनुष्यकी बातकी तरह होते हुए भी तेज और साहससे पूर्ण थी। उन्हें उस समय पूरा विश्वास था कि वे बरी हो जायेंगे। वे कहा करते, "मेरे पिता मुकदमेमें पारगत है, पुलिस उन्हें कभी भी नही हरा सकेगी। मेरे इजहार भी मेरे विरुद्ध नही जायेंगे, क्योकि यह प्रमाणित हो जायगा कि पुलिसने मुझे शारीरिक यत्रणा देकर मेरे इजहार लिये है।" मैंने पूछा, "तुम तो पुलिसके हाथोमें थे। साक्षी कहा है?" अम्लानवदन गोसाईं बोले, "मेरे पिता सैकडो मुकदमे लडे है, वे अच्छी तरह सब समझते है। साक्षीका अभाव नही होगा।" ऐसे लोग ही बनते है approver—मुखबिर!

अबतक आसामियोकी अनर्थक असुविधा और नाना कष्टोकी बात कही है किन्तु यह भी कहना चाहिये कि सभी कुछ था जेलकी प्रणालीका दोष; जेलके ये सब कष्ट किसीकी व्यक्तिगत निष्ठुरता या मनुष्योचित गुणके अभावसे नही मिले। अलीपुर जेलके तो सभी अधिकारी अतिशय भद्र, दयावान् और न्यायपरायण थे। यदि किसी जेलमें कैदीकी यत्रणा कम हुई है, यूरोपीय जेल-प्रणालीकी अमानुषिक बर्बरता दया और न्यायपरायणतासे घटी है तो वह बुराईसे भलाई हुई है अलीपुर जेलमें और इमर्सन साहबके राजत्व में। इस भलाईके दो प्रधान कारण थे जेलके अगरेज सुपरिण्टेण्डेण्ट इमर्सन साहब और हस्पतालके असिस्टेण्ट बगाली डाक्टर वैद्यनाथ चटर्जीके असाधारण गुण। इनमेंसे एक थे यूरोपके लुप्तप्राय क्रिश्चियन आदर्शके अवतार और दूसरे हिन्दूधर्मके सारमर्म दया और परोपकारकी जीवत मूर्ति। इमर्सन साहब-जैसे अगरेज इस देशमें कहाँ आते है, विलायतमें भी कम ही मिलते है। एक क्रिश्चियन सज्जनमें जो गुण होने चाहियें वे सब उनमें एक साथ अवतीर्ण हुए थे। वे थे शातिप्रिय, विचारशील, दया-दाक्षिण्यमें अतुलनीय, न्यायवान् भद्र व्यवहारको छोड अधमके प्रति भी अभद्रता दिखलानेमें स्वभावसे अक्षम, सरल, अकपट, सयमी। दोष यही था कि कर्मकुशलता और उद्यमकी कमी थी, जेलरपर सारा कार्यभार छोड वे स्वय निश्चेष्ट रहते। मेरा ख्याल है कि इससे कोई बडी भारी क्षति नही हुई। जेलर योगेंद्र बाबू दक्ष और योग्य पुरुष थे, मधुमेहसे अतिशय पीडित होनेपर भी अपने-आप सब काम-काज

देखते और साहवका स्वभाव पहचानते थे इसलिए जेलमें न्यायनिष्ठा और क्रूरताके अभावकी रक्षा करते। किन्तु वे इमर्सन साहवकी तरह महात्मा नही थे, थे मात्र सामान्य वगाली सरकारी नौकर, साहवको खुश करना जानते थे, दक्षता और कर्तव्यवुद्धिके साथ काम करते, स्वाभाविक भद्रता और शातभावसे लोगोंके साथ व्यवहार करते, इसके अतिरिक्त और कोई विशेप गुण उनमें नही देखा। नौकरीसे प्रवल मोह था। विशेषकर तब मईका महीना था, पैंशन पानेका समय पास ही आ गया था, जनवरीमें पैंशन ले दीर्घ परिश्रमोपार्जित विश्रामका सुख लूटनेकी आशा वधी थी। अलीपुर वम-केसके आसामियोका आविर्भाव देख हमारे जेलर महाशय अत्यत भीत और चिंतित हो उठे थे। ये उग्र-स्वभाव तेजस्वी वंगाली लडके किस दिन क्या काण्ड कर वैठें इसी चितासे वे उद्विग्न रहते। वे कहा करते, ताड-गाछपर केवल डेढ इच चढ़ना वाकी है। किंतु उस डेढ इचका केवल आधा ही वे चढ पाये थे। अगस्तके अन्तमें वोकानन साहव जेलका पर्यवेक्षण कर संतुष्ट हुए। जेलर महाशय आनंदित हो वोले, "मेरे कार्य-अवधिमें साहवका यह अतिम आगमन था, अब पैंशनका डर नही।" हाय री मनुष्यकी अंधता! कविने ठीक ही कहा है, विधाताने दु.खी मनुष्यके दो परम उपकार किये हैं। पहला, भविष्यको निविड़ अधकारसे ढक रखा है, दूसरा, उसका एकमात्र अवलवन और सान्त्वना—अंधी आशा उसे दी है। उनके कहनेके चार-पाँच दिन बाद ही नरेन गोसाईं कानाईके हाथो मारे गये, वोकाननका बार-बार जेलमें आना शुरु हुआ। फलस्वरूप योगेंद्र वावूकी असमय ही नौकरी छूट गयी और शोक और रोगके मिलित आक्रमणसे देह भी छूट गयी। ऐसे कर्मचारीपर सपूर्ण भार न छोड इमर्सन साहव स्वय यदि सव कार्य देखते तो उनके राजमें अलीपुर जेलके अधिक सुधार और उन्नतिकी संभावना थी। वे जितना देखते उसे सुसंपन्न भी करते, उनके चरित्रगत गुणसे ही जेल नरक न वन मनुष्यको कठोर दंड देनेका स्थान-भर बनकर रह गया था। उनकी वदली हो जानेपर भी उनकी साधुताका फल पूरी तरह मिट नही गया, अवतक भी परवर्ती कर्मचारी उनकी साधुता दस आना बचाये रखनेको वाध्य हैं।

जैसे जेलके अन्यान्य विभागोमें वगाली योगेन वावू कर्ता-धर्ता थे वैसे ही हस्पतालके सर्वेसर्वा थे बगाली डाक्टर बैद्यनाथ वावू। उनके उच्च

अधिकारी डा० हैली, इमर्सन साहबकी तरह दयावान् न होते हुए भी अत्यत सज्जन और विचक्षण व्यक्ति थे। वे लड़कोका शात आचरण, प्रफुल्लता और वाध्यता देख भूरि-भूरि प्रशसा करते और अल्पवयस्कोंके साथ हसी-मजाक और दूसरे आसामियोके साथ राजनीति, धर्म और दर्शनविषयक चर्चा करते। डाक्टर साहब थे आयरिश वशजात, उस उदार और भाव-प्रवण जातिके अनेक गुण उनमें साकार हुए थे। उनमें क्रूरता रत्ती-भर भी नही थी, कभी-कभी क्रोधके वशीभूत हो कोई कडी बात या कठोर आचरण कर बैठते लेकिन प्रायः ही उपकार करना उन्हें प्रिय था। वे जेलके कैदियोकी चालाकी और कृत्रिम रोगोको देखनेके अभ्यस्त थे; किंतु ऐसा भी होता कि असली रोगीकी भी कृत्रिमताके सदेहमें उपेक्षा कर देते थे, तो भी, सच्ची बीमारीका पता लगनेपर बहुत ही यत्नसे और दयापूर्वक रोगीकी व्यवस्था करते। मुझे एक बार हल्का बुखार आया। उस समय थी वर्षाऋतु। अनेक वातायनयुक्त विशाल दालानमें जलसिक्त मुक्त पवन अठखेलिया करता, फिर भी मैं हस्पताल जाना या दवा खाना नही चाहता था। रोग और चिकित्साके सबधमें मेरे विचार बदल गये थे, औषधि-सेवनमें अब ज्यादा आस्था नही रह गयी थी, मुझे विश्वास था कि रोग कठिन न हो तो प्रकृतिकी साधारण क्रियासे ही स्वास्थ्यलाभ होगा। बरसाती हवाके स्पर्शसे जो अनिष्ट सभव है उसका योगबलसे दमन कर योगशिक्षागत सारी क्रियाओका याथार्थ्य और साफल्य अपनी तर्कबुद्धिके सामने प्रतिपादन करनेकी इच्छा थी। किंतु डाक्टर साहब मेरे लिए महा चिंतित थे, बडे आग्रहके साथ उन्होने मुझे हस्पताल जानेकी आवश्यकता समझायी। हस्पताल जानेपर जितना हो सका उन्होने घरकी तरह रहने-खानेकी व्यवस्था कर मुझे सौजन्यसे रखा। वर्षामें जेल-वार्डमें रहनेसे मेरा स्वास्थ्य खराब न हो इस कारण वे मुझे ज्यादा दिन यहाँ सुखसे रखना चाहते थे। किंतु मैं जबरदस्ती वार्डमें लौट आया, हस्पतालमे और अधिक रहनेको सहमत नही हुआ। सबपर उनका समान अनुग्रह नही था। खासकर जो पुष्टशरीर और बलवान् थे उन्हें बीमारी होते हुए भी हस्पतालमें रखनेसे डरते थे। उनकी यह भ्रांत धारणा थी कि यदि जेल-में कोई भी काण्ड घटता है तो वह इन सबल और चचल लडकोद्वारा होगा। अतत. ठीक इसका विपरीत फल हुआ, हस्पतालमें जो काण्ड घटा वह घटा व्याधिग्रस्त, विशीर्ण, शुष्ककाय सत्येंद्रनाथ वसु और रोग-क्लिष्ट, धीरप्रकृति, अल्प-भाषी कानाईलालद्वारा। डाक्टर हैलीमें ये सब गुण होते हुए भी वैद्यनाथ बाबू ही थे उनके अधिकाश सत्कार्योंके

प्रवर्तक और प्रेरणादायक। सचमुच वैद्यनाथ बाबूके समान हृदयवान् मनुष्य मैंने न पहले कभी देखा और न बादमें ही दीखनेकी आशा है, उन्होने मानो दया और उपकार करनेके लिए ही जन्म लिया था। किसी भी दु खगाथासे अवगत होना और उसे हल्का करनेको तत्काल दौड़ना ही उनके चरित्रका स्वाभाविक कारण और अवश्यभावी कार्य बन गया था जैसे। वे इस यन्त्रणापूर्ण दु खालयमें मानो नरकके प्राणियोको स्वर्गका सयत्न-सचित नदनवारि वितरण करते। किसी भी अभाव, अन्याय या अनर्थक कष्टमोचनका श्रेष्ठ उपाय था उसे डाक्टर बाबूके कानोतक पहुँचा देना। उसे दूर करना यदि उनके बसका होता तो वैसी व्यवस्था करनेसे नही चूकते थे। वैद्यनाथ बाबू हृदयमें गभीर देशभक्ति सजोये थे लेकिन सरकारी नौकर होनेके कारण प्राणोकी उस भावनाको चरितार्थ करनेमें अक्षम थे। उनका एकमात्र दोष था जरूरतसे ज्यादा सहानुभूति। किन्तु वह भाव जेलके अधिकारीके लिए दोष होते हुए भी उच्च नीतिके अनुसार मनुष्यत्वका चरम विकास और भगवान्का प्रियतम गुण कहलाता है। उनके लिए साधारण कैदियो और "वदे मातरम्"के कैदियोमें कोई भेद नही था; पीडित देखते ही सभीको सयत्न हस्पतालमें रखते और पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्यलाभ हुए बिना छोड़ना नही चाहते थे। यह दोष ही था उनके बरखास्त किये जानेका असली कारण। गोसाईंकी हत्याके बाद अधिकारियोने उनके इस आचरणपर सदेह कर उन्हें अन्यायपूर्वक कर्मच्युत किया।

इन सब अधिकारियोकी दया और मनुष्योचित स्वभावका वर्णन करनेका विशेष अभिप्राय है। जेलमें हमारे लिए जो व्यवस्था की गयी थी, पहले उसकी आलोचना करनेको बाध्य हुआ था और उसके बाद भी ब्रिटिश जेलप्रणालीकी अमानुषिक निष्ठुरता सिद्ध करनेकी चेष्टा करूँगा। बादमें कोई भी पाठक इस निष्ठुरताको कर्मचारियोंके चरित्रका कुफल न मान लें इसीलिए किया है मुख्य कर्मचारियोंके गुणोका बखान। कारावासकी प्रथम अवस्थाके विवरणमें उनके इन सब गुणोंके और भी प्रमाण मिलेंगे।

निर्जन कारावासमें पहले दिनकी मानसिक अवस्थाका वर्णन कर चुका हूँ। इस निर्जन कारावासमें समय बितानेके लिए पुस्तक या दूसरी कोई वस्तुके बिना कुछ दिन रहना पड़ा था। बादमें इमर्सन साहब मुझे घरसे धोती, कुर्ता और पढनेको किताबें मगवानेकी अनुमति दे गये। मैंने कर्मचारियोंसे कलम, दवात और चिट्ठिके लिए जेलके छपे कागज मगवा अपने पूजनीय मौसा, 'सजीवनी'के सुप्रसिद्ध सपादकको धोती, कुर्ता और पढने-

की किताबोमें गीता और उपनिषद् भेजनेका अनुरोध किया। इन दो पुस्तकोको मुझतक पहुचनेमें दो-चार दिन लगे। तबतक निर्जन कारावास-का महत्व समझनेका यथेष्ट अवसर मिला। यह भी जाना कि ऐसे कारा-वासमें दृढ और सुप्रतिष्ठित बुद्धि भी नष्ट होती है और जल्द ही उन्मादा-वस्थाको पहुँच जाती है और इसी अवस्थामें भगवान्की असीम दया और उनके साथ युक्त होनेका कितना दुर्लभ सुअवसर है यह भी हृदयगम हुआ। कारावाससे पहले मुझे एक घटा सवेरे और एक घटा शामको ध्यान करने-का अभ्यास था। इस निर्जन कारावासमें और कोई काम न होनेसे ज्यादा देर ध्यानावस्थित रहनेकी चेष्टा की। किन्तु मनुष्यके सहस्रो दिशाओकी ओर भागनेवाले चचल मनको ध्यानार्थ यथेष्ट सयत और एक लक्ष्यमुखी रखना अनभ्यस्त मनुष्यके लिए सहज नही। किसी तरह डेढ-दो घटे एक-मन हो रह पाता, फिर मन विद्रोही हो उठता, देह भी अवसन्न हो पड जाती। पहले नाना विचारोमें व्यस्त रहता था। बादमें मनुष्यकी उस आलापरहित चिंतनकी विषयशून्य असहनीय अकर्मण्यतासे मन धीरे-धीरे चिंतनशक्ति-रहित होने लगा। ऐसी अवस्था होने लगी मानो सहस्र अस्पष्ट विचार मनके सब द्वारोंके चारो ओर चक्कर काट रहे हैं किंतु प्रवेश-पथ निरुद्ध है; दो-एक प्रवेश करनेमें समर्थ होनेपर भी उस निस्तब्ध मनोराज्यकी नीरवतासे भयभीत हो नि.शब्द भाग खडे होते। इस अनि-श्चित अवश अवस्थासे अतिशय मानसिक कष्ट पाने लगा। प्रकृतिकी शोभासे चित्तवृत्ति स्निग्ध होने और तप्त मनको सात्वना मिलनेकी आशासे बाहरकी ओर निहारा, किंतु उसी एकमात्र वृक्ष, नीलाकाशके परिमित टुकडे और जेलके उसी नीरस दृश्यसे मनुष्यका ऐसी अवस्थाप्राप्त मन भला कितनी देर सात्वना पा सकता है? दीवारोकी ओर ताका, जेलकी कोठरी-की उस निर्जीव सफेद दीवारके दर्शनसे मन जैसे और भी अधिक निरुपाय हो केवल वद्धावस्थाकी यंत्रणा ही उपलब्ध कर मस्तिष्कके पिंजरेमें छटपटाने लगा। फिरसे ध्यान करने बैठा, किसी भी तरह ध्यान न कर सका वरन् उस तीव्र विफल चेष्टासे मन और भी श्रात, अकर्मण्य और दग्ध होने लगा। चारो ओर नजर दौडायी, अतत: जमीनपर कुछ बड़ी-बडी काली चीटियो-को विवरके पास घूमते-फिरते देखा, उनकी गतिविधि, चेष्टा और चरित्र-का निरीक्षण करते-करते समय कट गया। उसके बाद देखता हूँ कि छोटी-छोटी लाल चीटिया भी चल-फिर रही हैं। काली और लालमें बडा झगडा, काली चीटियाँ लालको देख काट-काटकर उन्हें मार डालने लगी।

अत्याचारसे पीडित लाल चीटियोपर बड़ी दया और सहानुभूति उपजी। मैं काली चीटियोको भगा उन्हें बचाने लगा। इससे एक काम जुटा, सोचने-का विषय भी मिला, चीटियोकी सहायतासे ये कुछ दिन कट गये। फिर भी दीर्घ दिनार्द्ध बितानेका कोई उपाय नही जुटता था। मनको समझाया, जबरदस्ती विचारोको खीच लाया किंतु दिन प्रतिदिन मन विद्रोही होने लगा, हाहाकार करने लगा। काल मानो उसपर असह्य भार बन पीड़ा पहुचा रहा हो, उस चापसे चूर्ण हो हाफनेतक की शक्ति वह नही पा रहा था, मानो स्वप्नमें शत्रुद्वारा आक्रात व्यक्ति गला घोटनेसे मरा जा रहा हो एवं हाथ-पैर होते हुए भी हिलने-डुलनेकी शक्ति न हो। यह अवस्था देख मैं आश्चर्य चकित रह गया। सच है कि मुझे अकर्मण्य और निश्चेष्ट रहना कभी नही रुचा, फिर भी कितनी ही बार एकाकी रह चिंतन-मननमें समय गुजारा है, अब मनमें ऐसी क्या दुर्बलता आ गयी है कि थोडे दिनके इस एकातसे आकुल हो उठा हूँ। सोचने लगा कि शायद उस स्वेच्छाप्राप्त एकांत और इस परेच्छाप्राप्त एकातमें प्रभेद है। घरमें रहते हुए एकाकी रहना एक बात है और परेच्छावश कारागृहमें यह निर्जनवास बिल्कुल दूसरी बात। वहाँ, जब चाहूँ मनुष्यका आश्रय ले सकता हूँ, पुस्तकगत ज्ञान और भाषा-लालित्यमें, बंधु-बांधवोके प्रिय संभाषणमें, रास्तेके कोलाहलमें, जगत्के विविध दृश्योमें मनकी तृप्तिका साधन पा प्राणोको शीतल कर सकता हूँ। किंतु यहाँ कठोर नियमोमें आबद्ध हो परेच्छासे सब ससर्गोसे रहित हो रहना होगा। कहते है, जो निर्जनता सह सकता है वह या तो देवता है या पशु, मनुष्यके लिए यह सयम है साध्यातीत। पहले इस बातमें विश्वास नही कर पाता था, अब समझा कि सचमुच योगाभ्यस्त साधकोंके लिए भी यह सयम सहजसाध्य नही। याद हो आया इतालवी राजहत्यारे ब्रशीका भयकर अत। उनके निष्ठुर न्यायधीशोने उन्हे प्राण-दण्ड न दे सात सालके निर्जन कारावासकी सजा दी थी। एक साल बीतते-न-बीतते ब्रशी पागल हो गया। तो भी इतने दिन तो सहा! मेरे मनकी दृढता क्या इतनी कम है? उस समय नही समझ सका था कि भगवान् मेरे साथ खेल रहे है, खेल-खेलमें कुछ आवश्यक शिक्षाएँ दे रहे है। मनकी कैसी अवस्थामें निर्जन कारावासके कैदी पागलपनकी ओर दौड़ते है, उन्होने यह दिखा, कारावासकी ऐसी अमानुषिक निष्ठुरता समझा मुझे यूरोपीय जेल-प्रणालीका घोर विरोधी बना दिया, जिससे मैं यथाशक्ति देशवासियो और जगत्को इस बर्बरतासे मोड़ दयानुमोदित जेल-प्रणालीका पक्षपाती बनानेकी चेष्टा करूँ, यह थी उनकी पहली शिक्षा। याद आता

है, पन्द्रह साल पहले विलायतसे स्वदेश लौटकर जब मैंने बंबईसे प्रकाशित 'इदु प्रकाश' पत्रिकामें कांग्रेसकी निवेदन-नीतिके विरुद्ध तीव्र आलोचनात्मक प्रवंध लिखने शुरू किए थे तो स्वर्गीय महादेव गोविंद रानाडेने युवकोंके मनपर इन प्रबधोका प्रभाव पडते देख उन्हें वंद करनेके उद्देश्यसे, जैसे ही मैं उनसे मिलने गया, मुझे आधे घटेतक इस कामको छोड़ कांग्रेसका दूसरा कोई भी कार्यभार ग्रहण करनेका उपदेश दिया। उनकी इच्छा मुझे जेल-प्रणाली-सुधारका कार्य देनेकी थी। रानाडेकी इस अप्रत्याशित उक्तिसे मैं आश्चर्यचकित और असतुष्ट हुआ था और उस कार्यभारको अस्वीकार किया था। तव नही जानता था कि यह है सुदूर भविष्यका पूर्वाभास-मात्र और एक दिन स्वय भगवान् मुझे जेलमें एक साल रखकर इस प्रणाली-की क्रूरता और व्यर्थता एव सुधारकी आवश्यकता दिखायेंगे। अव समझा कि आजकी राजनीतिक अवस्थामें इस जेल-प्रणालीके सुधारकी सभावना नही, फिर भी, जेलमें बैठे-बैठे, अपनी अतरात्माको साक्षी वना, उसका प्रचार करने और उसके सबधमें युक्ति-तर्क देनेकी प्रतिज्ञा की जिससे स्वाधीन भारतमें विदेशी सभ्यताका यह नारकीय अश चिपका न रहे। भगवान्‌की दूसरी अभिसधि थी मेरे मनकी इस दुर्वलताको मनके आगे रख हमेशाके लिए विनष्ट करना। जो योगावस्थाके प्रार्थी हैं उनके लिए जनता और निर्जनता समान होनी उचित हैं। वास्तवमें वहुत थोडे ही दिनोंमें यह दुर्वलता झड गयी, अब लगता है कि वीस साल अकेले रहनेपर भी मन चचल नही होगा। मंगलमय अमगलद्वारा भी परम मगल साधते हैं। तीसरी अभिसधि थी मुझे यह शिक्षा देना कि मेरे योगाभ्यासमें स्व-चेष्टासे कुछ नही होगा, श्रद्धा और सपूर्ण आत्मसमर्पण ही है सिद्धि पानेका पथ; भगवान् प्रसन्न हो स्वय जो शक्ति, सिद्धि या आनद देंगे उसे ही ग्रहण कर उनके कार्यमें लगाना ही होगा मेरी योगस्पृहाका एकमात्र उद्देश्य। जिस दिनसे अज्ञानका प्रगाढ अधकार छंटने लगा, उसी दिनसे मैं जगत्‌की सब घटनाओंका निरीक्षण करते-करते मगलमय श्रीहरिके आश्चर्यमय अनत मंगल स्वरूपकी उपलब्धि कर रहा हूँ। ऐसी कोई घटना नही—चाहे वह घटना महान् हो या छोटीसे भी छोटी—जिसके द्वारा कोई मगल सपन्न नही होता। प्राय. वे एक कार्यद्वारा दो-चार उद्देश्य सिद्ध करते हैं। हम जगत्‌में वहुत वार अधशक्तिकी लीला देखते हैं, अपव्यय ही प्रकृतिका नियम है—कहकर भगवान्‌की सर्वज्ञताको अस्वीकार कर ईश्वरीय वुद्धिको दोपी ठहराते हैं। यह अभियोग निर्मूल है। ईश्वरीय शक्ति कभी भी अंध-भावसे कार्य नही करती, वूंद-भर भी उनकी शक्तिका अपव्यय नही हो

सकता वरन् वे ऐसे सयत तरीकेसे अल्प व्ययद्वारा प्रचुर फल उत्पादित करते हैं कि मनुष्य कल्पना भी नही कर सकता।

इस तरह मनकी निश्चेष्टतासे पीडित हो कुछ दिन कष्टसे समय काटा। एक दिन अपराह्नको कुछ सोच रहा था, विचार उमड़ने लगे, सारे विचार इतने असयत और असंलग्न होनें लगे कि मैं समझ गया कि विचारोपर बुद्धिकी निग्रहशक्ति लुप्त हो चली है। उसके वाद जव प्रकृतिस्थ हुआ तो देखा कि वुद्धिकी निग्रह-शक्ति लुप्त होनेपर भी स्वय वुद्धि लुप्त या पलभरको भी नष्ट नही हुई, वरन् शातभावसे मनकी इस अपूर्व क्रियाका जैसे निरीक्षण कर रही थी। किंतु तव मैं उन्मत्तताके भयसे त्रस्त हो इस ओर ध्यान नही दे पाया। प्राणपनसे भगवान्‌को पुकारा, अपने बुद्धि-भ्रशके निवारणके लिए कहा। उसी क्षण मेरे संपूर्ण अतःकरणमें हठात् ऐसी शीतलता व्यापने लगी, उत्तप्त मन ऐसा स्निग्ध, प्रसन्न और परम सुखी हो उठा कि जीवनमें पहले कभी इतनी सुखमय अवस्था अनुभव नही कर सका था। जैसे शिशु मातृअकमें आश्वस्त और निर्भीक हो सोया रहता है मैं भी मानो विश्वजननीकी गोदमें उसी तरह सोया रहा। इसी दिनसे मेरा कारावासका कष्ट खतम हो गया। इसके वाद कई वार वद्धावस्थाकी अशाति, निर्जन कारावास और कर्महीनतासे मनकी उद्विग्नता, शारीरिक क्लेश या व्याधि, योगान्तर्गत कातर अवस्थाएँ आयी किंतु उस दिन भगवान्‌ने एक पलमें अतरात्मामें ऐसी शक्ति भर दी कि ये सब दुख मनपर छाने और मनपरसे हट जानेके बाद कोई दाग या चिह्न न छोड़ पाते, दु.खमें ही वल और आनद अनुभव कर वुद्धि मनके दु खोका प्रत्याख्यान करनेमें समर्थ होती। पद्मपत्रपर जलबिंदुवत् महसूस होता वह दुःख। उसके बाद जव पुस्तकें आयी तो उनकी आवश्यकता वहुत कम रह गयी थी। पुस्तकें न आनेपर भी अव मैं रह सकता था। यद्यपि इन प्रवधोका उद्देश्य अपने आतरिक जीवनका इतिहास लिखना नही फिर भी इस घटनाका उल्लेख किए बिना न रह सका। वादमें, दीर्घकालीन निर्जन कारावासमें क्योकर आनदपूर्वक रहना सभव हुआ वह इस घटनासे समझा जा सकेगा। इसी हेतु भगवान्‌ने वैसी अवस्था रची। उन्होने पागल न वना निर्जन कारावासमें पागल हो जानेकी क्रमिक प्रक्रियाका मेरे मनमें अभिनय करा बुद्धिको उस नाटकके अविचलित दर्शकके रूपमें बिठाये रखा। उससे मुझे शक्ति मिली, मनुष्यकी निष्ठुरताके कारण अत्याचार-पीडित व्यक्तियोके प्रति दया और सहानुभूति बढी और प्रार्थनाकी असाधारण शक्ति व सफलता हृदयङ्गम की।

मेरे निर्जन कारावासके समय डाक्टर डैली और सहकारी सुपरिंटेंडेंट साहब प्रायः हर रोज मेरे कमरेमें आ दो-चार बातें कर जाते। पता नही क्यों, मै शुरूसे ही उनका विशेष अनुग्रह और सहानुभूति पा सका था। मै उनके साथ कोई विशेष बात न करता, वे जो पूछते उसका उत्तर-भर दे देता। वे जो विषय उठाते वह या तो चुपचाप सुनता या केवल दो-एक सामान्य बात कह चुप हो जाता। तथापि वे मेरे पास आना न छोड़ते। एक दिन डैली साहबने मुझसे कहा कि मैंने सहकारी सुपरिंटेंडेंटको कहकर बड़े साहबको मना लिया है कि तुम प्रतिदिन सवेरे-शाम डिक्रीके सामने टहल सकोगे। तुम सारा दिन एक छोटी-सी कोठरीमें बद रहो यह मुझे अच्छा नही लगता इससे मन खराब होता है और शरीर भी। उस दिनसे मै सवेरे-शाम डिक्रीके आगे खुली जगहमें घूमने लगा। शामको दस, पद्रह, बीस मिनट घूमता लेकिन सवेरे एक घटा, किसी-किसी दिन दो घटेतक बाहर रहता, समयकी कोई पाबदी नही थी। यह समय बहुत अच्छा लगता। एक तरफ जेलका कारखाना, दूसरी तरफ गोहालघर—मेरे स्वाधीन राज्यकी दो सीमाएँ। कारखानेसे गोहालघर, गोहालघरसे कारखानेतक घूमते-घूमते या तो उपनिषद्के गभीर, भावोद्दीपक, अक्षय शक्तिदायक मत्रोकी आवृत्ति करता या फिर कैदियोका कार्यकलाप और यातायात देख 'सर्वघटमें नारायण हैं' इस मूल सत्यको उपलब्ध करनेकी चेष्टा करता। वृक्ष, गृह, प्राचीर, मनुष्य, पशु, पक्षी, धातु और मिट्टीमें, सर्वभूतोमें 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मत्रका मन-ही-मन उच्चारण कर इस उपलब्धिको आरोपित करता। यह करते-करते ऐसा भाव हो जाता कि कारागार और कारागार न लगता। वह उच्च प्राचीर, वह लौह कपाट, वह सफेद दीवार, वह सूर्य-रश्मि-दीप्त नील-पत्र-शोभित वृक्ष, छोटा-मोटा सामान मानो अब अचेतन नही रहा, सर्वव्यापी, चैतन्य-पूर्ण हो सजीव हो उठा, ऐसा लगता कि वे मुझसे स्नेह करते है, मुझे आलिंगनमें भर लेना चाहते है। मनुष्य, गौ, चीटी और विहंग चल रहे हैं, उड़ रहे है, गा रहे है, बातें कर रहे हैं, पर है यह सब प्रकृतिकी क्रीडा; भीतर एक महान् निर्मल, निर्लिप्त आत्मा शातिमय आनदमें निमग्न हो विराजमान है। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता मानो भगवान् उस वृक्षके नीचे खड़े आनदकी वशी बजा रहे है, और उस माधुर्यसे मेरा हृदय मोहे ले रहे है। सदा यह अहसास होने लगा कि कोई मुझे आलिंगनमें भर रहा है, कोई मुझे गोदमें लिये हुए है। इस भावस्फुटनसे मेरे सारे मन-प्राणको अधिकृत कर एक निर्मल महती शान्ति विराजने लगी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। प्राणोका कठिन

आवरण खुल गया और सभी जीवोपर प्रेमका स्रोत उमड़ पडा। प्रेमके साथ दया, करुणा, अहिंसा इत्यादि सात्त्विक भाव मेरे रज प्रधान स्वभावको अभिभूत कर और अधिक पनपने लगे। और जैसे-जैसे वे बढने लगे वैसे-वैसे आनंद भी बढा एव निर्मल शातिभाव गभीर हुआ। मुकदमेकी दुश्चिता पहले ही दूर हो गयी थी, अब उससे उल्टा विचार मनमें आया। भगवान् मगलमय है, मेरे मगलके लिए ही मुझे कारागृहमें लाये है, कारामुक्ति और अभियोग-खण्डन अवश्य ही होगा यह दृढ़ विश्वास जम गया। इसके बाद बहुत दिनतक मुझे जेलमें कोई भी कष्ट भोगना नही पड़ा।

इस अवस्थाको घनीभूत होनेमे कुछ दिन लगे, इसी बीच मजिस्ट्रेटकी अदालतमें मुकदमा शुरू हुआ। निर्जन कारावासकी नीरवतासे हठात् बाह्य जगत्के कोलाहलमें लाये जानेपर शुरू-शुरूमें मन बडा विचलित हुआ, साधनाका धैर्य टूट गया और पाँच-पाँच घटेतक मुकदमेके नीरस और विरक्ति-कर बयान सुननेको मन किसी भी तरह राजी नही हुआ। पहले अदालतमें बैठ साधना करनेकी चेष्टा करता, लेकिन अनभ्यस्त मन प्रत्येक शब्द और दृश्यकी ओर खिच जाता, शोरगुलमें वह चेष्टा व्यर्थ चली जाती, बादमें भावपरिवर्तन हुआ, समीपवर्ती शब्द और दृश्य मनसे बाहर ठेल सारी चिंतन-शक्तिको अतर्मुखी करनेकी शक्ति जनमी, किंतु यह मुकदमेकी प्रथम अवस्थामें नही हुआ, तब ध्यान-धारणाकी प्रकृत क्षमता नही थी। इसीलिए यह वृथा चेष्टा त्याग बीच-बीचमें सर्वभूतोमें ईश्वरके दर्शन कर संतुष्ट रहता, बाकी समय विपत्तिके साथियोको बातो और उनके कार्य-कलापपर ध्यान देता, दूसरा कुछ सोचता, या कभी नॉर्टन साहबकी श्रवण-योग्य बात या गवाहोकी गवाही भी सुनता। देखता कि निर्जन कारागृहमें समय काटना जितना सहज और सुखकर हो उठा है, जनताके बीच और इस गुरुतर मुकदमेके जीवन-मरणके खेलके बीच समय काटना उतना सहज नही। अभियुक्त लड़कोका हंसी-मजाक और आमोद-प्रमोद सुनना और देखना बड़ा अच्छा लगता, नही तो अदालतका समय केवल विरक्तिकर ही महसूस होता। साढे चार बजे कैदियोकी गाडीमें बैठ सानंद जेल लौट आता।

पद्रह-सोलह दिनकी बदी अवस्थाके बाद स्वाधीन मनुष्य-जीवनका संसर्ग और एक-दूसरेका मुख देख दूसरे कैदी अत्यत आनदित हुए। गाडीमें चढते ही उनकी हसी और बातोका फव्वारा फूट पडता और जो दस मिनट उन्हें गाड़ीमें मिलते थे उसमें पल-भरको भी वह स्रोत न थमता। पहले दिन हमें खूब सम्मानके साथ अदालत ले गये। हमारे साथ ही थी यूरोपियन

सार्जेंटोकी छोटी पलटन और उनके साथ थी गोली भरी पिस्तौलें। गाड़ीमे चढ़ते समय सशस्त्र पुलिसकी एक टुकडी हमें घेरे रहती और गाडीके पीछे परेड करती, उतरते समय भी यही आयोजन था। इस साज-सज्जाको देख किसी-किसी अनभिज्ञ दर्शकने निश्चय ही यह सोचा होगा कि ये हास्य-प्रिय अल्पवयस्क लडके न जाने कितने दु साहसी विख्यात महायोद्धाओका दल है। न जाने उनके प्राणो और शरीरमें कितना साहस और बल है जो खाली हाथ सौ पुलिस और गोरोकी दुर्भेद्य प्राचीर भेद पलायन करनेमें सक्षम है। इसीलिए शायद उन्हें इतने सम्मानके साथ इस तरह ले गये। कुछ दिन यह ठाठ चला, फिर क्रमश कम होने लगा, अतमें दो-चार सार्जेंट हमें ले जाते और ले आते। उतरते समय वे ज्यादा ख्याल नही करते थे कि हम कैसे जेलमें घुसते हैं, हम मानो स्वाधीन भावसे घूम-फिरकर घर लौट रहे हो, उसी तरह जेलमें घुसते। ऐसी असावधानी और शिथिलता देख पुलिस कमिश्नर साहब और कुछ सुपरिटेंडेंट क्रुद्ध हो बोले, "पहले दिन पचीस-तीस सार्जेंटोकी व्यवस्था की थी, आजकल देखता हूँ चार-पाच भी नही आते।" वे सार्जेंटोकी भर्त्सना करते और रक्षण-निरीक्षणकी कठोर व्यवस्था करते, उसके बाद दो-एक दिन और दो सार्जेंट आते और फिर वही पहले जैसी शिथिलता आरभ हो जाती। सार्जेंटोने देखा कि बम-भक्त बडे निरीह और शात लोग है, पलायनमें उनका कोई प्रयास नही, किसीपर आक्रमण करने या हत्या करनेकी भी मशा नही, उन्होने सोचा कि हम क्यो अमूल्य समय इस विरक्तिकर कार्यमें नष्ट करें। पहले अदालतमें घुसते और निकलते समय हमारी तलाशी लेते थे, उससे सार्जेंटोके कोमल करस्पर्शका -सुख अनुभव करते, इसके अलावा इस तलाशीसे किसीके लाभ या क्षतिकी सभावना नही थी। स्पष्ट था कि इस तलाशीकी आवश्यकतामें हमारे रक्षकोकी गभीर अनास्था है। दो-चार दिन बाद यह भी बद हो गयी। हम अदालतमें किताब, रोटी-चीनी जो इच्छा हो निर्विघ्न ले जाते। पहले-पहल छिपाकर, बादमें खुलेआम। हम बम या पिस्तौल चलायेंगे, उनका यह विश्वास शीघ्र ही उठ गया। किंतु मैंने देखा कि एक भय सार्जेंटोके मनसे नही गया। कौन जाने किसके मनमें कब मजिस्ट्रेट साहबके महिमान्वित मस्तकपर जूते फेंकनेकी बदनीयत पैदा हो जाय, ऐसा हुआ तो सर्वनाश। अत जूते भीतर ले जाना विशेषतया निषिद्ध था, और उस विषयमें सार्जेंट हमेशा सतर्क रहते। और किसी तरहकी सावधानताके प्रति आग्रह नही देखा।

मुकदमेका स्वरूप कुछ विचित्र था। मजिस्ट्रेट, परामर्शदाता, साक्षी, साक्ष्य exhibits (साक्ष्य-सामग्री), आसामी सभी विचित्र। दिन-पर-दिन उन्ही गवाहों और exhibits का अविराम प्रवाह, उसी परामर्शदाताका नाटकोचित अभिनय, उसी बालक-स्वभाव मजिस्ट्रेटकी बालकोचित चपलता और लघुता इस अपूर्व दृश्यको देखते-देखते बहुत बार मनमें यह कल्पना उठती कि हम ब्रिटिश विचारालयमें न बैठ किसी नाटकगृहके रगमचपर या किसी कल्पनापूर्ण औपन्यासिक राज्यमें बैठे हैं। अब उस राज्यके सब विचित्र जीवोका सक्षिप्त वर्णन करता हूँ।

इस नाटकके प्रधान अभिनेता थे सरकार बहादुरके परामर्शदाता नॉर्टन साहब। प्रधान अभिनेता ही क्यो इस नाटकके रचयिता, सूत्रधार (stage manager) और साक्षी-स्मारक (prompter) भी थे,—ऐसी वैचित्र्यमयी प्रतिभा जगत्में विरल है। परामर्शदाता नॉर्टन थे मद्रासी साहब, इसीलिए शायद थे बगाली बैरिस्टर मंडलीकी प्रचलित नीति और भद्रतासे अनभ्यस्त एव अनभिज्ञ। वे कभी राष्ट्रीय महासभाके नेता रहे थे, शायद इसीलिए विरोध और प्रतिवाद सह नही सकते थे और विरोधीको शासित करनेके आदी थे। ऐसी प्रकृतिको लोग कहते हैं हिंस्रस्वभाव। नॉर्टन साहब कभी मद्रास कॉरपोरेशनके सिंह रहे कि नही, नही कह सकता पर हाँ, अलीपुर कोर्टके सिंह तो थे ही। उनकी कानूनी अभिज्ञताकी पैठपर मुग्ध होना कठिन है—वह थी मानो ग्रीष्मकालकी शीत। किंतु वक्तृताके अनर्गल प्रवाह में, कथन-शैलीमें, बातकी चोटसे राईको पहाड बनानेकी अद्भुत क्षमतामें, निराधार या कुछ आधार लिए हुए कथनोको कहनेकी दु.साहसिकतामें, साक्षी और जूनियर बैरिस्टरकी भर्त्सनामें और सफेदको काला करनेकी मनमोहिनी शक्तिमें नॉर्टन साहबकी अतुलनीय प्रतिभा देख मुग्ध होना ही पड़ता था। श्रेष्ठ परामर्शदाताओकी तीन श्रेणियां हैं—जो कानूनके पाडित्यसे और यथार्थ व्याख्या और सूक्ष्म विश्लेषणसे जजके मनमें प्रतीति जनमा सकते हैं; जो चतुराईके साथ साक्षीसे सच्ची बात उगलवा और मुकदमे-सबधी घटनाओ और विवेच्य विषयका दक्षताके साथ प्रदर्शन कर जज या जूरीका मन अपनी ओर आकर्पित कर सकते हैं; और, जो ऊची आवाजसे, धमकियोंसे, वक्तृताके प्रवाहसे साक्षीको हतबुद्धि कर, मुकदमेके विषयको चमत्कारी ढंगसे तोड-मरोड़, गलेके जोरसे जज या जूरीकी बुद्धि भरमा मुकदमे जीत सकते हैं। नॉर्टन साहब थे तीसरी श्रेणीमें अग्रगण्य। यह कोई दोषकी बात नही। वे ठहरे परामर्शदाता व्यवसायी आदमी, पैसा लेनेवाले, जो पैसा दे उसका अभीप्सित उद्देश्य सिद्ध करना है उनका कर्तव्य-कर्म। आजकल ब्रिटिश कानून-प्रणालीमें सच्ची

बात बाहर निकालना वादी या प्रतिवादीका असल उद्देश्य नही, किसी भी तरह मुकदमा जीतना ही है उद्देश्य। अतएव परामर्शदाता वैसी ही चेष्टा करेंगे, नही तो उन्हें धर्मच्युत होना होगा। भगवान्‌द्वारा अन्य गुण न दिये जानेपर जो गुण हैं उनके बलपर ही मुकदमा जीतना होगा, अत नॉर्टन साहब स्वधर्म-पालन ही कर रहे थे। सरकार बहादुर उन्हे हर रोज हजार रुपये देती थी। यह अर्थव्यय वृथा जानेसे सरकार बहादुरकी क्षति होती, यह क्षति न हो इसके लिए नॉर्टन साहबने प्राणपनसे चेष्टा की थी। पर राजनीतिक मुकदमेमें आसामीको विशेष उदारताके साथ सुविधा देना और सदेहजनक एव अनिश्चित प्रमाणपर जोर न देना ब्रिटिश कानून-पद्धतिका नियम है। नॉर्टन साहब यदि इस नियमको सदा याद रखते तो, मेरे ख्यालमे, उनके केसकी कोई हानि न होती। दूसरी तरफ कुछ-एक निर्दोषोको निर्जन कारावासकी यत्रणा न भोगनी पडती और निरीह अशोक नदीकी जान भी बच जाती। परामर्शदाताकी सिंह-प्रकृति ही थी शायद इस दोषका मूल। होलिंशेड (Holinshed), हॉल (Hall) और प्लूटार्क (Plutarch) जैसे शेक्सपियरके लिए ऐतिहासिक नाटकोका उपादान सगृहीत कर रख गये थे, पुलिसने भी वैसे ही इस मुकदमेंके नाटकके उपादानका संग्रह किया था। हमारे नाटकके शेक्सपियर थे नॉर्टन साहब। किंतु शेक्स-पियर और नॉर्टनमें मैंने एक प्रभेद देखा। सगृहीत उपादानका कुछ अश शेक्सपियर कही-कही छोड भी देते थे, पर नॉर्टन साहबने अच्छा-बुरा सत्य-मिथ्या, संलग्न-असलग्न, अणोरणीयान् महतो महीयान् जो पाते, एक भी न छोड़ते, तिसपर निजी कल्पनासृष्ट प्रचुर suggestion, inference, hypothesis (सुझाव, अनुमान, परिकल्पना) जुटा इतना सुदर plot (कथानक) रचा कि शेक्सपियर, डेफो इत्यादि सर्वश्रेष्ठ कवि और उपन्यासकार इस महा-प्रभुके आगे मात खा गये। आलोचक कह सकते हैं कि जैसे फाल्स्टाफके होटलके बिलमें एक आनेकी रोटी और असख्य गेलन शराबका समावेश था उसी तरह नॉर्टन साहबके plot में एक रत्ती प्रमाणके साथ दस मन अनुमान और suggestions (सुझाव) थे। किंतु आलोचक भी plot की परिपाटी और रचना-कौशलकी प्रशंसा करनेको बाध्य होगा। नॉर्टन साहबने इस नाटकके नायकके रूपमें मुझे ही पसद किया यह देख मै समधिक प्रसन्न हुआ था। जैसे मिल्टनके "Paradise Lost" का शैतान वैसे ही मै भी था नॉर्टन साहबके plot का कल्पनाप्रभूत महाविद्रोहका केंद्रस्वरूप, असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि-सपन्न, क्षमतावान् और प्रतापशाली bold bad man (ढीठ बुरा आदमी)। मै ही था राष्ट्रीय आदोलनका आदि और अंत, स्रष्टा

और त्राता, ब्रिटिश साम्राज्यका संहार-प्रयासी। उत्कृष्ट और तेजस्वी अंग्रेजी लेख देखते ही नॉर्टन साहब उछल पड़ते और उच्च स्वरमें कहते—अरविंद घोष। आदोलनके जितने भी वैध, अवैध, सुश्रृंखलित अंग या अप्रत्याशित फल—वे सभी अरविंद घोषकी सृष्टि, और क्योंकि वे अरविंदकी सृष्टि है इसलिए वैध होनेपर भी उसमें अवैध अभिसधि गुप्त रूपसे निहित है। शायद उनका यह विश्वास था कि अगर मैं पकड़ा न गया तो दो सालके अदर-अदर अगरेजोके भारतीय साम्राज्यका ध्वस हो जायगा। किसी फटे कागजके टुकड़ेपर मेरा नाम पाते ही नॉर्टन साहब खूब खुश होते और इस परम मूल्यवान् प्रमाणको मजिस्ट्रेटके श्रीचरणोमें सादर समर्पित करते। अफसोस है, कि मैं अवतार बनकर नही जनमा, नही तो मेरे प्रति उस समयकी उनकी इतनी भक्ति और मेरे अनवरत ध्यानसे नॉर्टन साहब निश्चित ही उसी समय मुक्ति पा जाते जिससे हमारी कारावासकी अवधि और गवर्नमेंटका अर्थव्यय दोनोंकी ही बचत होती। सेशंस अदालतद्वारा मुझे निर्दोष प्रमाणित किये जानेसे नॉर्टन-रचित plot की सब श्री और गौरव नष्ट हो गया। बेरसिक बीचक्राफ्ट 'हैमलेट' नाटकसे हैमलेटको बाद दे बीसवी सदीके श्रेष्ठ काव्यको हतश्री कर गये। समालोचकको यदि काव्य-परिवर्तनका अधिकार दे दिया जाय तो भला क्यो न होगी ऐसी दुर्दशा! नार्टन साहबको और एक दु:ख था, कुछ गवाह भी ऐसे बेरसिक थे कि उन्होंने भी उनके रचित plot के अनुसार गवाही देनेसे साफ इन्कार कर दिया। नॉर्टन साहब गुस्सेसे लाल-पीले हो जाते, सिंह-गर्जनासे उनके प्राण कपा उन्हें धमकाते। जैसे कविको स्वचरित शब्दके अन्यथा प्रकाशनपर और सूत्रधारको, अभिनेताकी आवृत्ति, स्वर या अंगभंगिमा उसके दिए गये निर्देशोंके विरुद्ध होनेपर न्यायसगत और अदमनीय क्रोध आता है, वैसा ही क्रोध आता था नॉर्टन साहबको। बैरिस्टर भुवन चटर्जीके साथ हुए सघर्षका कारण यह सात्विक क्रोध ही था। चटर्जी महाशयके जितना रसानभिज्ञ पुरुष तो कोई नही देखा। उन्हे रत्तीभर भी समय-असमयका ज्ञान नही था। नॉर्टन साहब जब सलग्न-असलग्नका विचार न कर केवल कवित्वकी खातिर जिस-तिस प्रमाणको घुसेड़ते, तब चटर्जी महाशय खड़े हो असलग्न या inadmissible (अमान्य) कह आपत्ति करते। वे समझ न सके कि ये साक्ष्य इसलिए नही पेश किये जा रहे कि ये सलग्न या कानून-सम्मत है वरन् इसलिए कि नॉर्टनकृत्त नाटकमें शायद उपयोगी हो। इस असंगत व्यवहारसे नॉर्टन ही क्यो, बर्ली साहबतक झुझला उठते। एक बार बर्ली साहबने चटर्जी महाशयको बड़े करुण स्वरमें कहा था, "Mr. Chatterjee,

we were getting on very nicely before you came," आपके आनेसे पहले हम निर्विघ्न मुकदमा चला रहे थे। सच ही तो है, नाटककी रचनाके समय बात-बातपर आपत्ति उठानेसे नाटक भी आगे नही बढता और दर्शकोको भी मजा नही आता।

यदि नॉर्टन साहब थे नाटकके रचयिता, प्रधान अभिनेता और सूत्रधार तो मजिस्ट्रेट बर्लीको कहा जा सकता है नाटककारका पृष्ठपोषक या patron। बर्ली साहब शायद थे स्कॉच जातिके गौरव। उनका चेहरा स्कॉटलैंडकी याद दिलाता था। खूब गोरी, खूब लम्बी, अति कृष दीर्घ देहयष्टिपर छोटा-सा सिर देख ऐसा लगता था जैसे अभ्रभेदी ऑक्टोरलोनीके monument (स्मारक) पर छोटे-से ऑक्टोरलोनी बैठे हो, या क्लियोपेट्राके obelisk (स्तंभ) के शिखरपर एक पका नारियल रखा हो। उनके बाल थे धूसर वर्ण (sandy haired) और स्कॉटलैंडकी सारी ठड और बर्फ उनके चेहरेके भावपर जमी हुई थी। जो इतना दीर्घकाय हो उसकी बुद्धि भी तद्रूप होनी चाहिये, नही तो प्रकृतिकी मितव्ययिताके सबधमें सदेह होता है। किंतु इस प्रसंगमें, बर्लीकी सृष्टिके समय, लगता है, प्रकृति देवी कुछ अनमनी एव अन्यमनस्क हो गयी थी। अगरेज कवि मार्लोने इस मितव्ययिताका infinite riches in a little room (छोटे-से भण्डारमें असीम धन) कह वर्णन किया है किंतु बर्लीका दर्शन कविके वर्णनसे विपरीत भाव मनमें जगाता है—infinite room in little riches (असीम भण्डारमें क्षुद्र धन)। सचमुच, इस दीर्घ देहमें इतनी थोडी विद्या-बुद्धि देख दु ख होता था और इस तरहके अल्पसख्यक शासनकर्ताओद्वारा तीस कोटि भारतवासी शासित हो रहे हैं यह याद कर अगरेजोकी महिमा और ब्रिटिश शासन-प्रणालीपर प्रगाढ भक्ति उमडती थी। श्रीयुत् व्योमकेश चक्रवर्तीद्वारा जिरह करते समय बर्ली साहबकी विद्याकी पोल खुली। इतने साल मजिस्ट्रेट-गिरी करनेके बाद भी यह निर्णय करनेमें उनका सिर घूम गया कि उन्होने अपने करकमलोमें यह मुकदमा कब ग्रहण किया या कैसे मुकदमा ग्रहण किया जाता है, इस समस्याको सुलझानेमें असमर्थ हो चक्रवर्ती साहबपर इसका भार दे साहब स्वय निष्कृति पानेके लिए सचेष्ट हुए। अभी भी यह प्रश्न मुकदमेकी अति जटिल समस्याओमें से एक गिना जाता है कि बर्लीने कब मुकदमा अपने हाथमें लिया था। चटर्जी महाशयके प्रति किये गये जिस करुण निवेदनका उल्लेख मैंने किया है उससे भी साहबकी चिंतनधाराका अनुमान लगाया जा सकता है। शुरूसे ही वे नॉर्टन साहबके पाण्डित्य और वाग्विलाससे मन्त्रमुग्ध हो उनके वशमें हो गये थे। ऐसे विनीत भावसे

नॉर्टनद्वारा प्रदर्शित पथका अनुसरण करते, नॉर्टनकी हांमें हां मिलाते, नॉर्टनके हंसनेसे हसते, नॉर्टनके कुपित होनेपर कुपित होते कि यह सरल शिशुवत् आचरण देख कभी-कभी मनमें प्रवल स्नेह और वात्सल्यका आविर्भाव होता। वर्लीके स्वभावमें निरा लडकपन था। उन्हें कभी भी मजिस्ट्रेट न मान सका, ऐसा लगता मानो स्कूलका छात्र हठात् स्कूलका शिक्षक बन शिक्षकके उच्च मचपर चढ वैठा है। ऐसे ही वे कोर्टका काम चलाते। कोई उनके साथ अप्रिय व्यवहार करता तो स्कूली शिक्षककी तरह शासन करते। हममेंसे यदि कुछ मुकदमेके प्रहसनसे विरक्त हो आपसमें वातें करने लगते तो वर्ली साहव स्कूलमास्टरकी तरह वकने लगते, न सुना हो तो सवको खडे हो जानेकी आज्ञा देते, उसका भी तुरत पालन न किया तो प्रहरीको कहते हमें खडा कर देनेके लिए। हम स्कूलमास्टरके इस रंग-ढगको देखनेके इतने आदी हो गये थे कि जव वर्ली और चटर्जी महाशयका झगड़ा खड़ा हुआ तो हम प्रति क्षण इस आशामें थे कि अव वैरिस्टर साहबको खड़े रहनेका दड मिलेगा। वर्ली साहवने लेकिन उल्टा रास्ता पकड़ा, चिल्लाते हुए sit down Mr. Chatterjee (वैठ जाइये, मि. चटर्जी) कह अलीपुर स्कूलके इस नवागत उद्दण्ड छात्रको विठा दिया। जैसे कोई-कोई मास्टर छात्रके किसी प्रश्नसे या पढाते समय अतिरिक्त व्याख्यान चाहनेसे उसे डांट देते हैं, वर्ली भी आसामीके वकीलकी आपत्तिपर खीज उसे डपट देते। कोई-कोई साक्षी नॉर्टनको परेशान करते। नॉर्टन सिद्ध करना चाहते थे कि अमुक लेख अमुक आसामीके हस्ताक्षर हैं, साक्षी यदि कहते कि नही, यह तो ठीक उस लेखकी तरह नही, फिर भी हो सकता है, कहा नही जा सकता—वहुत-से साक्षी इसी तरहका उत्तर देते थे—तो नॉर्टन अधीर हो उठते। वक-झककर, चिल्लाकर, डाट-डपट कर किसी भी उपायसे अभीप्सित उत्तर उगलवानेकी चेष्टा करते। उनका अतिम प्रश्न होता, "What is your belief ?" तुम क्या कहते हो, हाँ या ना। साक्षी न हाँ कह पाते न ना। घुमा-फिरा वारवार वही उत्तर देते। नॉर्टनको यह समझानेकी चेष्टा करते कि उनका कोई भी belief (विश्वास) नही, वे सदेहमें झूल रहे हैं। किंतु नॉर्टन वह उत्तर नही चाहते थे, वारवार मेघगर्जना करते हुए उसी साघातिक प्रश्नसे साक्षीके सिरपर वज्राघात करते, "Come, Sir, what is your belief ?" (हाँ, तो फिर क्या राय है महाशय आपकी ?) नॉर्टनके क्रुद्ध होते ही वर्ली भी ऊपरसे गरजते, "टोमारा क्या विश्वास है ?" वेचारे साक्षी महा विपद्में पड़ जाते। उनका कोई विश्वास नही लेकिन एक तरफसे मजिस्ट्रेट दूसरी तरफसे नॉर्टन क्षुधित

व्याघ्रकी तरह उनकी बोटी-बोटी अलग कर अमूल्य अप्राप्य विश्वास बाहर निकलवानेको तत्पर हो दोनो तरफसे भीषण गर्जन कर रहे है। बहुधा विश्वास जाहिर न होता, चकरायी बुद्धि और पसीनेसे तर साक्षी उस यन्त्रणा-स्थलसे अपने प्राण बचा भाग खडे होते। कोई-कोई प्राणोको ही विश्वाससे प्रियतर मान नॉर्टन साहबके चरण-कमलोमे झूठे विश्वासका उपहार चढा बच निकलते, नॉर्टन भी अति सतुष्ट हो बाकी जिरह स्नेहसहित सपन्न करते। ऐसे परामर्शदाताके साथ आ मिले ऐसे मजिस्ट्रेट तभी तो मुकदमेने और भी अधिक नाटकीय रूप धारण कर लिया था।

कुछ एक साक्षियोके विरुद्धाचरण करनेपर भी अधिकाश नॉर्टन साहबके प्रश्नोका अनुकूल उत्तर देते। इनमें जाने-पहचाने कम ही थे। कोई-कोई किन्तु परिचित भी था। देवदास करण महाशयने हमारी विरक्ति दूर कर हमें खूब हसाया था, चिरकाल हम उनके कृतज्ञताके ऋणमें बधे रहेंगे। इन साक्षीने यह गवाही दी थी कि मेदिनीपुरके सम्मेलनके समय जब सुरेन्द्र बाबूने अपन छात्रोसे गुरुभक्तिके बारेमें पूछा था तब अरविन्द बाबू बोल पडे थे, "द्रोणने क्या किया?" यह सुनते ही नॉर्टन साहबके आग्रह और कौतुहलकी सीमा न रही, उन्होने निस्सदेह यह सोचा होगा कि द्रोण या तो कोई बमका भक्त है या राजनीतिक हत्यारा या मानिकतला बागान या छात्रमडलीसे सयुक्त। नॉर्टनके ख्यालमें इस वाक्यका अर्थ शायद यह था कि अरविन्द घोषने सुरेन्द्र बाबूको गुरुभक्तिके बदले बमका पुरस्कार देनेका परामर्श दिया था, तब तो मुकदमेमें बडी सुविधा हो सकती है। अतएव उन्होने साग्रह प्रश्न किया, "द्रोणने क्या किया?" शुरूमें साक्षी किसी भी तरह प्रश्नका उद्देश्य समझ न सके। पाँच मिनटतक इसे लेकर खीच-तान चलती रही, अतमें करण महाशयने दोनो हाथ ऊपर फैला नॉर्टन साहब-को जतलाया, "द्रोणने अनेक चमत्कार खिलाये थे।" इससे नॉर्टन साहब सतुष्ट नही हुए। द्रोणके बमका अनुसधान न मिलनेतक सतुष्ट हो भी कैसे? दुबारा पूछा, "अनेक चमत्कार क्या बला है? क्या विशेष किया है उन्होने?" साक्षीने इसके अनेको उत्तर दिये, एकसे भी द्रोणाचार्यके जीवनके इस गुप्त रहस्यका भेद नही खुला। नॉर्टन साहब भड़क उठे, गरजना शुरू किया। साक्षी भी चिल्लाने लगे। एक वकीलने हसते हुए यह सदेह व्यक्त किया कि शायद साक्षीको पता नही कि द्रोणने क्या किया। करण महाशय इसपर क्रोध और क्षोभसे आगबबूला हो उठे। चिल्लाये, "क्या? मै? मै नही जानता कि द्रोणने क्या किया? वाह, क्या मैंने वृथा ही सारा महाभारत पढा?" आधे घटेतक द्रोणाचार्यकी मृत-देहपर करण और

नॉर्टनका महायुद्ध चला। हर पाच मिनट बाद अलीपुर विचारालयको कपाते नॉर्टन अपना प्रश्न गुजाने लगे, "Out with it, Mr Editor! What did Drona do?" (हाँ, बताइये-बताइये, सपादक महाशय द्रोणने क्या किया?) उत्तरमें सपादक महाशयने एक लबी रामकहानी आरम्भ की, किंतु द्रोणने क्या किया, इसका कोई विश्वसनीय सवाद नही मिला। सारी अदालत ठहाकोसे गूंज उठी। अतमें टिफिनके समय करण महाशय जरा ठडे दिमागसे सोच-समझकर लौटे और समस्याकी यह मीमासा बतलायी कि बेचारे द्रोणने कुछ नही किया, बेकार ही उनकी परलोकगत आत्माको ले आधे घटेतक खीच-तान हुई, अर्जुनने ही गुरु द्रोणका वध किया था। अर्जुनके इस मिथ्या अपवादसे द्रोणाचार्यने निस्तार पा कैलाशपर सदाशिवको धन्यवाद दिया होगा कि करण महाशयकी गवाहीके कारण अलीपुरके बम-केसमें उन्हें कठघरेमें खडा नही होना पडा। संपादक महाशयकी एक बातसे सहज ही अरविंद घोषके साथ उनका सबध प्रमाणित हो जाता। किंतु आशुतोष सदाशिवने उनकी रक्षा की।

जो गवाही देने आये थे उन्हें तीन श्रेणियोमें बाटा जा सकता है। पुलिस और गोयदा, पुलिसके प्रेममें आबद्ध निम्नश्रेणीके लोग और सज्जन, और तीसरे अपने दोषवश पुलिस-प्रेमसे वचित, अनिच्छासे आये हुए गवाह। हर श्रेणीका गवाही देनेका ढग था अलग-अलग। पुलिस महोदय भावसे, अम्लानवदन अपने पूर्वज्ञात वक्तव्योको मनमाने ढगसे बोल जाते, जिसे पहचानना होता पहचान लेते—कोई सदेह नही, दुविधा नही, भूल-चूक नही। पुलिसके सगी-साथी अतिशय आग्रहके साथ गवाही देते, जिसे पहचानना होता उसे भी पहचान लेते और जिसे नही पहचानना होता उसे भी बहुत बार अतिशय उत्सुकतावश पहचान लेते। अनिच्छासे आये गवाह जो कुछ जानते होते वही कहते, लेकिन वह बहुत थोडा होता; नॉर्टन साहब उससे असंतुष्ट हो और यह सोचकर कि साक्षीके पेटमें अपार मूल्यवान् और सदेहनाशक प्रमाण है, जिरहके बलपर उसका पेट चीर उन्हें बाहर निकालनेकी भरपूर चेष्टा करते। इससे साक्षी महा विपद्में पड जाते। एक ओर नॉर्टन साहबकी गर्जना और बर्ली साहबकी लाल-लाल आखे, दूसरी ओर झूठी गवाही दे देशवासियोको कालेपानी भेजनेका महापाप। गवाहोंके सामने एक गुरुतर प्रश्न उठ खडा होता नॉर्टन-बर्लीको खुश करें या भगवान्को। एक तरफ क्षणस्थायी विपत्ति—मनुष्योका कोप, दूसरी

ओर पापका दड—नरक और परजन्ममे दुःख। लेकिन वे सोचते नरक और परजन्म तो दूरकी बातें है, मनुष्यकृत विपद् तो उन्हें अगले क्षण ही ग्रस सकती है। बहुतोंके मनमें यह डर था कि मिथ्या साक्ष्य देनेके लिए राजी न होनेपर भी मिथ्या साक्ष्यके अपराधमें पकडे जायगे, क्योकि ऐसे स्थलोपर परिणामके दृष्टात विरल नही। अतएव इस श्रेणीके साक्षियोको जो समय साक्षीके कठघरेमें अतिवाहित करना पडता वह उनके लिए विलक्षण भीति और यन्त्रणाका समय होता। जिरह शेष होनेपर उनके अर्ध-निर्गत प्राण फिर से देहमें लौट उन्हें यन्त्रणामुक्त करते। कुछ एक साहसके साथ गवाही देते, नॉर्टनकी गर्जनाकी परवाह न करते, अगरेज परामर्शदाता भी यह देख जातीय प्रथाका अनुसरण कर नरम पड जाते। इस तरह कितने ही साक्षी आये, कितनी तरहकी गवाहिया दे गये, किंतु एकने भी पुलिसके लिए उल्लेखनीय कोई सुविधा नही की। एकने साफ कहा—मैं कुछ नही जानता, समझ नही आता क्यो पुलिस मुझे जबरदस्ती खीच लायी है। इस तरहका मुकदमा चलाना शायद भारतमे ही सभव है, दूसरे देशोमें जज इससे झुझला उठते और पुलिसका गजन कर अच्छा सबक सिखाते। बिना अनुसंधान किये दोषी-निर्दोषका विचार न कर कठघरेमें खडा करना, अदाजसे साक्षी खड़े कर देशका पैसा बहाना और आसामियोको निरर्थक लबे समय-तक कारा-यन्त्रणामें रखना इस देशकी पुलिसको ही शोभा देता है। लेकिन बेचारी पुलिस क्या करे? वह तो नामकी गोयदा थी, उसमें जब वह क्षमता ही नही थी तो ऐसे साक्षियोंके लिए एक विशाल जाल फेंककर अदाजसे उत्तम, मध्यम और अधम साक्षी फसा कठघरेमें खडा करना ही था एक-मात्र उपाय। क्या मालूम शायद वे कुछ जानते हो, कुछ प्रमाण दे भी दें?

आसामियोको पहचाननेकी व्यवस्था भी बडी रहस्यमय थी। पहले साक्षीसे पूछा जाता, तुम इनमेंसे किसीको पहचान सकोगे? साक्षी यदि कहते, हाँ, पहचान सकता हूँ तो नॉर्टन साहब हर्षोत्फुल्ल हो तुरत कठघरेमें identification parade (पहचान-परेड) की व्यवस्था करा वहाँ उन्हें अपनी स्मरणशक्तिको चरितार्थ करनेका आदेश देते। यदि वे कहते, पता नही, शायद पहचान भी लूं, तो जरा नाराजगी से कहते, अच्छा, जाओ, चेष्टा करो। यदि कोई कहता, नही, नही कर सकूंगा, मैंने उन्हें नही देखा या ध्यान नही दिया तो भी नॉर्टन साहब उन्हें न छोडते। शायद इतने चेहरे देख पूर्वजन्मकी कोई स्मृति ही जागृत हो जाय इसलिए उसे परीक्षा करनेको भेज देते। साक्षीमें वैसी योगशक्ति नही थी। शायद पूर्वजन्मवादमें आस्था भी नही, वे आसामियोकी दीर्घ दो पक्तियोके बीच

सार्जेन्टोके नेतृत्वमें, शुरूसे अततक गभीर भावसे कूच करते हुए, हमारे चेहरोको बिना देखे ही सिर हिलाकर कहते—नही, नही पहचानता। निराश हृदय नॉर्टन इस मत्स्यशून्य जीवत जालको समेट लेते। मनुष्यकी स्मरणशक्ति कितनी प्रखर और अभ्रात हो सकती है इसका अपूर्व प्रमाण मिला इस मुकदमेमे। तीस-चालीस आदमी खडे है, उनका नाम नही पता, किसी भी जन्ममें एक बार भी उनके साथ बातचीत नही हुई, फिर भी दो मास पहले किसे देखा है, किसे नही देखा, अमुकको अमुक तीन जगह देखा, अमुक दो जगह नही, एक बार उसे दात माजते हुए देखा था इसलिए उसका चेहरा जन्म-जन्मातरके लिए मेरे मनमें अकित रह गया है। इन्हें कब देखा, क्या कर रहे थे, कौन साथ थे, या एकाकी थे, कुछ भी याद नही, फिर भी उनका चेहरा मेरे मनमें जन्म-जन्मातरके लिए अकित है; हरिको दस बार देखा है इसलिए उन्हें भूलनेकी कोई सभावना नही, श्याम-को एक बार सिर्फ आधे मिनटके लिए देखा लेकिन उसे भी मरते दमतक नही भूल सकूंगा, भूल-चूक होनेकी कोई सभावना नही—ऐसी स्मरणशक्ति इस अपूर्ण मानव प्रकृतिमें, इस तमोभिभूत मर्त्य धाममें साधारणतः नही मिलती। एक नही, दो नही, प्रत्येक पुलिसपुगवमें ऐसी विचित्र, निर्भूल, अभ्रात स्मरणशक्ति देखनेको मिली। इससे सी० आई० डी० पर हमारी श्रद्धा-भक्ति दिन-दिन प्रगाढ होने लगी। अफसोस है, सैशन्स कोर्टमें वह भक्ति कम करनी पडी थी। मजिस्ट्रेटको कोर्टमें दो-एक बार सदेह न हुआ हो ऐसी बात नही। जब यह लिखित गवाही देखी कि शिशिर घोष अप्रैलमें बबईमे थे और ठीक उसी समय कुछ एक पुलिसपुगवोने उन्हें स्कॉटस लेन और हैरिसन रोडपर भी देखा तब थोडा-सा सदेह तो हुआ ही था। जब श्री-हट्टवासी वीरेंद्रचद्र सेन स्थूल शरीरसे बनियाचगमें पितृभवनमें रहते हुए भी बागानमें और स्कॉट्स लेनमें—जिस स्कॉट्स लेनका पता वीरेन्द्र नही जानते थे, इसका अकाट्य प्रमाण लिखित साक्ष्यमें मिला था—उनका सूक्ष्म शरीर सी० आई० डी० की सूक्ष्म दृष्टिने देखा था, तब और भी सदेह हुआ था। विशेषकर जिन्होने स्कॉट्स लेनमें कभी भी पदार्पण नही किया, उन्होने जब सुना कि पुलिसने उन्हें वहाँ कई बार देखा है, तब सदेहका उद्रेक होना कुछ अस्वाभाविक नही। मेदिनीपुरके एक साक्षी मेदिनीपुरके आसामियोसे पता लगा कि वे भी गोयंदा है—बोले कि उन्होने श्रीहट्टके हेमचद्र सेनको तमलूकमें वक्तृता देते देखा था। किन्तु हेमचंद्रने अपनी स्थूल आखोसे कभी तमलूक नही देखा, तो भी उनके छायामय शरीरने श्रीहट्टसे सुदूर तमलूक जाकर तेजस्वी और राजद्रोहपूर्ण स्वदेशी व्याख्यान दे गोयदा महाशयकी

चक्षुतृप्ति और कर्णतृप्ति की थी। किन्तु चंदननगरके चारुचंद्र रायके छाया-मय शरीरने मानिकतलामें उपस्थित हो इससे भी ज्यादा रहस्यमय कांड मचाया था। पुलिसके दो कर्मचारियोंने शपथ खाकर कहा था कि उन्होने अमुक दिन अमुक समय चारु बाबूको श्यामबाजारमें देखा था, वे श्याम-बाजारसे एक षडयन्त्रकारीके साथ मानिकतला बागानतक पैदल गये थे, उन्होने भी वहांतक उनका पीछा किया था और बहुत पाससे देखा था, अतः भूल होनेकी गुंजायश नही। वकीलकी जिरहसे दोनो साक्षी टससे मस न हुए। **व्यासस्य वचनं सत्यम्,** पुलिसकी गवाही भी अन्यथा नही हो सकती।

दिन और समयके संबंधमें भी उनकी भूल होनेकी कोई बात नही, क्योकि ठीक उसी दिन, उसी समय चारु बाबू कालिजसे छुट्टी ले कलकत्तेमे उपस्थित थे, चंदननगरके डुप्ले कॉलिजके अध्यक्षकी गवाहीसे यह प्रमाणित हुआ था। किन्तु आश्चर्य ! ठीक उसी दिन, उसी समय चारु बाबू हावडा स्टेशनके प्लैटफार्मपर चंदननगरके मेयर तार्दिवाल, तार्दिवालकी पत्नी, चदन-नगरके गवर्नर और अन्यान्य संभ्रात यूरोपीय सज्जनोंके साथ बातें करते-करते टहल रहे थे। ये सब इसी बातको याद कर चारु बाबूके पक्षमें गवाही देनेके लिए राजी हुए थे। फ्रैंच गवर्नमेंटकी चेष्टासे पुलिसद्वारा चारु बाबूको छोड़ दिये जानेपर विचारालयमें इस रहस्यका उद्‌घाटन नही हुआ। किन्तु चारु बाबूको मैं यह परामर्श देता हूं कि वे ये सब प्रमाण Psychical Researh Society को भेज मनुष्यजातिके ज्ञान-सचयमें सहायता करें। पुलिसकी गवाहियां मिथ्या नही हो सकती,—विशेषकर सी० आई० डी० की—अतएव थियोसोफीके आश्रयके अलावा हमारे लिए और कोई चारा नही। सौ बातकी एक बात, ब्रिटिश कानून प्रणालीमें कितनी आसानीसे निर्दोषो-को जेल, कालापानी और फासीतक हो सकती है इसका दृष्टांत इस मुकदमेमें पग-पगपर पाया। कठघरेमें खड़े न होनेतक पाश्चात्य विचार-प्रणालीकी मायावी असत्यता हृदयगम नही की जा सकती। यूरोपकी यह प्रणाली है जुएका एक खास खेल; मनुष्यकी स्वाधीनता, मनुष्यका सुख-दु ख, उसकी और उसके परिवार एवं आत्मीय बधुकी जीवनव्यापी यन्त्रणा, अपमान और जीवत मृत्युको ले जुएका खेल। इससे कितने दोपी वच जाते हैं और कितने निर्दोष मर जाते हैं इसकी कोई गिनती नही। यूरोपमें Socialism (समाजवाद) और Anarchism (अराजकतावाद) का कितना प्रचार और प्रभाव हुआ है वह इस जुएमें एक बार फंसनेपर, इस निष्ठुर निर्विचार समाजरक्षक पेषणयन्त्रमें एक बार पड़नेपर पहली दृष्टिमें ही समझमें आ

जाता है। ऐसी अवस्थामें यह कोई आश्चर्यकी बात नही कि अनेक उदार-चेता दयालु जन कहने लग गये हैं कि इस समाजको तोड़ दो, चूर-मार कर दो; इतने पाप, इतने दु.ख, इतने निर्दोषोंके तप्त नि:श्वास और हृदयके खूनसे यदि समाजकी रक्षा करनी हो तो बेकार है वह रक्षा।

मजिस्ट्रेटकी कोर्टमें एकमात्र विशेष उल्लेखनीय घटना थी नरेंद्रनाथ गोस्वामीकी गवाही। उस घटनाका वर्णन करनेसे पहले अपनी विपदाके सगी युवक आसामियोके बारेमें कहता चलूं। कोर्टमें इनका आचरण देख अच्छी तरह समझ गया था कि बंगालमें नवयुग आ गया है, नयी सतति मांकी गोदमें वास करना आरम्भ कर चुकी है। तत्कालीन बगाली लडके दो तरहके थे, या तो थे शात, शिष्ट, निरीह, सच्चरित्र, भीरु, आत्मसम्मान और उच्चाकांक्षासे शून्य, या दुश्चरित्र, दुर्दान्त, अस्थिर, ठग, सयमी और साधुतासे शून्य। इन दो चरमावस्थाओके बीच नानारूप जीव बगजननी-की क्रोडमें जनमे थे, लेकिन आठ-दस असाधारण प्रतिभावान्, शक्तिमान्, भविष्यके पथ प्रदर्शकोको छोड इन दो श्रेणियोंके अलावा तेजस्वी आर्यसंतान प्राय: देखनेमें नही आती थी। बगालीमें बुद्धि थी, मेधाशक्ति थी लेकिन शक्ति नही थी; मनुष्यत्व नही था। लेकिन इन लडकोको देखते ही लगता था मानो अन्य युगके अन्य शिक्षाप्राप्त, उदारचेता, दुर्दात तेजस्वी पुरुष फिरसे भारतवर्षमें लौट आये है। वह निर्भीक सरल दृष्टि, वह तेज-पूर्ण वाणी, वह चिताशून्य आनदमय हंसी, इस घोर विपद् के समय भी वह अक्षुण्ण तेजस्विता, मनकी प्रसन्नता, विमर्शता, चिता या सतापका अभाव, उस समयके तम.क्लिष्ट भारतवासीका नही, है नूतन युगका, नूतन जातिका, नूतन कर्मस्रोतका लक्षण। ये यदि हत्यारे हो तो कहना पडेगा कि हत्याकी रक्तमयी छाया उनके स्वभावपर नही पड़ी, क्रूरता, उन्मत्तता और पाशविक भाव उनमें कतई नही था। उन्होने भविष्यकी या मुकदमेके फलकी जरा भी चिता न कर कारावासके दिन बालकोचित आमोदमें, हसीमें, खेलमे, पढने-सुननेमें, समालोचनामें विताये। बहुत जल्दी ही उन्होने जेलमें कर्म-चारी, सिपाही, कैदी, यूरोपीय सार्जेंट, जासूस, कोर्टके कर्मचारी सभीके साथ मैत्रीका नाता जोड लिया था एवं शत्रु-मित्र; बडे-छोटेका विचार न कर सबके साथ बातचीत, हसी-मजाक करने लग गये थे। कोर्टका समय उन्हें बड़ा विरक्तिकर लगता, क्योकि मुकदमेके प्रहसनमें रस बहुत कम आता था। यह समय काटनेके लिए उनके पास न पढनेको किताब थी न बात

करनेकी अनुमति। जो योग करना शुरू कर चुके थे, उन्होंने तबतक गुल-गपाड़ेमें ध्यान करना नही सीखा था, उन्हें समय काटना पहाड़ हो जाता। शुरूमें दो-चार जन पढ़नेके लिए किताब अदर लाने लगे, उनकी देखा-देखी बाकी सबने भी उसी उपायका सहारा लिया। उसके बाद एक अद्भुत दृश्य देखनेको मिलता—मुकदमा चल रहा है, तीस-चालीस आसामियोंके सारे भविष्यको ले खीचा-तानी चल रही है, उसका फल हो सकता है फासी-के तख्तेपर मृत्यु या आजीवन कालापानी, किन्तु उस ओर दृक्पात न कर उनमेंसे कोई बंकिमका उपन्यास, कोई विवेकानदका राजयोग या Science of Religions, कोई गीता, कोई पुराण तो कोई यूरोपीय दर्शन एकाग्र मनसे पढ़ रहा होता। अंगरेज सार्जेंट या देशी सिपाही कोई भी उनके इस आचरणमें बाधा नही देता। वे सोचते थे कि यदि इससे ही इतने सारे पिंजराबद्ध व्याघ्र शात रहें तो हमारा काम भी कम होता है और इससे किसीकी क्षति भी नही होती। लेकिन एक दिन बर्ली साहबकी दृष्टि खिंच गयी इस दृश्यकी ओर, असह्य हो उठा मजिस्ट्रेट साहबको यह आचरण। दो दिन तो वे कुछ नही बोले लेकिन और ज्यादा न सह सके, पुस्तकें लानेकी मनाही कर दी। असलमें बर्ली इतना सुन्दर विचार कर रहे थे, उसे सुनकर कहाँ तो सबको आनद लेना चाहिये था उल्टे पढ रहे थे सब पुस्तकें। यह तो बर्लीके गौरव और ब्रिटिश जस्टिसकी महिमाके प्रति घोर असम्मान प्रदर्शित करना है, इसमें सदेह नही।

हम जितने दिन अलग-अलग कोठरियोंमें बद थे उतने दिन केवल गाड़ीमें, मजिस्ट्रेटके आनेसे पहले एक घटा या आधा घटा और खानेके समय कुछ बातें करनेका अवसर पाते। जिनका परस्पर परिचय या अलाप था वे इस समय cell (सेल) की नीरवता और निर्जनताका प्रतिशोध लेते, हसी, आमोद और नाना विषयोंकी आलोचनामें समय बिताते। लेकिन ऐसे अवसरोंपर अपरिचितोंके साथ बात करनेकी सुविधा नही होती इसीलिए मैं अपने भाई बारीद्र और अविनाशको छोड और किसीसे भी ज्यादा बात न करता, उनका हसी-मजाक, उनकी बातें सुनता पर स्वय उसमें भाग न लेता। किन्तु एक आदमी बात-चीतमें मेरे पास खिसक आता। वे थे भावी approver (मुखबिर) नरेंद्रनाथ गोस्वामी। दूसरे लडकोंकी तरह उनका स्वभाव न शान्त था न शिष्ट। वे थे साहसी और लघुचेता एव चरित्र वाणी और कर्ममें असयत। पकड़े जानेके समय नरेन गोसाईंने अपना स्वाभाविक साहस और प्रगल्भता दिखायी थी, लेकिन लघुचेता होनेके कारण कारावासका थोडा-सा भी दु:ख और असुविधा सहन करना उनके

लिए असाध्य हो उठा था। वे थे जमीदारके बेटे अतः सुख, विलास और दुर्नीतिमें पले, वे कारागृहके कठोर संयम और तपस्यासे अत्यंत कातर हो गये थे, और यह भाव सबके सामने प्रकट करनेमें भी कुंठित नहीं हुए। जिस किसी भी उपायसे इस यंत्रणासे मुक्त होनेकी उत्कट लालसा उनके मनमें दिन-दिन बढने लगी। पहले उन्हें यह आशा थी कि अपनी स्वीकारोक्तिका प्रत्याहार कर वे यह प्रमाणित कर सकेंगे कि पुलिसने शारीरिक यंत्रणा देकर दोष स्वीकार कराया था। उन्होंने हमें बताया कि उनके पिता इस तरहके झूठे गवाह जुटानेके लिए कृतसंकल्प थे। किंतु थोड़े दिनोंमें ही और एक भाव सामने आने लगा। उनके पिता और एक मुख्तार उनके पास बार-बार जेलमें आने-जाने लगे, अंतमें जासूस शमसुल आलम भी उनके पास आ बहुत देरतक गुप-चुप बातें करने लगे। ऐसे समय हठात् गोसाईंके कौतुहल और प्रश्न करनेकी प्रवृत्ति देख बहुतोंके मनमें संदेहका उद्रेक हुआ। भारतवर्षके बडे-बडे आदमियोंके साथ उनका परिचय या घनिष्ठता थी कि नहीं, गुप्त समितिको किस-किसने आर्थिक सहायता दे उसका पोषण किया, समितिके और कौन-कौन सदस्य बाहर या भारतके अन्यान्य प्रदेशोंमें थे, अब कौन समितिका कार्य चलायेंगे, शाखा-समिति कहाँ है इत्यादि अनेक छोटे-बडे प्रश्न बारींद्र और उपेंद्रसे पूछते। गोसाईंकी यह ज्ञानतृष्णाकी बात अचिरात् सबके कर्णगोचर हुई और शमसुल आलमके साथ उनकी घनिष्ठताकी बात भी अब गोपनीय प्रेमालाप न रह open secret (खुला रहस्य) हो उठा। इसे लेकर खूब आलोचना होती और किसी-किसीने यह भी लक्ष्य किया कि हमेशा पुलिस-दर्शनके बाद ही इस तरहके नए-नए प्रश्न गोसाईंके मनमें चक्कर काटते हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि उन्हें इन प्रश्नोंका संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। जब पहले-पहल आसामियोंमें यह बात प्रचारित होने लगी तब गोसाईंने स्वयं स्वीकार किया था कि पुलिस उनके पास आ "सरकारी गवाह" बन जानेके लिए उन्हें नाना उपायोंसे समझानेकी चेष्टा कर रही है। कोर्टमें उन्होंने मुझे एक बार यह बात कही थी। मैंने उनसे पूछा था कि आपने क्या उत्तर दिया। वे बोले, "मैं क्या मानूंगा! माननेपर भी भला मैं क्या जानता हूं जो उनकी इच्छानुसार साक्ष्य दूंगा?" उसके कुछ दिन बाद उन्होंने फिरसे जब इस बातका उल्लेख किया तो देखा कि यह बात बहुत आगे बढ चुकी है। जेलमें identification parade (पहचान-परेड) के समय मेरी बगलमें गोसाईं खडे थे, तब वे मुझसे कहते: "पुलिस केवल मेरे पास ही आती है।" मैंने उपहास करते हुए कहा, "आप यह बात कह क्यों नहीं देते कि

सर ऐन्ड्रू फ्रेजर गुप्त समितिके प्रधान पृष्ठपोषक थे, इससे उनका परिश्रम सार्थक होगा।" गोसाईं बोले, "ऐसी बात तो मैंने कह ही दी है। मैं उन्हें कह चुका हूँ कि सुरेंद्रनाथ बनर्जी है हमारे head (प्रधान) और मैंने उन्हें भी एक वार बम दिखाया है।" स्तंभित हो मैंने उनसे पूछा, "यह बात कहनेकी जरूरत क्या थी?" गोसाईं बोले, "मैं—का श्राद्ध करके रहूँगा। उस तरहकी और भी बहुत-सी खबरें मैंने दी हैं। मरें साले corroboration (प्रमाण) खोजते-खोजते। क्या पता, इस उपायसे, मुकदमा फिस ही हो जाय?" इसके उत्तरमें मैंने केवल इतना कहा था, "ऐसी शरारतसे बाज आइये। उनके साथ चालाकी करते-करते खुद ही ठगे जायेंगे।" पता नही गोसाईंकी यह बात कहातक सच थी। और सब आसामियोंकी यह राय थी कि हमारी आंखोमें धूल झोकनेके लिए उन्होने ऐसा कहा था। मेरा ख्याल था कि तबतक गोसाईं approver (मुखबिर) होनेके लिए पूर्णतया कृतनिश्चय नही थे, यह ठीक है कि इस विषयमें वे बहुत आगे बढ चुके थे, किन्तु पुलिसको ठग उनका केस मिट्टी कर देनेकी आशा भी उन्हें थी। चालाकी और असदुपायसे कार्यसिद्धि है दुष्प्रवृत्तिकी स्वाभाविक प्रेरणा। तभीसे समझ गया था कि गोसाईं पुलिसके वश हो सच-झूठ उन्हें जो भी चाहिये, वह कह अपनेको बचानेकी चेष्टा करेंगे। एक नीच स्वभावका और भी निम्नतर दुष्कर्मकी ओर अधःपतन हमारी आँखोंके सामने नाटककी तरह अभिनीत होने लगा। मैंने लक्ष्य किया कि किस तरह गोसाईंका मन दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है, उनके मुख, भाव-भगिमा और बात-चीतमें भी परिवर्तन हो रहा है। विश्वासघात कर अपने सगी-साथियोका सर्वनाश करनेके लिए वे जो कुछ जुटा रहे थे उसके समर्थनके लिए क्रमसे नाना अर्थनैतिक और राजनैतिक युक्तिया बाहर करने लगे। ऐसी interesting psychological study (मनोरजक मानसिक अध्ययन) प्राय. सहज ही हाथ नही लगती।

शुरूमें किसीने भी गोसाईंको यह पता न लगने दिया कि सभी उनकी अभिसधि भाप गये हैं। वे भी इतने नासमझ निकले कि बहुत दिनतक इसका कुछ भी न समझ सके, वे समझते थे कि मै खूब छिपे-छिपे पुलिसकी मदद कर रहा हूँ। किन्तु कुछ दिन बाद जब यह हुकुम हुआ कि हमें अब और निर्जन कारावासमें न रख एक साथ रखा जायगा तब, उस नूतन व्यवस्थासे, रात-दिन पारस्परिक मेल-जोल और बात-चीतसे कुछ भी ज्यादा

दिन छिपा न रहा। उन्ही दिनो दो-एक लड़कोके साथ गोसाईंका झगड़ा हुआ, उनकी बातोंसे और सबके अप्रीतिकर व्यवहारसे गोसाईं समझ गये कि उनकी अभिसधि किसीके लिए भी अज्ञात नही रही। जब गोसाईं गवाही देते तो कुछ एक अगरेजी अखबारोमें यह खबर छपती कि आसामी इस अप्रत्याशित घटनासे चमत्कृत और उत्तेजित हुए। कहना न होगा, यह थी रिपोर्टरोकी कोरी कल्पना। बहुत दिन पहले ही सब जान गये थे कि इस तरहकी गवाही दी जायगी। यहाँतक कि किस दिन कौन-सी साक्षी दी जायगी उसका भी पता था। ऐसे समय एक आसामी गोसाईंके पास जाकर बोले, "देखो भई, अब और नही सहा जाता, मै भी approver (मुखबिर) बनूगा, तुम शमसुल आलमको कहो कि मेरी रिहाईकी भी व्यवस्था करें। गोसाईं राजी हो गये। कुछ दिन बाद उनसे कहा: इस विषयमें गवर्नमेण्टकी चिट्ठी आयी है कि इस आसामीके निवेदनके अनुकूल निर्णय (favourable consideration) होनेकी सभावना है। यह कह गोसाईंने उन्हें उपेन आदिसे कुछ इस तरहकी आवश्यक बातें निकलवानेको कहा, जैसे—गुप्त समितिकी शाखा कहाँ थी, कौन थे उसके नेता इत्यादि। नकली approver आमोद-प्रिय एव रसिक आदमी थे, उन्होने उपेंद्रनाथके साथ परामर्श कर गोसाईंको कुछ एक कल्पित नाम जता दिये कि मद्रासमें विश्वभर पिल्लै, सातारामें पुरुषोत्तम नाटेकर, बबईमें प्रोफेसर भट्ट और बड़ौदामें कृष्णाजीराव भाऊ थे इस गुप्त समितिकी शाखाके नेता। गोसाईंने आनदित हो यह विश्वासयोग्य संवाद पुलिसको दे दिया। पुलिसने भी मद्रासमें कोना-कोना छान मारा, बहुत-से छोटे-बड़े पिल्लै मिले, लेकिन एक भी पिल्लै विश्वंभर या अर्ध विश्वभरतक न मिला, सातारामें पुरुषोत्तम नाटेकर भी अपना अस्तित्व घने अंधकारमें छिपाये रहे, बबईमें एक प्रोफेसर भट्ट मिल गये, किंतु वे थे निरीह राजभक्त सज्जन, उनके पीछे कोई गुप्त समिति होनेकी सभावना नही थी। फिर भी, गोसाईंने गवाही देते समय, उपेनसे पहले कभी सुनी हुई बातके आधारपर कल्पनाराज्यके निवासी विश्वंभर पिल्लै इत्यादि षड्यत्रके महारथियोकी नॉर्टनके श्रीचरणोमें बलि चढा अपनी अद्भुत prosecution (अभियोग सिद्धान्त) को पुष्ट किया। वीर कृष्णाजीराव भाऊको लेकर पुलिसने और एक रहस्य रचा। उन लोगोने बागानसे बड़ौदाके कृष्णाजीराव देशपाडेके नाम किसी "घोष" द्वारा प्रेषित टेलीग्राम की नकल प्रस्तुत की। उस नामका कोई आदमी था कि नही, बड़ौदावासियोको इसका कोई सधान नही मिला, लेकिन चूंकि सत्यवादी गोसाईंने बड़ौदावासी कृष्णाजीराव

भाऊकी बात कही है तो निश्चय ही कृष्णाजीराव भाऊ और कृष्णाजीराव देशपाडे हैं एक ही व्यक्ति। और कृष्णाजीराव देशपाडे हो या न हो, हमारे श्रद्धेय बधु केशवराव देशपाडेका नाम चिट्ठी-पत्रीमें मिला था। इसलिए निश्चय ही कृष्णाजीराव भाऊ और कृष्णाजीराव देशपाडे एक ही व्यक्ति हैं। इससे यह प्रमाणित हो गया कि केशवराव देशपाडे हैं गुप्त षड्यत्रके एक प्रधान पडा। ऐसे सब असाधारण अनुमानोपर प्रतिष्ठित थी नॉर्टन साहबकी वह विख्यात theory (परिकल्पना)।

गोसाईंकी बातका विश्वास करनेसे यह भी विश्वास करना होगा कि उन्हीके कहनेसे हमारा निर्जन कारावास खतम हुआ एव हमें इकट्ठे रहनेका हुकुम मिला। उन्होने बताया कि पुलिसने उन्हें सबके बीचमें रख षड्यंत्रकी गुप्त बातें निकलवानेके लिए यह व्यवस्था की है। गोसाईं नही जानते थे कि पहले ही सबने उनके नूतन व्यवसायकी गध पा ली है, इसलिए कौन षड्यत्रमें लिप्त है, शाखा समिति कहाँ है, कौन पैसे देते या सहायता करते हैं, अब कौन गुप्त समितिका काम चलायेंगे आदि ऐसे अनेक प्रश्न पूछने लगे। इन सब प्रश्नोंके उन्हें कैसे उत्तर मिले इसका दृष्टात मैंने ऊपर दिया है। लेकिन गोसाईंकी अधिकाश बातें ही झूठी थी। डा० डैलीने हमें बताया था कि उन्हीने इमर्सन साहबसे कह-सुनकर यह परिवर्तन कराया था। सभवतः डैलीकी बात ही सच है; हो सकता है कि इस नूतन व्यवस्थासे अवगत होनेके बाद पुलिसने ऐसे लाभकी कल्पना की हो। जो भी हो, इस परिवर्तनसे मुझे छोड अन्य सबको परम आनद मिला, मैं उस समय लोगोसे मिलने-जुलनेको अनिच्छुक था, तब मेरी साधना खूब जोरोंसे चल रही थी। समता, निष्कामता और शातिका कुछ-कुछ आस्वाद पाया था; किंतु तबतक यह भाव दृढ नही हुआ था। लोगोंके साथ मिलनेसे, दूसरोंके चितनस्रोतका आघात मेरे अपक्व नवीन चिंतनपर पड़ते ही इस नये भावका ह्रास हो सकता है, वह जा सकता है। और सचमुच यही हुआ। उस समय नही जानता था कि मेरी साधनाकी पूर्णताके लिए विपरीत भावका जगना आवश्यक है, इसीलिए अंतर्यामीने हठात् मुझे मेरी प्रिय निर्जनतासे वचित कर उद्दाम रजोगुणके स्रोतमें बहा दिया। दूसरे सभी आनंदमें अधीर हो उठे। उस रात जिस कमरेमें हेमचंद्र दास, शचीद्र सेन इत्यादि गायक थे वह कमरा सबसे बडा था, अधिकांश आसामी वही एकत्रित हुए थे और रातके दो-तीन बजेतक कोई भी सो न सका। सारी रात हंसीके ठहाके, गानेका अविराम स्रोत, इतने दिनकी रुद्ध कथा-वार्ता वर्षा-ऋतुकी वन्याकी तरह बहती रहनेसे नीरव कारागार कोलाहलसे ध्वनित हो उठा।

हम सो गये लेकिन जितनी वार नींद टूटी उतनी ही वार सुनी समान वेगसे चलती हुई वही हंसी, वही गानें, वही गप्पें। अंतिम प्रहरमें वह स्रोत क्षीण हो गया, गायक भी सो गये। हमारा वार्ड नीरवतामें डूब गया।

कारागृह व स्वाधीनता

लगभग सारी मनुष्यजाति ही है बाह्य अवस्थाकी दास, स्थूल जगत्की अनुभूतिमें ही आवद्ध। सब मानसिक क्रियाए इस वाह्य अनुभूतिका ही आश्रय लेती है, बुद्धि भी स्थूलकी सकीर्ण सीमा लाघनेमें अक्षम है; प्राणके सुख-दुःख हैं बाह्य घटनाकी प्रतिध्वनिमात्र। शरीरका आधिपत्य-जनित है यह दासत्व। उपनिषद्में कहा गया है, "जगत्-स्रष्टा स्वयंभूने शरीरके सब द्वारोको वहिर्मुखी करके गढा है इसलिए सवकी दृष्टि वहिर्जगत्में आवद्ध है, अतरात्माको कोई भी नही देखता। वे धीर प्रकृति महात्मा विरल है जिन्होने अमृतकी लालसासे चक्षुओको भीतरकी ओर फिरा आत्माके प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं।" हम भी साधारणतः जिस वहिर्मुखी स्थूल दृष्टिसे मनुष्यजातिका जीवन देखते हैं उस दृष्टिसे शरीर ही है हमारा मुख्य सवल। यूरोपको हम जितना भी जडवादी क्यो न कहें पर असलमें मनुष्यमात्र ही है जड़वादी। शरीर है धर्म साधनका उपाय, हमारा बहु-अश्वयुक्त रथ, जिस देह-रथमें आरोहण कर हम संसारपथपर दौड लगाते हैं। किन्तु हम देहका अयथार्थ प्राधान्य स्वीकार कर देहात्मक वुद्धिको ऐसे प्रश्रय देते हैं कि वाह्य कर्म और वाह्य शुभाशुभद्वारा सपूर्णतया बधे रह जाते हैं। इस अज्ञानका फल है जीवनव्यापी दासत्व और पराधीनता। सुख-दु.ख, शुभाशुभ, सपद्-विपद् हमारी मानसिक अवस्थाको अपना अनुयायी बनानेके लिए सचेष्ट तो होते ही हैं, हम भी कामनाका ध्यान करते-करते उस स्रोतमें वह जाते हैं। सुखकी लालसासे, दु.खके भयसे पराश्रित हो जाते हैं, पर-दत्त सुख और दुःखको ग्रहण कर अशेष कष्ट और लाछना भोगते हैं। क्योकि, प्रकृति हो या मनुष्य, जो हमारे शरीरपर थोड़ा भी आधिपत्य जमा सकता है या अपनी शक्तिको अधिकार-क्षेत्रमें ले आ सकता है, उसी के प्रभावके अधीन रहना होता है। इसका चरम दृष्टात है शत्रुग्रस्त या कारावद्धकी अवस्था। किंतु जो वंधु-वांधवोंसे वेष्टित हो स्वाधीनतासे मुक्त आकाशमें विचरण करते हैं, कारावद्धोकी तरह उनकी भी यही दुर्दशा है।

शरीर ही है कारागृह और देहात्मक-बुद्धिरूप अज्ञानता है काराख्प शत्रु।

यह कारावास है मनुष्यजातिकी चिरतन अवस्था। दूसरी ओर, साहित्य और इतिहासके प्रत्येक पन्नेपर देखनेमें आता है स्वाधीनता पानेके लिए मनुष्यजातिका अदमनीय उच्छ्वास और प्रयास। जैसे राजनीतिक या सामाजिक क्षेत्रमें वैसे ही व्यक्तिगत जीवनमें युग-युगमें हुई है यही चेष्टा। आत्मसयम, आत्मनिग्रह, सुख-दुःख वर्जन, Stoicism (स्टोइकवाद), Epicureanism (सुखवाद), asceticism (वैराग्य), वेदात, बौद्धधर्म, अद्वैतवाद, मायावाद, राजयोग, हठयोग, गीता, ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग आदि नाना पथोका है एक ही गम्यस्थल। उद्देश्य—देह-विजय, स्थूलके आधिपत्यका वर्जन, आतरिक जीवनकी स्वाधीनता। पाश्चात्य विज्ञानविदोने यह सिद्धान्त बनाया है कि स्थूल जगत्के सिवा दूसरा कोई जगत् नही, स्थूलपर प्रतिष्ठित है सूक्ष्म, सूक्ष्म अनुभव है स्थूल अनुभवकी प्रतिकृतिमात्र, व्यर्थ है मनुष्यका स्वाधीनता-प्रयास, धर्म-दर्शन और वेदात हैं अलीक कल्पनाए, सपूर्ण भूतप्रकृति-आबद्ध हमारा वह बधन-मोचन या भूत प्रकृतिकी सीमाका उल्लघन है मिथ्या चेष्टा। किन्तु मानव-हृदयके ऐसे गूढतर स्तरमें निहित है यह आकाक्षा कि हजार युक्तिया भी इसका उन्मूलन करनेमें असमर्थ हैं। मनुष्य विज्ञानके सिद्धान्तसे कभी संतुष्ट नही रह सकता। चिरकालसे मनुष्य अस्पष्टतः अनुभव करता आ रहा है कि स्थूलजयमें समर्थ सूक्ष्म वस्तु उसके अभ्यतरमें दृढतासे वर्तमान है, सूक्ष्ममय अधिष्ठाता हैं नित्यमुक्त, आनदमय पुरुष। वह नित्यमुक्ति और निर्मल आनद पाना है धर्मका उद्देश्य। धर्मका यह जो उद्देश्य है, विज्ञान-कल्पित evolution (विकास) का उद्देश्य भी वही है। विचारशक्ति और उसका अभाव पशु और मनुष्यका प्रकृत अन्तर नही। पशुमें विचारशक्ति है, लेकिन पशुदेहमें उसका उत्कर्ष नही होता। पशु और मनुष्यमें असली भेद यह है कि शरीरका सपूर्ण दासत्व स्वीकार करना है पाशविक अवस्था और शरीरजय और आतरिक स्वाधीनताकी चेष्टा ही है मनुष्यत्वका विकास। यह स्वाधीनता ही है धर्मका प्रधान उद्देश्य, इसे ही कहते हैं मुक्ति। इस मुक्तिके लिए हम अंत.करणस्थ मनोमय प्राण शरीर नेताको ज्ञानद्वारा पहचानने या कर्म और भक्तिद्वारा प्राण, मन और शरीरको अर्पित करनेके लिए सचेष्ट होते हैं। **योगस्थः कुरु कर्माणि**—गीताका जो प्रधान उपदेश है यह स्वाधीनता ही है वह गीतोक्त योग। आतरिक सुख-दु.ख जब वाह्य शुभाशुभ, सम्पद्-विपद्का आश्रय न ले स्वय-जात, स्वयं-प्रेरित और स्व-सीमाबद्ध होते हैं तब मनुष्यकी साधारण अवस्थासे विपरीत अवस्था होती है, उस समय

वाह्य जीवनको आंतरिक जीवनका अनुयायी बनाया जा सकता है, कर्म-वधन शिथिल हो सकता है। गीताके आदर्श पुरुष कर्मफलमें आसक्ति त्याग पुरुषोत्तममें कर्मसन्यास करते हैं। **दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत-स्पृहः**, आतरिक स्वातत्र्य प्राप्त कर आत्मरत और आत्मसतुष्ट हो रहते हैं। वे साधारण जनकी तरह सुखकी लालसासे, दु.खके भयसे किसीपर आश्रित नही होते, परदत्त सुख-दु.ख ग्रहण नही करते, फिर भी कर्मोके भोग नही भोगते। वरन् महासयमी, महाप्रतापान्वित देवासुर युद्धमें राग, भय, क्रोधसे अतीत महारथी हो भगवत्प्रेरित जो कर्मयोगी राष्ट्रविप्लव, धर्मविप्लव या प्रतिष्ठित राज्य, धर्मसमाजकी रक्षा कर निष्काम भावसे भगवत्कर्म सुसपन्न करते हैं, वे हैं गीताके श्रेष्ठ पुरुष।

आधुनिक युगमें हम खडे हैं नूतन और पुरातनके सधिस्थलपर। मनुष्य निरतर अपने गतव्य स्थानकी ओर अग्रसर हो रहा है, कभी-कभी समतल भूमिको त्याग ऊपर आरोहण करना होता है और आरोहणके समय राज्य, समाज, धर्म और ज्ञानमें विप्लव होता है। आजकल स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर आरोहण करनेका प्रयास चल रहा है। पाश्चात्य वैज्ञानिक पडितो-द्वारा स्थूल जगत्की सागोपाग परीक्षा और नियम-निर्धारण से आरोहण मार्गके चतुःपार्श्वस्थ समतल भूमि परिष्कृत हो गयी है। सूक्ष्म जगत्के विशाल राज्यमें पाश्चात्य ज्ञानियोका प्रथम पदक्षेप हो रहा है, बहुतोका मन उस राज्यको जीतनेकी आशासे प्रलुब्ध हो उठा है। इसके अलावा दूसरे लक्षण भी दिखायी दे रहे हैं—जैसे थोडे दिनोमें थियोसोफीका विस्तार, अमेरिकामें वेदान्तका आदर, पाश्चात्य दर्शनशास्त्र और चितनप्रणालीमें परोक्षरूपसे भारतवर्षका कुछ आधिपत्य आदि। किन्तु सर्वश्रेष्ठ लक्षण है भारतका आकस्मिक और आशातीत उत्थान। भारतवासी जगत्के गुरु-पदपर अधिकार कर नये युगका परिवर्तन करनेके लिए उठ रहे हैं। उनकी सहायतासे वचित रहनेपर पाश्चात्य-गण उन्नति करनेकी चेष्टामे सिद्धकाम नही हो सकेंगे। जैसे आतरिक जीवनके विकासके सर्वप्रधान साधन-ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और योगाभ्यासमें भारतको छोड़ दूसरे किसी देशका उत्कर्ष नही हुआ उसी तरह मनुष्यजातिके लिए आवश्यक चित्तशुद्धि, इद्रियसयम, ब्रह्मतेज, तपःक्षमता और निष्काम कर्मयोग-शिक्षा हैं भारतकी ही सपत्ति। बाह्य सुख-दु.खकी उपेक्षा कर आतरिक स्वाधीनता अर्जित करना भारतवासीके लिए ही साध्य है, निष्काम कर्ममें भारतवासी ही समर्थ है, अहंकार-वर्जन और कर्ममें निर्लिप्तता उन्हीकी शिक्षा और सभ्यताका चरम उद्देश्य होनेके कारण जातीय चरित्रमें वीजरूपमें निहित है।

इस बातका याथार्थ्य मैंने पहले अलीपुर जेलमें अनुभव किया। इस जेलमें अधिकतर चोर, डकैत और हत्यारे रहते हैं। यद्यपि कैदियोंके साथ हमारी बातचीत निषिद्ध थी तथापि व्यवहारमें यह नियम पूरी तरह नही पाला जाता था, इसके अलावा रसोइये, पानीवाले और झाड़ू देनेवाले मेहतर आदिके साथ सपर्क हुए बिना नही चलता था, बहुत बार उनके साथ अबाध वाक्यालाप होता। जो मेरे साथ उसी अपराधमें पकडे गए थे वे भी "नृशस हत्यारोका दल" आदि दुःश्राव्य विशेषणोंसे कलकित और निंदित होते। यदि भारतवासीके चरित्रको कही घृणाकी दृष्टिसे देखना हो, यदि किसी अवस्थामें उसके निकृष्ट, अधम और जघन्य भावसे परिचय पाना संभव हो तो अलीपुर जेल ही है वह स्थान और अलीपुरका कारावास ही है वह निकृष्ट, हीन अवस्था। इस स्थानमें, ऐसी अवस्थामें मैंने बारह महीने काटे। इन बारह महीनोंके अनुभवका फल—भारतवासियोकी श्रेष्ठताके सबधमें दृढ धारणा, मनुष्यचरित्रके प्रति द्विगुण भक्ति और स्वदेश एव मनुष्यजातिकी भावी उन्नति और कल्याणकी दस गुनी आशा ले कर्म-क्षेत्रमें लौटा हूँ। यह मेरे स्वभावजात optimism (आशावाद) या अतिरिक्त विश्वासका फल नही। श्रीयुत विपिन चंद्र पाल एक बार जेलमें यह अनुभव कर आये थे, अलीपुर जेलके भूतपूर्व डाक्टर डैली साहब भी इसका समर्थन करते थे। डैली साहब थे मानव-चरित्रसे अभिज्ञ, सहृदय और विचक्षण व्यक्ति, मानव-चरित्रकी सारी निकृष्ट और जघन्य वृत्तिया प्रति-दिन उनके सामने विद्यमान रहती, फिर भी वे मुझसे कहते, "भारतके सज्जन या नीच लोगोको, समाजके सभ्रांत व्यक्ति या जेलके जितने भी कैदियोको देखता-सुनता हूँ उससे मेरी यही धारणा दृढ हुई है कि चरित्र और गुणमें तुम लोग हमसे बहुत ऊंचे हो। इस देशके कैदियो और यूरोप-के कैदियोमें आकाश-पातालका अतर है। इन युवकोको देखकर मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी है। इनका आचरण, चरित्र और नाना सद्गुण देखते हुए कौन कल्पना कर सकता है कि ये anarchist (अरा-जकतावादी) या हत्यारे हैं। उनमें क्रूरता, उदाम भाव, अधीरता या धृष्टता थोड़ी भी नही पाता, पाता हूँ सब उल्टे गुण ही।" निस्संदेह चोर और डाकू जेलमें साधु-सन्यासी नही बन जाते। अगरेजोकी जेल चरित्र सुधारनेकी जगह नही, साधारण कैदियोंके लिए तो उल्टे चरित्रहानि और मनुष्यत्व नाशका साधन है। जो चोर, डाकू और खूनी थे, वे चोर, डाकू और खूनी ही रहते हैं, जेलमें चोरी करते हैं, कडी पाबदियोके बावजूद नशा करते हैं, धोखा देते हैं। पर इससे क्या? भारतीयका मनुष्यत्व

जाकर भी नही जाता। सामाजिक अवनतिके कारण पतित, मनुष्यत्व-नाशके फलस्वरूप निष्पेषित और बाहर कालिमा, कदर्थभाव, कलक और विकृति, फिर भी भीतर वही लुप्तप्राय मनुष्यत्व भारतवासीके मज्जागत सद्‌गुणमें छिप आत्मरक्षा करता है, बार-बार उसकी बातोमे और आचरणमें प्रकट होता है। जो थोडा-सा ऊपरी कीचड देख घृणासे मुँह फेर लेते है, केवल वे ही कह सकते हैं कि हमने इनमें मनुष्यत्व लेशमात्र भी नही देखा। किंतु जो साधुताका अहकार त्याग अपनी सहजसाध्य स्थिर दृष्टिसे निरीक्षण करते है वे कभी उनकी हाँ में हाँ नही मिलायेंगे। श्रीयुत विपिन चद्र पालने बक्सर जेलमें चोर-डाकुओके बीचमें ही सर्वघटमें नारायणके दर्शन कर छः मासके कारावासके बाद उत्तरपाडाकी सभामें मुक्त कठसे इस बातको स्वीकारा था। मै भी अलीपुर जेलमें ही हिन्दू धर्मके इस मूलतत्त्वको हृदयंगम कर पाया, नरदेहमें सर्वप्रथम चोर, डाकू और खूनीमें नारायणको उपलब्ध किया।

इस देशमें सैकडो निरपराध व्यक्ति दीर्घकालतक जेल-रूपी नरकवासके भोगसे पूर्वजन्मार्जित दुष्कर्मके फलको हल्का कर अपना स्वर्गपथ परिष्कृत कर रहे हैं। किंतु साधारण पाश्चात्यवासी जो धर्मभावसे पूत और देव-भावापन्न नही वे ऐसी परीक्षामें कहाँतक उत्तीर्ण होते हैं इसका सहज अनुमान जो पश्चिममें रह चुके है या जिन्होने पश्चिमी चरित्र-प्रकाशक साहित्य पढा है, वे ही कर सकते हैं। ऐसे स्थलोमें या तो उनका निराशा-पीड़ित, क्रोध और दु.खके अश्रु जलसे प्लावित हृदय पार्थिव नरकके घोर अधकारमें एवं सहवासियोंके संसर्गमें पड उनकी क्रूरता और नीचवृत्तिका आश्रय लेता है;—या दुर्बलताके निरतिशय निष्पेषणसे बल-बुद्धिहीन हो केवल मनुष्यका नष्टावशेष बच रहता है।

अलीपुरके एक निरपराधीकी बात सुनाता हूँ। इस व्यक्तिको डकैती-में शामिल होनेके कारण दस सालके सश्रम कारावासका दड मिला था। जातिका था ग्वाला, अशिक्षित, लिखने-पढनेके पास न फटकता, धर्म और संबन्धके नाते उसमें थी भगवान्‌पर आस्था और आर्यशिक्षा-सुलभ धैर्य और अन्यान्य सद्‌गुण। इस वृद्धका भाव देख मेरा विद्या और सहिष्णुताका अहंकार चूर्ण हो गया। वृद्धके नयनोमें सदा विराजता प्रशात, सरल मैत्रीभाव और मुँहमें सर्वदा अमायिक, प्रीतिपूर्ण आलाप। कभी-कभी अपने निरप-राध होनेपर भी कष्टभोगकी बात कहते, स्त्री-पुत्रके बारेमें बताते, कब भगवान् कारासे मुक्ति दिला स्त्री-पुत्रके मुखका दर्शन करायेंगे, यह भाव भी प्रकाशित करते, लेकिन कभी भी उन्हें निराश और अधीर नही देखा।

भगवान्‌की कृपाके भरोसे धीर भावसे जेलका सब काम संपन्न करते हुए दिन काट रहे थे। वृद्धकी सारी चेष्टाएँ और भावनाएँ अपने लिए नही थी, थी दूसरोकी सुख-सुविधाओंके लिए। उनकी हर वातसे झलकती थी दया और दु.खियोंके प्रति सहानुभूति। पर-सेवा था उनका स्वभाव-धर्म। नम्रतामें ये सारे सद्‌गुण और भी फूट उठे थे। अपनेसे सहस्र गुना उच्च हृदय देख इस नम्रताके सामने मैं सर्वदा लज्जित हो जाता, वृद्धसे सेवा कराते सकोच होता था, लेकिन वे छोडते नही थे, वे सदा ही मेरे सुख-स्वस्तिके लिए चिंतित रहते। जैसा मेरेपर वैसा ही सवपर—विशेषतया निरपराधो और दु.खीजनोके प्रति उनकी दयादृष्टि और विनीत सेवा-सम्मान और भी अधिक था। तिसपर भी चेहरेपर और आचरणमें कैसा एक स्वाभाविक और प्रशंत गाभीर्य और महिमा थी! देशके प्रति भी इनका यथेष्ट अनुराग था। इस वृद्ध कैदीकी दया-दाक्षिण्यपूर्ण श्वेतश्मश्रुमडित सौम्यमूर्ति चिरकाल मेरे स्मृति-पटपर अकित रहेगी। इस अवनतिके समय भी भारतके किसानोमें—जिन्हें हम अशिक्षित और छोटी जात कहते है,—ऐसी हिन्दू-संतानें मिलती है, इसीलिए है भारतका भविष्य आशाजनक। शिक्षित युवकमडली और अशिक्षित कृषकवर्ग—इन दो वर्गोमें ही निहित है भारतका भविष्य, इनके मिलनसे ही गठित होगी भावी आर्यजाति।

ऊपर एक अशिक्षित खेतिहरकी कहानी सुनायी, अव दो शिक्षित युवकोकी कहानी सुनाता हूँ। इन्हें सात सालका सश्रम कारावासका दड मिला था। ये थे हैरिसन रोडके दो कविराज, नगेंद्रनाथ और धरणी। ये भी जिस शात भावसे, सतुष्ट मनसे इस आकस्मिक विपत्ति, इस अन्याय राजदंडको सह रहे थे, उसे देख आश्चर्यचकित रह जाना पडता था। कभी भी उनके मुखसे क्रोध-दुष्ट या असहिष्णुता-प्रकाशक एक भी वात नही सुनी। जिनके दोपसे जेलरूपी नरकमें यौवन काटना पडा था उनके प्रति जरा-सा भी क्रोध, तिरस्कारका भाव या विरक्तितक का कोई लक्षण कभी नही देखा। वे थे आधुनिक शिक्षाके गौरवस्थल पाश्चात्य भाषा और पाश्चात्य विद्यासे अनभिज्ञ। मातृभाषा ही थी इनका संवल, लेकिन अगरेजी-शिक्षाप्राप्त लोगोंमें उनके तुल्य कम ही लोग देखे। दोनोने ही मनुष्य या विधाताके आगे शिकायत या नालिश न कर सहास्य-वदन नतमस्तक दड ग्रहण कर लिया था। दोनो ही भाई थे साधक लेकिन विभिन्न प्रकृतिके। नगेंद्र थे धीर प्रकृति, गभीर और वुद्धिमान्, हरिकथा और धर्म-चर्चामें अत्यत रुचि रखनेवाले। जब हमें निर्जन कारावासमें रखा गया था तव जेलके अधिकारियोंने जेलकी कड़ी मशक्कतके वाद हमें पुस्तकें पढ़नेकी अनुमति

दी थी। नगेंद्रकी इच्छा थी भगवद्गीता पढनेकी, मिली बाइबल। बाइबल पढ़कर उनके मनमे कैसे-कैसे भाव उठते, कठघरेमें बैठकर सब मुझे बताते। नगेंद्रने गीता नही पढ़ी, किंतु आश्चर्य! बाइबलकी कथा न कह वे गीताके श्लोकोका अर्थ बोल रहे थे—कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णमुखसे नि सृत भगवद् गुणात्मक सारी महती उक्तिया उसी वासुदेवके मुखकमलसे इस अलीपुरके कठघरेमें फिरसे नि.सृत हो रही है। गीता न पढी होनेपर बाइबलमे गीताका समतावाद, कर्मफल त्याग, सर्वत्र ईश्वर-दर्शन इत्यादि भाव उपलब्ध करना सामान्य साधनाका लक्षण नही। धरणी नगेंद्रके समान बुद्धिमान् नही थे, लेकिन थे विनीत, कोमल प्रकृति और स्वभावसे ही भक्त। वे सदा ही मातृध्यानमें विभोर रहते, उनके चेहरे-पर प्रसन्नता, सरल हंसी और कोमल भक्ति-भाव देख जेलके जेलत्वकी उपलब्धि कठिन हो जाती थी। इन्हें देख कौन कह सकता है कि बगाली हीन और अधम है? यह शक्ति, यह मनुष्यतत्व यह पवित्र अग्नि बस छिपी पड़ी है राखके ढेरमें।

ये दोनो ही थे निरपराध। बिना दोषके कारावद्ध होनेपर भी निज गुणो या शिक्षाके बलपर बाह्य सुख-दु खका आधिपत्य अस्वीकार कर आतरिक जीवनकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें समर्थ थे। किन्तु जो अपराधी है, उनमें भी जातीय चरित्रके सद्गुण विकसित होते। मैं बारह महीने अली-पुरमें था, दो-एकको छोड़ जितने भी कैदी, चोर-डाकू और खूनियोके साथ हमारा सपर्क हुआ सबसे ही हम सद्व्यवहार और अनुकूलता पाते। बल्कि आधुनिक शिक्षासे दूषित हम लोगोमें इन सब गुणोका अभाव देखा जाता है। आधुनिक शिक्षाके अनेक गुण हो सकते हैं किन्तु सौजन्य और नि.स्वार्थ परसेवा उन गुणोमें नही आते। जो दया और सहानुभूति है आर्यशिक्षा-के मूल्यवान् अग उन्हें इन चोर-डाकुओमें भी देखता। मेहतर, भगी और पानीवालेको बिना दोषके हमारे साथ-साथ निर्जन-कारावासका दु.ख-कष्ट थोडा-बहुत भोगना पडता, लेकिन उन्होने इससे एक दिन भी हमारे ऊपर असतुष्टि या क्रोध नही दिखाया। देशीय जेलरके सामने भले ही कभी-कभी अपना दुखड़ा रो लेते थे लेकिन हमारी कारामुक्तिकी प्रार्थना प्रसन्न-वदन करते। एक मुसलमान कैदी अभियुक्तोंसे अपने बेटो जैसा स्नेह करते थे, विदा लेते समय वे अपने आसू न रोक पाये। देशके लिए यह लाछना और कष्ट भोगते देख वे और सबको सबोधित कर अफसोस करते, "देखो, ये हैं कुलीन, धनियोकी संतान, गरीब-दुखियोकी रक्षा करने जानेपर इनकी यह दुर्दशा।" जो पाश्चात्य सभ्यताके पिट्ठू हैं उनसे पूछता हूँ, इंगलैंडकी

जेलमें निम्नश्रेणीके कैदियो, चोरों, डाकुओं और खूनियोंमें मिलेगा ऐसा आत्मसंयम, दया-दाक्षिण्य, कृतज्ञता और परार्थ भगवद्भक्ति ? असलमें तो यूरोप है भोक्तृभूमि और भारत है दातृभूमि। गीतामें दो श्रेणीके लोग वर्णित है—देव और असुर। भारतवासी है स्वभावतः देवप्रकृति और पाश्चात्यगण स्वभावत. असुरप्रकृति। किन्तु इस घोर कलियुगमें, तमो-गुणके प्राधान्यवश आर्यशिक्षाके लोपसे, देशकी अवनतिसे हम निकृष्ट आसु-रिक वृत्ति संचित कर रहे है और दूसरी ओर पाश्चात्य लोग राष्ट्रीय उन्नति और मनुष्यत्वके क्रमविकासके गुणद्वारा देवभाव अर्जित कर रहे है। इसके वावजूद उनके देवभावमें कुछ असुरत्व और हमारे आसुरिक भावमें भी देवभाव अस्पष्टतया प्रतीयमान है। उनमें जो श्रेष्ठ हैं वे भी पूरी तरह असुरत्व-रहित नही। निकृष्ट और निकृष्टकी जव हम तुलना करते हैं तो इसकी यथार्थता अति स्पष्ट रूपमें समझमें आ जाती है।

इस विषयमें बहुत कुछ लिखनेको है, प्रवधके बहुत लंवा हो जानेके भयसे नही लिखा। तो भी जेलमें जिनके आचरणमें इस आतरिक स्वाधीनता-के दर्शन किये हैं, वे हैं इस देवभावके चरम दृष्टांत। परवर्ती प्रवंधमें इस विषयपर लिखनेकी इच्छा है।

आर्य आदर्श और गुणत्रय

'कारागृह और स्वाधीनता' शीर्षक लेखमे कई निरपराध कैदियोके मानसिक भावका वर्णन कर मैंने यही प्रतिपादित करनेकी चेष्टा की है कि आर्य-शिक्षाके प्रभावसे जेलमे भी भारतवासियोकी आतरिक स्वाधीनता-रूप बहुमूल्य पैतृक सपत्ति नष्ट नही होती—वल्कि घोर अपराधियोमें भी हजारो वर्षोसे सचित वह आर्य-चरित्रगत देव-भाव भग्नावशिष्ट रूपमें वर्तमान रहता है। आर्य-शिक्षाका मूल मत्र है सात्त्विक भाव। जो सात्त्विक है वह विशुद्ध है। साधारणतया मनुष्यमात्र ही है अपवित्र। रजोगुणका प्रावल्य होनेसे, तमोगुणके घोर अधकारके छा जानेसे यह अशुद्धि परिपुष्ट और वर्धित होती है। मनका मालिन्य है दो प्रकारका—जडता या अप्रवृत्तिजनित मालिन्य, यह तमोगुणसे उत्पन्न होता है। दूसरा, उत्तेजना या कुप्रवृत्तिजनित मालिन्य; यह रजोगुणसे उत्पन्न होता है। तमोगुणके लक्षण है अज्ञान-मोह, बुद्धिकी स्थूलता, चितनकी असलग्नता, आलस्य, अतिनिद्रा, कर्ममें आलस्यजनित विरक्ति, निराशा, विषाद, भय, एक शब्दमे निश्चेष्टताके पोषक सभी भाव। जडता और अप्रवृत्ति अज्ञानके फल है, उत्तेजना तथा कुप्रवृत्ति भ्रात ज्ञानसे उत्पन्न होते हैं। परन्तु तमो-मालिन्यको हटाना हो तो वह रजोगुणके उद्रेकद्वारा ही हो सकता है। रजोगुण ही प्रवृत्तिका कारण है और प्रवृत्ति ही है निवृत्तिकी पहली सीढी। जो जड है वह निवृत्त नही, कारण जडभाव ज्ञानशून्य है और ज्ञान ही है निवृत्तिका मार्ग। कामनाशून्य हो जो कर्ममे प्रवृत्त होता है, वही निवृत्त है—कर्मत्यागका नाम निवृत्ति नही। इसीलिए भारतकी घोर तामसिक अवस्थाको देख स्वामी विवेकानद कहा करते थे, "रजोगुण चाहिये, देशमें कर्मवीर चाहिये। प्रवृत्तिका प्रचड स्रोत वह जाने दो। परवाह नही यदि उसमे पाप भी आ घुसे, वह तामसिक निश्चेष्टताकी अपेक्षा हजारगुना अच्छा होगा।"

वास्तवमें हम घोर तममें निमग्न है, फिर भी सत्त्वगुणकी दुहाई देते

हुए महासात्त्विकका स्वाग भर हम अपनी बड़ाई करते फिरते है। बहुतोंका यह मत है कि सात्त्विक होनेके कारण ही हम राजसिक जातियोद्वारा पराजित हुए, सात्त्विक होनेके कारण ही हम इस प्रकार अवनत और अधः-पतित हैं। ऐसी युक्तियाँ दे ईसाईधर्मसे हिन्दूधर्मकी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते हैं। ईसाई-जाति प्रत्यक्ष फलवादी है, इस जातिके लोग धर्मका ऐहिक फल दिखा धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करते है; इनका कहना है कि ईसाई-जाति ही जगत्में प्रबल है, अतएव ईसाईधर्म ही है श्रेष्ठ धर्म। और हममें से कितनोका कहना है कि यह भ्रम है; ऐहिक फलको देखकर धर्मकी श्रेष्ठताका निर्णय नही किया जा सकता, पारलौकिक फलको देखना चाहिये; हिन्दूजाति अधिक धार्मिक है इसीलिए वह असुरप्रकृति बलवान् पाश्चात्य जातिके अधीन हुई। परन्तु इस युक्तिमें आर्यज्ञान-विरोधी घोर भ्रम निहित है। सत्त्वगुण कभी भी अवनतिका कारण नही हो सकता; यहाँतक कि सत्त्वप्रधान जाति दासत्वकी शृंखलामें बँधकर नही रह सकती। ब्रह्मतेज ही है सत्त्वगुणका मुख्य फल, क्षात्र तेज है ब्रह्मतेजकी भित्ति। आघात पानेपर शात ब्रह्मतेजसे क्षात्रतेजका स्फुलिंग निर्गत होता है, चारो दिशाएँ धधक उठती हैं। जहाँ क्षात्रतेज नही वहाँ ब्रह्मतेज टिक नही सकता। देशमें यदि एक भी सच्चा ब्राह्मण हो तो वह सौ क्षत्रियोकी सृष्टि कर सकता है। देशकी अवनतिका कारण सत्त्वगुणका आतिशय्य नही, बल्कि रजोगुणका अभाव है, तमोगुणका प्राधान्य है। रजोगुणके अभावसे हमारा अन्तर्निहित सत्त्व म्लान हो तममें विलीन हो गया। आलस्य, मोह, अज्ञान, अप्रवृत्ति, निराशा, विषाद, निश्चेष्टताके साथ-साथ देशकी दुर्दशा और अवनति भी बढने लगी। यह मेघ पहले हलका और विरल था, फिर कालक्रममें वह इतना अधिक घना हो उठा, अज्ञान और अंधकारमें डूब हम इतने निश्चेष्ट और महत्त्वाकाक्षा-रहित हो गये कि भगवत्प्रेरित महापुरुषोंके उदय होनेपर भी वह अधकार पूर्णत. तिरोहित नही हुआ। तब सूर्य भगवान्ने रजोगुणजनित प्रवृत्तिद्वारा देशकी रक्षा करनेका सकल्प किया।

जाग्रत रजःशक्तिके प्रचंड रूपसे कार्यशीला होनेपर तम पलायनोद्यत हो तो जाता है परन्तु दूसरी ओरसे स्वेच्छाचार, कुप्रवृत्ति और उद्दाम उच्छृंखलता प्रभृति आसुरी भावोंके घुस आनेकी आशंका बनी रहती है। रजःशक्ति यदि अपनी-अपनी प्रेरणासे उन्मत्तताकी विशाल प्रवृत्तिके उदर-पूरणको ही लक्ष्य बना कार्य करे तो इस आशंकाके लिए यथेष्ट कारण है। उच्छृखल भावसे स्वपथगामी होनेपर रजोगुण अधिक कालतक नही

टिक सकता, उसमें क्लाति आ जाती है, तमस् आ जाता है, प्रचण्ड तूफानके बाद आकाश निर्मल और परिष्कृत न हो मेघाच्छन्न और वायुस्पन्दनरहित हो जाता है। राष्ट्रविप्लवके बाद फ्रासकी यही दशा हुई। उस राष्ट्र-विप्लवमें रजोगुणका प्रचण्ड प्रादुर्भाव हुआ था, विप्लवके अतमें तामसिकताका अल्पाधिक पुनरुत्थान, पुनः राष्ट्रविप्लव, पुनः क्लाति, शक्तिहीनता, नैतिक अवनति—यही है गत सौ वर्षोके फ्रासका इतिहास। जितनी बार साम्य-मैत्री-स्वाधीनतारूपी आदर्शजनित सात्त्विक प्रेरणा फ्रांसके प्राणोमें जगी, उतनी ही बार क्रमशः रजोगुण प्रवल हो, सत्त्वसेवा-विमुख आसुरी भावमें परिणत हो स्वप्रवृत्तिकी पूर्तिके लिए सचेष्ट हुआ। फलतः, तमोगुणके पुनः आविर्भावसे फ्रास अपनी पूर्वसचित महाशक्तिको खो म्रियमाण विषम अवस्थामें, हरिश्चन्द्रकी नाईं, न स्वर्गमें न मर्त्यमें, स्थित है। ऐसे परिणामसे बचनेका एकमात्र उपाय है प्रबल रज.शक्तिको सत्त्वकी सेवामें नियुक्त करना। यदि सात्त्विक भाव जाग्रत हो रज.शक्तिका परिचलन करे तो तमोगुणके पुन. प्रादुर्भाव होनेका भय नही रह जाता और उद्दाम शक्ति भी शृंखलित और नियत्रित हो उच्च आदर्शके वश हो देश और जगत्का हित साधन करती है। सत्त्वकी वृद्धिका साधन है धर्मभाव—स्वार्थको डुबा परार्थ समस्त शक्ति अर्पण कर देना—भगवान्को आत्मसमर्पण कर समस्त जीवनको एक महान् और पवित्र यज्ञमें परिणत कर देना। गीतामें कहा है कि सत्त्व और रज. दोनो मिलकर ही तमका नाश करते हैं; अकेला सत्त्व कभी तमको पराजित नही कर सकता। इसीलिए भगवान्ने सम्प्रति धर्मका पुनरुत्थान कर, तथा हमारे अन्तर्निहित सत्त्वको जगा, रज.-शक्तिको सारे देशमें फैला दिया है। राममोहन राय प्रभृति धर्मोपदेशक महात्माओने सत्त्वको पुनरुद्दीपित कर नवयुग प्रवर्त्तित किया। उन्नीसवी शताव्दीमें धर्मजगत्में जितनी जागृति हुई है उतनी राजनीति और समाजमें नही हुई। कारण क्षेत्र प्रस्तुत नही था, अतएव प्रचुर परिमाणमें वीज वोनेपर भी अकुर दिखायी नहीं दिया। इसमें भी भारतवर्षपर भगवान्की दया और प्रसन्नता ही दिखायी देती है। कारण राजसिक भावसे उत्पन्न जो जागरण होता है वह कभी स्थायी या पूर्ण कल्याणप्रद नही हो सकता। इससे पहले जातिके अन्तरमें थोडा-बहुत ब्रह्मतेजका उद्दीपन होना आवश्यक है। इसीलिए इतने दिनोतक रज.शक्तिकी धारा रुकी रही। १९०५ ई० में रज.शक्तिका जो विकास हुआ वह है सात्त्विक भावसे पूर्ण। अतः इसमें जो उद्दाम भाव दिखायी पडा है उससे भी आशकाका कोई विशेष कारण नही, क्योकि यह रजःसत्त्वका खेल है; इस खेलमें जो कुछ उद्दाम या

उच्छृखल भाव है, वह शीघ्र ही नियमित और शृंखलित हो जायेगा। किसी बाह्य शक्तिद्वारा नही, बल्कि भीतर जो ब्रह्मतेज, जो सात्त्विक भाव जागरित हुआ है उसीमें यह वशीभूत और नियमित होगा। धर्मभावके प्रचारसे हम उस ब्रह्मतेज और सात्त्विक भावका पोषण-भर कर सकते है।

ऊपर कहा जा चुका है कि परार्थमें समस्त शक्ति लगा देना सत्त्वोद्रेकका एक उपाय है। हमारे राजनीतिक जागरणमें इस भावका यथेष्ट प्रमाण पाया जाता है। परन्तु इस भावकी रक्षा करना कठिन है। यह व्यक्तिके लिए जितनी कठिन है, राष्ट्रके लिए उससे भी अधिक कठिन है। परार्थमें स्वार्थ अलक्षित रूपसे घुस आता है, और यदि हमारी बुद्धि शुद्ध न हो तो हम ऐसे भ्रममें पड सकते है कि परार्थकी दुहाई दे और स्वार्थको आश्रय बना, हम परहित, देशहित और मनुष्यजातिके हितको डुबा दें और फिर भी अपने भ्रमको समझ न सके। भगवत्सेवा सत्त्वोद्रेकका दूसरा उपाय है। परन्तु इस मार्गमें भी परिणाम विपरीत हो सकता है। भगवत्सान्निध्य-रूपी आनन्द मिलनेपर हममें सात्त्विक निश्चेष्टता जनम सकती है, उस आनदका स्वाद लेते-लेते हम दु:खकातर देशके प्रति तथा मानवजातिकी सेवाके प्रति उदासीन हो सकते है। यही है सात्त्विक भावका बधन। जिस प्रकार राजसिक अहकार होता है उसी प्रकार सात्त्विक अहकार भी। जैसे पाप मनुष्यको बधनमें डालता है वैसे ही पुण्य भी। सभी वासनाओंसे शून्य हो, अहकार त्याग भगवान्को आत्मसमर्पण किये बिना पूर्ण स्वाधीनता नही मिलती। इन दोनो अनिष्टोको त्यागनेके लिए सबसे पहले आवश्यकता है विशुद्ध बुद्धिकी। देहात्मिक बुद्धिका वर्जन कर मानसिक स्वाधीनताका अर्जन करना ही है बुद्धि-शोधनकी पूर्ववर्ती अवस्था। मनके स्वाधीन होनेपर वह जीवके अधीन हो जाता है और फिर मनको जीतकर और बुद्धिके आश्रयमें जा मनुष्य स्वार्थके पजेसे बहुत-कुछ छुटकारा पा जाता है। इसपर भी स्वार्थ हमें सम्पूर्णतः नहीं छोडता। अन्तिम स्वार्थ है मुमुक्षुत्व, परदु:ख भूल अपने ही आनदमें विभोर रहनेकी इच्छा। इसे भी त्यागना होगा। समस्त भूतोमें नारायणकी उपलब्धि कर उन्ही सर्वभूतस्थ नारायणकी सेवा ही है इसकी दवा। यही है सत्त्वगुणकी पराकाष्ठा। इससे भी उच्चतर अवस्था है और वह है सत्त्वगुणका भी अतिक्रमण कर गुणातीत हो पूर्णतः भगवान्का आश्रय ग्रहण करना। गुणातीत अवस्था गीतामें ऐसे वर्णित है :

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जब जीव साक्षी हो गुणत्रयको, अर्थात् भगवान्की त्रैगुण्यमयी शक्तिको ही एकमात्र कर्ताके रूपमें देखता है तथा इस गुणत्रयके भी परे शक्तिके प्रेरक ईश्वरको जान पाता है तब वह भागवत साधर्म्य लाभ करता है। तब देहस्थ जीव स्थूल और सूक्ष्म दोनो देहोसे सभूत गुणत्रयका अतिक्रमण कर जन्म-मृत्यु-जरा-दु खसे विमुक्त हो अमरत्वका भोग करता है। सत्त्व-जनित ज्ञान, रजोजनित प्रवृत्ति या तमोजनित निद्रा, निश्चेष्टता और भ्रम-रूपी मोहके होनेपर वह क्षुब्ध नही होता, गुणत्रयके आगमन और निर्गमनमें समान भाव रखकर उदासीनकी भाँति वह स्थिर रहता है, गुणग्राम उसे विचलित नही कर पाता, इसे गुणोकी स्वधर्मजात वृत्ति मान, वह दृढ रहता है। जिसके लिए सुख और दु ख समान है, प्रिय और अप्रिय समान हैं, निंदा और स्तुति समान है, सोना और मिट्टी दोनो ही पत्थरके समान है, जो धीर-स्थिर, अपने ही अन्दर अटल है, जिसके लिए मान और अपमान दोनो एक ही बात हैं, जिसे मित्रपक्ष और शत्रुपक्ष दोनो ही समान भावसे प्रिय हैं, जो स्वय प्रेरित हो किसी कार्यका आरभ नही करता, सारे कर्म भगवान्को अर्पण कर उन्हीकी प्रेरणासे करता है, उसे ही कहते हैं गुणातीत। जो निर्दोष भक्तियोगद्वारा मेरी सेवा करता है वही इन तीनो गुणोको अतिक्रमण कर ब्रह्मप्राप्तिके उपयुक्त होता है।"

यह गुणातीत अवस्था सबके लिए साध्य न होनेपर भी इसकी पूर्ववर्ती

अवस्था सत्त्वगुणप्रधान पुरुषके लिए असभव नही। सात्त्विक अहंकारका त्याग कर जगत्के सभी कार्योमें भगवान्की त्रैगुण्यमयी शक्तिकी लीलाको देखना है इसका सबसे पहला उपक्रम। यह वात समझ सात्त्विक कर्ता कर्तृत्वाभिमान त्याग, भगवान्को सपूर्ण आत्मसमर्पित हो कर्म करता है।

गुणत्रय और गुणातीत्यके संवधमें मैंने जो कुछ कहा, वह है गीताकी मूल वात। परन्तु यह शिक्षा साधारणतया अगीकृत नही हुई, अभीतक जिसे हम आर्य-शिक्षाके नामसे सबोधित करते आये हैं, वह प्रायः सात्त्विक गुणका अनुशीलन है। रजोगुणका आदर तो इस देशमें क्षत्रियजातिके लोप होनेके साथ-ही-साथ लुप्त हो गया। यद्यपि राष्ट्रीय जीवनमें रज.-शक्तिका भी अत्यत प्रयोजन है। इसीलिए आजकल गीताकी ओर लोगोका मन आकृष्ट हो रहा है। गीताकी शिक्षाने पुरातन आर्य-शिक्षाको आधार वनाकर भी उसका अतिक्रमण किया। गीतोक्त धर्म रजोगुणसे भय नही खाता, उसमें रज.शक्तिको सत्त्वकी सेवामें नियुक्त करनेका पथ निर्देशित है, प्रवृत्तिमार्गमें मुक्तिका उपाय प्रदर्शित है। इस धर्मका अनुशीलन करनेके लिए राष्ट्रका मन किस प्रकार तैयार हो रहा है इस बातको पहले-पहल मैंने जेलमें ही हृदयङ्गम किया। अभीतक स्रोत निर्मल नही हुआ है, अभी भी वह कलुषित और पकिल है, किंतु इस स्रोतका अतिरिक्त वेग जब कुछ प्रशमित होगा तव उसके अन्दर छिपी विशुद्ध शक्तिका निर्दोष कार्य होगा।

जो मेरे साथ कैद थे और एक ही अभियोगमे अभियुक्त थे, उनमेंसे बहुतसे निर्दोष समझकर छोड दिये गये हैं, बाकी लोगोको यह कहकर सजा दी गयी है कि वे षड्यत्रमें लिप्त थे। मानवसमाजमें हत्यासे वढ़कर और कोई अपराध नही हो सकता। राष्ट्रीय स्वार्थसे प्रेरित हो जो हत्या करता है, उसका व्यक्तिगत चरित्र चाहे कलुषित न भी हो, किंतु सामाजिक हिसाबसे, अपराधका गुरुत्व कम नही हो जाता। यह भी स्वीकार करना होगा कि अन्तरात्मापर हत्याकी छाया पड़नेसे मनपर मानो रक्तका दाग बैठ जाता है, उसमें क्रूरताका सचार होता है। क्रूरता बर्बरोचित गुण है, मनुष्यकी उन्नतिके क्रमविकासमें जिन गुणोंसे धीरे-धीरे दूर हो रहा है, उनमें क्रूरता प्रधान है। इसका यदि पूर्ण रूपसे त्याग कर दिया जाये तो मानवजातिकी उन्नतिके मार्गमें से एक विघ्नकारी कटक समूल नष्ट हो जायेगा। अभियुक्तोका दोष मान लेनेपर यही समझना होगा कि यह रज शक्तिकी क्षणिक उद्दाम उच्छृखलता-भर है। उनमें एक ऐसी सात्त्विक शक्ति निहित है कि इस क्षणिक उच्छृखलताद्वारा देशका स्थायी अमगल होनेकी कोई भी आशंका नही।

अन्तरकी जिस स्वाधीनताकी वात मैं ऊपर कह आया हूँ वह स्वाधीनता मेरे साथियोका स्वभावसिद्ध गुण है। जिन दिनो हम सव एक सग एक वड़े-से दालानमें रखे गये थे, उन दिनो मैंने उनके आचरण और मनोभावको विशेप मनोयोगपूर्वक लक्ष्य किया। केवल दो व्यक्तियोंको छोड अन्य किसीके भी मुंह या जवानपर भयकी छायातक देखनेको नही मिली। प्राय. सभी तरुण और वयस्क थे, वहुत-से अल्पवयस्क वालक थे, जिस अपराधमें वे पकडे गये थे वह प्रमाणित होनेपर उसका दण्ड इतना भीपण है कि कल्पनामात्रसे दृढमति पुरुप भी विचलित हो जाय। इसके अतिरिक्त, इस मुकदमेंसे रिहाई पानेकी आशा भी ये नही रखते थे। विशेषत, मजिस्ट्रेटकी अदालतमें गवाहो और लिखित गवाहियोका जैसा विस्तृत आयोजन होने लगा उसे देखकर कानूनसे अनभिज्ञ व्यक्तिके मनमें भी सहज ही यह धारणा उपजने लगी कि निर्दोपके लिए भी इस फदेसे निकलनेका उपाय नही। फिर भी उनके चेहरेपर भय या विपादके वदले थी केवल प्रफुल्लता, सरल हास्य; अपनी विपत्तिको भूल मुंहमें थी धर्म और देशकी ही वात। हमारे वार्डमें, हरेक वन्दीके पास दो-चार कितावें होनेके कारण एक छोटी-सी लाइब्रेरी वन गयी थी। इस लाइब्रेरीकी अधिकाश कितावे थी धर्मसवधी—गीता, उपनिपद्, विवेकानन्दपुस्तकावली, रामकृष्ण-कथामृत और जीवनचरित्र, पुराण, स्तोत्रमाला, व्रह्मसगीत इत्यादि। अन्य पुस्तकोमें थी वकिमग्रथावली, स्वदेशी गानसवधी वहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ, यूरोपीय दर्शन, इतिहास और साहित्यकी थोडी-वहुत पुस्तकें। प्रात काल कोई साधना करने वैठता, कोई पुस्तकें पढता तो कोई धीरे-धीरे वाते करता। प्रात.कालकी इस शान्तिमय नीरवतामें कभी-कभी हँसीकी लहरें भी उठती। जव कभी कचहरी का दिन नही होता तव कुछ लोग सोते, कुछ खेलते—जव जो खेल सामने आ जाये, किसी खास खेलके लिए किसीमें कोई आग्रह नही। किसी दिन एक वृत्त में वैठ कोई शात खेल होता तो किसी दिन दौड-धूप या कूद-फाद, कुछ दिन फुटवाल ही चला, यह फुटवाल नि.सदेह किसी अपूर्व उपकरण का वना होता था। कुछ दिन आखमिचौनी चली। कभी-कभी अलग-अलग दल वनाकर एक ओर जुजुत्सुकी शिक्षा होती तो दूसरी ओर ऊची कूद और लवी कूद तथा एक ओर ड्राफ्ट या चौपड। दो-चार गभीर प्रौढ व्यक्तियोको छोड प्राय. सभी वालकोंके अनुरोधसे इन खेलोमें शरीक होते। मैंने देखा कि इनमें जो वडे-वूढे थे, उनका स्वभाव भी वालको-जैसा ही था। शामको गानेकी मजलिस जुटती। गानविद्या मे निपुण उल्लास, शचीद्र और हेमदासके चारो ओर वैठ हम

सभी गाना सुनते। स्वदेशी या धर्मके गानोके अतिरिक्त और किसी भी तरहका गाना नही होता था। किसी-किसी दिन केवल आमोद करनेकी इच्छासे उल्लासकर हसीके गाने, अभिनय, दूरागतशब्दानुकरण (ventriloquism), नकल उतारने या गजेड़ियोकी गपद्वारा शामका समय बिताता। .मुकदमेमें कोई भी जी नही लगाता था, सभी धर्म या आनन्द-में दिन बिताते। यह निश्चित भाव कठिन कुक्रियाभ्यस्त हृदयके लिए असंभव है; इनके अन्दर काठिन्य, क्रूरता, कुक्रियाशक्ति, कुटिलता, लेश-मात्र भी नही थी। क्या हसी, क्या बात-चीत, क्या खेल-कूद, इनका सब कुछ था आनन्दमय, पापहीन और प्रेममय।

इस मानसिक स्वाधीनताका फल शीघ्र ही विकसित होने लगा। इस प्रकारके क्षेत्रमें ही धर्म-बीज बोनेसे सर्वांगसुन्दर फल सभव है। ईसामसीह-ने कुछ बालकोको दिखाते हुए अपने शिष्योंसे कहा था, "जो इन बालकोकी तरह हैं वे ही ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।" ज्ञान और आनन्द है सत्त्वगुण-के लक्षण। जो दु.खको दु.ख नही समझते, जो सभी अवस्थाओमें आनन्दित और प्रफुल्लित रहते है, वे ही हैं योगके अधिकारी। जेलमें राजसिक भावको प्रश्रय नही मिलता, निर्जन कारागारमें प्रवृत्तिका परिपोषक कुछ भी नही होता। ऐसी अवस्थामें असुर-मन चिर-अभ्यस्त रज.शक्तिकी खुराक-के अभावमें आहत व्याघ्रकी नाई स्वय अपना ही नाश करने लगता है। पाश्चात्य कविगण जिसे eating one's own heart (तीव्र सतापसे जीको जलाना) कहते हैं, ठीक वही अवस्था होती है। भारतवासीका मन इस प्रकारकी निर्जनतामें, इस बाह्य कष्टकी अवस्थामें भी चिरन्तन आकर्षणसे आकृष्ट हो भगवान्की ओर दौड पडता है। हमारी भी यही अवस्था हुई। न मालूम कहाँसे एक स्रोत आ सभीको बहा ले गया। जिसने कभी भगवान्का नाम नही लिया था वह भी साधना करना सीख गया। उस परम दयालुकी दयाका अनुभव कर आनन्दमग्न हो उठा। अनेक दिनोंके अभ्याससे योगियोकी जो अवस्था होती है, वह इन बालकोकी दो-चार महीनेकी साधना-से ही हो गयी। रामकृष्ण परमहसने एक बार कहा था, "अभी तुम लोग क्या देखते हो—यह तो कुछ भी नही, देशमें एक ऐसा स्रोत आ रहा है जिसके प्रभावसे अल्पवयस्क बालक भी तीन दिन साधना करके सिद्धि पायेंगे।" इन बालकोको देखकर उनकी भविष्यवाणीकी सफलतामें जरा भी सदेह नही रह जाता। ये मानो उसी प्रत्याशित धर्मप्रवाहके मूर्तिमान पूर्व-परिचय हो। इस सात्त्विक भावकी तरग कठघरे तक पहुँच, चार-पाँचको छोड़-बाकी सबके हृदयको महानन्दसे परिप्लावित कर देती थी। जिसने एक

वार भी इसका आस्वादन किया है वह इसे कभी भूल नहीं सकता न कभी किसी दूसरे आनंदको इस आनंदके समान ही स्वीकार कर सकता है। यही सात्त्विक भाव है देशकी उन्नतिकी आशा। भ्रातृभाव, आत्मज्ञान और भगवत्प्रेम जिस तरह सहज ही भारतवासीके मनपर अधिकार कर कार्यमें प्रकट होते हैं उसी सहज भावसे और किसी भी राष्ट्रमें उनका प्रकट होना संभव नहीं। इसके लिए चाहिये तमोवर्जन, रजोदमन, सत्त्व-प्रकाश। भगवान्‌की गूढ अभिसंधिसे इसीकी तैयारी हो रही है भारतवर्षमें।

नवजन्म

गीतामें अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा—"जो योगमार्गमें प्रवेश कर अंततक पहुँचते-न-पहुँचते पतित और योगभ्रष्ट हो जाते हैं, उनकी क्या गति है? वे क्या ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनो फलोसे वचित हो वायुखडित मेघकी तरह विनष्ट हो जाते है?" उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा—"इहलोक या परलोकमें वैसे व्यक्तियोका विनाश असंभव है। कल्याणकृत व्यक्तियोकी कभी दुर्गति नही होती। पुण्यलोकोमें उनकी गति होती है, वहाँ वहुत दिनोतक निवास कर शुद्ध श्रीमान् पुरुषोंके घरमें या योगयुक्त महापुरुषोंके कुलमें दुर्लभ जन्म पाते हैं, उस जन्ममें पूर्वजन्मप्राप्त योगलिप्सासे चालित हो सिद्धिके लिए और अधिक प्रयास करते हैं, और अंतमें अनेक जन्मोंके अभ्याससे पापयुक्त हो परम गति प्राप्त करते हैं। जो पूर्वजन्मवाद चिरकाल आर्य-धर्म के योगलब्ध ज्ञानका एक अगविशेष रहा है उसकी प्रतिष्ठा पाश्चात्य विद्याके प्रभावसे शिक्षित सम्प्रदायमें नष्टप्राय हो गयी थी, श्रीरामकृष्ण-लीलाके बादसे, वेदातशिक्षाके प्रचार और गीताके अध्ययनसे वही सत्य पुन. प्रतिष्ठित हो रहा है। जैसे स्थूल जगत्में heredity (वशानुक्रम) प्रधान सत्य है, वैसे ही सूक्ष्म जगत्में पूर्वजन्मवाद प्रधान सत्य है। श्रीकृष्णकी उक्तिमें ये दोनो ही सत्य निहित है। योगभ्रष्ट पुरुष अपने पूर्वजन्मार्जित ज्ञानके संस्कारके साथ जन्म लेते हैं, उसी सस्कारद्वारा, वायुचालित तरणीकी तरह, योगपथपर चालित होते हैं। परंतु कर्मफलकी प्राप्तिके योग्य शरीर उत्पन्न करनेके लिए उपयुक्त कुलमें जनमना आवश्यक है। उत्कृष्ट heredity (वशानुक्रम) सुयोग्य शरीर उत्पन्न करती है। शुद्ध श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म होनेसे शुद्ध सबल शरीर उत्पन्न करना संभव होता है, योगीकुलमें जन्म लेनेसे उत्कृष्ट मन और प्राण गठित होते हैं तथा वैसी ही शिक्षा और मानसिक गति प्राप्त होती है।

कुछ वर्षोंसे भारतवर्षमें यह दिखायी दे रहा है मानो पुरानी तमोभिभूत जातिके अन्दर एक नयी जाति सृष्ट हो रही है। भारतमाताकी पुरातन

सतति धर्मग्लानि और अधर्मके अन्दर जन्म ले और तदनुसार शिक्षा प्राप्त कर अल्पायु, क्षुद्राशय, स्वार्थपरायण और सकीर्ण-हृदय हो गयी थी। उनमें से बहुत-से तेजस्वी महात्माओने शरीर धारण कर इस विषम विपत्ति-कालमें जातिकी रक्षाकी थी। किंतु अपनी शक्ति और प्रतिभाके उपयुक्त कर्म न कर वे केवल राष्ट्रके भावी माहात्म्य और विशाल कर्मका क्षेत्र निर्माण कर गये हैं। उन्हींके पुण्यबलसे नव उषाकी किरणमाला चारो ओर उद्भासित हो रही है। भारत-जननीकी नूतन सतति माता-पिताके गुण प्राप्त न कर, साहसी, तेजस्वी, उच्चाशय, उदार, स्वार्थत्यागी, पदार्थ और देशहितसाधनमें उत्साही और उच्चाकाक्षी हो रही है। इसीलिए आजकल युवकगण माता-पिताके वशमें न हो अपने स्वतत्र पथके पथिक बन रहे हैं, वृद्ध और तरुणमें मतभेद और कार्यमें विरोध हो रहा है। वृद्ध लोग इन देवांशसभूत तरुण सत्ययुग-प्रवर्त्तकोको स्वार्थ और सकीर्णताकी सीमामें आबद्ध रखना चाहते हैं, अनजानमें कलिकी सहायता कर रहे हैं। युवकगण हैं महाशक्तिसृष्ट अग्निस्फुलिंग, पुरातनको तोडफोड नवीनको गढनेमें उद्यत, पितृभक्ति और आज्ञाकारिताकी रक्षा करनेमें अक्षम। भगवान् ही कर सकते हैं इस अनर्थ-का उपशमन। किन्तु महाशक्तिकी इच्छा विफल नही हो सकती, यह नवीन सतति जो कुछ करनेके लिए आयी है, उसे पूरा किये बिना नही जायगी। इस नवीनमें भी पुरातनका प्रभाव है। अपकृष्ट heredity (वशानुक्रम) के दोषसे, आसुरिक शिक्षाके दोषसे बहुतेरे कुलागारोने भी जन्म लिया है; जिन्हें नवयुगका प्रवर्त्तन करनेका आदेश मिला है वे भी अन्तर्निहित तेज और शक्ति विकसित नही कर पा रहे हैं। नवीन लोगोमें सत्ययुगके प्राकट्यका एक अपूर्व लक्षण दिखायी दे रहा है, उनकी धर्ममें मति है और बहुतोंके हृदयमें है योगलिप्सा और अर्ध-विकसित योगशक्ति।

अलीपुर-बम-केसके अभियुक्त अशोक नन्दी शेषोक्त श्रेणीके थे। जो उन्हें जानते थे उनमें से कोई भी यह विश्वास नही कर सकता था कि वे किसी भी षड्यत्रमें लिप्त थे। उन्हें छोटे-से अविश्वसनीय प्रमाणपर ही दड दिया गया था। वे अन्य युवकोकी तरह देशसेवाकी प्रबल आकाक्षासे अभिभूत नही थे। बुद्धिमें, चरित्रमें, प्राणमें वे पूर्णरूपेण योगी और भक्त थे, ससारीके गुण उनमें नही थे। उनके पितामह एक सिद्ध तान्त्रिक योगी थे, उनके पिता भी थे योगप्राप्त शक्तिसपन्न विशिष्ट पुरुष। गीतामें जो योगीकुलमें जन्म लेना मनुष्यके लिए अति दुर्लभ कहा गया है उसीका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। छोटी उम्रमें उनकी अन्तर्निहित योगशक्तिके लक्षण कभी-कभी प्रकट होते थे। पकडे जानेसे बहुत पहले वे जान गये थे कि

यौवन-कालमें उनकी मृत्यु निर्दिष्ट है, अतएव विद्योपार्जन और सांसारिक जीवनकी आरंभिक तैयारियोमे उनका मन नहीं लगा, फिर भी पिताके परामर्शसे, असफलताके पूर्व ज्ञानकी उपेक्षा कर, कर्तव्य कर्मका पालन करते थे और योगमार्गका भी अनुसरण करते थे। ऐसे समय वे अकस्मात् पकड़ लिये गये। उस कर्मफलप्राप्त विपत्तिसे विचलित न हो अशोक जेलमें अपनी सारी शक्ति योगाभ्यासमें प्रयुक्त करने लगे। इस मुकदमेके आसामियोमें से बहुतोंने इस पथका अवलंबन किया था, उनमें वे अग्रगण्य न होनेपर भी अन्यतम थे। वे भक्ति और प्रेममें किसीसे भी कम नहीं थे, उनका उदार चरित्र, गभीर भक्ति और प्रेमपूर्ण हृदय सबको मोह लेता था। गोसाईंकी हत्याके समय वे अस्पतालमें रुग्णावस्थामें पडे थे। पूर्व स्वस्थ होनेसे पहले ही निर्जन कारावासमें रखे जानेके कारण वह बार-बार ज्वरसे पीडित होने लगे। उसी ज्वरकी अवस्थामें उन्हें खुले कमरेमें शीत कालकी रातें बितानी पडती। इस तरह उन्हें क्षय रोग हो गया और उसी अवस्थामें, जिस समय प्राण-रक्षाकी कोई आशा नही थी, उन्हे विषम दंड देकर फिरसे उसी मृत्यु-गृहमें बंद कर दिया गया। बैरिस्टर चितरंजन दासकी प्रार्थनापर उन्हें अस्पताल ले जानेकी व्यवस्था की गयी, किंतु जमानतपर नही छोडा गया। अन्तमें छोटे लाटकी सहृदयताके कारण उन्हें अपने घरमें, अपने आत्मीय-स्वजनोकी सेवा प्राप्त कर मरनेकी अनुमति प्राप्त हुई। अपीलके द्वारा मुक्त होनेसे पहले ही भगवान्‌ने उन्हें इस देह-कारागारसे मुक्त कर दिया। अन्तिम समयमें अशोककी योगशक्तिमें विलक्षण वृद्धि हो गयी थी, मृत्युके दिन विष्णु-शक्तिसे अभिभूत हो सबको भगवान्‌का मुक्तिदायक नाम और उपदेश वितरण कर, नामोच्चारण करते-करते उन्होंने देह-त्याग किया। पूर्वजन्मार्जित दुःखफलका क्षय करनेके लिए अशोक नन्दीका जन्म हुआ था, इसीलिए यह अनर्थक कष्ट और अकाल मृत्यु घटी। सत्ययुगका प्रवर्तन करनेके लिए जिस शक्तिकी आवश्यकता है वह शक्ति उनके शरीरमें अवतीर्ण नहीं हुई थी परन्तु वे स्वाभाविक योगशक्तिके प्राकट्यका उज्ज्वल दृष्टांत दिखा गये है। कर्मकी गति ऐसी ही होती है। पुण्यवान् लोग पापफलका क्षय करनेके लिए थोटे समयतक पृथ्वीपर विचरण करते हैं, फिर पापमुक्त होकर, दूषित देहका त्याग कर और दूसरा शरीर धारण कर अन्तर्निहित शक्तिको प्रकट करने व जीवोंका हितसाधन करनेके लिए आते हैं।

'धर्म' के सम्पादकीय

धर्म
अंक 1
भाद्र 7, 1316*

प्रादेशिक समितिका अधिवेशन

प्रादेशिक समितिका अधिवेशन होने ही वाला है। पिछले साल पावना-अधिवेशनमें बंगालके समवेत प्रतिनिधियोंने बंबई-नीतिका वर्जन कर बंगालमें एकताकी रक्षा की थी। हमारा विश्वास है कि हुगली-अधिवेशनमें भी उसी शुभ पथका अनुसरण किया जायगा। यह सुनकर खुशी हुई कि हुगलीकी अभ्यर्थना-समिति पावनाके सब प्रस्तावोंको ध्यानमें रखते हुए इस अधिवेशनके प्रस्तावोंकी रचना करनेमें सचेष्ट है। विशेष आवश्यक विषय दो ही हैं। आजकल राजनीतिक बॉयकाट (बहिष्कार) का वर्जन कर नमक-चीनीके बॉयकाटको ही बचाये रखनेका विशेष आग्रह अनेक विज्ञ-जनोंके मनमें उपजा है। आशा है यह विज्ञता बंगालके प्रतिनिधिवर्गको प्रिय न हो सर्वसम्मतिसे अस्वीकृत होगी। द्वितीय आवश्यक विषय है राष्ट्रीय महासभा। पावनामें इस सबंधमें जो प्रस्ताव पारित हुआ था वह प्रस्ताव ही बना रह गया, उसे कार्यान्वित करनेकी कोई चेष्टा नहीं हुई। इस बार सारे बंगालका मत और आकांक्षा जिससे उपेक्षित न हो ऐसी व्यवस्था करना है प्रादेशिक-समितिका प्रधान कर्तव्य।

अशोक नंदीकी परलोक यात्रा

अलीपुर बम-केसमें अभियुक्त युवक अशोक नंदी क्षयरोगसे देहमुक्त हो गये। क्षयरोगका एकमात्र कारण है जेल-कष्ट। जो इस युवकको

*अगस्त 23, 1909

पहचानते हैं वे जानते हैं कि अशोक नदीके लिए किसी भी हत्याकांड या षड्यंत्रमें सलिप्त होना नितांत असभव है। वे अतिशय शात, निरीह, धार्मिक व प्रेमधर्म परायण थे। जेलमें योगपथपर काफी प्रगति कर मृत्युके समय योगारूढ अवस्थामें ही भगवान्‌का नाम स्मरण करते-करते उन्होंने धराधामका परित्याग किया। उनका थोडा-वहुत परिचय और कभी दिया जायगा।

हेअर स्ट्रीटमें सरलता

हेअर स्ट्रीट-निवासी अपने सहयोगीकी सरलता देख हमें हर्ष हुआ। सहयोगीको अपनी राय देनेमें लुकाव-छिपावकी आदत नही। सत्य वात कहनी हो तो सरल वालककी तरह कह देगा; यदि झूठ कहनेकी आवश्यकता हुई तो झूठ-सचको न मिला वालककी तरह उदार भावसे सारा-का-सारा झूठ वोल वैठेगा। उस दिन किचनरके सैन्य-सुधारको ले पार्लमेंटमें वाद-विवाद हुआ था। उस उपलक्षमें स्वनाम धन्य सर एडविन कॉलिनने इस मतकी घोषणा की कि इस सैन्य-संस्कारसे जो भारतकी राष्ट्रीय सेना सृष्ट और गठित हुई है, इससे भारतके राष्ट्रीय दलके उद्देश्यको पोषण और सहायता मिली है। अंगरेजोने भी इसमें हांमें हां मिलायी है। सैन्यगठन-में भेदनीति अवतक सयत्न रक्षित होती आ रही है, पलटन-पलटनमें जिससे सहानुभूति व एकता न उपजे, भारतकी भिन्न-भिन्न जातियोंके हृदयमें एक-प्राणता न आ घुसे, ऐसी चेष्टा व लक्ष्य कभी भी परिवर्जित नही हुआ। लार्ड किचनरने इन सभी भेदोंको मिटा ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान-स्तंभको उखाड फेंका है। यहाँ सहायोगीने स्वीकारा है कि अवका स्वेच्छा-तन्त्र भारतकी राष्ट्रीय एकताके प्रतिकूल और विरोधी था। एकताके अभावमें भारतको उन्नतिकी राह नही मिल रही थी। अतएव जो स्वेच्छा-तन्त्र अपने प्रधान पृष्ठ-पोषकके कथनानुसार देशकी उन्नतिके प्रतिकूल प्रमाणित हुआ है उसी स्वेच्छा-तन्त्रको वैध साधनोंसे प्रजातन्त्रमें परिणत करनेकी चेष्टा भारतीयोंके लिए दोषावह न हो स्वाभाविक एव अनिवार्य है और जैसे भारतके लिए वैसे ही विलायतके लिए मंगलप्रद प्रमाणित की गयी है।

विलायत-यात्रासे लाभ

हमारे परम पूजनीय देशनायक व श्रेष्ठ वक्ता श्रीयुक्त सुरेंद्रनाथ वन्द्योपाध्याय विलायतमें विशेष सम्मानित हो वापिस आये हैं। उस सम्मान-लाभसे हम भी प्रसन्न हुए। हमारे एक वक्ताने अंगरेजीमें विलायतके श्रेष्ठ वाग्मियोंकी तरह प्रतिभा, भाषा-लालित्य और ओज दिखा विपक्षियोंकी प्रशंसा और सम्मान पाया है, इससे देशका गौरव बढा और प्रमाणित हुई बंगालियोंकी बुद्धिकी श्रेष्ठता। पर इतने परिश्रमका फल यदि व्यक्तिगत सम्मानमें ही सीमाबद्ध रह जाय तो कहना पड़ेगा कि सुरेंद्रबाबूकी विलायत-यात्रा व्यक्तिके लिए संतोषजनक होनेपर भी देशके लिए विफल चेष्टा है। हम अंगरेजोंसे बुद्धि-प्रशंसा और वाग्मिताका आदर पानेके लिए व्यग्र नहीं, हम चाहते हैं राष्ट्रका सारा अधिकार वसूल करना। सुरेंद्र बाबूके तीन माहके प्रवाससे और ढेर सारी वक्तृताओंसे अंगरेज जाति इस उद्देश्यकी ओर किंचित् भी अनुकूल हुई हो इसका कोई लक्षण नहीं दीखता। वे मध्य-पंथी दलकी राजभक्तिके बारेमें थोडा-बहुत आश्वस्त भर हो गये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे सुरेंद्र बाबू मध्यपंथी दलके कृतज्ञता-भाजन व धन्य-वादके योग्य बन गये। किंतु वे विलायतमें देशकी प्रभूत सेवा व उपकार कर लौटे हैं इस बहाने उनका जो नानाविध सम्मान हो रहा है वह है निर्मूल। सुरेन्द्रनाथ बाबू पूजार्ह और सम्माननीय हैं इसलिए विदेशसे लौटनेपर उनकी पूजा और सम्मान करना स्वाभाविक व प्रशंसनीय है, अन्य कोई अलीक कारण दिखानेकी जरूरत नहीं थी। देश-सेवा करते-करते विलायतमें वे हमारे राजनीतिक अधिकारका दावा जता आये हैं। उपकारके दौरान आंदोलनके बारेमें कुछ एक लोगोंके व्यक्तिगत मत अल्प मात्रामें संशोधित हो भी सकते हैं। इस अल्प लाभसे हम अपने राजनीतिक उद्देश्य-की ओर पग-भर भी आगे नहीं बढ पाये।

लंदन राष्ट्रीय महासभा

श्रीयुत सुरेंद्रनाथ यौवनकालसे उन्नीसवीं शताब्दीकी निवेदन-प्रधान कातर राजनीतिके अभ्यस्त हैं। जगह-जगह अंगरेजोंका "जयजयकार" सुन पुन: उसी नीतिमें विश्वास स्थापन और निवेदन-प्रवृत्तिको पुनरुज्जीवित करनेकी उनकी चेष्टा है इस विदेशयात्राका अनिवार्य फल। अब प्रश्न

उठता है, श्रीयुत सुरेंद्र बाबू जो कुछ भी करें, देशवासी, विशेषतः बंगाली उनकी इस व्यर्थ चेष्टामें सहयोग देनेको तैयार हैं क्या? किसी भी व्यक्ति-गत मतद्वारा यह जाति अब और परिचालित नही हो सकती। उद्देश्य, प्रयोजन और युक्तिको दृष्टिमें रखते हुए देशके लिए जो कल्याणकर, राज-नीतिक्षेत्रमें जो सिद्धिदायक, शक्ति व अर्थव्ययके हिसाबसे जिसका फल संतोषजनक हो, वही है हमारे लिए अनुष्ठेय। सुरेंद्र बाबू जिस "जयजय-कार" पर गलत विश्वास कर पुराने पथपर लौट जानेके लिए व्याकुल हो रहे हैं वह है उनकी असाधारण वाग्मिताकी प्रशसा; वह उनके राजनीतिक मतका समर्थक या राजनीतिक दावेका अनुकूलताप्रकाशक नही। भारतकी उन्नतिके लिए मुख्य विरोधियोने भी इस "जयजयकार" में उच्च कण्ठसे योग दिया है। इससे क्या यह समझा जाय कि भविष्यमें वे हमारे स्वायत्त-शासन या स्वाधीनताके अनुकूल आचरण करेंगे? यह कदापि सभव नही। इस वाग्मिताके प्रभावसे उनके मत और आचरणमें थोडा भी परिवर्तन नहीं आया। यदि सुरेंद्र बाबूकी वक्तृतासे कोई विशेष या स्थायी फल नही हुआ तो क्या गोखले, मेहता, मालवीय, कृष्णस्वामीके मिलित वक्तृता-स्रोतसे अगरेजोका कठिन मन इतना द्रवित हो जानेकी आशा है कि इस भूत श्राद्धमें हम अपरिमित धन वहानेके लिए बाध्य हों? अगरेज जाति है कार्यपटु व विचक्षण, उसे केवल भाषणसे नही बहलाया जा सकता, स्वार्थ और देशका हित देख वह राजनीतिक पथ निर्धारित करती है। पहले हम समझते थे कि उनके सामने भारतका दु.ख, कर्मचारियोंका अत्याचार ज्ञापन कर सकनेसे ब्रिटिश प्रजातंत्रकी एक बातपर आकाशसे स्वर्ग टपक पड़ेगा। यह भ्रांति छू-मंतर हो गयी है, फिर कोई उसी पुराने मोहको जगानेकी चेष्टा न करे, चेष्टा करनेपर भी देश नही सुननें का। अगरेजो-को भला हम ऐसा कौन-सा वृहत् स्वार्थ दिखा सकते हैं जिससे वे अपना राष्ट्रीय गर्व, लाभ और प्रभुत्व छोड एक कृष्ण वर्ण राष्ट्रके हाथ विजित देशका सारा शासन-भार सौंप दे सकते हैं और कैसे उस वृहत् स्वार्थकी प्रयोजनीयता उन्हें हृदयगम हो सकती है—यही है विवेचनीय। साम्राज्य-रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई वृहत् स्वार्थ नही। साम्राज्यरक्षाकी आशासे स्वायत्त-शासन दे देना अंगरेजी राजनीतिमें कोई नूतन पथ नही, पर इस उपायकी प्रयोजनीयता जबतक उन्हें हृदयंगम नही हो जाती तबतक उनसे प्रकृत उपकारकी आशा असंगत है। उनके मनमें इस ज्ञानको जगानेका एक ही पथ है—निष्क्रिय प्रतिरोध।

धर्म
अक 2
भाद्र 14, 1316

राष्ट्रीय महासभा

जिस दिन सूरतकी राष्ट्रीय महासभामें वखेड़ा उठ खडा हुआ था, उस दिन राष्ट्रीय दलके अधिवेशनमे श्रीयुत तिलकने महासभाकी राष्ट्रीयता-की रक्षा कर ऐक्य-स्थापनाका उपाय सुझाया था और महासभाके कार्य व उद्देश्यकी रक्षाके लिए कमेटी नियुक्त करनेका प्रस्ताव रखा था। प्रस्तावके अनुसार कमेटी गठित भी हुई थी, किंतु कमेटीका अधिवेशन आजतक नही हुआ। श्रीयुत अरविंद घोप और वोडस इस कमेटीके सयोजक निर्वाचित हुए थे। उन्होने परामर्श कर यही निर्णय किया कि वखेडेके वारेमें राष्ट्रीय दलका दोप-मार्जन करना और प्रादेशिक समितियोंके अधिवेशनमें भविष्यके वारेमें देशवासियोका अभिमत जानना है पहला कर्तव्य। उससे पहले कमेटी वुलाना व्यर्थ है। इसी गुरुतर विपयमें देशवासियोंके मतकी उपेक्षा कर परामर्श करना किसी भी तरह उचित या युक्तिसगत नही। दो प्रादेशिक समितियोके अधिवेशनसे पता चल गया कि वगाल और महाराष्ट्रके मतमें ऐक्यकी स्थापना ही श्रेयस्कर है और महासभाकी पूर्ववर्ती प्रणाली व कल-कत्तेके अधिवेशनमें स्वीकृत चार मुख्य प्रस्ताव सर्वथा रक्षणीय हैं। इलाहा-वादमें कन्वेन्शनकी कमेटीने इस मतको अग्राह्य मान ऐक्य-स्थापनाके पथको वद कर दिया। इसके वाद ही अलीपुर वम-केसमें श्रीयुक्त अरविंद घोप पकडे गये और अभियुक्त वने। महामति तिलकको राजद्रोहके अभियोगमें ६ वर्पका कारा-दड मिला। श्रीयुत खापर्डे व श्रीयुत विपिनचद्र पालने विला-यतके लिए प्रस्थान किया। वंगालके राष्ट्रीय दलके प्रधान-प्रधान नेता निर्वासित किये गये। देशभरमें प्रवल दमन-नीतिकी झझा वहने लगी। राष्ट्रीय दलके नेताओंमें नागपुर निवासी डाक्टर मुजे, कलकत्तेके श्रीयुत रसूल और मध्यस्थगणमे पजावके लाला लाजपतराय और वगालके श्रीयुत मतिलाल घोप ही रह गये। डाक्टर मुजे आदिने कलकत्ते आ ऐक्य-स्थापनाके लिए काफी चेष्टा की, पर कुछ एक सग्राम मध्यपथियोंके प्रतिवादसे उनके सव प्रस्ताव अस्वीकृत रह गये। राष्ट्रीय दलके नेताओंने विफल मनोरथ हो नागपुरमें राष्ट्रीय महासभाका अधिवेशन करनेका संकल्प किया। वह भी राजपुरुषोंकी आज्ञासे स्थगित हो गया। ऐसी अनुकूल अवस्थामें

कन्वेन्शन व कमेटीकी निर्धारित नियमावलीके अनुसार मद्रासमें एक कन्वेन्शन हुई जिसमें राष्ट्रीय महासभा नाम धारण कर बॉयकाटद्वारा वगालके मुँहपर चूना पोत दिया गया। वगालके मध्यपथी नेताओने भी चुपचाप इस लाछना-को सहकर सहनशक्तिकी पराकाष्ठा दिखायी। इस साल लाहौरमें इस कृत्रिम महासभाके *अधिवेशनका आयोजन* चल रहा है। इस *आयोजनमें* श्रीयुत नदी, लाला हरकिशनलाल और पंडित रामभुजदत्त चौधरी त्रिमूर्ति बन असत्से सत्की सृष्टि कर ईश्वरीय शक्तिका लक्ष्य अभिव्यक्त कर रहे हैं। पजावकी प्रभावशाली हिन्दूसभा वहाँके हिन्दू सप्रदायको मारलेकी इस कृत्रिम भेद-नीतिकी पक्षपाती राष्ट्रीय महासभाकी राष्ट्रीयताको अस्वीकारने-के लिए आह्वान कर रही है; लाला लाजपतराय, लाला मुरलीधर, लाला द्वारकादास आदि सभ्रात नेताओने इस आयोजनका प्रतिवाद किया है, मुसलमान सप्रदाय भी इस राज-अनुग्रह-लालित महासभामें योग नही दे रहा। अतएव इस आयोजनकी सफलताकी आशाका पोषण नही किया जा सकता। ऐसी अवस्थामें ऐक्य-स्थापनाका एकमात्र आशास्थल वचा है हुगलीमें प्रादेशिक समितिका अधिवेशन। इस अधिवेशनमें यदि ऐक्य-स्थापनाकी प्रकृत प्रणाली निर्धारित हो सके और बंगालके मध्यपथी गोखले-मेहताके आधिपत्यका परित्याग कर देशके मुखापेक्षी हो अपना पथ निर्धारित करें तो राष्ट्रीय महासभाके सवंधमें संवंधित सतोषजनक साधनाका उद्भावन कर एकताका पथ निष्कंटक किया जा सकेगा। गोखले महाशयने पूनाके भाषणमें जो देशद्रोहिता की है, उसके वाद उनकी वातोमें आ देशका अहित करना वंगालके नेताओंके लिए वड़ी लज्जाकी वात होगी। ववईके नेता जो *बॉयकाट व वैध प्रतिरोधका दमन करनेके लिए कृतनिश्चय है*, उसके सबंधमें फिर किस वुद्धिमान्को सदेह रह सकता है? सुरेंद्र वावूने विलायतमें बॉयकाटका समर्थन किया था जान वंवईके नेतृवृंद इतने विरक्त हुए कि विलायतसे उनके लौटनेपर श्रीयुत वाच्छाको छोड एक भी सुप्रसिद्ध मध्यपथी सुरेंद्र वावूकी अभ्यर्थना करने नही गये। उन्होने शायद वॉयकाट नीतिके प्रति अपनी सहानुभूतिका अभाव प्रदर्शित करनेके लिए वगालके ऐसे मध्य-पथी नेताको अपदस्थ किया है। लाहौरकी सभा राष्ट्रीय सभा भी नही, मध्यपथी दलकी महासभा भी नही, वह है वॉयकाट-विरोधी राजपुरुषोंके भक्तोकी महासभा। जो भी हो, राष्ट्रीयदल हुगलीके अधिवेशन होनेतक राह देखेंगे, तव फिर अपना गंतव्य पथ निर्धारित करेंगे। हम अव और परमुखापेक्षी हो निश्चेष्ट नही वने रहेंगे।

हिन्दू व मुसलमान

शासन-सुधारसे हिंदुओं और मुसलमानोंके स्वतंत्र अस्तित्वका अवलंबन ले विरोधको बद्धमूल करनेकी चेष्टासे अनिष्टमें भी जो हित हुआ है वह है निर्जीव मुसलमान सम्प्रदायमें जीवन-स्पंदन। वे राजपुरुषोंपर दावा करना एवं असाध्य साधनकी आशाका पोषण करना सीख रहे हैं। इसीमें है देश-का परम मंगल। उनकी आशा व्यर्थ होगी, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। राजपुरुषोंके आचरणसे इस बीच यह समझमें आ गया है। वे जैसे अपर देशवासियोंको क्षुद्र व मूल्यहीन अधिकार दे विरत हुए हैं, मुसलमान सम्प्रदाय-को भी वैसे ही क्षुद्र व मूल्यहीन अधिकार दे प्रकृत शक्ति-विकासके साधन देनेको सहमत नहीं होंगे। पृष्ठपोषक व सहानुभूति-प्रकाशक अंगरेजोंने जैसे हमें आशा देकर निवेदन-नीतिप्रिय बना दिया था वैसे ही उनके भी पृष्ठपोषक व सहानुभूति-प्रकाशक आ जुटेंगे। अंतमें मुसलमान भाई समझेंगे कि यह निवेदन-नीति फलप्रद नहीं, उनका प्रकृत उपकार करनेकी सामर्थ्य अंगरेज पृष्ठपोषकोंमें नहीं। यदि हम इस शासन-प्रणालीमें योग देनेसे इनकार कर दें तो जागरणका दिन शीघ्र आनेकी संभावना है। यदि इस भेदनीतिमूलक शासन-प्रणालीमें योग दे मुसलमानोंके साथ संघर्षमें प्रवृत्त हों तो हम जिस अनिष्टकी संभावना बता आये हैं, वह निश्चय ही फलेगा। यद्यपि हम किसीकी भी प्रतिकूलतासे नहीं डरते फिर भी विपक्षियोंके उद्देश्य-साधनमें सहायता देना है मूर्खतामात्र। हमने कभी भी मुसलमान भाइयों-की खुशामद नहीं की, करेंगे भी नहीं, सरल मनसे, एक प्राण हो उन्हें राष्ट्र-संगठनके कार्यका व्रत लेनेका आह्वान किया है। उस आह्वानपर कान दे अपना हित और कर्तव्य निर्धारण करना उनकी बुद्धि, भाग्य व साधुता-पर निर्भर है। हम न विरोधकी सृष्टि करने जायेंगे और न ही विपक्षियोंकी विरोध-सृष्टिकी चेष्टामें साहाय्य देंगे।

पुलिस बिल

सर एडवर्ड बेकरने पुलिस बिल स्थगित कर दिया है। उन्होंने बुद्धिमानोंका ही काम किया है। इस बिलके कानूनबद्ध होनेसे जो अशांति व अनर्थ होना उसका अस्पष्ट-सा आभास थोड़े-बहुत परिमाणमें संवाद-पत्रोंके प्रतिवाद और भाषणोंद्वारा दिया गया है। स्रोत मुड़ गया है। हम शांत अवस्थामें भय व

विघ्नको अतिक्रम कर परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं, तभी शायद भगवान् भी सुप्रसन्न हुए हैं। दुर्दिनका अवसान होने जा रहा है, सुदिन वापस आ रहा है। आशा है अब राष्ट्रीय शक्तिकी जय ही होगी, पराजय नहीं। उस शक्तिके पुनर्विकास, लोकमतकी जय और चेष्टाके मंगलमय फलके पूर्व लक्षण हमें मिल रहे हैं। बंगालके वर्तमान छोटे लाटका मत प्रजातंत्रके पक्षमें ही है, यह जानी बात है, किंतु उनका कार्य और प्रकाशित बातें प्रजातंत्रके प्रतिकूल हुई हैं और होंगी। वे तो हैं लार्ड मारलेके आज्ञावाहक भृत्य, सिविलियनतंत्र (Bureau-cracy) के प्रधान किरानी-भर, स्वतंत्र मनको कार्यान्वित करनेकी स्वाधीनता उन्हें प्राप्त नहीं। तथापि पुलिस बिलके स्थगित हो जानेसे उनके मनपर से एक चिंताका भार हट जाना चाहिये। हमारा विश्वास है कि स्वतः प्रेरित हो यह अनिष्टकर बिल उन्होंने पेश नहीं किया, स्वतः प्रेरित हो स्थगित भी नहीं किया। बिल कोई स्वर्गराज इन्द्रका वज्रपात नहीं, यह है और भी उच्च शैल-शिखरासीन, कभी सौम्य-मूर्ति तो कभी रुद्र-मूर्ति, शिमला-सदाशिवका आदेश-प्रसूत महास्त्र। यदि हमारा अनुमान निर्मूल न हो तो समझना होगा कि दमन-नीतिके जन्मस्थानमें दमन-मुद्रा शिथिल पड़ती जा रही है। यह क्या co-operation (सहयोग) की आकांक्षाका फल है? कोई भी इस भ्रममें न रहे कि हम सहज ही भूल जायेंगे। राजनीति प्रेमके मान-मिलनका खेल नहीं; राजनीति है बाजार, क्रय-विक्रयका स्थान। उस बाजारमें co-operation का दाम है control—दमन। थोड़े दाममें बहुमूल्य वस्तु खरीदनेका जमाना अब टल गया।

रिसलेका राष्ट्रीय सर्कुलर

हम राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्‌को बता देना चाहते हैं कि ७ अगस्तको परिषद्‌के अधीन स्कूलोंके छात्रोंको बायकाटके उत्सवमें योगदान निषेध करनेसे गुरुतर अनिष्टकर कुफल फल रहे हैं। साधारण लोगोंका मन क्षुब्ध व उत्तेजित हो उठा है; जो राष्ट्रीय शिक्षाके सहायक थे वे उनमें से बहुतेरे मदद देना बंद कर रहे हैं और यह मत प्रचारित हो रहा है कि राष्ट्रीय स्कूल-कालेजोंमें और सरकारी स्कूल-कालेजोंमें नाममात्रका भेद है। सुना है, परिषद्‌ने एक चिट्ठी भेजकर छात्रोंको यह सलाह दी है कि जो देशके कार्यमें हाथ बटाना चाहते हैं वे सरकारी स्कूलोंमें प्रवेश करें। परिषद्‌का यह भी मत हो सकता है कि सुरक्षाके लिए सब स्कूल बंद

कर दिये जायँ, जनसाधारण मदद देना बद करे, हम बड़े-बडे लोगोकी आर्थिक सहायतासे कलकत्तेमें एक ही कालेजसे निष्कृति पा जायेगे। यदि ऐसा हुआ तो सब झझट ही चुक गया समझो। नही तो इस राष्ट्रीय रिसले सरर्कुलरको वापस लेना आवश्यक है।

गुप्त चेष्टा

विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि जैसे भी हो श्रीयुत अरविंद घोष किसी भी जिला-समितिद्वारा हुगली-अधिवेशनके प्रतिनिधि नियुक्त न हो, ऐसी चेष्टा कुछ-एक देशहितैषियोने छिपे-छिपे की है। बड़े दुःखकी बात है कि ऐसी जघन्य नीति आजकल भी हमारी राजनीतिमें स्थान पाती है। अरविन्द बाबूका यदि बॉयकाट ही करना हो, कीजिये। इसमें उन्हें कोई आपत्ति नही, वे दु:खित नही होगे, देशके कार्यसे पीछे भी नही हटेंगे, उन्होने कभी भी किसीके भी मुखापेक्षी हो कार्य नही किया, पहले भी बहुत दिनोतक अपने पथपर एकाकी चले थे, आगे भी यदि एकाकी चलना पड़ा, तो वे चलनेसे डरेंगे नही। पर यही मत यदि स्वीकृत हो कि हितके लिए या आप सबके उद्देश्य-साधनके लिए अरविन्द बाबूका संपर्क वर्जनीय है तो फिर खुलेआम देशके सामने इसके प्रचारसे कुठित क्यों होते हैं? इस गुप्त षड्यन्त्रसे आप सबका या देशका क्या भला होगा यह समझ नही आता। इसी बीच डायमंड हार्बरसे अरविंद बाबू प्रतिनिधि चुने गये हैं। आप सबके कन्वेन्शनद्वारा निर्धारित नियमानुसार हुगली-अधिवेशन नही हो रहा, कोई भी सभा कोई भी प्रतिनिधि चुन सकती है। फलतः गुप्त नीति जैसी जघन्य है, वैसी ही निष्फल भी। कपटका अभाव है अंगरेजोके राजनीतिक जीवनका एक महान् गुण जो करना होता है उसे वे साहसके साथ, सबके सामने, खुले तौरपर, आर्य भावसे करते हैं। भारतके राजनीतिक जीवनमें इस महान् गुणको उतार लाना होगा। चाणक्य-नीति राजतन्त्रमें भले ही खप जाय, पर प्रजातन्त्रमें वह केवल भीरुता और स्वाधीनता-रक्षणकी अयोग्यता ही लाती है।

मारलेकी भेदनीति

शासन-सुधारकी छाया तले जो भेदनीति-वृक्ष पनपा है उसे रोपा लार्ड मारलेने और जल-सिंचन कर उसका सयत्न पोषण कर रहे हैं देशहितैषी गोखले महाशय।

कलकत्तेके 'इगलिश मैन' ने स्वीकार किया है कि भेदनीति ही है भारतीय सैन्य सगठनका मूल तत्त्व। अनेक अगरेज राजनीतिज्ञोकी रायमें भेदनीति ही है भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका प्रधान साधन। लार्ड मारलेकी नीति भी है भेदनीति-प्रधान। उनकी पहली चेष्टा है मध्यपथी दलके राजपुरुषोको अपने कब्जेमें ला, राष्ट्रीय दलका दलन कर, भारतका नवोत्थान विनष्ट या स्थगित करनेका विफल प्रयास। सूरत अधिवेशनके समय यह विष-वृक्ष रोपा गया था। बंबईके नेताओने भारतवासीके भविष्य, शक्ति या न्याय्य अधिकारके बारेमें कभी भी उदार मत या उच्च आकांक्षाका पोषण नही किया। वे सहज ही सतुष्ट हो जाते थे। बंगालके उत्थान व बॉयकाट-प्रचारके प्रभावसे उनकी आशासे अतीत शासन-सुधार हुआ है। वे उस नवोत्थानके फलको स्वायत्त कर बॉयकाट और वैध प्रतिरोधको विनष्ट करनेके लिए अतिशय व्यग्र हैं। सूरत अधिवेशनके पहले इस सुधारकी सभावना उन्हें अविदित नही थी, किंतु वे जानते थे कि बॉयकाट-वर्जन और चरमपथी दलका बहिष्कार नही कर पानेसे यह सुस्वादु फल उनके मुख-विवरमें नही गिरेगा। इन्ही दो उद्देश्योको ध्यानमें रख महासभा नागपुरके बजाय सूरत बुलायी गयी थी और महासभाकी कार्य-प्रणालीके सशोधनका प्रस्ताव रखा गया था; उद्देश्य—राष्ट्रीय दल खुद ही महासभा छोड़नेके लिए बाध्य होगा। सभापति डाक्टर रासबिहारी घोषकी वक्तृता भी इसी उद्देश्यसे लिखी गयी थी। महामति तिलक, श्रीयुत अरविंद घोष प्रभृति राष्ट्रीय दलके नेता इस गुप्त अभिसंधिसे अवगत हो महासभाके कार्यकारी दलके कार्योका तीव्र प्रतिवाद और बॉयकाट-नीतिकी रक्षाके लिए चेष्टा कर रहे थे। सूरतके तुमुल काडमें उनकी चेष्टा व्यर्थ गयी। सर फिरोजशाह मेहता ही विजयी हुए। आत्मदोष-क्षालनके समय राष्ट्रीय दलके नेताओंने बंबईके मध्यपथियोंके विरुद्ध इस अभियोगकी खुलेआम घोषणा की थी। किंतु मध्यपथियोद्वारा चालित असंख्य पत्रिकाओंमें गाली-गलौजकी ऐसी रोल उठी कि सत्यकी क्षीण ध्वनि उस कोलाहलमें डूब गयी। हम अब सब देशवासियोंसे कह सकते हैं : देखिये मेहता-गोखलेका कार्यकलाप, समझिये क्या हम भ्रात थे, हमने क्या झूठ कहा था, कि वास्तव-

में उनका वैसा ही कोई उद्देश्य था। इस भेदनीतिने बबईके मध्यपथियों-को अनायास ही उद्भ्रात कर दिया। बंगालके नेता उस कुपथपर नही चले, उन्होने बॉयकाटकी रक्षा की। स्वयं श्रीयुत् भूपेंद्रनाथ वसु ७ अगस्त-को राजपुरुषोकी मिन्नत व भय-प्रदर्शनकी प्रबल उपेक्षा कर बॉयकाट-उत्सवके सभापति बने थे। तिसपर 'बंगाली' ('Bengalee') पत्रिकाने बॉयकाट-का प्रचार कर हममें आनंद और आशाका संचार किया है। यदि कभी ऐक्यकी स्थापना सभव हुई, यदि मारलेकी भेदनीति विफल हुई, तो वह बगालियोंकी ऐक्य-प्रियता और बॉयकाटकी दृढतासे ही होगी।

वृष-वृक्षकी दूसरी शाखा

लार्ड मारलेकी दूसरी चेष्टा है राजनीतिक क्षेत्रमें मुसलमान और हिंदू सप्रदायको पथक् करना। यही है भेदनीतिका दूसरा अग, शासन-सुधारका दूसरा विषैला फल। इसके लिए लार्डने गुप्त चेष्टा नही की, खुल्लम-खुल्ला वे भेदनीतिका अवलबन ले मुसलमान और हिन्दूमें चिर शत्रुताकी व्यवस्था कर रहे हैं। फिर भी व्यवस्थापक सभामें निर्वाचित प्रतिनिधियो-की संख्या-वृद्धिसे मध्यपथी नेतागण ऐसे मुग्ध और प्रलुब्ध हुए हैं कि इस अल्प लाभकी आशामें इतने भारी अनिष्टका आलिंगन करनेके लिए बढे चले जा रहे हैं। गोखले महाशयने मुक्त कठसे इस भेदनीतिकी प्रशसा की है। उनके मतमें लार्ड मारले है भारतके परित्राता। उनके मतमें मुसलमानोंका पृथक् प्रतिनिधि-निर्वाचन है न्याय्य और युक्तिसगत। इससे जो मुसल्मान और हिंदू राजनीतिक जीवनकी शक्ति स्वतत्र और परस्पर विरोधी हो राष्ट्रीय सभाका मूलतत्त्व और भारतका भावी ऐक्य और शाति सपूर्णतः विनष्ट हो जायगी यह सत्य गोखले महाशय जैसे लब्धप्रतिष्ठ राजनीतिज्ञकी बुद्धिसे अगोचर नही हो सकता। तब किस निगूढ रहस्य-मयी सूक्ष्म नीतिवश गोखले महाशय इस भेदनीतिका समर्थन करनेके लिए उत्साहित हुए हैं यह वे ही जानें। हमारे पूजनीय सुरेंद्रनाथने इस सबधमें विपरीत मत व्यक्त किया, फिर भी इस शासन-सुधार जैसे महान् अनर्थ-का प्रतिवाद दृढतासे नही कर पाये। वरन् विलायत-प्रवासकी प्रथम अव-स्थामें उन्होंने इस शासन-सुधारकी अन्यथा और निराधार प्रशंसा की थी। इस सुधारमें बगालियोकी लेशमात्र भी आस्था नही। यदि कुछ एक बड़े लोग इस नूतन शासन-प्रणालीमें योगदान करनेके लोभको नही छोड पाने-

के कारण देशके प्राकृत हितको भूल जायं तो इससे देशका कोई अकल्याण नही होने का। किन्तु सुरेंद्र बाबू जैसे सर्वपूजित नेता इस विष-वृक्षको सीचे तो इसे देशका नितांत दुर्भाग्य समझना चाहिये। जो इस सुधारमें भाग लेंगे वे मारलेकी भेदनीतिके सहायक होगे। साम्प्रदायिक विरोधके स्रष्टा व भारतभूमिकी भावी एकतामें बाधक बनेंगे। श्रीयुत सुरेंद्रनाथ इस भ्रांत नीतिके अनुसरणके लिए कभी भी सहमत नही होगे—यही है हमारी आशा।

धर्म
अक 3
भाद्र 21, 1316

शासन-सुधार

शासन-सुधार मान लेनेपर जो कुफल फलेगा वह पिछली बार कहा जा चुका है और देशवासी भी उससे अविदित नही। ऐसेमें यदि कोई यह कहे कि हम इस सुधारमें दोष दिखायेंगे किंतु उसमें जो कुछ सुविधाएँ हैं उन्हें क्यों छोड़ें तो हम उनकी बुद्धि और राजनीति-ज्ञानकी प्रशसा नही कर सकते। जो दोष वे दिखायेंगे वे राजपुरुषोंकी बुद्धिसे अगोचर नही, उन्होने अनजाने इस सुधारमें दोषको ला घुसाया है, ऐसा भी नही। वे पहलेसे ही जानते थे कि इन दोषोका प्रतिवाद किया जायगा, किंतु वे चाहते हैं कि प्रतिवाद करके भी देशके नेता इस सैन्य-सुधारका प्रत्याख्यान न करें, ऐसा हो जाय तो उनकी अभिसधि सफल होगी। दोष-सुधारकी उनकी इच्छा नही, क्योंकि दोष उनकी युक्तिके अनुसार दोष नही, है सुधारका मुख्य गुण। इस सुधारसे स्वाधीनता-लुब्ध देशवासियोकी शक्ति नही बढेगी। वे खुद ही हिन्दू-मुसलमानके विरोधमें चिर-सघर्षरत दो शक्तियोंके युद्धमें मध्यस्थ और देशके हर्ता-कर्ता बन विराजेंगे। उनकी यह नीति दोषावह नही, प्रशसनीय है। वे ठहरे देशहितैषी, स्वदेश-हित, शक्ति-वृद्धि व साम्राज्य-रक्षाका उपाय खोज रहे हैं। यह नीति उदार नीति नही, किन्तु उदार नीति यदि स्वदेशकी अहितकर विवेचना करे तो अनुदार नीतिका अवलंबन करना ही है देशहितैषीका योग्य पथ। देशके कल्याणके लिए निरपेक्ष रह हम उदार नीतिका अवलबन लेते, देश-हितैषिताके त्यागमें जगत्-हितैषी होनेका स्वाग भरते। अब हम भी देखें

स्वदेश-हित, शक्ति-वृद्धि और जीवन-रक्षाका पथ। पहले देश बचे, जगत्के हित व उदारनीतिके आचरणका यथेष्ट अवसर तो मिलता रहेगा।

हुगली प्रादेशिक समिति

इसी बीच हुगलीमें प्रादेशिक समितिका अधिवेशन शुरू हो चुका है; उसका फलाफल निश्चिततया जान लेनेके पहले समितिके आलोच्य विषयके बारेमें कुछ कहना अनावश्यक है। यह वर्ष है भूत-भविष्यका संधिस्थल। समितिके कार्य-फलपर बहुत कुछ निर्भर करता है बंगालका भविष्य। प्रबल दमन-नीतिके प्रारम्भ होनेसे देश नीरव पड गया है। बंगालकी नवोदित शक्ति व साहस युवकोंके हृदयमें छिप गये हैं और शुरू हुआ है भीरुओंके परामर्शसे देशवासियोंका स्मृति-भ्रंश और बुद्धिलोप। कहाँ तो दमन-नीतिका वैध पर साहसपूर्ण प्रतिरोध कर उस नीतिको विफल करना था, वह तो किया नही बरन् भयसे और राजनीतिज्ञान-रहित विज्ञतावश निश्चेष्टता व नीरवताको श्रेष्ठ पथ मान प्रचारित किया, इससे दमन-नीति सफल हुई, राजपुरुषोंने भी समझा कि हमने एक अमोघ अस्त्रका आविष्कार किया। इस निश्चेष्टता व नीरवतासे देशवासियोंके मन-प्राण अवसादग्रस्त और उदासीन हुए जा रहे हैं, राष्ट्रीय शिक्षाका अंतिम परिणाम अति शोचनीय होता जा रहा है, बॉयकाटके बलके क्षीण पड जानेसे विलायती मालका क्रय-विक्रय तेजीसे बढ़ रहा है, पिछले पाच सालकी सारी चेष्टा व उद्यम शक्तिहीन और विफल हुए जा रहे हैं। नेता हृदयमें साहस बाध देशका प्रकृत नेतृत्व करनेमे अक्षम है, कन्वेन्शन-नीतिकी ममता और शासन-सुधारका मोह त्यागना नही चाहते, मुँहसे तो है प्रकृत राष्ट्रीय महासभाके पक्षपाती, पर कार्यमें उसकी पुनःसृष्टिका कोई आयोजन नही करते, शासन-सुधारको ग्रहण करनेसे भी डरते हैं, प्रत्याख्यान करनेपर भी प्राण रो उठता है। ऐसी अवस्थामें जो देशके लिए अपना पूरा जीवन उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत हैं, जो भयसे परिचित नही, भगवान् और बंगजननीको छोड किसी औरको न मानते हैं, न जानते हैं, वे यदि आगे न बढ़े तो बंगालका भविष्य अंधकारमय होगा। यदि हम प्रादेशिक समितियोंमें देशकी लाज और भारतकी भावी आशाकी रक्षा कर सके तो पथ बहुत कुछ प्रशस्त हो सकेगा। तबतक राह देख रहा हूँ। नही तो अपना पथ आप ही साफ कर भयार्त और दमन-नीतिसे विक्षुब्ध देशके प्राण बचाने होंगे।

दैनिक पत्रका अभाव

राष्ट्रीय दलकी शक्ति बहुत दिनोंसे अंतर्निहित पड़ी थी, पुन. वह विकसित हो रही है। किन्तु उस शक्तिके विकासके लिए उपयोगी साधन-के अभावमे पूर्ण कार्य-सिद्धि असभव है। हम यथासाध्य आर्य-धर्म और धर्मसम्मत राजनीतिका प्रतिपादन कर इस विकासमे सहायता करनेको प्रवृत्त हुए हैं, किन्तु साप्ताहिक पत्रोद्वारा यह कार्य सतोषजनक नही होने का। विशेषत हमारे राजनीतिक जीवनमे दैनिक पत्रका अभाव एक गुरु-तर अभाव है। जो दिन-व-दिन घट रहा है, उसे तुरत ही लोगोको जना उस सवधमें राष्ट्रीय दलका मत या कर्तव्य उनके सामने उपस्थित न कर पानेसे हमारी चेष्टामें तीव्र तत्परता और क्षिप्रता नही आ सकती। उस दिन कालेज स्क्वायरमें एक स्वदेशी सभा हुई थी, उसका वर्णन और भाषण-का साराश एक सुप्रसिद्ध दैनिक पत्रमें दिया गया था, किन्तु पत्रके कर्ता उसे छापनेसे इनकार कर गये। उस सभामें श्रीयुत अरविंद घोषने अध्यक्ष पदसे वक्तृता दी थी एवं वार-वार वॉयकाटका उल्लेख किया था, शायद इसीलिए कर्मचारी भीत या विरक्त हुए, यह भय या विरक्ति स्वाभाविक है, आजकल वॉयकाट शब्दका जितना कम उल्लेख हो उतना ही व्यक्तिगत मगल संभव है। वॉयकाट प्रचारके लिए स्वतत्र दैनिक पत्रकी आवश्यकता प्रतिदिन महसूस हो रही है।

मजलिसके सभापति मेहता

सभा होगी कि नही कुछ ठीक नही। किन्तु सभापतित्वको ले विषम समस्या उठ खड़ी हुई है। इस बार मद्रास कन्वेन्शनकी पुनरावृत्ति लाहौरमें होनेकी वात है। किन्तु लाहौरके देश-भक्त देश-सेवाके इस वनावटी नाटकको प्रश्रय देनेके लिए तैयार नही। देश जिन्हें मानता नही, देशके साथ जिनका सपर्क नही, ऐसे दस-पाँच मूर्धन्य व्यक्ति देशके लोगोंके नामपर डिग्री डिसमिस करें, क्या कोई भी बुद्धिमान् इसका अनुमोदन कर सकता है? खैर। अव सभापतिकी वात लें। इस संवधमें 'भारत मित्र' ने ठीक कहा है—दूसरी काग्रेसके पक्षपाती लाहौरके आगामी कन्वेन्शनमें मद्रासके नवाव सैयद मुहम्मदको सभापति वनाना चाहते हैं। पर नवाव साहव इस सम्मान-ग्रहणके इच्छुक नही। अव पजावकी कांग्रेस कमेटी

सर फिरोजशाह मेहताको सभापति बनाना चाहती है—मेहताके सहमत न होनेपर अगत्या सुरेन बाबू। 'भारत मित्र' कहता है—हमारा कहन। है जैसे भी हो मेहता साहबको ही सभापति बनाना उचित है। वे ही हैं खंडित काग्रेसके जन्मदाता। अत. काग्रेसका सभापतित्व(?) जैसा उन्हें सजता है वैसा किसी औरको नही सजता। लोग अभीसे खडित काग्रेसको मेहता मजलिस कहने लगे हैं।

धर्म
अक 4
भाद्र 28, 1316

असंभवका अनुसंधान

हुगलीमें प्रादेशिक समितिका जो अधिवेशन हो चुका है उसम सभापति श्रीयुत बैकुठनाथ सेन राष्ट्रीय दलको अधीर और असभव आदर्शकी खोजमें सलग्न कहनेसे बाज नही आये। जिन्होने अधिवेशनका कार्य-विवरण देखा है वे अवश्य ही स्वीकार करेंगे कि मध्यपथियोने ही अधीरताका परिचय दिया है, राष्ट्रीय दलके विरुद्ध अधीरताके अभियोगका कोई कारण नही। हुगलीमें राष्ट्रीय दलकी ही सख्या अधिक थी इसमें सदेह नही, फिर भी विरोध-वर्जनके उद्देश्यसे राष्ट्रीय दलकी ओरसे श्रीयुत अरविंद घोष स्वावलंबन व निष्क्रिय प्रतिरोधका समर्थन कर शात हो गये थे। यह भी यदि अधीरता हो तो शायद धीरता है जडताका नामातर-मात्र। असभव आदर्शके बारेमें हम इतना ही कह सकते हैं कि जो वर्तमानकी सकीर्ण सीमाके बाहर कुछ भी देखना नही चाहते, देख भी नही सकते, वे भविष्यके चिंतनमें मत्त भावुकोको सदैव असंभव आदर्शके सधानमें लगे कहकर उनका उपहास करते हैं। जो कर्मवीर सकटके समय विशेष विचार व विवेचना कर भावी उन्नतिकी नीवकी स्थापनामें सक्षम हैं उनके भाग्यमें भी ऐसा ही उपहास बदा होता है। फलके विषयमें अनजान रह प्रतीक्षा करना है जडत्व, यह बुद्धिका परिचायक नही। वहाँ स्थैर्य है मूढका काम। गति ही है जीवन। भारतमें मध्यपथी सप्रदायकी अकारण भीति ही हो उठी है राष्ट्रीय उन्नतिमें बाधक। समग्र प्राच्य भूखडमें जो जागरण, जो उन्नतिकी आकाक्षा, जो आवेग आया है जापान, फारस और टर्कीमें उसका

प्रमाण मिल गया है। भारतके बड़े लाट मिंटोने भी माना है कि इस प्रवाहका प्रतिरोध करना मनुष्यके वशका नही। फिर भी मध्यपंथी इसे नहीं समझते। या समझकर भी नही समझते कि सर्वत्र ही, युरोपमें, जनशक्तिका आत्म-विकास दिख रहा है। सिर्फ भारतमें ही प्रतीक्षाका आदेश प्रतिध्वनित हो रहा है। यह आदेशदाता हैं लार्ड मार्ले, सारा जीवन जनशक्तिका समर्थन कर जीवनके माहात्म्यमें भारतवर्षको चिरकालके लिए जड-जीवन यापन करनेका आदेश दिया है उन्होंने। इस अवस्थामें राष्ट्रीय दलकी उन्नति-चेष्टा उपहासास्पद है या मध्यपथियोंकी पर-निर्भरता और जडता उपहासास्पद है?

योग्यता-विचार

भावुकतावश शायद सभापति महाशय ऐंग्लो-इंडियनोंकी बातपर अथवा विश्वास कर मानते हैं कि हम आज भी स्वायत्त-शासनके योग्य नहीं। स्वायत्त-शासन संबंधी प्रस्तावकी आलोचनाके समय एक वक्ताने भी यही कहा था। हमें अनुपयुक्त कहनेके सिवा ऐंग्लो-इंडियनोंके पास अपने स्वेच्छाचार समर्थनका दूसरा कोई उपाय ही नही। ऐसी अवस्थामें ऐंग्लो-इंडियनोंकी स्वार्थ-समर्थक युक्ति स्वाभाविक और संगत है। किंतु भारत-वासियोंके लिए इस युक्तिको ग्रहण करना है अस्वाभाविक और असंगत। ग्लैडस्टोनने कहा है: स्वाधीनता-उपभोग ही मनुष्यको स्वाधीनताके उपयुक्त बनाता है। स्वायत्त-शासन-उपभोगको छोड स्वायत्त-शासनके उपयुक्त बननेका दूसरा उपाय नहीं। हम जानते हैं स्वायत्त-शासन पानेपर पहले-पहल भ्रम व प्रमादका होना अनिवार्य है। सभी देशोंमें ऐसा ही हुआ है। जापानको भ्रम हुआ है। टर्की व फारस अब भी भ्रममें हैं। ऐसा मान स्वायत्त-शासनके पथपर अग्रसर न होना और उन्नतिका पथ चिरकालके लिए अवरुद्ध करना है एक ही बात। इसीलिए शताब्दीकी भ्रान्त शिक्षावश हमने अपने-आपको सारहीन और अयोग्य मानना सीखा था। आज वह भ्रम टूट गया है। आज हमने समझ लिया है—इस राष्ट्रका जीवन-स्पंदन बंद नहीं हो गया, वह राष्ट्र जीवित है। यह अनुभूति ही राष्ट्रीय उन्नतिके लिए यथेष्ट है। यह अनुभूति ही हमें उन्नतिके पथपर आरूढ़ कर राजनीति-क्षेत्रमें मुक्ति-संग्राममें सक्षम बनायेगी। आज जब उन्नतिका आरंभ हो चुका है तब योग्यता-विचारका बहाना बना उन्नतिकी

प्रमाण मिल गया है। भारतके वड़े लाट मिंटोने भी माना है कि इस प्रवाहका प्रतिरोध करना मनुष्यके वशका नही। फिर भी मध्यपंथी इसे नही समझते। या समझकर भी नही समझते कि सर्वत्र ही, सुधारमें, जनशक्तिका आत्म-विकास दिख रहा है। सिर्फ भारतमें ही प्रतीक्षाका आदेश प्रतिध्वनित हो रहा है। यह आदेशदाता हैं लार्ड मारले, सारा जीवन जनशक्तिका समर्थन कर जीवनके साहाय्यमें भारतवर्षको चिरकालके लिए जड-जीवन यापन करनेका आदेश दिया है उन्होने। इस अवस्थामें राष्ट्रीय दलकी उन्नति-चेष्टा उपहासास्पद है या मध्यपथियोकी पर-निर्भरता और जडता उपहासास्पद है?

योग्यता-विचार

भावुकतावश शायद सभापति महाशय ऐंग्लो-इंडियनोकी वातपर अयथा विश्वास कर मानते हैं कि हम आज भी स्वायत्त-शासनके योग्य नही। स्वायत्त-शासन सबधी प्रस्तावकी आलोचनाके समय एक वक्ताने भी यही कहा था। हमें अनुपयुक्त कहनेके सिवा ऐंग्लो-इडियनोके पास अपने स्वेच्छाचार समर्थनका दूसरा कोई उपाय ही नही। ऐसी अवस्थामें ऐंग्लो-इंडियनोकी स्वार्थ-समर्थक युक्ति स्वाभाविक और सगत है। किंतु भारत-वासियोंके लिए इस युक्तिको ग्रहण करना है अस्वाभाविक और असगत। ग्लैडस्टोनने कहा है: स्वाधीनता-उपभोग ही मनुष्यको स्वाधीनताके उपयुक्त वनाता है। स्वायत्त-शासन-उपभोगको छोड़ स्वायत्त-शासनके उपयुक्त वननेका दूसरा उपाय नही। हम जानते हैं स्वायत्त-शासन पानेपर पहले-पहल भ्रम व प्रमादका होना अनिवार्य है। सभी देशोमे ऐसा ही हुआ है। जापानको भ्रम हुआ है। टर्की व फारस अव भी भ्रममें हैं। ऐसा मान स्वायत्त-शासनके पथपर अग्रसर न होना और उन्नतिका पथ चिरकालके लिए अवरुद्ध करना है एक ही वात। उन्नीसवी शताव्दीकी भ्रात शिक्षावश हमने अपने-आपको सारहीन और अयोग्य मानना सीखा था। आज वह भ्रम टूट गया है। आज हमने समझ लिया है—इस राष्ट्रका जीवन-स्पदन वद नही हो गया, यह राष्ट्र जीवित है। यह अनुभूति ही राष्ट्रीय उन्नतिके लिए यथेष्ट है। यह अनुभूति ही हमें उन्नतिके पथपर आरूढ कर राजनीति-क्षेत्रमें मुक्ति-लाभमें सक्षम वनायेगी। आज जव उन्नतिका आरंभ हो चुका है तव योग्यता-विचारका वहाना वना उन्नतिकी

गति बंद कर शिथिल पड़ जाना मूढका काम है। आज राष्ट्रीय जीवनमें जो समय उपस्थित है उस समयकी गतिके रुद्ध हो जानेपर हम उन्नतिके पथमें पिछड़ जायेंगे; आगे नही बढ सकेंगे। अत. हमें अग्रसर ही होना होगा, शका या सदेहसे विचलित न हो स्थिर और धीर कदमोसे कर्तव्य-पथपर बढते जाना ही है आज हमारा कर्तव्य।

चांचल्य-चिह्न

हमारे कोई-कोई विज्ञ मध्यपथी ऐसी बात भी कहते है कि आजकल किसी-किसी सभामें कुछ-कुछ गड़बड़ी होती है; इससे राजनीतिक अधिकारकी प्राप्तिमें हमारी अयोग्यता ही सिद्ध होती है। ये भी उनके अपने मौलिक शब्द नही, ये हैं कपटाचारी ऐंग्लो-इडियनोके मतकी प्रति-ध्वनि-भर। जो ऐंग्लो-इडियन ऐसा मत प्रकट करते हैं हम उन्हें कपटाचारी कहते हैं, कारण वे निश्चय ही जानते हैं कि विलायतकी राजनीतिक सभा-समितिमें जैसा हुडदग मचता है भारतकी सभा-समितिमें उसका शताश भी घटित नही होता। धीर प्रकृति भारतवासी वैसे व्यवहारके लिए नितात अनभ्यस्त हैं। हमारे देशमें, सभा-समितिमें हुडदगके ये दो ही प्रधान दृष्टात देखे जाते हैं—सूरतमें सुरेंद्रनाथकी बातोपर किसीने कान नही दिया, वे वक्तृता वद कर बैठ जानेके लिए बाध्य हुए थे, और सूरतमें ही श्रीयुत बाल गगाधर तिलकपर मध्यपथियोके प्रहारके लिए उद्यत होनेपर विषम हुडदग मचा था। इंगलैंडमें ऐसी घटनाएँ आम होती रहती हैं। किसी विश्वविद्यालयकी सभामें प्रधानमत्री मिस्टर बैलफोर ऊधमके कारण भाषण नही दे पाये थे, अतमें दो छात्रोने नारी-भेसमें मचपर आ उन्हें जूतोकी माला उपहारमें दी। उन्होने हँसते-हँसते उस उपहारको स्वीकारा। और एक बार छात्रदल किसी वक्ताकी वक्तृतासे असतुष्ट हो मारा-मारीपर उतर आये और पुलिसपर उग्र प्रहार किया। विचार करनेपर छात्रोको किसी भी तरहकी कोई सजा नही हुई। निश्चय ही हम यह नहीं कहना चाहते कि हमारे देशके राजनीतिक आदोलनमें, सभा-समितिमें ऐसे चाचल्यकी शुरुआत हो। हम कहना यह चाहते है कि इस तरहके चाचल्यसे स्वायत्त-शासन-प्राप्तिमें हमारी अयोग्यता सिद्ध नही होती, वरन् यह है जीवनका लक्षण। इससे तो यह सिद्ध होता है कि हम युग-व्यापी जडत्व-शापसे मुक्त हो नवीन उद्यमके साथ, नवीन शक्तिके साथ नूतन कार्य-क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे हैं।

हुगलीका परिणाम

हुगलीमें हुए प्रादेशिक समितिके अधिवेशनद्वारा राष्ट्रीय पक्षका पथ काफी साफ हो गया है। मध्यपथियोंका मनोभाव उनके आचरणसे जाना गया, राष्ट्रीय पक्षका प्राबल्य भी सभीके अनुभवमें आया। बगाल राष्ट्रीय भावसे परिपूर्ण हो उठा है इसमें रत्तीभर भी सदेह नही। अनेकोको सदेह था कि हुगलीमें राष्ट्रीय पक्षकी दुर्वलता और संख्याकी अल्पता ही अनुभव होगी। किंतु ऐसा नही हुआ, वरन् वर्ष-भरके दलन और निग्रहसे इस दलकी ऐसी अद्‌भुत शक्ति-वृद्धि हुई है और तरुण दलके हृदयमें ऐसा गभीर राष्ट्रीय भाव व दृढ साहस पनपा है कि देखकर प्राण आनदित और प्रफुल्लित हो उठे। सिर्फ कलकत्ता या पूर्व बगालसे ही नही, चौवीस परगना, हुगली, हावडा, मेदनीपुर आदि पश्चिम बगालके सभी जिलोंसे राष्ट्रीय पक्षके प्रतिनिधि समितिमें आये थे। एक और शुभ लक्षण, शृखला और नेताओकी आज्ञाकी अनुवर्तिता, जो तेजस्वी और भावप्रवण नवीन दलके लिए सहज साध्य नही पर है विशेष प्रयोजनीय, हुगलीमें देखा गया। राष्ट्रीय पक्षके नेता कभी भी मध्यपथी नेताओकी तरह स्वेच्छासे कार्य चलानेके इच्छुक नही होगे। दलके साथ परामर्श कर गतव्य पथका निर्णय करेंगे, परतु एक बार पथ निश्चित हो जानेपर नेतापर पूर्ण विश्वास है आवश्यक। यह विश्वास यदि डिग जाय तो नया नेता मनोनीत करना श्रेयस्कर है, किंतु कार्यके समय, अपनी बुद्धि न चला, प्रत्येकको एक प्राण हो नेताकी मदद करना उचित है। पथका निर्णय, स्वाधीन चिंतन और बहुमतसे निर्णीत पथपर सेनाकी तरह शृंखला और बाध्यता है प्रजातत्रमें कार्य-सिद्धिका प्राकृत साधन। हुगली अधिवेशनमें पहले यही उपलब्धि हुई कि राष्ट्रीय पक्ष वर्ष-भरके दमन और भय-प्रदर्शनसे अधिक बलान्वित और शृखलाबद्ध हुआ है। यही है इतने दिनोतक अंतर्निहित शक्तिका विकास।

दूसरा फल है मध्यपथियोंके मनोभावका कार्यमें प्रकट होना। वे शासन-सुधारके प्रस्तावको मानेंगे चाहे वह सुधार निर्दोष हो या सदोष, देशके लिए हितकर हो या अहितकर, वह 'सुधार' नामसे अभिहित है अतः मान्य है, पहलेकी काग्रेसका चिरवाछित दुर्लभ स्वप्न है अत. मान्य है; वह है लार्ड मारलेकी प्रसूत मानस-सतान अतः मान्य है; इसके अलावा वह है मारले-रिपन-प्रसूत स्थानीय स्वायत्त-शासनको ले आनेके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध अतः मान्य है। इससे राष्ट्रीय एकताकी आशा टूटे या न टूटे,

नेताओंका स्वप्न नही टूटने का। बॉयकाटको विषरहित प्रेममय स्वदेशीयतामें परिणत करना भी है नेताओंकी दृढ अभिसंधि। स्वय सभापति महाशयने शेक्सपीयरका प्रमाण दे बॉयकाटका बॉयकाट करनेकी सलाह दी है; वादमें मारले-मॉडरेटोंके मिलन-मंदिरमें विद्वेष-वह्नि घुस कही सब भस्मसात् न कर दे। और यह भी पता लगा कि मध्यपथी नेता वैध प्रतिरोधका परित्याग करनेके लिए कृतसकल्प हैं। वास्तविक मिलन जब हो चुका है, शासन-सुधार जब स्वीकारा जा चुका है, तब प्रतिरोधकी आवश्यकता ही कहाँ रह गयी? विपक्षी-विपक्षीमें प्रतिरोध संभव है, प्रेमी-प्रेमीमें अनुनय करना, रूठना या क्षणिक मनोमालिन्य ही शोभा देता है। इस पुरातन नीतिके पुन सस्थापनका फल हुआ—नेता कन्वेन्शनका और भी दृढ आलिंगन कर बैठे हैं। मद्रासमें बॉयकाटका वर्जन करनेसे सुरेंद्रनाथ कन्वेन्शनका त्याग करेंगे कुछ-एक लोगोंकी यह ऐसी आशा टूट गयी। केवल एक विषयमें अब भी सदेह है, राष्ट्रीय महासभाका पुनः सस्थापन सभव है या असभव? एक तरफ प्रादेशिक समितिके अधिवेशनमें देखा गया कि सभामें पूर्ण राष्ट्रीय भावका प्रकाशक कोई प्रस्ताव स्वीकृत होनेपर हम समितिको तोड खिसक जायेंगे, यही हुआ है मध्यपथियोंका दृढ संकल्प। ऐसा हुआ तो प्रकृत ऐक्य असभव है। क्या है इसका तात्पर्य? पूर्ण राजभक्ति प्रकाशक कोई भी प्रस्ताव उपस्थित होनेपर राष्ट्रीय पक्ष उसे स्वीकारनेके लिए बाध्य होगा, जितनी भी निष्फल प्रार्थना, प्रतिवाद और निवेदन है सब स्वीकारनेके लिए बाध्य होगा, लेकिन पूर्ण राष्ट्रीय भाव-व्यजक प्रस्ताव स्वीकृत नही हो सकता। इस शर्तपर कोई भी प्रबल व वर्धनशील दल समितिमें रहना नहीं चाहेगा, विशेषत. जिस दलकी सख्या में स्थायी रूपसे वृद्धि हुई है। दूसरी तरफ राष्ट्रीय पक्षके आग्रहसे दो दलोंकी एक कमेटी बनी है। राष्ट्रीय महासभामें ऐक्य-स्थापना है उसका उद्देश्य। सदस्योंमें हैं चार मध्यपथी—श्रीयुत सुरेंद्रनाथ, श्रीयुक्त भूपेंद्रनाथ वसु, श्रीयुत वैकुठनाथ सेन और श्रीयुत अंबिकाचरण मजूमदार और चार राष्ट्रीय दलके—श्रीयुत अरविंद घोष, श्रीयुत रजतनाथ राय, श्रीयुत जितेंद्रलाल बद्योपाध्याय और श्रीयुत कृतातकुमार वसु। ये यदि एकमत हो सकें तो राष्ट्रीय महासभाका ऐक्य-सस्थापन चेष्टाद्वारा हो सकता है। चेष्टा करनेपर भी ऐक्य साधित होगा ही यह नही कहा जा सकता; कारण यदि मेहता व गोखले असहमत हो या वर्तमान सिद्धात और कार्य-प्रणालीको बिना आपत्तिके मान लेनेको कहें तो मध्यपथी नेताओंके लिए उनका परित्याग कर राष्ट्रीय महासभाके सस्थापनमें प्रयत्नशील होना असभव है।

ऐसी अवस्थामें एकता है असंभव, किंतु जो क्षीण आशा अब भी बची हुई है राष्ट्रीय पक्ष उसे ही पकड़े है, उसी आशासे संख्यामें अधिक होनेपर भी उन्होंने सभी विषयोंमें मध्यपथियोंके सामने स्वेच्छासे हार मान ली है। ऐसा त्याग-स्वीकार व आत्म-संयम सबल पक्ष ही दिखा सकता है। जो अपने बलको जानते हैं वे उस बलका प्रयोग करनेके लिए सदा व्यग्र नहीं होते। हम सूरत अधिवेशनमें धैर्यच्युत हो गये थे, बंबईके नेताओंका अन्याय, अविचार और अपमान सहकर भी अंतमें धैर्य टूट जानेसे उस आत्म-संयमका फल नहीं पा सके। उस दोषके प्रायश्चित-स्वरूप हुगलीमें हमने प्रबल होते हुए भी दुर्बल मध्यपथी दलका सारा दावा सहकर, एकताकी वह क्षीण आशा हमारे दोषसे विनष्ट न हो जाय—इसीको एकमात्र लक्ष्य बना प्रादेशिक समितिको अकाल मृत्युके हाथसे बचाया। देशके आगे हम दोषमुक्त हुए, भावी वंशधरोंके अभिशापसे मुक्त हुए, यही है हमारे आत्म-संयमका यथेष्ट पुरस्कार। महासभाकी एकता साधित होगी या चिरकालके लिए विनष्ट होगी, यह है भगवान्‌की इच्छाके अधीन, हमारी नहीं। हम मत-सिद्धांतको नहीं सहेंगे, जो कार्य-प्रणाली देशकी अनुमति न ले प्रचलित की गयी है, देशके प्रतिनिधि जबतक सभामें प्रकटरूपसे उसे स्वीकार नहीं कर लेते तबतक हम भी स्वीकार नहीं करेंगे। इन दो विषयोंमें हम कृत-निश्चय हैं, इसके अलावा हमारी तरफसे कोई भी बाधा होनेकी संभावना नहीं। बाधा यदि हुई तो वह अपर पक्षसे होगी।

पर हम इस क्षीण आशापर निर्भर रह निश्चेष्ट नहीं बैठे रह सकते। कब किस अतर्कित दुर्विपाकसे बंगालका ऐक्य छिन्न-भिन्न होगा, कोई ठीक नहीं। महाराष्ट्र, मद्रास, संयुक्तप्रांत और पंजाबके राष्ट्रीय दल हमारे मुँहकी ओर ताकते बैठे हैं। बंगाल है भारतका नेता, बंगालीकी दृढ़ता, साहस व कर्म-कुशलतासे होगा सारे भारतका उद्धार, नहीं तो होना है असंभव। अतएव हम राष्ट्रीय दलका आह्वान करते हैं कि अब फिरसे कार्य-क्षेत्रमें उतरें। देश-हित प्राणोंका उत्सर्ग करनेवाले साधकोंको भय, आलस्य और निश्चेष्टता शोभा नहीं देती। देश-भरमें राष्ट्रीय भाव प्रबलतया जाग्रत हो रहा है, पर कर्मद्वारा प्रकृत आर्य संतानका परिचय न दे पानेसे वह जागरण, वह प्राबल्य, वह ईश्वरका आशीर्वाद स्थायी नहीं होगा। भगवान्‌ने कर्मके लिए, नवयुगके प्रवर्तनके लिए राष्ट्रीय दलकी सृष्टि की है। इस बार केवल उत्तेजना व साहस नहीं, धैर्य, सतर्कता और सुव्यवस्था आवश्यक है। भगवान्‌की शक्ति बंगालमें धीरे-धीरे अवतरित हो रही है; इस बार सहज ही तिरोहित नहीं होगी। अयाचित भावसे देश-सेवा करें,

परमेश्वरका आशीर्वाद हमारे साथ है। हृदय-स्थित ब्रह्म जाग उठे हैं, भय और संदेहकी उपेक्षा कर धीरतासे गंतव्य पथपर अग्रसर हों।

धर्म
अंक 5
आश्विन 4, 1316

श्रीहट्ट जिला समिति

राष्ट्रीय भावनाके प्रसारण और उसकी आशातीत वृद्धिमें मैं हुगलीमें अवगत हुआ था, किंतु श्रीहट्ट जिला समितिमें इसकी पराकाष्ठा देखी गयी। पूर्व अंचलके इस सुदूर प्रान्तमें मध्यपंथीका नाम-निशानतक नहीं रह गया है, वहाँ राष्ट्रीय भावना ही है अक्षुण्ण व प्रबल। श्रीहट्टवासी भारतबंधु बेकरके राम-राज्यमें वास नहीं करते, फिर भी दमन-नीतिके जन्म-स्थानमें समितिका आयोजन कर स्वराजका नाम लेनेसे डरे नहीं, सर्वांगीण बॉयकाट करनेमें साहस दिखाया, आवेदन-निवेदन-नीतिको त्याग आत्म-शक्ति व वैध प्रतिरोधका अवलंबन ले तदनुयायी सारे प्रस्तावोंकी उन्होंने रचना की। श्रीहट्ट जिला समितिमें स्वराज्य धर्मतः प्रत्येक जातिका प्राप्य है, ऐसी घोषणा की गयी है, समितिने देशवासियोंको स्वराज्य-प्राप्तिके लिए सर्वविध वैध साधनोंका प्रयोग करनेके लिए आह्वान किया है। इस अधिवेशनमें कई नये लक्षण देखे। पहला, समितिने राजनीतिके संकीर्ण घेरेसे बाहर जानेका साहस दिखा विलायत-यात्राकी प्रशंसनीयताका प्रचार किया है और समाजसे अनुरोध किया है कि राष्ट्रीय भावापन्न विलायत-प्रत्यागत लोगोंको समाजमें ले लिया जाय। इसपर विषय-निर्वाचन समितिमें काफी वाद-विवाद हुआ किंतु मतामत देनेके समय सब मिलाकर ग्यारह विलायत-यात्रा-विरोधियोंकी संख्या ग्यारह ही रही, अधिक नहीं बढ़ी। प्रतिनिधियोंमें भी इनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। पाँच सौ प्रतिनिधियोंमें प्रायः चार-सौ व्यक्ति प्रस्तावके विरुद्ध थे। शत-शत कंठोंसे गगनभेदी "वंदे मातरम्"की ध्वनिके साथ प्रस्ताव पारित हुआ। दूसरा, अधिवेशनके समय इन प्रस्तावके अलावा और किसी भी प्रस्ताव-पारणके समय भाषण नहीं हुआ। प्रस्तावक, अनुमोदक और समर्थक सभीने बिना भाषणके अपना-अपना कार्य समाप्त किया।

तीसरा, अधिवेशन शहरमें न हो जल-प्लावित जलसुका गांवमें हुआ। चौथा, सभापतिके आसनपर लब्ध-प्रतिष्ठित वकील या व्याख्यात राजनीतिक वक्ता विराजमान न हो एक सुपंडित, धार्मिक, संन्यासीतुल्य, निष्ठावान्, धोती-चादर परिहित, रुद्राक्षमाला-शोभित ब्राह्मण उस आसनको ग्रहण करनेके लिए सर्व-सम्मतिसे निर्वाचित हुए थे। इन सुलक्षणोंको देखते हुए भला किसके मनमें आशा व आनंदका सचार न होगा? अशिक्षित जन-समूह अभी भी आदोलनमें पूर्णतः योग नही दे पाया है। शिक्षाके अभावमें वैसा योगदान है दुःसाध्य। किंतु आदोलनने कतिपय अगरेजी भाषाविज्ञ वकील, डाक्टर, सवाद-पत्रोंके सपादक और शिक्षकोंमें ही आवद्ध न हो सारे शिक्षित सप्रदाय को आकृष्ट और आत्मसात् किया है। जमीदार, व्यापारी, ब्राह्मण, पंडित, शहरी, ग्रामीण कोई भी नही बचा। यही है आशाकी बात।

प्रजाशक्ति और हिंदू समाज

विलायत-यात्राको क्यों शुभ बतलाया है इसका सक्षिप्त विवरण देना उचित है, इस सवधमें अब भी मतैक्य नही, अत. बहुतोकी यह धारणा है कि ऐसी सामाजिक वातको न उठाना ही है श्रेयस्कर। पाच साल पहले हम भी इस आपत्तिको युक्तिसगत मानते। अब भी यदि राष्ट्रीय महासभामें यह प्रश्न आलोचित होता तो हम उसे अमान्य कर देते। स्वदेशी आदोलनके पहले कई अगरेजी-शिक्षित विलायती रगमें रगे सज्जनोको छोड सारा शिक्षित समाज राजनीतिक सभाके अधिवेशनमें भाग नही लेता था। ये हिंदू समाज-सवधी जटिल प्रश्नोको विचारनेके अधिकारी नही थे, उन प्रश्नोकी मीमासा करनेपर हास्यास्पद होते थे। हिंदू समाजके क्रोध व घृणाके पात्र बनते थे। जो सामाजिक समिति महासभाके अधिवेशन-स्थलपर बैठती वह भी इसी तरह अनधिकार चर्चा करती। समाज ही समाजकी रक्षा और समाजका सुधार कर सकता है। जो हिंदूधर्म मानते हैं वे ही हिंदू समाजके पुनरुज्जीवन और धर्म-संस्थापनके व्रती हो सकते हैं? किंतु जो इस समाजकी उपेक्षा कर हिंदू धर्मका मखौल उडाते हैं उनके द्वारा सुधारका प्रश्न उठाये जानेपर उस चेष्टाको अनधिकार चर्चाके सिवा और भला क्या कहें? सारा हिंदू समाज अब भी महासभामें भाग नही ले रहा है, अत. महासभा ऐसा कोई प्रस्ताव स्वीकारनेकी अधिकारिणी नही। पर वगालकी अवस्था दूसरी है। निष्ठावान् हिंदू, ब्राह्मण पडित, गैरिक वसनधारी सन्यासीतक ने राजनीति

आंदोलनमें भाग लेना आरंभ कर दिया है। किंतु अब हिंदू समाजकी रक्षाका उपाय न करनेसे नही चलेगा। पाश्चात्य शिक्षाके आक्रमणसे हमारा सब कुछ चकना-चूर हो रहा है। आचार-विचार हैं आजकल पाखंडमात्र। धर्ममें जीवंत आस्था व विश्वास अबतक लुप्त न होनेपर भी कम तो हो ही गया है। मुसलमानों व ईसाइयोंकी संख्या बढ रही है और हिंदुओकी तेजीसे घटती जा रही है। पहले समयोपयोगी और अब अनिष्टकारी कुछ प्रथाओमें अनुचित ममतावश राष्ट्रकी उन्नति और महत्त्वकी प्राप्ति स्थगित हो गयी है। पहले जब हिंदू राजा थे, राजशक्ति ही ब्राह्मणोंके परामर्श व सहायतासे समाजकी रक्षा और समयोपयोगी समाज-सुधार करती थी। वह राजशक्ति लुप्त हो गयी है; उसके शीघ्र ही पुनः संस्थापित होनेकी आशा भी नहीं। पर हाँ, प्रजाशक्ति बढ़ रही है और सस्थापित होनेकी चेष्टामें है। इस अवस्थामें उचित है कि प्रजाशक्ति पुरातन हिंदू राजशक्तिका स्थान ले उसी तरह समाज-रक्षा व समाज-सुधार करे; नही तो हिंदू जाति विनष्ट हो जायगी। श्रीहट्टमें एक ब्राह्मण पंडित थे इस प्रस्तावके मुख्य समर्थक। प्रतिनिधियोंमें शायद विलायतसे लौटे एक भी व्यक्ति नही थे। गाव-गावके निर्वाचित प्रतिनिधि अधिवेशनमें उपस्थित थे। ऐसेमें इस तरहके प्रस्तावका स्वीकृत होना आशाका लक्षण ही कहा जायगा। इससे हिंदू समाजको कोई भी चोट पहुँचनेकी संभावना नही। निःसदेह, ऐसे प्रस्तावकी स्वीकृतिअतिशय सतर्कतासे होनी चाहिये। ब्राह्मणों और प्रत्येक वर्णके मुख्य-मुख्य सामाजिक नेताओको प्रस्ताव स्वीकार करनेके लिए सहमत करा प्रस्ताव पास करना ही युक्तिसंगत है।

विदेशयात्रा

विदेशयात्राकी आवश्यकताके बारेमें अब और अनेक मत नही हो सकते। हमने स्वदेशीके विस्तारको राष्ट्रके जीवन-रक्षणका मुख्य साधन मान लिया है, विदेशयात्राका निषेध होनेपर वह विस्तार दुःसाध्य होगा। जो शिल्प-शिक्षाके लिए विदेश जायेंगे वे देशकी रक्षाके लिए, समाजकी पुष्टिके लिए विदेशकी यात्रा करेंगे, पुण्यकर्म और धर्मकार्यके व्रती हो विदेश जायेंगे। समाज किस मुहसे इस कार्यको पापकर्म या समाज-च्युतिके उपयुक्त कुकर्म कहेगा, किस मुहसे उत्साही युवकवृंदको इस महान् उन्नति-चेष्टामें लगा उस आज्ञापालनका कोई पुरस्कार न दे विषम सामाजिक दंड देगा। इतने सारे

तेजस्वी धर्मप्राण स्वदेश-हितैषी राष्ट्रीय भावापन्न युवक यदि समाजसे निकाल दिये जायें तो इससे हिंदू समाजका कौन-सा कल्याण होगा—तर्ककी दृष्टिसे देखनेपर विलायत-यात्राके निषेधके पक्षमें कोई भी युक्ति नहीं मिलती। शास्त्रकी दृष्टिसे भी विदेशयात्रामें एक भी अलंघनीय प्रतिबंधक नहीं। शास्त्रके दो-एक श्लोकोंकी दुहाई देनेसे नहीं चलने का। शास्त्रके भावार्थ और समाजकी पुरातन प्रणालीकी ओर भी दृष्टिपात करना चाहिये। अति अर्वाचीन कालतक विदेशयात्रा और समुद्रयात्रा बिना किसी आपत्तिके चलती थी, आर्य-साहित्यमें इसके भूरि-भूरि प्रमाण मिलते हैं। जब समाजकी रक्षा और आचारकी रक्षा करना कठिन हो उठता है तब ब्राह्मणोंकी सलाहसे समुद्रयात्रा और अटक नदीके उस पार प्रवास करना निषेध होता है। इसी कारणसे जापानमें विदेशकी यात्रा बिलकुल बंद कर दी गयी थी। ऐसा विधान होता है काल सृष्ट, समयपर नष्ट होता है, सनातन प्रथा नहीं बन सकता। जबतक राष्ट्र व समाज उससे उपकृत और रक्षित होता है तबतक समयोपयोगी विधान टिकता है। जिस दिन राष्ट्र व समाजके विकास और उन्नतिमें अंतराय आता है उस दिनसे उसका विनाश होना अवश्यंभावी है। विदेशसे लौटे भारतवासियोंका अंगरेजी अनुकरण, समाजकी उपेक्षा और उद्धत बात-व्यवहारसे इस कल्याणकर सुधारमें विलंब हुआ है। समाजको माननेसे, समाजमें रहनेसे समाजका कल्याण होता है, समाज-विनाशकी चेष्टासे नहीं।

तारापुरमें चीनीका कारखाना

तारापुरमें देशी चीनी बनानेकी जो नयी चेष्टा चल रही है उसके संबंधमें पिछली बार कई-एक प्रश्न पूछे गये हैं। नयी संस्थाके संचालकोंने हमारे सामने इनकी मीमांसा की है। उनकी बातोंसे पता चला कि पहली बार पारिवारिक संकटके कारण इस कारखानेमें काम बंद हुआ। दूसरी बार राय धनपतसिंहकी विधवा स्त्री एक सुदक्ष मैनेजरकी सहायतासे कारखाना चलाने लगीं। उस मैनेजरकी मृत्यु होनेपर कारखाना फिर बंद हो गया। ऐसी अवस्थामें उनके द्वारा यह बृहत् चेष्टा सफलताके योग्य होकर भी सफल न होते देख कारखानेके मालिकने कारखानेको बेचनेकी बेचैनी देख नयी कंपनी अल्प मूल्यमें ही उसे खरीद सकी। बाजारमें जावाकी चीनीकी भारी बिक्रीसे स्वदेशी चीनी पहली अवस्थामें यदि लाभकर न भी हो, फिर भी गुड़से नाना चीजें बनती हैं, जिनसे निश्चित

और प्रचुर लाभ होता है। कंपनीके संचालक इस तरफ विशेष ध्यान देंगे। इसके अलावा अमेरिकामें शिक्षाप्राप्त रसायनविद्याविशारद श्रीयुत गिरीद्रनाथ मुखोपाध्यायके इस कार्यमें योग देनेके वचनसे इस संस्थाकी विशेष उन्नतिकी आशा की जा सकती है। मूलधनके जुटते ही गिरीद्र वावू स्वदेश लौटकर यह काम हाथमें ले लेंगे।

धर्म
अक 6
आश्विन 11, 1316

लालमोहन घोष

गतपूर्व शनिवार वाग्मीवर लालमोहन घोष महाशयका स्वर्गवास हो गया। अपनी पिछली उम्रमें उन्होने अच्छी तरह समझा था कि जनसाधारणके विना केवल मुट्ठीभर अगरेजी-शिक्षित लोगोको ले राजनीतिक आंदोलन सफल नही हो सकता। प्रादेशिक समितियोमें वगलामें भाषण देनेकी प्रथा पहले-पहल उन्होने ही प्रवर्तित की थी।

लालमोहनकी चढ़ती उम्रमें वगालियोकी परमुखापेक्षिता दूर नही हुई थी, इसीलिए उन्होंने विलायत-पार्लमेंटके सभ्य वननेकी चेष्टा की थी। उनकी यह चेष्टा घटना चक्रके वश नही फली।

लालमोहन थे असाधारण वाग्मी। अगरेजीपर था उनका असाधारण अधिकार। विलायतमें वहुत-से लोग पकड नही पाते थे कि यह किसी विदेशीकी वक्तृता है। इलवर्ड विलके आंदोलनके समय वैरिस्टर ब्रासन्ने जव टाउन हॉलमें वंगालियोको गालिया दी तव लालमोहनने ढाकाके नॉर्थ-व्रुक हॉलमें जो भाषण दिया उसकी उग्रताकी तुलना नही। उस वक्तृताका फल हुआ—ब्रासन् भारतवासी अटर्नी-पदसे वहिष्कृत किये गये और भारतवर्ष-को छोड़नेके लिए वाध्य हुए।

लालमोहन पिछली उम्रमें नये भावमें नही रग पाये; पूर्व सस्कारयुक्त नव भाव-दीक्षितोकी निंदा भी की।

किंतु वंगालमें 'वॉयकाट'के प्रवर्तनका प्रस्ताव है उनकी महान् कीर्ति। दिनाजपुरमें उन्होने वंग-भंगके प्रतिवादस्वरूप विदेशी-वर्जनका प्रस्ताव रखा था।

श्रीहट्टमें प्रस्तावावली

सुरमा उपत्यका समितिके अधिवेशनमें वॉयकाटका प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया और औपनिवेशिक स्वायत्त-शासन व निर्वासितोके बारेमें कोई सतोष-जनक प्रस्ताव नही रखा गया, यह देख सहयोगिनी 'संजीवनी'ने दु.ख प्रकट किया है। 'बंगाली' पत्रिकामें प्रकाशित प्रस्तावोका भ्रमात्मक अंगरेजी अनुवाद देख सहयोगिनी भ्रममें पड़ गयी है। यह अनुवाद है भ्रमपूर्ण। जहाँपर Self-Government शब्दका प्रयोग हुआ है वहाँपर मूलमें था 'स्वराज्य' शब्द, स्वराज्यपर प्रत्येक सभ्य राष्ट्रका अधिकार है, समिति देशवासियोंको सर्वविध वैध साधनोंसे स्वराज्य पानेकी चेष्टा करनेके लिए आह्वान कर रही है, इसी गूढ़ अर्थमें प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। इंगलैंडके साथ भारतका औपनिवेशिक सबंध नही, इसके अलावा औपनिवेशिक स्वायत्त-शासन भारतके पूर्ण राष्ट्रीय विकास और महत्त्वका उपयोगी शासन-तन्त्र नही। इसी विश्वासके बलपर समितिने किसी विश्लेषणके स्वराज्यको ही माना है अपनी चेष्टाका लक्ष्य। वॉयकाटका प्रस्ताव भी परित्यक्त नही हुआ है किंतु उसे वग-भंगके साथ न जोड़ समितिने स्वराज्य प्राप्ति और देशकी उन्नतिके लिए बॉयकाटकी प्रयोजनीयताको समझकर ही उसका समर्थन किया है। जिन वैध साधनोंसे स्वराज्य प्राप्तिकी चेष्टा समितिद्वारा अनुमोदित है; बॉयकाट है उसी वैध साधनोमें गण्य और प्रधान, यही है श्रीहट्टवासियोंका मत। वॉयकाटकी प्रयोजनीयता वंग-भंगके प्रतिकारमें सीमावद्ध होनेसे उसका क्षेत्र अति सकीर्ण हो जायगा। समितिके स्वीकृत प्रस्तावकी रचनामें यही मूल नियम रक्षित हुआ है कि आत्म-शक्तिसे जो प्राप्य हो उसपर ही विशेष लक्ष्य रखना कर्तव्य है, राजपुरुषोसे आवेदन-निवेदन वर्जनीय है, और जो-जो विषय उनके अनुग्रहपर निर्भर हैं, पर उनका उल्लेख करना आवश्यक है, उसके बारेमें सरकारसे प्रार्थना या प्रतिवादका वर्जन कर केवल मत प्रकट करना यथेष्ट है। इस नियमानुसार समिति निर्वासितोंसे सहानुभूति दिखा विरत हो गयी है। वंग-भंगके विरुद्ध व्यर्थमें वागाडंवर न कर सक्षेपमें प्रतिवाद किया गया है। सहयोगिनीके इस कथनसे कि औपनिवेशिक स्वायत्त-शासन सभी पक्षोंको स्वीकृत है, हम दंग रह गये। राष्ट्रीय पक्ष मध्यपथियोंके मनकोर खनेके लिए सभा-समितियोंमें औपनिवेशिक स्वायत्त-शासनके प्रस्तावका प्रतिवाद भले न करें, पर वैसे स्वायत्त-शासनमें उनकी तिलभर भी आस्था नही और न उसे स्वराज्य नामसे अभिहित ही करना चाहते हैं। असपूर्ण स्वराज्य अधीनता-दोषसे

दूषित है अत. है स्वराज्य कहलानेके अयोग्य। वैसे स्वायत्त-शासनसे अगरेज उपनिवेशवासी भी असतुष्ट हैं, उसी असतोषके कारण युक्त साम्राज्य (Imperial Federation) और स्वतंत्र सैन्य एवं नौ-सेनाके गठनकी चेष्टा चल रही है। वे अधीन हो ब्रिटिश साम्राज्यमें रहना नही चाहते, साम्राज्यके समान-अधिकार-प्राप्त भागीदार वननेके प्रयासी हैं। जब नवजात अलब्ध-प्रतिष्ठ अख्यात शिशु-राष्ट्रमें ऐसी महती आकाक्षा जनमी है, तब यदि हम, प्राचीन आर्य जाति, अधूरे व राष्ट्रीय महत्त्वके विकासमे अनुपयोगी स्वायत्त-शासनको अपने इस महान् और ईश्वर-प्रेरित अभ्युत्थानका चरम व परम लक्ष्य कहें तो इसे हमारी हीनता और भगवान्की सहायता-प्राप्तिमें अयोग्यता दिखानेके अलावा और क्या कहा जाय?

राष्ट्रीय धन-भंडार

हुगली प्रादेशिक समितिके अधिवेशनमें राष्ट्रीय धन-भडारसे फेडरेशन हॉलके निर्माणमें खर्चनेका प्रस्ताव निर्विवाद पारित हुआ था। मध्यपथी देश-नायक श्रीयुत सुरेंद्रनाथ वद्योपाध्यायने यह प्रस्ताव रखा था, राष्ट्रीय पक्षके नेता श्रीयुत अरविंद घोषने इसका अनुमोदन किया था, बिना विवाद और सोत्साह यह प्रस्ताव पास हुआ था। इसके बाद सारे देशकी आकांक्षाकी उपेक्षा कर अन्य मतकी सृष्टि करनेकी चेष्टा देश-हितैषियोका काम नहीं। पर 'बंगाली' पत्रिकाके एक पत्र-प्रेरकने पुराने संस्कारवश फंड देनेवालोंको कुपरामर्श दिया है। उन्होंने कहा है कि हुगलीमें समवेत देश-नायको और प्रतिनिधियोंने विना विचारे क्षणिक आवेशमें यह प्रस्ताव पास किया है। वस्त्र-वयन-शिल्पकी सहायताके लिए धन-भडारकी स्थापना हुई है, अन्यथा खर्च होनेपर फडके ट्रस्टी देशके प्रति विश्वासघातकताके अपराधी बनेंगे। धन-भंडारकी निधि फेडरेशन-हॉल निर्माणकी अपेक्षा राष्ट्रीय विद्यालय या बगाल टेक्निकल इंस्टिट्यूटकी सहायतामें खर्चनेसे, उनके मतमें, देशका उपकार व राष्ट्रीय निधिका सद्व्यवहार होगा। ये ही हैं महत् कार्य। फेडरेशन-हॉलका निर्माण है अतिशय क्षुद्र व नगण्य कार्य। हॉलके अभावमें इतने दिन हमने कोई असुविधा महसूस नहीं की, और कुछ दिन हॉल न बने तो भी चलेगा। पहली बात—वस्त्र-वयनके अलावा दूसरे उद्देश्यसे खर्चना यदि विश्वासघात कहा है तो लेखक महाशयने राष्ट्रीय विद्यालय या टेक्निकल इस्टिट्यूटकी बात क्यो उठायी है? इससे क्या यह नही समझा जाता कि

दूसरे उद्देश्यसे खर्चना उनके मतमें अपराध नहीं, किंतु उनके अनभिमत उद्देश्यमें फंडके खर्च होनेकी संभावना देख वे सिर्फ वाधा देनेके लिए विश्वास-घातकता कह आपत्ति कर रहे हैं? ट्रस्टी किसके प्रति अपराधी होंगे? देशका मत तो हुगलीमें व्यक्त हो चुका है। देशके प्रतिनिधियोंने इस उद्देश्यको ही उपयुक्त उद्देश्य मान अपना मत प्रकट किया है। अतः इस तरहके अर्थ-व्ययसे ट्रस्टी देशके प्रति अपराधी नही होंगे। यदि दाताओंकी वात कहें तो जिज्ञासा होती है: क्या दाताओंने, यह धन हमारा निजी धन बना रहेगा, हमारी निजी संपत्ति बनी रहेगी, ऐसा समझकर दान दिया है या यह राष्ट्रीय धन, राष्ट्रीय संपत्ति बन जायगी, ऐसा मान कर दिया है? यदि यह धन-भंडार राष्ट्रीय संपत्ति हो तो उसका सारा खर्च बंगालके मतानुसार होना उचित है। सारा बंगाल जब इस उद्देश्यको मान चुका है तब दाता देश-मतके विरुद्ध मत दे वाधा क्यों देने लगें? अतः इस प्रकारके अर्थ-व्ययसे ट्रस्टी दाताओंके प्रति भी अपराधी नही बनेंगे। तो भी एक आपत्ति उठायी जा सकती है, शायद वे कानूनके पाशमें बंधे हों, किसी अन्य उद्देश्यसे फंडका प्रयोग करनेमें असमर्थ हों, जब राष्ट्रीय धन-भंडार स्थापित हुआ तब संगृहीत धन वस्त्र-वयन इत्यादि कार्यमें खर्च होगा, ऐसी घोषणा की गयी थी। अब विचारणीय यह है कि इत्यादि शब्दका अर्थ वस्त्र-वयन इत्यादि शिल्प-कार्य है या वस्त्र-वयन इत्यादि राष्ट्रीय कार्य? यदि अंतिम अर्थ माना जाय तो कानूनकी वाधा भी कट जाती है। यदि ट्रस्टियोंको अपनी क्षमतापर संदेह हो तो दाताओंकी सभा बुला बंगालके प्रतिनिधियोंकी हाँमें हाँ मिलायें, वे इस अनुमतिद्वारा संदेहसे छुटकारा पा सकते हैं। राष्ट्रीय विद्यालय या टेक्निकल इंस्टिट्यूटमें फंडको खर्च करनेके विषयमें नाना कारणोंसे मतभेद होनेकी संभावना है। अब वस्त्र-वयन-शिल्पमें व्यय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वयन-शिल्पने काफी उन्नति कर ली है। उस क्षेत्रका अवशिष्ट कार्य व्यक्तिगत या सम्मिलित कारवारसे ही संपन्न हो सकता है। फेडरेशन हॉलके निर्माणको अब और क्षुद्र या निष्प्रयोजनीय कर्म नहीं कहा जा सकता। इतने दिनोंतक हॉल न बननेसे सारा राष्ट्र सत्य-भंग और अकर्मण्यताके कलंक का भाजन बना है और उसके अभावमें यथेष्ट असुविधाएं भी सहनी पड़ी हैं। बंगालके जीवन-केंद्र कलकत्तेमें जो ध्वनि उठती है वही देशभरमें प्रतिध्वनित होती है, उससे ही सारा राष्ट्र उत्साहित और कर्तव्य-पालनमें बलीयान् होता है, आंदोलनके आरंभसे ही यह उपलब्धि होती आ रही है। कलकत्तेकी नीरवतासे देश नीरव व उत्साह-हीन पड़ गया है। अतः पूर्ण स्वाधीनतापूर्वक सम्मिलित

होनेके स्थानका अभाव कोई कम अभाव नही। ऐसेमें पूरे बंगालके अभीप्सित उद्देश्यमें राष्ट्रीय धनभडारका अर्थ-व्यय करना उचित और प्रशसनीय है।

सर फिरोजशाह मेहताका बॉयकाट अनुराग

अबतक हमारी यह धारणा थी कि सर फिरोजशाह मेहता चिरकाल रहे हैं बॉयकाट-विरोधी व स्वराज्यमें अनास्थावान्। यह धारणा सर फिरोजशाहके आचरण और बातोंसे सृष्ट व पुष्ट होती आयी है। इतने दिन बाद सर फिरोजशाहके हृदयमें प्रबल बॉयकाट-अनुराग-वह्नि जलने लगी है और स्वराज्यके लिए अजस्र अकृत्रिम प्रेमधारा उनकी रग-रगमें वह रही है और हमेशा बही है सुनकर हम स्तभित और रोमाचित हुए। यह अद्भुत बात 'वगाली' पत्रिकाने प्रकाशित की है। लाहौरमें फिरोजशाह मध्यपथी महासभाके सभापति चुने गये हैं जान सारे अगरेजी दैनिक—'टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'स्टेट्समैन', 'इगलिशमैन', 'डेलि न्यूज'—आनदसे अधीर हो उठे हैं, यह मेहता महाशयके लिए कम गौरवकी बात नही। 'वगाली'को और सब सह्य है पर 'इंगलिशमैन'के आनदमें वह विपरीत ढंगसे अधीर हो यह प्रतिपादित करनेकी चेष्टा कर रहा है कि सर फिरोजशाह बॉयकाट व स्वराज्य विरोधी नही हैं। सहयोगी 'बंगाली'ने कहा है, सर फिरोजशाहने कलकत्ता-अधिवेशनमें बॉयकाटके प्रस्तावका सोत्साह व सानद अनुमोदन किया था, दादा भाईके मुहसे स्वराज्य शब्द निकलनेपर उन्होने आनदसे प्रफुल्ल हो उसका समर्थन किया था। हम सुनकर आह्लादित तो हुए किंतु जले मनके दोषसे दुष्ट सदेहको जीत नही पाये। याद आ रहा है मद्रास और अहमदाबादमें स्वदेशी प्रस्तावपर मेहता महाशयका तीव्र उपहास। याद आता है, कलकत्तेके अधिवेशनमें स्वदेशी प्रस्तावमें "स्वार्थ-त्याग कर भी" ये शब्द समाविष्ट करानेके लिए दो घंटेतक तिलककी उत्कट चेष्टा, मेहताका क्रोध और तिरस्कार एव गोखले व मालवीयकी मध्यस्थता; प्रस्तावमें उस बातकी अवतारणापर मेहताका अभिमान और महासभामें चुप रह जाना। याद आता है, सूरतमें सभा-भग होनेपर मेहताका आनंद प्रकाश। याद आता है, मेहताद्वारा पत्रमें बंगालका अपमान और मद्रासमें बॉयकाटका बहिष्कार। याद आ रहा है, मेहताका मत कि औपनिवेशिक स्वराज्य है सुदूर भविष्यका स्वप्नमात्र। नही, जला मन, 'बंगाली'के

शुभ संवादपर किसी भी तरह विश्वास करनेको तैयार नही। हम नम्रतासे सहयोगीको अपनी बातका थोडा-सा प्रमाण देनेका अनुरोध करते हैं, नही तो ऐसी नितांत अलीक [व] अविश्वसनीय बातके प्रचारसे मध्यपंथी दलका क्या लाभ हुआ, यह] समझमें नही आया।

कन्वेन्शनके सभापतिका निर्वाचन

यह तो जानी हुई बात थी कि मेहता महाशय लाहौर कन्वेन्शनके सभापति चुने जायेंगे। बंगालके बाहर श्रीयुत सुरेंद्रनाथ मध्यपंथियोद्वारा मध्यपंथी नही माने जाते। उन्हें छोड़नेपर बंगालको छोड़ना होगा, अगत्या वे उन्हें स्थान दे रहे हैं। उन सबकी दुर्दशा देखकर दया भी आती है, सुरेंद्रनाथको न निगल ही सकते हैं न उगल ही सकते हैं। जिनके उदार मतसे, जिनके देशके प्रति प्रगाढ़ प्रेमसे, सुरेंद्रनाथने अपनी आवेगमयी वक्तृता, तेजस्विता व स्वदेश प्रेमके गुणके बलपर असाधारण गौरव पाया था, वह गौरव नष्ट होने जा रहा है, उन साहसहीन बंधुओके कुपरामर्शसे भारत-भरके पूज्य देश-नायक प्रादेशिक दलके क्षुद्र नेतामें परिणत होने जा रहे हैं। इधर सर फिरोजशाह मेहता कन्वेन्शनमें असंगत आधिपत्य पा इस जाली कांग्रेसके बॉयकाट-वर्जन और शासन-सुधारको स्वीकार कर राजभक्तिकी मात्रा बढाने व राष्ट्रीयताका ह्रास करनेके लिए बद्धपरिकर हैं। इससे बंगालके मध्यपंथी असंतुष्ट हुए हैं। उससे कन्वेन्शनके राजाका क्या? बंगालके प्रति उनकी अवज्ञा व विद्वेष अतिशय गंभीर हैं। बंगालके प्रतिनिधियोंद्वारा कन्वेन्शनका वर्जन करनेपर भी वे अपने निर्दिष्ट पथका परित्याग नही करेंगे। स्वराज्य, बॉयकाट, राष्ट्रीय शिक्षा व बंग-भंगके प्रतिवादके साथ उनके दलकी कोई आतरिक सहानुभूति नही, ये प्रस्ताव उठ जायें तो उनकी जान बचे। वे चाहते हैं मिंटो-स्वदेशी, स्वार्थ-त्यागयुक्त स्वदेशी नही। ऐसी अवस्थामें बंगालके मध्यपंथी या तो धीरे-धीरे मेहताके श्री-चरणोमें अपने-अपने राजनीतिक मतोकी बलि चढानेको बाध्य होंगे, या उन्हें कन्वेन्शनसे हटना पड़ेगा। युक्त महासभा ही है उनकी आत्म-रक्षाका एकमात्र उपाय। किंतु साहस बटोर मेहताके कहेका विरोध कर संयुक्त महासभाकी स्थापनाकी चेष्टा करनेका बल उनमें कहाँ? खैर, इस सभापति-निर्वाचनसे हमारा पथ और भी साफ हो गया है। मेहता-मजलिसमें हमारा थान नही, युक्त महासभाकी आशा क्षीणतर होती जा रही है, अब हम

अपनी राह देखें। वर्ष खतम होनेसे पहले ही, राष्ट्रीय दलके लिए परामर्श सभाका स्थापन व सम्मेलन आवश्यक है।

धर्म
अंक 7
आश्विन 18, 1316

गीताकी दुहाई

विलायतमें राष्ट्रीय महासभाके अधिवेशनके पक्षमें गीताका आश्रय ले एक अद्भुत और रहस्यमय युक्ति प्रदर्शित की जा रही है। अधिवेशनके परिपोषक वैसे अधिवेशनमें प्रकृत फलकी संभावना न दिखा सकनेपर देशवासियोंको गीतोक्त 'निष्काम' धर्म और सिद्धि व असिद्धिमें समताका अवलंबन लेनेके लिए कह रहे हैं। *विलायत अधिवेशन है हमारा कर्तव्य कर्म*, अतः उसके फलाफलकी विवेचना न कर कर्तव्य कर्मका निर्णय करना चाहिये। राजनीतिमें धर्मकी दुहाई व गीताकी दुहाई दी जाती देख हम खुश हुए और 'कर्मयोगीन्' व 'धर्म'की चेष्टा फल रही है जान आशा बंधी। किन्तु गीताकी ऐसी व्याख्यासे आरंभमें भूल होनेकी संभावना देख शंकित भी हो रहे हैं। कर्तव्य पालनेके उपाय-निर्वाचनमें अपरिणामदर्शिता व उद्देश्य-सिद्धिकी चेष्टामें उदासीनताकी शिक्षा देना गीताके समतावाद और निष्कामकर्मवादका उद्देश्य नहीं। हमारा कर्तव्य क्या है पहले इसका निर्णय कर लेना आवश्यक है; इसके बाद धीरतासे असफलतामें अविचलित रह कर्तव्य करते जाना है धर्म-अनुमोदित पथ। लंदन अधिवेशन हमारा कर्तव्य कर्म है या नहीं, यह विवादास्पद है; इस प्रश्नकी मीमांसामें परिणामकी चिंता त्याग नहीं सकते। कर्तव्य-निर्णयमें दो स्वतंत्र विषयोंकी मीमांसा आवश्यक है। पहला है उद्देश्य, दूसरा उपाय। मुख्य उद्देश्य है धर्मानुमोदित होनेपर—धर्मका आवश्यक अंग होनेपर—परिणामकी चिंता न करना; वह है हमारा स्वधर्म, उस धर्म-पालनमें निधन भी है श्रेयस्कर, तब उसका परित्याग कर परधर्म-पालन है पाप। जैसे, स्वाधीनता-प्राप्तिकी चेष्टा, स्वाधिकार-लाभकी चेष्टा, देश-हित करनेकी चेष्टा है राष्ट्रका प्रधान धर्म, देशकी प्रत्येक कर्मी संतानका स्वधर्म और उस स्वधर्म-पालनमें प्राण-त्याग

भी है श्रेयस्कर, लेकिन स्वधर्म त्याग कर शूद्रोचित पराधीनता एव दास-स्वभाव-सुलभ स्वार्थपरताका आश्रय लेना है महापाप। किंतु उपायका धर्मानुमोदित होना ही यथेष्ट नही, उद्देश्य सिद्धिके योग्य भी होना होगा। स्वधर्मके अगस्वरूप कर्तव्य कर्म करनेके लिए धर्मानुमोदित व उपयुक्त उपाय प्रयोग कर उत्साहसहित कर्तव्यसिद्धिकी चेष्टा करनेपर भी यदि सफलता न मिले तो असफलतासे अविचलित रह प्राण त्यागनेतक बारंबार सर्वविध उपयुक्त और धर्मानुमोदित उपायोसे कर्तव्य पालनकी दृढ चेष्टा ही है गीतोक्त समता और निष्काम कर्म। नही तो गीताका धर्म कर्मीका धर्म, वीरका धर्म, आर्यका धर्म न हो या तो तामसिक निश्चेष्टताकी परिपोषक शिक्षा होता या होता अपरिणामदर्शी मूर्खका धर्म। कर्मफलपर हमारा अधिकार नही, कर्मफल है भगवान्‌के हाथ, हमारा अधिकार तो है केवल कर्मपर। सात्त्विक कर्ता होते हैं अनहंवादी व फलासक्तिहीन—किन्तु होते है दक्ष व उत्साही। वे जानते है कि उनकी शक्ति है भगवद्-प्रदत्त और महाशक्तिद्वारा चालित, अत. वे हैं अनहवादी; वे जानते हैं कि फल पहलेसे ही भगवान्‌द्वारा निर्दिष्ट है अतएव होते है फलासक्तिहीन; किन्तु वे यह भी जानते है कि दक्षता, उपाय-निर्वाचनकी पटुता, उत्साह, दृढता और अदमनीय उद्यम हैं शक्तिके सर्वोच्च अग, अतएव होते हैं दक्ष व उत्साही। सूक्ष्म विचारसे गीतामें निहित गभीर चितन व शिक्षाका प्रकृत अर्थ हृदयंगम होता है। नही तो, दो-एक श्लोकोंके स्वतंत्र और विकृत अर्थ ग्रहण करनेका आशय है भ्रमात्मक शिक्षा देना और धर्म और कर्ममें अधोगति।

लंदन अधिवेशन और संयुक्त महासभा

देखा गया कि गीतोक्त समतावादपर लदन अधिवेशन प्रतिष्ठित नही हो सकता। और एक युक्ति दी जा रही है। उससे परिणामकी चिंता परिवर्जित नही हुई। अधिवेशनके समर्थकोंका कहना है कि अब कोई फल हो या न हो, लंदनमें सयुक्त महासभाकी स्थापना होगी ही। लाहौरमें इसकी आशा करना व्यर्थ है, लंदनमें ही सारे देशकी आशा व आकांक्षा फलीभूत होगी। बात है तो कानोंको विशेष सुख देनेवाली। इसका कोई अनु-मोदन होता तो हम भी लदन अधिवेशनके पक्षपाती होते। हम भी जानते हैं कि लाहौरमें संयुक्त महासभा-स्थापनकी कोई आशा नही, न हमने उस

आशाका कभी पोषण ही किया। किंतु सारे देशकी आशा व आकांक्षाको यदि देशमें ही सफल करनेका उपाय और आशा नही तो सुदूर विदेशमें वह आशा व आकांक्षा सफल होगी, इस उद्‌भुत युक्तिकी यथार्थताके बारेमें हम विश्वस्त न हो सके। ऐसी सफलताका भला क्या मूल्य या क्या स्थायित्व? माना कि मेहता, गोखले और कृष्णस्वामीके वहाँ अनुपस्थित होनेसे संयुक्त महासभाका समर्थक प्रस्ताव पास हो सकता है। माना कि उनके उपस्थित होनेपर भी छात्रोंके उत्साहसे उत्साहित हो बंगालके मध्यपंथी वैसा प्रस्ताव ग्रहण करनेका साहस कर सकते हैं। किंतु उसके बाद क्या होगा? स्वदेश वापस आ वे कौन-सी राह पकड़ेंगे? जो स्वदेशमे मेहता व गोखलेके सामने स्वमतकी प्रतिष्ठाकी चेष्टा नही कर सकते, उन्होने विदेश जा साहस व चरित्रबल तो दिखलाया लेकिन स्वदेश लौट आनेपर उनका वही साहस और बल रहेगा क्या? यदि रहे तो दूर विदेश न जा देशमें ही सयुक्त महासभाकी स्थापना असभव क्यों? मेहता और गोखले लंदन महासभाका प्रस्ताव कभी स्वीकार नही करेंगे। अधिवेशनमे सारे देशके प्रतिनिधि उपस्थित नही थे, थोडे-से लोगोंके परामर्शसे अनेकोंके मतकी उपेक्षा कर बगालियोंकी संख्याकी अधिकताके कारण प्रस्ताव पारित हुआ; फिर कन्वेन्शनके अधिवेशनमें गृहीत न होनेतक हम सहमत नही होंगे, इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। कारणोंकी क्या आवश्यकता? कन्वेन्शनकी नीतिका मूल तत्व है. चरमपथी हैं राजद्रोही और सारी अशांति और अनर्थकी जड; उन्हें कठोर दड देना है सरकारका कर्तव्य, अतएव उनके संसर्गसे न बचनेसे महासभा विनष्ट हो जायगी। इस मूल तत्त्वको एक ओर रख जो चरमपंथियोंको पुनः महासभामें प्रवेश कराने जा रहे है उनका प्रस्ताव हम सुननेको भी बाध्य नही, यह बात क्या रासबिहारी, फिरोजशाह और गोखले नही कहेंगे? सर फिरोजशाह मेहताकी तरह सभी जानते हैं कि रासबिहारी बाबू सूरत और मद्रासके भाषणोंमें और गोखले महाशय पूनाके भाषणमें अपना-अपना मत प्रकट कर चुके हैं। तब क्या अब यह आशा की जा सकती है कि बंगालके मध्यपंथी उन्हें त्याग अपने प्रांतमें सयुक्त महासभा करेंगे? वैसा साहस व दृढता यदि हो तो स्वदेशमें सयुक्त महासभा का प्रयास क्यों नही करते? ऐसी दृढ़ता न रहनेपर लदन जा कौशलसे बबईके नेताओंको पराजित करनेकी चेष्टा विफल होगी।

सर जॉर्ज क्लार्ककी सारगर्भित उक्ति

हालमें ही सर जॉर्ज क्लार्कने पूनामें जो वक्तृता दी है उसमें असार व सारगर्भित बातोंका आश्चर्यजनक मिश्रण है। पहली युक्ति है: भारतमें शिल्प-वाणिज्यकी द्रुततर उन्नति होनेसे देशका अशेष अनिष्ट होनेकी संभावना है; क्योंकि श्रमजीवियोकी सख्या है बहुत कम, मिलोंकी सख्या बढ़नेसे और भी खीच-तान होगी, किसानोंके श्रमजीवी बननेसे कृषिकी भी अवनति होगी। कृषिकी अतिशय अधिकतासे शिल्प-वाणिज्यके विनाशसे ब्रिटिश वाणिज्यका यथेष्ट उपकार हुआ है। क्लार्क उस अस्वाभाविक अवस्थाके परिवर्तनसे आशकित हो उठे हैं। यह अगरेज राजनीतिज्ञोके लिए स्वाभाविक और प्रशसनीय है। किन्तु इस स्थितिसे भारतवासियोकी दरिद्रता और अवनति हुई है। कृषिकी प्रधानताके ह्रासमें, वाणिज्यके विस्तारमें, श्रमजीवीकी उन्नतिमें है देशका मगल। सर जॉर्ज क्लार्कने और भी कहा है कि यदि बॉयकाटका उद्देश्य बग-भगका प्रतिवाद करना हो तो जावा और हिंदू-प्रधान मोरिशस द्वीपके अधिवासियोद्वारा बनायी चीनीके बहिष्कारसे वह उद्देश्य सिद्ध नही होगा, इससे ब्रिटिश जातिका होशमें आना असभव है। कार्यतः इस बातसे इन्होने देशवासियोको विदेशी वस्तुके वर्जनका परित्याग कर ब्रिटिश पण्यका बहिष्कार करनेका परामर्श दिया है। यह बात है युक्तिसगत व सारगर्भित। हम भी कहते हैं कि भारतवासीके औपनिवेशिक और सहायक अमेरिकाका पण्य वर्जन न कर ब्रिटिश पण्यका वर्जन करनेसे बॉयकाट कृतकार्य होगा, अंगरेज जाति चेतेगी और भारतके प्रति सम्मानका भाव जगेगा, 'स्वदेशी'की भी बलवृद्धि होगी। स्वदेशी वस्तु मिलनेपर विदेशी नही खरीदेंगे, स्वदेशी वस्तुके अभावमें अमेरिका या अन्य देशके पण्य खरीदेंगे, वर्तमान अवस्थामें ब्रिटिश पण्य नही खरीदेंगे, यही है स्वदेश व बॉयकाटका असली पथ। क्लार्क महाशयने यह भी कहा है कि किसी निश्चित उद्देश्य या विशेष दोष या असुविधाको निमित्त न बना अनिर्दिष्ट रूपसे सरकारका तिरस्कार करनेका कोई फल नही। बात ठीक है। हम वर्तमान अवस्थामें क्या दोष या असुविधा देखते हैं, किससे सतुष्ट होगे, वह राजपुरुषोको जनाना चाहिये, यदि वे न सुनें तो भी तिरस्कार करना व्यर्थ है, आत्म-शक्ति और वैध प्रतिरोध ही अवलम्बनीय है। क्लार्क महाशयकी बातोका हमने यही अर्थ समझा है। आशा है, देशवासी बबईके लाटसाहबके दो सारगर्भित और युक्तिसगत उपदेशोको हृदयगम करेंगे।

वंगलक्ष्मी कॉटन मिल

हमें वंगलक्ष्मी कॉटन मिलके आफिससे एक सुदीर्घ प्रतिवाद-पत्र प्राप्त हुआ है। स्थानाभावके कारण इस अंकमें उसे प्रकाशित नही कर सके। इस विषयमें एक ही बात कहनी आवश्यक है। पत्र-प्रेषकने ऐसा इंगित किया है कि हमने वंगलक्ष्मीके मालिकोंके उद्योगके प्रति सहानुभूतिके अभावमें कुछ अप्रिय बातें प्रस्तावित की हैं। बादमें पाठकोंकी कहीं ऐसी धारणा न बन जाय इसीलिए पत्रके प्रकाशनके पहले ही उसका उल्लेख किया। वास्तवमें हमारा वैसा कोई भाव या उद्देश्य नही। हुगलीकी प्रादेशिक समितिके समय मिलकी दुरवस्थाकी बात सुनी थी, उसके बाद उसका कारण अनुसधान करनेपर जो कुछ जाना उसीका उल्लेख किया था। प्रतिवाद-पत्रके पढनेपर मिलकी उन्नति व वर्धनशील अवस्थाके बारेमें जान हम आनदित हुए। वगलक्ष्मी मिल है वगालियोका प्रथम प्रयास, उसकी उन्नतिमें है वंगालकी उन्नति।

विलायतमें आत्मपक्षका समर्थन

राष्ट्रीय दलके श्रद्धेय नेता श्रीयुत विपिनचन्द्र पालने हाल ही राष्ट्रीय दलके भावी पथके निर्धारणके बारेमें अपना मत प्रकट किया है। देखते हैं विलायतमें आत्मपक्षके समर्थनके विषयमें विपिन बाबूके मतमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन आया है। अवस्थातरसे इस तरह मतका परिवर्तन स्वाभाविक है। विशेषतः उद्देश्यके प्रति जितना अटल रहनेकी आवश्यकता है, उपायको ले उतना अटल रहना सर्वदा विज्ञताका परिचायक नही। उपायके बारेमें हमारे भी मत थोड़े-बहुत बदले हैं। पर विपिन बाबूकी युक्तिके याथार्थ्यके बारेमें मतभेद संभव है। उनका कहना है: अगरेज जाति देवता नही, वे स्तव-स्तोत्रसे प्रसन्न हो हाथमें स्वराज्य ले स्वर्गसे उतर नहीं आयेंगे। सच है, फिर भी वे गुणहीन या स्वभावतः अन्यायके पक्षपाती नही, उनमें विवेक-बुद्धि है। दमन-नीतिके दौरके कारण भारतवर्षमें राष्ट्रीय पक्षके उद्यम व चेष्टा अतिशय सकटमय अवस्थामें पड़ जानेसे उत्तम रूपसे नही चल रहे। विलायतमें भारतागत अंगरेजोंके मिथ्या सवादके प्रतिवादद्वारा ब्रिटिश राष्ट्रके सामने अपना प्रकृत उद्देश्य और कार्य रख पानेसे वह विवेक जग सकता है और दमन-नीति भी बद हो सकती है। अतः विलायतमें वैसे

प्रचारकी व्यवस्था करना आवश्यक है। हम मानते है कि अंगरेज देवता भी नही, पशु भी नही, वे है मनुष्य, उनमें विवेक-वुद्धि है। किंतु अंगरेज हैं पशु और गुणहीन, ऐसी वात भी किसीने कभी नही कही। ऐसी गल्त धारणासे राष्ट्रीय दलने विलायतमें आत्म-पक्षके समर्थनको नही त्यागा। अगरेज मनुष्य हैं, मनुष्य निज स्वार्थवश ही अनलस युक्तिसे अपने स्वार्थको न्यायोचित और धर्मोचित कहनेका अभ्यस्त है। हम विपिन वावूसे पूछते है, विलायतमें वैसी व्यवस्था होनेपर साधारण अगरेज किसकी वातपर विश्वास करेंगे—हमारी या अपने जात भाइयोकी? इसीलिए वैसी चेष्टापर हमारी आस्था नही। और एक वात याद रखनेकी जरूरत है। कॉटन प्रभृति पार्लमेंटके सभासदोने विलायतमें निर्वासन और निर्वासितोंके वारेमें सच्ची और निर्मूल वातें प्राणपनसे प्रचारित की हैं, इससे उदारनीतिक और रक्षणशील अनेक सभासद निर्वासनके प्रति वीतश्रद्ध हुए तो हैं किंतु वे क्या कभी निर्वासन-प्रथा उठा देंगे या वे राजपुरुषोको निर्वासितोको मुक्ति देनेका आदेश देंगे? विपिन वाबू आजकल अगरेजोका राजनीतिक जीवन निकटसे देख रहे हैं, थोडी-वहुत अभिज्ञता भी लाभ की होगी, वे इसका उत्तर दें।

धर्म
अंक 8
आश्विन 25, 1316

विलायतके दूत

जैसे भारतमें, वैसे ही विलायत में अनेक राजनीतिक सम्प्रदाय व विभिन्न मत अगरेज राष्ट्रको नाना दलोंमें विभक्त करते है और उनके संघर्षसे देशकी उन्नति व अवनति ससाधित होती है। कभी-कभी किसी-किसी सम्प्रदायके दूत-स्वरूप कोई ख्यातनामा सवादपत्र-लेखक या पार्लमेंटके सभासद इस देशमें आ लोकमत व देशकी अवस्थासे थोड़ा-वहुत अवगत हो स्वदेश लौट जाते हैं। भारतमें नव-जागरण और देशव्यापी अशांतिके सुफलसे वहुत सारे अगरेजोंकी दृष्टि हमारी ओर आकृष्ट हुई है। नवीन, उन्नतिशील श्रमजीवी दलमें ऐसी ज्ञानाकांक्षा सुस्पष्ट लक्षित होती है। कीर हार्डी उनके प्रतिनिधि वन इस देशमें आये थे, पुन. उसी दलके एक

प्रसिद्ध नेता मि० रैमसे मैक्डोनाल्ड इसी उद्देश्यसे आये हुए हैं। श्रमजीवी दलमें अनेक छोटे-छोटे दल हैं, एक दलके नेता हैं मैक्डोनाल्ड, वे हैं अपेक्षाकृत माडरेट (नरमपंथी)। एक और दलके नेता हैं कीर हार्डी, वे उतने नरमपंथी नहीं। इसके अलावा चरमपंथी और सोशलिस्ट (समाजवादी) हैं। वे कीर हार्डी और मैक्डोनाल्ड जैसोंको नहीं मानते। मि० मैक्डोनाल्डकी कीर हार्डीकी तरह वक्तृता व मत-प्रचार करनेकी इच्छा नहीं, वे संयत रह अपनी ज्ञान-लिप्साको तृप्त करनेके लिए कृत-सकल्प हैं। इस प्रशंसनीय प्रयासमें वे सभीकी सहायता लेनेके लिए तैयार हैं। उन्होंने एक फ्रांसीसी पत्रके प्रतिनिधिसे कहा है, "मैं अपेक्षाकृत उच्च मतावलंबी हिंदू सम्प्रदायके मुख्य नेता मि० अरविंद घोषके वक्तव्य सुननेसे ही संतुष्ट नहीं होऊँगा, मध्यपथी दलके मि० बनर्जी और नरमपंथी मि० गोखलेसे भी मिलनेकी आशा रखता हूँ। ब्रिटिश शासन-तंत्रके प्रधान-प्रधान कर्मचारी और गीरसन आदिकी तरह प्रधान बैंकके संचालकोंसे भी परामर्श करूँगा।" मि० मैक्डोनाल्डने लार्ड मारलेके शासन-सुधारको उदार कहकर प्रशंसा की है और भारतवासी ऐसे उदार सुधारके उपयुक्त हैं भी या नहीं, यह खुद ही देखना चाहते हैं। दो या तीन महीने भारतमें घूम-फिरकर भारतवासियोंकी योग्यताके बारेमें मि० मैक्डोनाल्ड स्वय किस तरह स्थिर मत बनानेमें समर्थ होंगे यह हम समझनेमें अक्षम हैं। मि० मैक्डोनाल्ड हैं विलायतके एक प्रधान प्रजातन्त्र-समर्थक। उनके मतमें ब्रिटिश साम्राज्यको प्रजातन्त्र-वादीके आदर्शपर प्रतिष्ठित होना चाहिये। ऐसी उदार नीतिवालेके मुखसे मारलेके सुधारकी उदारता-प्रशसा जब सुननी पड़ी, तो देशवासी समझें कि विलायतमें आन्दोलन चलानेसे हमारे परिश्रम और अर्थ-व्ययके उपयुक्त फल-लाभकी समावना कितने दूरका सपना है।

राष्ट्रीय घोषणा-पत्र

हमारे राजनीतिक कर्ताओंकी गभीर, सूक्ष्म और नाना पथगामी राजनीतिक बुद्धिकी रहस्यमय गति क्षुद्र-बुद्धि साधारण मनुष्यको समझ नहीं आती। 7 अगस्तको कालेज स्क्वायरसे जुलूस निकालनेकी बातपर हुल्लड़ मचा। कालेज स्क्वायरके नामसे कर्मीगण इतने भयभीत हो गये थे कि उस दिन सभापति सभापतिपद त्यागनेपर उतारू हो गये। लाचार पार्क मैदानसे जुलूस निकालनेकी व्यवस्था हुई। फिर भी थोड़े ही लोग वहां

उपस्थित हुए, अधिकांश कालेज स्क्वायरके जुलूसमें भाग लेने गये या अपने-अपने स्थानसे छोटे-छोटे जुलूस निकाल सभास्थलपर पहुँचे। इससे 7 अगस्तके जुलूसकी शोभा नष्ट हो गयी; विपक्षियोंको उत्साह मिला और मिला बॉयकाटमें दोष दिखानेका अवसर। इस बार कार्यकर्ताओंने उस भीतिको जीत लिया है, 30 आश्विनके विज्ञापनमें कालेज स्क्वायरसे जुलूसके निकलनेका उल्लेख है। किंतु उस विज्ञापनमें राष्ट्रीय घोषणा-पत्रके पाठकी वात वर्जित हुई है। पिछले सालके विज्ञापनमें था : "सभामें स्वदेशी महाव्रत-ग्रहण, विदेशी-बहिष्कार, वग-भंगका प्रतिवाद और राष्ट्रीय घोषणा-पत्रका पाठ होगा।" इस बार उसमें परिवर्तन हुआ है, वहाँ लिखा है : "सभामे विदेशी-बहिष्कारके वाद स्वदेशी महाव्रत-ग्रहण और बग-भगका प्रतिवाद होगा।" कार्यकर्ता किससे डर गये हैं, "राष्ट्रीय" शव्दसे, या "घोषणा" शव्दसे या घोषणा-पत्रके मर्मार्थसे?—कुछ समझमें नही आया। श्रीयुत आनन्दमोहन वसुने फेडरेशन हॉलमें पहले-पहल यह घोषणा-पत्र पढा था, "क्योंकि सारी बगाली जातिकी सार्वजनीन आपत्तिको अग्राह्य कर सरकारने बंगालके दो टुकड़े करना ही निश्चित किया है, अत. हम, बगाली जाति, घोषणा करते हैं कि इस विभाग-नीतिके कुफलका निवारण करने और राष्ट्रीय एकताके संरक्षणके लिए हम अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे। ईश्वर हमारी सहायता करें।"

हम पूछते हैं, इसमें ऐसी कौन-सी राजद्रोह-सूचक बात सन्निविष्ट है जो 30 आश्विनके भाव-सूचक और सारे बंगालके प्रतिज्ञा-प्रकाशक घोषणा-पत्रका सहसा वर्जन करना पड़ा? या मारले और मिण्टोकी मनस्तुष्टिके लिए इस तरह नवोत्थित राष्ट्रीय भावको खर्व करना आवश्यक हुआ? हम वग-भंगके कुफलका निवारण करेंगे, राष्ट्रीय एकताका संरक्षण करेंगे, इस पवित्र कर्तव्य कर्ममें सारी शक्ति लगायेंगे, इतना-सा भी कहनेका यदि साहस न जुटा पा रहे तो 7 अगस्त और 30 आश्विनके अनुष्ठान वंद करो। इतना-सा तेज और साहस यदि न हो तो राष्ट्रीय जागरण व उन्नतिकी चेष्टा विफल समझो, उसका वाह्य वृथा आडवर करना है मिथ्याचार-मात्र। जनताकी सलाहसे यह परिवर्तन नही किया गया, जनता राष्ट्रीय घोषणाका वॉयकाट करनेसे सहमत नही होगी। हम सबसे कहते हैं, यदि यह भूल संशोधित नही की गयी तो 30 आश्विनको सहस्र कठोंसे घोषणा-पाठका आदेश दो, तव भी यदि नेता सहमत न हुए तो दायित्व उनका होगा।

कृष्ण मिलका मिथ्या अपवाद

कुछ दिनसे कृष्ण मिलके विरुद्ध यह झूठी अफवाह उड़ रही है कि इस मिलका कपड़ा स्वदेशी नही, स्वदेशी मार्का लगा विदेशी कपड़ेका बाजारमें चलान किया जा रहा है। हम मिलके संचालकोको जानते हैं, वे सामान्य स्वार्थान्ध व्यवसायी नही, वे है अति धार्मिक निष्ठावान् व्यक्ति। उनका आतरिक स्वदेशानुराग व स्वदेशके लिए नि.स्वार्थ परिश्रम अतुलनीय हैं। वे स्वदेश हितार्थ सारी शक्ति लगा रहे हैं। स्वदेश ही है उनकी एकमात्र चिता। स्वदेशके लिए वे खटे है, स्वदेशके लिए उन्होंने लांछना सही है। अपने व्यवसायके लाभका अधिकांश वे स्वदेश-हितके कार्यमें व्यय करते हैं। ऐसे लोगोंके बारेमें बगाली ऐसा झूठा प्रवाद फैला रहे है यह सुन हम लज्जित और मर्माहत हुए है। अभियोग पूर्णतः मिथ्या और निर्मूल है। समाचार-पत्रमें किसीके ऐसा प्रचार करनेपर मिलके मैनेजरने उत्तरमें अभियोक्ताको अपनी इच्छानुसार कोई भी परीक्षा लेनेको ललकारा, इससे वे चेते और अपना अभियोग वापस ले लिया। आशा है कि जिन अखबारोंने भ्रमवश इस झूठे प्रचारकी पुनरुक्ति की है वे भी सच्ची बातोंसे अवगत हो उसका प्रत्याहार करेंगे। इसके बाद इस आपत्तिका खडन हो जानेपर और एक आपत्ति खड़ी की जा रही है। कृष्ण मिलका सूत विलायती है, विलायती सूतके कपडेका बॉयकाट करो। हम पूछते हैं, तुम सबोने क्या कभी कहा था कि मोटे कपड़ेको छोड महीन कपड़ा नही पहनेंगे, विलायती सूतका कपडा नही बरतेंगे। तुम सबोने यह बात नही कही थी, कहा था स्वदेशी महीन कपड़ा मिलता नही, मोटा कपड़ा पहनेंगे, स्वदेशी महीन कपडा बननेपर उसे बरतेंगे। तुमने कहा था, स्वदेशी सूत यथेष्ट परिमाणमें नही मिलता, विदेशी सूतेसे बना तातका कपड़ा या स्वदेशी मिलके कपड़ेको स्वदेशी मान बरतेंगे। ताती विदेशी सूतका प्रयोग कर करघा चलाने लगे, कृष्ण मिल और टाटाके मिल विदेशी सूतसे महीन कपड़ा बनाने लगे, तुम सब भी उसे खरीदने लगे। कृष्ण मिलके संचालकोंने विलायती सूतका बहिष्कार कर अमेरिका या जापानका सूत आयात करनेकी बडी चेष्टा की, किंतु वैसा सूत न मिलनेसे विलायती सूत बरतनेको बाध्य हुए। वे बंगालके भरोसेपर ही स्वदेशीको चलाते आये हैं, अब भी ऐसा करनेको तैयार है। यदि यही स्थिर किया है कि विलायती सूतका कपडा नही बरतेंगे तो उन्हें आदेश करो; वे मोटा कपड़ा ही बनायेंगे। किन्तु जो तुम्हारी ही आज्ञा शिरोधार्य कर काम करते आये है उन्हें आज्ञा-पालनके पुरस्कारमें दंड देना और उनके

बनाये कपड़ेका बॉयकाट करना अन्याय और कृतघ्नता है। एक बात और, आजकल भारतमें केवल स्वदेशी सूतसे वस्त्र वयन करना असंभव है। स्वदेशी-की ऐसी व्याख्या करनेसे तो स्वदेशी ही मारी जायगी। इधर विलायती मालकी भारी आमदनी शुरू हुई है, बंगालमें उसकी बिक्री बढ़ रही है। ऐसे समय ऐसी अफवाह उड़ाना बुद्धिमानोका काम नही। विलायती वस्तुओका विक्रय बंद करो, स्वदेशीका चलन बढ़ाओ। उसके बाद स्वदेशीके हिताहितकी विवेचना कर विलायती सूतको मिटा देनेकी चेष्टा करो।

धर्म
अंक 1
कार्तिक 1, 1316

राष्ट्रीय घोषणा-पत्र

राष्ट्रीय घोषणा-पत्र पढा गया, यह बहुत ही हर्षका विषय है। इस बीच और कोई बात न उठनेपर, वाद-प्रतिवाद और मनोमालिन्यका कोई अवसर न दिये जानेपर हम इसके लिए नेताओंको धन्यवाद दे छुट्टी पाते। किंतु 'बंगाली' पत्रिकाने हमें मिथ्यावादी ठहराया है इसलिए हम इस विषयका असली वृत्तांत सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए प्रकाशित करनेको बाध्य हुए। 'सहयोगी'ने सच्ची बातको गुप्त रख इतना ही कहा है कि 'धर्म'में प्रकाशित बातें सर्वथा निराधार हैं, अर्थात् हमने झूठी व मनगढ़त बातोंका प्रचार कर मध्यपंथी नेताओंके प्रति लोगोको असतुष्ट करनेका प्रयास किया है। अब आप सच्ची घटनाको जानकर विचार करें। हमने पहले कहा था कि पिछले सालके विज्ञापनमें लिखा था : "राष्ट्रीय घोषणा-पत्र पढ़ा जायगा।" इस बार जब विज्ञापनके बारेमें परामर्श चल रहा है तब एक संभ्रात नेताने "राष्ट्रीय घोषणा-पत्र" को रद्द कर दिया और इसे बाद देकर विज्ञापन छापनेका हुकुम हुआ। इस बारेमें परामर्शके समय प्रतिवाद बिलकुल ही नही हुआ हो ऐसी बात नही, किंतु नेताओंके विरुद्ध आवाज उठानेका साहस किसीमें नहीं था। ठीक हुआ है कि श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, ए० रसूल और राय यतीद्रनाथ चौधरी हस्ताक्षर करेंगे। राष्ट्रीय घोषणा-पत्र वर्जित हुआ है देख रसूल साहब विस्मित हुए।

यह भूल संशोधित न होनेतक विज्ञापनमें हस्ताक्षर करनेको वे राजी नहीं, ऐसा उत्तर उन्होंने सुरेंद्र बाबूको लिख भेजा है। इस बीच श्रीयुत रसूलके नामसहित विज्ञापनकी छपाई और बटाई आरंभ हो चुकी थी। पर उनका उत्तर प्राप्त होते ही छपाई व बंटाई बंद कर श्रीयुत रसूलके नामके बदले श्रीयुत मतिलाल घोषका नाम बिठा वही विज्ञापन छपाकर बांटा गया। जो कुछ कहा है वह केवल सुनी-सुनायी बात नही, उसे अस्वीकार करनेकी क्षमता किसीमें भी नही, प्रत्येक बातका अकाटच प्रमाण है। इसके बाद, श्रीयुत रसूल और श्रीयुत अरविंद घोषने जब जाना कि नेतागण घोषणा-पत्रका बहिष्कार करनेमें सचेष्ट हैं तब जिन्होंने विज्ञापनमें हस्ताक्षर किया था उनको एवं सभापति श्रीयुत आशुतोष चौधरीको नोटिस दिया कि एतदर्थ हम आम सभामें आपत्ति उठायेंगे और चेष्टा करेंगे कि राष्ट्रीय घोषणा-पत्र पढ़े जानेका आदेश मिले। उत्तरमें श्रीयुत मतिलाल घोषने देवघरसे इस प्रकारका टेलिग्राम भेजा: यदि सरकारने निषेध न किया हो। राष्ट्रीय घोषणा-पत्र पढ़े जानेके बारेमें सुरेंद्र बाबू और यतींद्र बाबूने कोई उत्तर नहीं दिया। सभापति शुक्रवारको कलकत्ता पहुँचे, रातको पत्र मिला, अतः उनका भी कोई उत्तर नही आया। बुधवारको पत्र लिखा गया। शुक्रवारको श्रीयुत गीष्पति काव्यतीर्थने कालेज स्क्वायरमें, आम सभामें, यह शुभ सवाद घोषित किया कि राष्ट्रीय घोषणा पढी जायगी। शनिवारको सुबह 'बंगाली' पत्रिकामें हमारी बात झूठी है यह कहकर वह शुभ-संवाद पाठकवर्गको बतलाया गया। यही है वृत्तात। जनता ही इसका विचार करे।

30वीं आश्विन

30वी आश्विनका समारंभ देख इस बार देशवासियोंको आनंद, विपक्षियोंको मनःक्षोभ होगा। आदोलन शात नहीं हुआ है, बाधा-विघ्न, भय-प्रलोभनको अतिक्रम कर पूर्ण मात्रामे जीवंत है। उसका बाह्य चिह्न चाहे बंद कर दो, लुप्त कर दो, पर हृदय-हृदयमें नूतन भाव जाग्रत ही रहेगा, स्वराज्य-लाभसे ही शांत नही होनेका, सतुष्ट हो अन्य आकार धारण करेगा। विजातीय समाचार-पत्र जनताके उत्साहको अस्वीकार करनेकी चेष्टा करेगा ही, किंतु उनके लेखोंमें उनका उत्साह-भंग लक्षित होता है। 'स्टेट्समैन'ने अन्य उपाय न देख श्रीयुत चौधरीके भाषणसे सात्वना-

रस चूसनेकी चेष्टा की है, क्योंकि चौधरी महाशयने छात्रोंको राजनीतिसे किनारा करनेके लिए कहा है। किंतु छात्रोंने जो 30 आश्विनके समारभमें पूर्णरूपेण भाग लिया इस वातपर चुप क्यो? लोगोंका कहना है कि पिछली वार भी सभामें इतनी भीड नही थी, उस जन-समुद्रके किनारेपर वैठनेकी भी जगह नही थी, खड़े ही रहना पड़ा। आस-पासके रास्तेपर, दीवारपर, छतोंपर भी लोग ही लोग थे। सभी वगालियोंने दूकानें वंद कर दी थीं, केवल वड़े वाजारके मारवाडी और 'हिन्दुस्तानी' दूकानदार लोभ सवरण न कर पाये, किंतु उनकी दूकानोंपर खरीदनेवाले कम ही देखे, वस, दूकान खोले वैठे थे वे। लोगोमें उत्साह भी कुछ कम नही था। श्रीयुत सुरेंद्रनाथ वन्द्योपाध्याय और श्रीयुत अरविंद घोषको सभासे ले जानेके समय उस उत्साहकी उग्रता व गभीरता देखते ही वनती थी। जो अनवरत जय-जयकार व 'वन्दे मातरम्'की ध्वनि वहुत देरतक पृथ्वी और आकाशको विकंपित करती रही, वह नेताओंके लिए नही, वह था उनके लिए सम्मान जो इस दुर्दिनमें आन्दोलनके चिह्न-स्वरूप रह अग्रभागमें राष्ट्रीय ध्वजाको उठाये खड़े थे। नेता याद रखें यह वात कि कल यदि वे भग्नोत्साह हों या उस ध्वजाको धूलपर लोटने दें तो जय-जयकारके वदले उठेगी धिक्कारकी आवाज।

गवर्नमेंटके गोखले कि गोखलेकी गवर्नमेंट

पूनाका कांड और गोखले महाशयके कियेका फल देख सारा भारत अवाक् रह गया है। श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखलेकी वुद्धि व चरित्रपर हम अन्य देशवासियोकी तरह कभी भी मुग्ध नही थे। उनके स्वार्थ-त्यागमें व्यक्तिगत यशोलिप्सा, सम्मान-प्रियता और ईर्ष्या देख हम असतुष्ट थे। उनकी देशसेवामें साहस व उच्च आदर्शका अभाव देख उसके अतिम परिणामके वारेमें हमें चिरकालसे ऐसी ही आशा थी। किंतु हमने सपनेमें भी नही सोचा था कि भारतीयोंके इस सम्मान और प्रेम-भाजनके भाग्यमें इतनी अवनति वदी है। हम जानते थे कि अपनी विख्यात क्षमा-प्रार्थनाके वाद गोखले महाशय राजपुरुषोंके अतीव प्रिय पात्र हो उठे थे। जव वे व्यवस्थापक सभामें उन सवके साथ वाद-विवाद करते तव देखनेपर वे लगते धनीके मुहलगे लाड़ले, जिनकी देहपर वे हाथ फेरते या मीठी-मीठी गालियां देते। किंतु एकदिन उनकी ही खातिर एक विख्यात साप्ताहिक पत्र दमन-

नीतिवश निगृहीत होगा, पूना शहर खाना-तलाशीकी धूम-धामसे परेशान हो उठेगा, एक सभ्रात वकील पुलिसद्वारा पकड़े जायेंगे और अभियुक्त बनेंगे एव अन्यान्य नागरिक पकड़े जानेके भयसे व्याकुल होंगे, यह सब हमने सपनेमें भी नही देखा था। हम जानते थे कि गोखले हैं गवर्नमेंटके, अब पूछना पड़ता है क्या गवर्नमेंट गोखलेकी है? गोपालकृष्ण गोखले क्या ब्रिटिश साम्राज्यके स्तंभ और भारतीय शासन-तंत्रके अग बन गये हैं? हम जानते थे कि राजनीतिक हत्या या सशस्त्र विद्रोहकी प्रशंसा करनेसे देशवासीका छापाखाना गवर्नमेंटकी सपत्ति बन जाती है, बम या विद्रोहके षड्यंत्रकी गंध पुलिसपुंगवोंकी तीव्र घ्राणेन्द्रियमें पहुँचते ही शहर-भरमें खाना-तलाशीकी धूम मच जाती है। पर हम यह नही जानते थे कि एक व्यक्तिकी मानहानिसे या उन्हें भय दिखानेसे इस तरहका नवयुगका काड घट सकता है। यह नयी प्रणाली गवर्नमेंटके योग्य है कि नही इसकी विवेचना राजपुरुष करें। किंतु गोखले महाशयका परिणाम देख हम दु.खित हैं। कविने ठीक ही कहा है, हम मनुष्य हैं, विगत महत्त्वकी छायाके विनाशसे भी हमारी आखें भर आती हैं। गोखले महाशय कभी भी महत् नही थे, तब हां, महत्‌की छाया तो थे ही। उनका सकल मत, बुद्धि-विद्या, चरित्र उनका अपना नही था, था कैलाशवासी रानाडेका दान। गोखलेमें महात्मा रानाडेकी छाया विनष्ट होते देख हम दुःखी हैं।

धर्म
अक 10
कार्तिक 22, 1316

बजट युद्ध

विलायतमें बजटको ले जो महायुद्ध छिड़ा है वह अगरेजी राजनीतिकी सामान्य बक-झक नही। उदारनीतिक दल और रक्षणशील दलमें जो संघर्ष होता वह सामान्य मतभेद लेकर होता था। रिफॉर्म बिलके बाद जमीदार-वर्ग और मध्य श्रेणीके अगरेजोंमें जो तीव्र विद्वेष व विरोध रानी एलिजाबेथ और राजा चार्ल्सके समयसे अगरेज राजनीतिके इतिहासके प्रत्येक पृष्ठपर अकित है वह प्रशमित हुआ। मध्य श्रेणीकी जीत हुई किंतु विजेताओंने विजित पक्षको विनष्ट न कर लब्ध अधिकारका भाग दिया। इसके बादसे घरेलू विवाद

चल रहा है। इस विवादमें मध्य श्रेणी निम्न श्रेणीकी सहायतासे विद्रोही जमीदार-वर्गका दमन करनेकी आशासे धीरे-धीरे अंगरेजी राजनीतिक जीवनकी भित्तिको विस्तृत बना रही है। इसका फल—इंगलैंड आजकल असंपूर्ण प्रजातंत्र (Limited Democracy) बन गया। अब लायड जॉर्ज और विन्सटन चर्चिल इस शात राजनीतिक जीवनमें महा विभ्राट् और राष्ट्र-विप्लवकी सभावनाकी सृष्टि कर रहे हैं। आजकल सारे यूरोपमें सोशलिस्ट (समाजवाद) दलकी अतिशय वृद्धि हो रही है और प्रभाव बढ़ रहा है। जर्मनीमें, इटलीमें, बेलजियममें वे मन्त्रणा-सभामें प्रबल व बहुसंख्यक हैं। स्पेनमें जोर-जबरदस्तीसे उनके प्रचार व दल-वृद्धि बंद करनेकी चेष्टा हुई थी इसीलिए बर्सेलोनामें भीषण दगा हुआ। फेररकी मृत्यु और सारे पाश्चात्य जगत्में दंगा-फसाद हुआ। इगलैंड और फ्रांस इस प्रवाहके बाहर ही रहे क्योंकि इन दो देशोंकी प्रजाकी स्वाधीनता और सुखकी थोडी-बहुत व्यवस्था हो चुकी थी। किंतु इधर चार-पाँच वर्षोंसे उन दो देशोंमें भी सोशलिस्टोका प्रभाव व संख्या बढती जा रही है। लायड जॉर्जके बजटमें हठात् सोशलिज्मको ब्रिटिश राजतंत्रमें घुसाया गया है। इस बजटमे जमीदार-वर्गकी सपत्तिपर कर बैठाया गया है इससे जमीदार और मध्य श्रेणीमें जो सधि हुई थी उसका मुख्य अग विनष्ट हो गया। जमीदारोंकी जमीदारीपर एक बार कर बैठानेपर ब्रिटिश प्रजा-वर्ग शीघ्र ही उस करको बढाते-बढाते अतमें सारी जमीदारियोंको थोडे दाममें ही देशकी संपत्ति बना लेगा। जमीदार-वर्ग फिर नही रह जायगा। इसीलिए जमीदार क्रोधसे उबल पड़े हैं और जमीदार सभा (House of Lords) बजटका प्रत्याख्यान या परिवर्तन कर Commons (लोकसभा) को लौटा देनेके लिए कृत-निश्चय हैं। इससे ब्रिटिश राजतन्त्रके मूल नियमपर हस्तक्षेप होगा। नामके लिए प्रजाके प्रतिनिधिवर्गके सर्वविध प्रस्तावोंका प्रत्याख्यान या परिवर्तन करनेका अधिकार जमीदार सभाको है, किंतु बजट सिर्फ सम्मानके लिए उस सभामें भेजा जाता है, जमीदार सभा कभी बजटमें हस्तक्षेप नही करती। अतएव बजटके अस्वीकृत होते ही उदारनीतिक मन्त्री अगरेजोके सामने यह प्रस्ताव ले उपस्थित होंगे कि जमीदार सभाका लोकसभाके प्रस्तावको निषेध करनेका अधिकार खतम किया जाय। उदारनीतिक दलकी जय होनेसे पुरातन राजतन्त्र निषेध अधिकारके लोपसे खुद ही लुप्त होगा। और शीघ्र ही होगा पूर्ण प्रजातंत्रका स्थापन, जमीदार-सभा व जमीदार-वर्गका विनाश और सोशलिज्मका विस्तार। लायड जॉर्ज और चर्चिल जान-बूझकर इस राष्ट्र-विप्लवको पाल रहे है। आस्किथ, मारले इत्यादि वृद्ध मध्यपंथी

इन दोनोके तेजसे अभिभूत हो, ऊँचे पदके मोहसे और राजनीतिक सग्रामके मदसे अंधे हो उनकी चेष्टामें योग दे रहे है। अब Conservative England, रक्षणशील इंगलैंडकी खैर नही। सर्वग्रासी कलि अंगरेजोंका राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय धर्म और महत्त्वकी भित्ति, सबको निगलता जा रहा है।

क्या होगा ?

जनवरीमें जो प्रतिनिधि विलायतमें निर्वाचित होंगे उनपर बहुत-कुछ निर्भर करता है भारतका भाग्य। हमारे लिए उदारनीतिक और सोशलिस्ट दलकी जय नितात वांछनीय है। यदि कभी भी वैध प्रतिरोध-द्वारा अंगरेजी सरकारको स्वायत्त-शासनका बिल कॉमन्स (लोकसभा) में उपस्थित करनेको हम बाध्य करें, तो जैसे जमीदार सभाने आयरिश स्वायत्त-शासनके बिलका निराकरण किया था वैसे ही हमारे स्वायत्त-शासनके बिलका भी निराकरण करेंगे। अतएव जमीदार सभाके निषेध-अधिकारका नष्ट होना ही है हमारी कार्यसिद्धिका एकमात्र उपाय। भगवान् उस उपायके लिए उद्योग कर रहे हैं। सोशलिस्ट दलके प्राबल्यसे चाहे और कोई विशेष कार्यसिद्धि न हो, दमन-नीतिको शिथिल करनेकी सुविधा हो भी सकती है, कारण, सोशलिस्ट दल अभी अधिकार-रहित है और है अधिकार-लाभका प्रयासी, अतः जगत्के अधिकार-रहित सभी सप्रदायों व राष्ट्रोंके साथ उनकी सहानुभूति है। किंतु अब जो अवस्था है उसमें उदारनीतिक दलकी जय और सोशलिस्टोके प्राबल्यकी आशा नही की जा सकती। बजटद्वारा निजी संपत्तिकी प्रथा विनष्ट हो जायगी, इगलैंडमें सोशलिज्म स्थापित होगा, किसीकी भी धन-सपदा अब निरापद नही रहेगी, ऐसी अफवाह उड़ा रक्षण-शील (कजर्वेटिव) दल अनेक उदारनीतिक सज्जनोको अपनी ओर आकर्पित कर रहा है। और फिर उन्होने टैरिफ रिफार्म (प्रशुल्क-सुधार) का धुआं उड़ा निम्न श्रेणीके अनेक लोगोंको भी वैसे ही अपने हाथमें कर लिया है। अबाध वाणिज्यमें, वाणिज्य-क्षेत्रमें इगलैंडका प्रधान स्थान विलुप्त हो गया है। दूसरे राष्ट्र उसे मात दे रहे है, इसलिए निम्न श्रेणीके कर्मके अभावमें व खाद्यके अभावमें हाहाकार मच रहा है—इस मतका जोर-शोरसे प्रचार किया गया है। जो निर्वाचन पिछले कुछ महीनोंमें हो चुके हैं उनमें इस उपायसे रक्षणशील दलकी वृद्धिकी गयी है, उदारनीतिक वोट कम गये हैं, फिर भी यदि उदारनीतिक व सोशलिस्ट दल एक हों तो

रक्षणशील दल पराजित होगा। किंतु अब तो अवस्था विपरीत है। जहाँसे उदारनीतिवाले खड़े होते हैं वहींसे खड़े होते है सोशलिस्ट। यद्यपि दोनोंके संयुक्त वोट रक्षणशील निर्वाचन प्रार्थीके वोटोंसे अधिक है तथापि पारस्परिक विरोधसे दुर्बल पक्षकी जीत होती है। सोशलिस्टोंने ठीक पथ ही पकडा है, इस तरह असुविधा न भोगनेसे उदारनीतिक दल उनके साथ संधि करनेके लिए बाध्य क्यों होगा? किंतु मि० आस्किथ यदि निर्वाचन प्रथाके पक्षमें झूठी बात और परस्पर विरोधी युक्तिका प्रयोग करते-करते बुद्धि भ्रष्ट न हो जायँ तो निर्वाचनके पहले ही वे सोशलिस्टोंके अस्सी प्रतिनिधियोंके निर्वाचनकी व्यवस्था कर अन्य सभी उदारनीतिक स्थानोंको निरापद बनायेंगे और टैरिफ रिफार्मकी हवा उड़ानेके लिए पार्लमेंटके टूटनेके पहले ही निषेध-अधिकार खतम करनेका बिल कॉमन्सूमें उपस्थित कर उसपर ही प्रतिनिधि निर्वाचनके समय वे निर्भर करेंगे। इससे सबके सब अंगरेज निम्न श्रेणीके निर्वाचक टैरिफ रिफार्मका मोह भूल उदारनीतिक पक्षको वोट देनेको दौड़े आयेंगे। ग्लैडस्टोन जीवित होते तो यही करते। आस्किथ साहबसे इस चौकस बुद्धिकी प्रत्याशा की जाय कि नहीं—संदेह है।

धर्म
अंक 11
कार्तिक 21, 1316

रिफॉर्म

आज है सोमवार, 15 नवंबर। आजके दिन महामति लार्ड मारले व लार्ड मिण्टोकी गंभीर भारत-हितकी चितासे राजनीतिक तीक्ष्ण बुद्धि और उदार मतमें आसक्तिके फलस्वरूप शासन-सुधाररूपी मानसिक गर्भ प्रसूत होगा। धन्य हैं लार्ड मारले, धन्य है मिण्टो और धन्य हैं हम। आज भारतमें स्वर्ग उतर आयगा। आज फारस,-टर्की, चीन,-जापानतक भारतकी ओर ईर्ष्या भरी नजरसे देख 'इंग्लिशमैन'के सुरमें सुर मिलाकर गायेंगे, "धन्य हैं वे जो पराधीन हैं, धन्य, धन्य, जो पराधीन हैं यूरोपीय राष्ट्रोंके, धन्य, धन्य, धन्य जो पराधीन हैं उदारनीतिक मारले-मिण्टोके। काश, हम भी भारतवासी होते तो इस सुखसे वंचित न रहते।" आशा है कि जो भी

भारतवासी नव उन्मादनासे उन्मत्त न हुए होंगे, इस कोरस-गानसे आकाश-मंडलको विध्वनित करेंगे।

'इंग्लिशमैन'का क्रोध

बहुत दिन पहले हमने सहकारी 'इंग्लिशमैन'की सरलताकी प्रशंसा की थी। आज फिर प्रशसा किये बिना नही रह सकें। अन्य ऍंग्लो-इंडियन दैनिक है दुमुहे साप, स्वाधीनताकी प्रशसा करते है और भारतकी पराधीनताकी भी। और तो और भारतकी पराधीनताकी आवश्यकताको प्रमाणित करनेकी भी चेष्टा करते हैं। सहयोगीकी आखोंमें शर्म नही। जो मनमें आता है, केवल मानहानिके कानूनको सामने रख बिना आवरणके लिख मारता है। ऊटपटाग बकना हो तो ऊटपटांग ही बकता है। युक्ति, सत्य सलग्नतापर ताण्डव नृत्य करना उसे बहुत प्रिय है। वह है मुक्तपुरुष, समाचार-पत्रोंमें नागा सन्यासी। 'इग्लिशमैन' स्वाधीनताकी बात सुनते ही सिहर उठता है। जैसे वह भारतवर्षका स्वाधीनता-विरोधी है वैसे ही इंगलैंडका भी। एक स्वेच्छाचार-तत्र सारे ब्रिटिश साम्राज्यपर अधिकार कर विराजे और 'इग्लिशमैन' बना रहे उसका मुखपात्र, यही है सहयोगीका राजनीतिक आदर्श। जो स्वाधीनताके अनुमोदक या प्रचारक है वे है वध्य या निर्वासन और जेलके योग्य। मि० बैलफूरके अधिकार प्राप्त करते ही लुई नैपोलियनकी तरह राष्ट्रविप्लव खड़ा कर मि० लायड जार्ज व विस्टन चर्चिलको जेल भेजने और मि० कीर हार्डी व विक्टर ग्रेसनको कोर्ट मार्शल करनेका परामर्श सहयोगी निश्चय ही किसी भी दाव-पेंचसे देगा। उन्हें स्वाधीनतासे भी बढ़कर अप्रिय है साम्य। सहयोगीका कहना है कि सारे यूरोप व एशियामें जो साम्य-प्रचार और साम्यकी आकाक्षा उठी है उसे प्रचारकोंके रक्तसे न बुझानेपर पृथ्वीके सारे सिहासन डोल जायेंगे व हेअर स्ट्रीट लुप्त हो जायगी। अतएव विक्टर ग्रेसन, वृद्ध और मूर्ख टालस्टाय व "माणिकतला"के अरविन्द घोष—कैसा अपूर्व समावेश। 'इंग्लिशमैन' ठीक फेररकी तरह बिना विचारे गोली दागनेको नही कहता पर वैसी ही कुछ व्यवस्था न करनेसे अब किसीकी खैर नही। इतनी सरलतामें यह असरलता क्यों? 'इंग्लिशमैन'को भला क्या डर? हिंदू-पचके भाग्यमें जो लिखा था 'इग्लिशमैन' द्वारा हत्या या बल-प्रयोगकी हजार सलाह देनेपर भी उसके भाग्यमें वह नही घटने का। प्रजाकी हत्या करनेकी प्रवृत्तिको वद

करना है आईनका उद्देश्य, पर राजाके मनमें हत्याकी प्रवृत्ति जगानेकी चेष्टाके लिए कोई दंड नहीं!

देवघरमें जीवंत समाधि

समाचार-पत्रमें प्रकाशित हुआ है कि एक हिंदू साधु हरिदास सन्यासीसे आगे बढ गये। समाधि-निमग्न न होनेपर भी जिंदा ही कुछ दिन कबरमें रहे। हमारे देशमें सारी प्राचीन विद्या लुप्त हो गयी है इसीसे हम ऐसे प्रयोगसे आश्चर्यान्वित होते हैं। पूर्व-पुरुषोकी बात हम कुसंस्कार कह उड़ा देते हैं। हमें अपने प्राचीन साहित्यमें, धर्ममें, शास्त्रमें, शिक्षामें जिस विद्याका भग्नाश ही हस्तगत हुआ है उसकी तुलनामें आधुनिक पाश्चात्य विज्ञानकी सारी विद्या है नवजात शिशुका अर्थहीन प्रलाप-मात्र। जैसे शिशु जो पदार्थ भी सामने देखता है उसे हाथमें उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोडकर बाह्य जगत्का थोड़ा-बहुत ज्ञान सचय करता है, किंतु जगत् क्या है, पदार्थका असली स्वरूप क्या है व सबध क्या है, कुछ भी नही जानता, वैसे ही पाश्चात्य विज्ञान प्रकृतिके सब स्थूल पदार्थ हाथमें उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर कुछ ज्ञान सचय करता है। किंतु जगत् क्या है, पदार्थका असली स्वरूप क्या है, स्थूल और सूक्ष्ममें क्या सबंध है, इस विषयमें वह कुछ भी नही जानता और इस विद्याके अभावमें पदार्थके वास्तविक स्वभावसे अवगत नही हो पाता। शवच्छेद कर और रोगके लक्षण व असबद्ध कारणका निरीक्षण कर मनुष्यके बारेमें जितना-सा ज्ञान सचय होता है बस उतना ही ज्ञान पाश्चात्य विद्यासे पाया जाता है। अनेक विषयोंमें यह ज्ञान भ्रांत है। वैज्ञानिक कहते हैं कि आकर्षण-शक्ति है जगत्का सर्वव्यापी अलघ्य नियम, किंतु मनुष्य प्राणायामद्वारा आकर्षण-शक्ति जीत सकता है, स्थूल जगत्के बाहर इस नियममें कोई दम नही। वैज्ञानिकोका कहना है कि हृत्पिंडके स्पदन और श्वास-नि.श्वासके रुद्ध होते ही शरीरमें प्राण नही रह सकते, किंतु प्रमाणित हो चुका है कि हृत्पिंडके स्पंदन और श्वास-नि.श्वासकी क्रिया बहुत देरतक और बहुत दिनोतक रुद्ध रह सकती है, फिर भी वह नि.श्वास-रुद्ध व्यक्ति पूर्ववत् चल-फिर सकता है, बात कर सकता है, बचे रहना तो दूरकी बात है। इससे पता लगता है कि पाश्चात्य विद्या अपने क्षेत्र और स्थूल पदार्थके ज्ञानमें भी कितनी संकीर्ण और क्षुद्र है। असली विज्ञान तो हमारा ही था। वह ज्ञान स्थूल प्रयोगद्वारा प्राप्त न हो सूक्ष्म प्रयोगद्वारा

प्राप्त हुआ था। हमारे पूर्वपुरुषोंका ज्ञान भले ही लुप्त-प्राय हो गया हो, पर जिस उपायसे वह लुप्त हुआ था उसी उपायसे पुनः प्राप्त हो सकता है। वह उपाय है योग।

संयुक्त महासभा

सहयोगी 'बगाली'ने संयुक्त महासभाके बारेमें जो निबंध छापा है, उसे न छापता तो अच्छा होता। सहयोगी जिन शर्तोंपर राष्ट्रीय पक्षका आह्वान कर रहा है वे हैं मध्यपथियोंके अनुकूल। गत वर्ष राष्ट्रीय पक्षने कन्वेन्शनमें प्रवेश पानेकी सुविधाके लिए प्रार्थना की थी और कलकत्तेके अधिवेशनमें चारों प्रस्तावोंके स्वीकृत होनेकी आशा देख मध्यपथियोंकी मनोनीत शर्तें मान ली थीं। इस बार वह सहज ही सहमत नहीं हो सकता। इस बीच राजनीतिक क्षेत्रमें अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। पश्चिम भारतके मध्यपथियोंके मनोभाव परिस्फुट हो रहे हैं, राष्ट्रीय पक्ष अब गोखले-मेहताके अधीन हो महासभा बुलानेके लिए राजी नहीं होगा, तथापि अब भी विवेचना चल रही है, थोड़े दिनोंमें कोई स्थिर सिद्धांत बननेकी बात है। ऐसेमें इस तरह विचार प्रकट कर देनेसे वाद-विवाद होनेपर समझौतेमें बाधा ही आयेगी।

धर्म
अंक 12
अगहन 6, 1316

हिंदू संप्रदाय और शासन-सुधार

हमने जब हिंदू सभाकी बात लिखी थी तब इस आशयकी राय दी थी कि यद्यपि गवर्नमेंटके प्रसाद-अन्वेषी व स्वतन्त्रता-अनुमोदक मुसलमान संप्रदायके प्रति विरक्त हो स्वतन्त्र राजनीतिक चेष्टा करना हिंदुओंके लिए स्वाभाविक है पर वैसी चेष्टासे देशका अनिष्ट ही होगा, भला होनेकी संभावना नहीं। अब भी इस मतको बदलनेका कोई कारण हमें विदित नहीं। शासन-सुधार या नूतन व्यवस्थापक सभामें हमारी कभी कोई आस्था

नही रही, हिंदुओं और मुसलमानोको बिना पक्षपातके उस सभामें प्रवेश करनेका समान अधिकार देनेपर भी हम उस कृत्रिम सभाका अनुमोदन नही करते। हमारा भविष्यत् हमारे हाथ है, इस सत्यको सपूर्णतया और दृढ हृदयसे ग्रहण करनेकी शक्ति जब प्राप्त होगी तब अविलंब प्रकृत प्रजातंत्रके विकासके अनुकूल व्यवस्थापक सभाकी सृष्टि हो जायगी। अतः इस कृत्रिम स्वर्ण-भूपित खिलौनेको ले भाई-भाईमें झगडा खडा करना हमारे मतमें केवल बालोचित मूर्खता है। फिर भी हम यह स्वीकार करते हैं कि इस नये सुधारद्वारा हिंदू सम्प्रदायके अपमान और बहिष्कारकी चेष्टासे उसके असतुष्ट और विरक्त हो जानेके यथेष्ट कारण हैं। सर्वत्र मुसलमानोको स्वतंत्र प्रतिनिधित्व दिया गया है। जहां उनकी संख्या कम है वहां उन्हें अल्प-संख्यक मान उनके स्वतत्र निर्वाचक-वर्गके निर्वाचित स्वतत्र प्रतिनिधि नियत किये गये हैं, और जहां उनकी संख्या अधिक है वहां उन्हें बहु-सख्यक मान उनके स्वतत्र निर्वाचक-वर्गके निर्वाचित स्वतत्र प्रतिनिधि निर्धारित किये गये है। हिंदुओको कही भी ऐसी सुविधा नही दी गयी। जहां वे अल्प-सख्यक हैं वहां उन्हें दी नही जा सकती, देनेसे सभामें उनका प्रावल्य होगा, जहां वे बहु-संख्यक हैं वहां भी नही दी गयी, देनेसे सभामें मुसलमानोका पूर्ण प्रावल्य खर्व होगा। जिस नियमानुसार मुसलमान निर्वाचक-वर्ग गठित हुआ है उससे निर्दिष्ट तत्त्व या उदार मत लक्षित नही होता। बहुत-से शिक्षित और सम्भ्रात मुसलमान बाहर रह गये हैं। अनेक अशिक्षित गवर्नमेंटके खैरख्वाह निर्वाचक-वर्गमें आ घुसे हैं तथापि इस नयी सृष्टिपर प्रजातंत्रकी अस्पष्ट दूरवर्ती छायाकी छाया पड़ी है। हिंदुओपर रत्ती-भर भी अनुग्रह नही हुआ। यह जाननेके लिए मनमें कौतूहल हो रहा है कि इस तरह भारतवर्षके प्रधान सम्प्रदायको अपमानित और असंतुष्ट बनाये रखनेका कौशल किस जगद्-विख्यात राजनीतिज्ञकी कल्पनामें पहले-पहल उपजा। बर्क और वाल्तेयरके भक्त मारलेकी या कनाडा-शासक लार्ड मिंटोकी? या और किसी छिपे रत्नकी?

मुसलमानोंका असंतोष

शासन-सुधारसे दो मुसलमान असतुष्ट हुए हैं। एक हैं इगलैंड निवासी अमीर अली साहब, दूसरे कलकत्तेके डाक्टर सुहरावर्दी। दोनोंके असतोषका कारण एक ही तरहका नही। अमीर अली रूठे हैं क्योकि शासन-सुधारद्वारा

जो कुछ मुसलमानोंको दिया गया है वह है अति अल्प। जार्ज साहबका विश्वग्रासी लोभ उससे तृप्त नहीं होता। पहले ही हम जान गये थे कि सारासेन जातिका इतिहास लिखनेके कारण अमीर अली साहबके मनमें अति उच्च व प्रशंसनीय महत्वका लोभ जनमा है। उनके मनमें मध्यकालीन मुसलमान साम्राज्यके पुनराविर्भावका स्वप्न घूम रहा है। मजाक किया पर यह मजाककी बात नही। महत् मन, महती आकाक्षा और विशाल आदर्श राजनीतिक क्षेत्रमें अतिशय उपकारी और प्रशंसनीय हैं। इनसे शक्ति बढ़ती है, उदार क्षत्रिय भाव जगता है, जीवनमें तीव्र स्पंदन आता है। जो अल्पाशी हैं वे हैं जीवन्मृत। किंतु मजाककी बात, हास्यकर स्वप्नकी बात यह है कि ब्रिटिश कर्मचारी-वर्गकी अधीनतामें मुसलमानोंके लुप्त महत्वका उद्धार होगा। अमीर अली क्या यह सोचते हैं कि अंगरेज मुसलमानोको भारतके "दीवान" बनानेकी मनशासे यह पक्षपात कर रहे हैं? डाक्टर सुहरावर्दीके असतोषका कारण है अपेक्षाकृत क्षुद्र। उनकी नालिश यह है कि विलायतसे लौटे अनेक शिक्षित मुसलमानोको निर्वाचन-अधिकारसे वंचित कर जितने गवर्नमेंटके खैरख्वाह अशिक्षित कारीगर, दफ्तरी, विवाहके रजिस्ट्रार, खाँ बहादुर, खाँ साहब हैं, उन्हें निर्वाचक बनाया गया है। वे क्या इतना भी नही समझ सकते कि विलायतमें स्वाधीनता-विष है, जो विलायतसे लौटे हैं वे शायद उस विषसे थोड़ा-बहुत विषमय होकर लौटे हों, ऐसे लोगोके व्यवस्थापक सभामें प्रवेश करनेसे महा विभ्राट् मचनेकी सभावना है। और ऐसे सुधारमें शिक्षित व्यक्ति उपयुक्त निर्वाचक हैं या खैरख्वाह, कारीगर, दफ्तरी, खाँ साहब, खाँ बहादुर और विवाहके रजिस्ट्रार? डाक्टर साहब विवेचना कर इस प्रश्नका उत्तर दें। वे माननेको वाध्य होगे कि उनका असंतोष है अज्ञान-जनित।

मूल और गौण

हमारे राजनीतिक चितनका प्रधान दोष और राजनीतिक कर्मके दौर्बल्यका कारण यह है कि हम मूल व गौणमें प्रभेद समझनेमें अक्षम हैं। जो मूल है उसे ही पकड़ना चाहिये, जो गौण है वह यदि मूलके अनुकूल हो तो मूलको कायम रखते हुए उसे ग्रहण करें। गौणको ग्रहण करनेसे यदि मूलको पानेकी राहमें वाधा पहुँचे या विलंब होनेकी सभावना हो तो कोई भी राजनीतिज्ञ गौणको अपनानेके लिए सहमत नहीं होगा। पर हम सहमत

होते हैं, पग-पगपर मूलको फेंक गौणको साग्रह पकड़ने जाते हैं। हमारा ध्रुव विश्वास है कि गौणके मिलनेसे अंतमें मूल स्वयं ही हाथ आ जायगा। उल्टी बात ही ठीक है—मूलको प्राप्त करनेपर उसके साथ-साथ सब गौण सुविधाएं व अधिकार जुट जाते हैं। रिफॉर्मके बारेमें अनेकोंका ऐसा मज्जागत भ्रम व बुद्धि-दौर्बल्य देख हम दु:खित हुए। खैर, कुछ तो लाभ हुआ, किसी समय और भी होगा। अंतमें, थोड़ा-थोड़ा अधिकार प्राप्त करते-करते स्वर्ग पहुँचेंगे, जिनकी ऐसी धारणा है वे सचमुच इस कृत्रिम व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधि बननेके उपयुक्त राजनीतिज्ञ हैं। शिशुको छोड़ खिलौनेकी कद्र कौन समझता है? किंतु शिशु-प्रकृति त्याग, स्वप्न-राज्यसे नीचे उतर यदि एक बार कठिन व अप्रिय सत्यको देखें तो सहज ही बोध होगा कि इस तरहकी चिंतन-प्रणाली कितनी भ्रांत व निराधार है। विज्ञ शिशुगण हमारे सामने इंगलैंडका दृष्टान्त रख अपने मतका समर्थन करते हैं। किंतु यह काल न तो मध्ययुगका है न रानी एलिजाबेथका, यह है प्रजातन्त्रके चरम विकासका काल—बीसवी शताब्दी; हम भी स्वराष्ट्रके अधीन अंगरेज प्रजा नही, हम हैं श्वेतवर्ण पाश्चात्य राजकर्मचारी-वर्गके कृष्णवर्ण एशियावासी प्रजा, अतः इस अवस्थामें और उस अवस्थामें है स्वर्ग-पातालका अंतर। इंगलैंडमें भी गौणकी उपेक्षा कर मूलको आदाय करनेकी सुविधा या यंत्र न रहनेसे इंगलैंड शायद आज भी स्वेच्छाचार-तन्त्रके अधीन देश रहता, या फिर रक्तपात वा राष्ट्रविप्लवसे स्वाधीन होता। वह सुविधा या यत्र हुआ power of the purse (धन-बल), राजाने हमारी बात नही मानी, हम भी राजाके बजटको वोट नही देंगे—यह है अचूक ब्रह्मास्त्र। आईन-संगठन या बजट-विरचनका अधिकार प्रजाके प्रतिनिधि वर्गके हाथमें रहनेपर हम भी अब और रिफॉर्मका बॉयकाट करनेको न कहते। तब भला क्या, रिफॉर्म अस्वीकार करना विज्ञोंका काम नही, गवर्नमेंट तो गवर्नमेंट ठहरी, वह जो दे उसे ग्रहण करना चाहिये, पीछे और भी दे सकती है। एक बार भी क्या यह सोचा है कि गवर्नमेंटने क्यों यह खिलौना भारतके पक्वकेश शिशुओंको दिया है? देशव्यापी असंतोष, अशांति और दृढतापूर्वक बहिष्कार अस्त्रप्रयोगके फलस्वरूप तुम्हें यह प्राप्त हुआ है। वह देख रही है कि इस प्राप्तिसे तुम संतुष्ट होगे या और भी कुछ देना पड़ेगा। तुम यदि इसे ग्रहण करो तो फिर और एक बार उसी तरह तीव्र आंदोलन व बॉयकाट-नीतिका प्रयोग न करनेसे और कुछ भी नही पाओगे, न आकाशका चांद, न चांदकी कृत्रिम स्वर्ग-विलेपित प्रतिकृति। यदि वह देखे कि इससे तो नही बना—प्रकृत अधिकार देना ही पड़ेगा तो प्रकृत अधिकार देगी,

अधिक न हो, थोड़ा कुछ देगी। अतः रिफॉर्म अस्वीकार कर दृढ़तासे वॉयकाटका प्रयोग ही है बुद्धिमानोंका कर्म। किंतु तुम्हें ये बातें कहना व्यर्थ है। शिशु-समाजमें जिस 'संदेश' और रसगुल्लेका प्रचलन है वही है तुम्हारा मुख-रोचक। फिर तुम सब ही लड़कोंसे कहते फिरते हो कि राजनीतिमें नही पढ़ना चाहिये, तुम सब अब भी हो अपक्व-बुद्धि, राजनीति समझ नही सकते। खुद जब यह बचकानी बुद्धि त्यागते तब तुम्हारा यह कहना उचित होता।

एक खरी बात

अपने राजनीतिज्ञोंको दोष क्यों दें? ब्रिटिश-शासन-कालमें, बहुत दिनसे इस देशमें असली राजनीतिक जीवन लुप्त हो गया है। इस अनुभवके अभावसे हमारे नेता राजनीतिक-तत्त्व समझनेमें असमर्थ हो गये हैं। किंतु इतने लंबे अरसेतक पराधीन देशके शासनमें कृतविद्य और लब्ध-प्रतिष्ठ होकर भी अंगरेज राजनीतिज्ञ इन कुछ वर्षोंसे जो विषम भूल करते आ रहे हैं उसे देख विस्मित होना पड़ता है। वंग-भंगके बाद यह रिफॉर्म ही है उनकी प्रधान और मारात्मक भूल। इस रिफॉर्मके फलस्वरूप देशमें मध्य-पंथियोंका प्रभाव विनष्ट होगा, राष्ट्रीय पक्षकी दुगनी बल-वृद्धि होगी, इससे कर्मचारी-वर्गकी यथेष्ट क्षति होगी। किंतु सारे हिंदू-संप्रदायको अपदस्थ व अपमानित कर जो विष-बीज वपन किया गया है उससे और भी गुरुतर क्षति हुई है। मि० रैमसे मैक्डोनाल्डने 'एंपायर'के प्रतिनिधिसे कहा है कि राजनीति-क्षेत्रमें हिंदू-मुसलमानका यह भेद स्थापित कर कर्मचारी-वर्गने अपना अनिष्ट ही किया है। कच्चे राजनीतिक आंदोलनकी अपेक्षा साम्प्रदायिक व धर्म भेद-जनित असंतोष और आक्रमण है अति गुरुतर और गवर्नमेंटकी भीतिके कारण। बिलकुल खरी बात। यदि हम अंगरेजोंके प्रति विद्वेष भावसे गवर्नमेंटके अकल्याणको लक्ष्यमें रख देशका कार्य करते—हमारे शत्रु इसी बातका रात-दिन प्रचार करते हैं—तो हमें आनंद होता। पर हम सरकारका अकल्याण नही चाहते, हम चाहते हैं देशका कल्याण और स्वाधीनता। हिंदू और मुसलमानके संघर्षसे जैसे गवर्नमेंटका वैसे ही देशका भारी अकल्याण होगा, अतः हम इस भेद-नीतिका तीव्र प्रतिवाद करते हैं और हिंदू सम्प्रदायसे कहते हैं कि मुसलमानोंके साथ संघर्ष छोड़ रिफॉर्मका वॉयकाट करो।

धर्म
अंक 13
अगहन 13, 1316

रैमसे मैक्डोनाल्ड

रैमसे मैक्डोनाल्डके भारत आगमनके समय हमने लिखा था कि वे आकर ही क्या करेंगे, थोडे दिन भारतमें घूम-फिरकर ही क्या जान लेंगे? भारतके शासन-सुधारमें जब वे इतने आस्थावान् हैं तब भला हम भी उनसे सहानुभूति या लाभकी क्या प्रत्याशा कर सकते हैं? इसके बाद मैक्डोनाल्डके साथ हमारा परिचय हुआ। थोड़े ही दिन भारतमें घूम आगामी प्रतिनिधिके निर्वाचनका संवाद पा वे विलायत लौट जानेके लिए बाध्य हुए हैं, इन थोड़े-से दिनोंमें भी वे प्रायः सभी अंगरेज कर्मचारियोंके साथ रहे। फिर भी देखा कि वे भारतकी अवस्थाको समझनेकी चेष्टा कर रहे हैं और कुछ परिमाणमें कृतकार्य भी हुए हैं। पर मैक्डोनाल्ड हैं राजनीतिज्ञ और सतर्क। वे कीर हार्डीकी तरह तेजस्वी व स्पष्ट वक्ता नही। अपनी राय बहुत-कुछ छिपाये रखते हैं, जो सोचते हैं उसका अल्पांश ही शब्दोंमें व्यक्त करते हैं। ब्रिटिश राजनीतिक जीवनमें वे हैं श्रमजीवी दलके नरमपथी नेता। श्रमजीवी सभी हैं, सभी सोशलिस्ट एक उद्देश्यको लक्ष्य बना अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान समाजको तोड़-फोड़ नये सिरेसे गढना चाहते हैं। किंतु कई चरमपथी इस उद्देश्यको प्रकट कर, उदारनीतिक व रक्षणशील उभय दलोंको पराभूत कर, प्रकृत साम्यपूर्ण प्रजातन्त्रमें व्यक्तिको डुबा समष्टिको देशकी सर्वविध संपत्ति और आधिपत्यका अधिकारी बनानेको कृत-संकल्प हैं। मध्यपंथी श्रमजीवी कीर हार्डीका दल सुविधानुसार कभी तो उदारनीतिक दलको योगदान और कभी सुविधानुसार उस दलके विरुद्ध आचरण करता है, तब हमारे भूपेन बाबू और सुरेन बाबूकी तरह association cum opposition (साहचर्य और विरोध) की नीतिका अवलंबन ले हाथसे लड़ाई और दूसरे हाथसे आलिंगन करता है। नरमपथी स्वतंत्रताकी एक रक्षा करते हुए उदारनीतिक दलकी पूर्ण सहायता ले अति सतर्कतासे अग्रसर होना चाहते हैं। पर उद्देश्य एक ही है। मैक्डोनाल्ड हैं अतिशय बुद्धिमान्, चिंतनशील व चतुर राजनीतिज्ञ। विलायतके भावी महायुद्धमें शायद वे एक प्रधान महारथी बनें। भारतके प्रति उनकी आंतरिक सहानुभूति है, किंतु इस अवस्थामें भारतका कोई हित-साधित करना उनके बूतेकी बात नही।

रिफॉर्म और मध्यपंथी दल

मध्यपंथी दल अपना चिर वांछित शासन-सुधार पा गया है किंतु इस लाभसे हर्ष-प्रफुल्ल न हो शोक-संतप्त हो रहा है। उसके क्रंदन और तीव्र क्षोभके यथेष्ट कारण हैं। उसके चतुर चूडामणि श्वेत श्यामरायने मध्यपंथी राधाके प्रति स्वभाव-सुलभ धूर्तताकी आड़में चंद्रावलीको काउन्सिल-अभिसारमें बुलाकर प्रवेश कराया है। मध्यपंथी कह रहे हैं कि हमने ही शासन-सुधार कराया और हम ही उससे बहिष्कृत हो गये। जो शासन-सुधारके विरोधी थे वे ही ले लिये गये, यह कैसा मजाक, कैसा अन्याय! यही करुण 'अभिमानपूर्ण' निवेदन चारों तरफ सुनायी दे रहा है, पर निवेदन-निवेदनमें प्रभेद है। बंबई-वासिनी राधा चिर अभ्यासकी रक्षा करती हुई श्यामके साथ प्रेम-मिश्रित मधुर कलह कर रही है। बंग-वाहिनी राधा भारी मानमें भरी बैठी है: अब श्यामका मुह नहीं देखूंगी, यह कहनेका साहस नहीं। श्यामको एकबारगी रंजीदा करना नही चाहती, पर मन-ही-मन कुछ ऐसा ही भाव है। मध्यपथियोंकी विप्रलब्ध दशा देख हसी भी आती है और दया भी। किंतु राधाको यह समझना उचित था कि केवल कलह, केवल दावा करनेसे प्रेम नही टिकता, श्वेतवर्ण श्यामसुदर ऐसा लड़का नही कि मानके भयसे राधाके श्रीचरणोंमें लोट अपना सर्वस्व उसे दे दे। दुःखकी बात है कि वेलविडया-निवासी श्यामसुदरने खूब प्रेम दिखाया था, उन्होंने ही ज्यादा धूर्तता की, अब मान-भजन कौन करे? वृद्ध मारले क्या फिर नूतन वंशी-रवसे इनके आहत हृदयको शीतल करेंगे?

गोखलेकी मानहानि

बड़े दुःखकी बात है कि ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान स्तंभ माननीय गोखले महाशयके विरुद्ध कुछ अपक्ववुद्धि लोगोने मिथ्या तिरस्कार कर और मजाक उड़ा महाराष्ट्रीय प्रजाको उत्तेजित किया है। गोखले महाशयने मर्माहत हो ब्रिटिश विचारकोंका आश्रय लिया है। उनकी सहायतासे अपनी मानहानिका मार्ग बंद कर दिया और अपने प्रधान शत्रु व निंदक 'हिंदू पच'का उच्छेद कर डाला है। ठीक ही हुआ। झूठ नही बोलना चाहिये। विश्वास करनेपर भी जिस बातको तुम विचारालयमें प्रमाणित करनेमें अक्षम हो उसे नहीं लिखना चाहिये। 'हिंदू पंच'के संपादक व पूनाके वकील श्रीयुत

भिडे इस बातको भूल दंडके भागी बने हैं। अच्छी बात है। किंतु राजनीतिक क्षेत्रमें लोक-प्रियता नालिश करके आदाय नही की जाती। दूसरे लोग गोखले महाशयकी मानहानि करें इसका तो उपाय है, उसी उपायके सहारेसे वे जयी भी हुए हैं, पर खुद ही वे अपनी मानहानि करें तो उसका क्या उपाय हो सकता है? गोखले महाशय जिसकी प्रशसा करते थे अब उसकी निंदा कर रहे हैं, जिसकी निंदा करते थे उसकी प्रशसा कर रहे हैं। यह देख लोग सहज ही उनके प्रति श्रद्धा खो बैठे हैं। पहले कर्मचारियोंके प्रिय होते हुए भी जनताकी प्रीति आकर्षित करना कठिन होनेपर भी असाध्य नही थी, किंतु नये प्रलयके बादसे वह जल-स्थल-वासी ज़ानवर विलुप्त हो गया है।

नया काउन्सिलर

जब वनके बडे-बड़े सब वृक्ष काटे जाते है तब हजारों अलक्षित छोटे-छोटे पेड़-पत्ते आखोको आकर्षित करते हैं। पहले भूपेन्द्रनाथ, सुरेंद्रनाथ, दरभगा (महाराज), रास बिहारी इत्यादि बड़े-बडे राजनीतिक नेता, विख्यात जमीदार और लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् व्यवस्थापक सभाके सभ्य होते थे, नये सुधारके प्रभावसे ऐसे लोगोको हटा कितनी ही छोटी-छोटी मछलियाँ सागर तलपर आ नव सूर्यकी किरणोके नीचे सहर्ष उछल-कूद कर रही हैं। प्रतिदिन नये-नये निर्वाचन प्रार्थियोका नाम पढ हम विस्मित हुए। इतने सारे अजाने महार्घ्य रत्न इतने दिन अंधकारमें छिपे पड़े थे। हम लार्ड मारलेका धन्यवाद करते हैं, देश इतना धनी था, अपना ऐश्वर्य आप ही नही जान पाया, मारलेके प्रभावसे धन-भंडारका रुद्ध द्वार खुल गया है—सूर्य किरणोसे प्रदीप्त हो सारे रत्न नयनोंको चौंधियाये दे रहे है।

धर्म
अंक 14
अगहन 20, 1316

ट्रांसवालमें भारतीय

ट्रांसवाल-वासी भारत-संतानने जो दृढ़ता और स्वार्थ-त्यागका दृष्टांत रखा है व रख रही है वह जगत्‌में अतुलनीय है। प्राचीन आर्य-शिक्षा व आर्य-चरित्र, इस सुदूर देशमें, इन नि.सहाय कुली-मजदूर और दुकानदारोंके प्राणोंमें जिस तीव्रतासे जाग उठा है वैसा भारतमें तो क्या बंगालमें भी उसी तरह, उतने ही परिमाणमें अभी भी नही जगा है। बंगालमें हमने वैध प्रतिरोधका सिर्फ मुहसे समर्थन किया है, ट्रासवालमें वे व्यवहारमें उस प्रतिरोधका चरम दृष्टात प्रस्तुत कर रहे हैं। तिसपर भारतमें जो सब सुविधाए और सहज फल-सिद्धिकी समावना है ट्रांसवालमें उसकी रत्ती-भर भी नही। कभी-कभी लगता है कि यह है व्यर्थकी चेष्टा, किस आशासे ये इतनी यातना, इतना धन-नाश, इतना अपमान व लाछना सह रहे है? भारतमें हम हैं तीस कोटि भारत-सतान, राजपुरुष और उनके स्वजातीय सहाय है मुट्ठी-भर। ये तीस कोटि लोग यदि दस दिन वैध प्रतिरोध चलायें तो विना रक्तपातके स्वेच्छाचार-तत्र अपने-आप नष्ट हो जायगा। यदि एक कोटि लोग भी दृढतासे इस पथको अपनायें तो साल-भरमें शात, अनिद्य आईन-संगत उपायसे राष्ट्र-विप्लव सम्यक् सफल हो सकता है। ट्रासवालमें मुट्ठी-भर भारतीय उस देशके लोगोके साथ सघर्ष कर रहे हैं। कोई वल नही, कोई leverage उत्तोलक-साधन नही, वे यदि सारेके-सारे जेल जायं, देश-निर्वासित हो निर्मूल हो जाय तो इससे ट्रासवाल-वासियोको थोड़े दिनके लिए आर्थिक हानि व कष्ट तो होगा पर उस देशका, उस गवर्नमेंटका कोई गुरुतर या स्थायी अपकार होनेकी सभावना नही, वरन् उनके शत्रु यही परिणाम चाहते हैं। आर्कमिडस कहा करते थे कि यदि मैं उत्तोलन-यंत्र रखनेका स्थान पा जाऊं तो पृथ्वीको शून्यमें उठा सकता हूं। इनके पास न तो उत्तोलन-यत्र है न उसे रखनेका स्थान फिर भी पृथ्वीको शून्यमें उठानेको उद्यत हैं। इनका परिश्रम कभी भी व्यर्थ नही जाने का। मि० गाधीका कहना है कि हम हैं भारतवासी, आध्यात्मिक शक्तिमें आस्थावान्, आध्यात्मिक वलसे सारी वाधाए अतिक्रम करेंगे। यह ज्ञान, यह श्रद्धा, यह निष्ठा भारतीयको छोड़ भला और किस जातिमें है या रह सकती है?

यही है भारतका महत्त्व कि इस निष्ठाके बलपर शिक्षित-अशिक्षित हजार-हजार संसारी सुख-दुःख तुच्छ समझ, सरल प्राणसे, दृढ साहसके साथ इस तरहके दुष्कर कार्यके व्रती हुए हैं। हो सकता है कि जिस फलकी आकांक्षासे वे यह यंत्रणा भोग रहे हैं वह फल हाथ न लगे पर इस महत् चेष्टाका महत् परिणाम होगा, इससे भारतवासीकी भावी उन्नति साधित होगी, इसमें तनिक भी संदेह नही।

टाउन-हॉलकी सभा

मि० पोलक ट्रासवाल-वासी भारत-संतानके प्रतिनिधि बन इस देशमें आ भारतवासियोंकी सहानुभूति व सहायताकी भिक्षा माग रहे हैं। हममें सहानुभूतिका अभाव नही, क्षमताके अभावसे हम निरुपाय और निश्चेष्ट पड़े हैं। हमारे तीन पथ हैं। गवर्नमेंटसे निवेदन कर सकते है; इससे फलकी कोई आशा नही, गवर्नमेंट भी ट्रासवाल गवर्नमेंटके इस तरहके बर्बर व्यवहारसे असंतुष्ट है, किंतु हमारे राजपुरुष हमसे भी ज्यादा निरुपाय हैं। जिस विषयमें भारतका हित इंगलैंडके हितका विरोधी है उस विषयमें भारतीय राजपुरुष इच्छा रहनेपर भी हमारा हित करनेमें अक्षम हैं। भारतवासीका औपनिवेशिक गवर्नमेंटके विरुद्ध आचरण करना इगलैंडके हितमें नही, औपनिवेशिकोंका क्रोध विफल मनका भाव नही, वही क्रोध है कार्यकर। भारतवासीके हितपर चोट पड़नेसे पराधीन भारतवासी रोयेगा ही, और क्या करेगा, हम नाटालमें कुली भेजनेके पथको बद करनेके लिए कह रहे हैं, इसपर यदि नाटालवासी असंतोष प्रकाश करें तो हमारी सरकार कभी भी इस उपायको अपनानेका साहस नही करेगी। दूसरा पथ है—ट्रासवालके भारतीयोंको आर्थिक सहायता दे पुष्ट करना, विशेषतया, उनके बच्चोंको शिक्षा देने-दिलानेमें ऐसी सहायता करनेसे उनकी एक गुरुतर असुविधा दूर होगी। पर ऐसी सहायता देना सहज नही। भारतको भी धनकी बड़ी आवश्यकता है। धनके अभावमें कोई भी चेष्टा फलवती नही होती। किंतु इस विषयमें गवर्नमेंटकी सहानुभूति है, गोखलेने भी दूरवर्ती वैध प्रतिरोधकी प्रशसा की है। राजद्रोह-भयसे ग्रस्त भारतकी धनी सतान इस निर्दोष युद्धमें धनकी सहायता देनेसे पराङमुख क्यों होने लगी? तीसरा पथ है—भारत-भरमें प्रतिवादके लिए सभा कर गाव-गांवमें ट्रासवाल-निवासी भारतीयोंका अपमान, लाछना, यंत्रणा, दृढता, स्वार्थ-त्याग जनताको जना

भारतके उसी आध्यात्मिक बलको जगाना। किंतु इस कार्यके लिए उपयुक्त व्यवस्था और कर्म-शृंखला है कहाँ? जिस दिन बंगाल वंबईका मुखापेक्षी न हो अपनी एकता व बल-वृद्धि करना सीखेगा उसी दिन हो सकती है वह व्यवस्था और कर्म-शृंखला। हमारा दृष्टांत देख दूसरे प्रदेशोके लोग भी उसी पथपर दौड पड़ेंगे। तबतक यह निर्जीव और अकर्मण्य अवस्था ही रहेगी।

निर्वासित बंग-संतान

करीब-करीब एक वर्ष बीतनेको आया, निर्वासित बंग-सतान आज भी केवल यही कहते आ रहे है : अब हुआ, अब मिली कारासे मुक्ति, मारले एक तरहसे मान गये हैं, कल हो जायगा,--अमुक अवसरपर होगा, राजाके जन्म-दिनपर होगा, रिफॉर्मका प्रचार होते ही होगा, प्रतिवाद-सभा मत करो, उधम मत मचाओ, उधम मचानेसे हमारा सारा परिश्रम मटिया मेट हो जायगा। उस दिन मैक्डोनाल्ड साहबको कहते सुना कि भारतीयोंकी निश्चेष्टतासे पार्लमेंटमें कॉटन आदिके आदोलन निस्तेज पड गये हैं, क्योंकि विलायतके लोग कह रहे है कि कहाँ, ये तो हुडदग नही मचा रहे, भारतमें कोई चूँतक नही करता, इससे लगता है भारतवासी निर्वासनसे सतुष्ट हैं, निर्वासितोके कुछ-एक आत्मीय, बंधु-बाधव आदि ही आपत्ति उठा रहे हैं, निर्वासनसे लोक-मत तो क्षुब्ध नही। विलायतकी जनताके लिए ऐसा सिद्धात अनिवार्य है। सारा देश निर्वासनसे दुःखित और क्षुब्ध है, फिर भी सभीने नीरव रह शात भावसे गवर्नमेंटकी दमन-नीतिको शिरोधार्य कर लिया, यह ब्रिटिश जातिकी तरह तेजस्वी और राजनीति-कुशल जातिको समझ नही आता। तिसपर मद्रास-काग्रेसके नामसे अभिहित राजपुरुष-भक्तोंकी मजलिसमें बड़े-बड़े नेताओने मारले-मिण्टोका स्तव-स्तोत्र गा, बॉयकाटका वर्जन कर गाया—"अहा, आज भारतका कैसा सुखका समय आया है।" बगालके सुरेंद्रनाथ, भूपेंद्रनाथ प्रभृतिने उस उत्सवमें भाग लिया, और भारतीयोंके आदरणीय गोखलेने पूनामें गवर्नमेंटकी 'कठोर और निर्दय दमन-नीति'की आवश्यकता प्रतिपादित कर भारतवासियोके नेता व प्रतिनिधिके रूपमें उसका समर्थन किया। ऐसी राजनीतिसे कभी भी किसी भी देशमें कोई भी राजनीतिक-सुफल न प्राप्त हुआ है न होगा।

संयुक्त महासभा

सहयोगी 'बगाली'ने उस दिन फिर असमय ही सयुक्त महासभाकी बात उठाकर कहा कि जो 'क्रीड' पर सही नही करेंगे, जो ब्रिटिश साम्राज्यके अंतर्गत स्वायत्त-शासनसे सतुष्ट न हो स्वधीनताको ही आदर्श बनायेंगे उन्हें कांग्रेसमें प्रवेश करनेका अधिकार नही, वे मेहता-गोखलेकी मजलिसके योग्य नही। इस प्रबधको ले 'अमृत बाजार पत्रिका'के साथ सहयोगीका वाद-विवाद हुआ है। 'बगाली'ने कहा है कि अब वाद-विवाद करना अनुचित है, मिलनकी जो थोडी संभावना है वह नष्ट हो सकती है। बड़ी अच्छी बात है। हमने पहले ही 'बंगाली'को इसके बारेमें सतर्क कर दिया था और मौन रहनेकी सलाह दी थी। आशा है जबतक इस विषयकी मीमासा नही हो जाती तबतक सहयोगी पुनः वाक्-सयम करेगा। किंतु 'बगाली'ने जब इस तरह स्वाधीनता-आदर्शके बहिष्कारका आदेश प्रचारित किया है तो हम उसके उत्तरमें यह कहनेको बाध्य हैं कि हम सच्चे व उच्च आदर्शको छोड़ मेहता-मजलिसमें घुसनेके लिए लालायित नही, हम चाहते हैं उपयुक्त महासभा, मेहता-मजलिस नही। स्वाधीन-चेता व उच्च आकाक्षी भारत-सतानके प्रवेशके लिए उस मजलिसका द्वार रुद्ध है, यह हम जानते हैं। यह भी जानते हैं कि कान्स्टिट्यूशन रूपी अर्गला और क्रीडरूपी तालेसे सयत्न बद किया गया है। जब भारतके अधिकाश धनी और लब्ध-प्रतिष्ठ राज-नीतिज्ञ स्वाधीनता-आदर्शको खुलेआम स्वीकारनेसे डरते है तब हम भी महासभाके उस विषयपर जिद करनेको राजी नही, कलकत्तेमें भी जिद नही की थी, सूरतमें भी नही। जबतक सब एकमत नही होंगे तबतक स्वायत्त-शासन ही कांग्रेसका उद्देश्य है यह माननेको हम राजी हैं। किंतु हमें उस उद्देश्यके लिए व्यक्तिगत रूपसे मत देने, सत्य-भ्रष्ट होने, झूठा आदर्श प्रचार करनेका आदेश देनेका तुम्हें कोई अधिकार नही। स्वाधीनता ही है हमारा आदर्श। वह चाहे ब्रिटिश साम्राज्यके अतर्गत हो चाहे बहिर्गत, पर आईन-सगत उपायोंसे वह आदर्श-सिद्धि है वाछनीय। यदि मेहता-मजलिसको महासभामें परिणत करनेकी आकाक्षा हो तो उस रुद्ध द्वारका ताला तोड़ना पड़ेगा। कांस्टिट्यूशनको उस द्वारकी अर्गला न बन कर्मका आधार बनना आवश्यक है, नही तो और किसी भित्तिपर महासभा सगठित करना उचित है। निस्संदेह, यह हमारा ही मत है। हुगलीमें जो कमेटी नियुक्त हुई है उसके परामर्शके परिणामसे हम अवगत नही, अतिम फलकी प्रतीक्षामें हैं।

रमेशचंद्र दत्त

श्रीयुत रमेशचंद्र दत्तके परलोक गमनसे बंगालके एक उद्यमशील, बुद्धिमान् और कृति संतान कर्मक्षेत्रसे अपसारित हुए हैं। रमेशचंद्र नाना क्षेत्रोंमें बीज वपन कर गये हैं। राजनीतिमें, राज्य-शासनमें, विद्या-चर्चामें और साहित्यमें उन्होंने यश और प्रतिष्ठा पायी थी। उनकी एक पुस्तक पढ भारतीयोंका मन बॉयकाट ग्रहण करनेको तैयार हो उठा था। यदि रमेश-चंद्रके और सब कर्म, पुस्तक इत्यादि विस्मृति-सागरमें डूब भी जायँ, तो इसी एक अति महत् कार्यसे उनका नाम भारतके इतिहासमें अमर रहेगा। किसीकी भी मृत्युपर दु:ख प्रकट करनेसे हम सहमत नही, क्योंकि हम मृत्युको नही मानते, मृत्यु माया है, भ्रम है। रमेशचंद्र मृत नही, केवल यह शरीर छोड़ गये हैं और वहांसे उनकी परलोक-गत आत्मा प्रिय स्वदेशके अभ्युत्थानमें सहायता करनेसे निषिद्ध नही।

बुद्ध गया

गत 3 दिसंबरकी प्रत्यूष वेलामें पश्चिम बंगालके छोटे लाट बहादुर सदल मोटरकारसे बौद्ध गया-स्थित प्राचीन बौद्ध मंदिर देखने गये थे। यह प्राचीन मंदिर है गयासे 7 मील दूर। दुर्भाग्यसे यह प्राचीन स्थापति-विद्याका कौतूहल-उद्दीपक आदर्श एवं बौद्धोंके घोरतर मनोमालिन्यका विषय बन गया है। महंतने छोटे लाटको घरकी सब प्रधान-प्रधान द्रष्टव्य वस्तुएं घुमा-घुमाकर दिखलायी। बहुतोंका यह विश्वास है कि जहां राजकुमार सिद्धार्थने सर्वप्रथम बुद्धत्व प्राप्त किया था ठीक वहींपर अवस्थित है यह मंदिर। जिस वृक्ष तले बैठ उन्होंने अपने नये धर्मका आविष्कार किया था, सुनते हैं कि वह अब नही रहा। मंदिरके भीतर बुद्धदेवकी एक प्रकांड प्रतिमूर्ति है। यहां अब भी विद्यमान है अशोक रेलिंगका प्राचीन भग्नावशेष। इसका बहुत-कुछ आज भी खड़ा है। यह नि:संदेह अशोकका समकालीन और कमसे-कम दो हजार वर्ष पुराना है। रेलिंगके अनेक प्रस्तर खंड पार्श्ववर्ती मकानोंकी दीवारोंसे दब गये थे, वे फिरसे यथास्थान बैठा दिये गये हैं। दो हजारसे भी अधिक वर्षोंसे यह मंदिर समग्र प्राच्य भूखंडके बौद्धोंका एक प्रधान तीर्थ-स्थान रहा है। इसका निर्माण हुआ था ईसा पूर्वकी पहली शताब्दीमें।

धर्म
अक 15
अगहन 27, 1316

फिरोजशाह मेहताकी चाल

कुचक्रीका चक्र समझ पाना टेढी-खीर है। फिरोजशाह मेहता हैं कुच-क्रियोंके शिरोमणि। जब बलसे पार नही पाते तब हठात् कोई अप्रत्याशित चाल चल अभीप्ट-सिद्धि पानेकी उनकी आदत है। किंतु लाहौर कन्वेन्शनके पन्द्रह दिन पहले उन्होने जो अपूर्व चाल चली उससे किसका क्या लाभ होगा, यह कहना कठिन है। लोग अपनी-अपनी अटकलें लड़ा रहे हैं। किसी-किसीका कहना है कि फिरोजशाह बगाल व पजाबके असतोपसे भय खा रणमें पीठ दिखा रहे हैं। मानते है कि बबईके इस एकमात्र सिंहने कलकत्तेमें लोक मतके भयसे अपनी दुम पेटमें दबा रखी थी, कही कोई कुचल न दे,—किंतु लाहौर कन्वेन्शन तो है सिंह महाशयकी अपनी माद। वहाँ किसी भी भक्तिहीन जतुका प्रवेश सुकठोर आईनसे निषिद्ध है। तिसपर अभ्यर्थना-समितिने नियम बनाया है कि स्वयसेवक हो चाहे दर्शक कोई भी पडालमें चिल्ला नही सकता, न hiss, न 'वदे मातरम्'की ध्वनि, न 'shame, shame', न जयजयकार ही कर सकता है। जो ऐसा करेगा उसे अर्धचद्र दे सभासे बाहर निकाल दिया जायगा। सिंह किससे डरे हुए हैं? दुमका कुचला जाना तो दूरकी बात, प्रभुके कानमें कोई विरक्ति-सूचक शब्द-तक नही पहुँच सकता, निरापद ही निरापद। और फिर कोई-कोई कहते हैं कि सर फिरोजशाह इडिया काउन्सिलके सभ्य बननेके लिए बुलाये गये हैं, अपनी राजभक्तिके चरम विकासका चरम पुरस्कार उन्हें हाथ लग रहा है, इसीलिए अब वे कन्वेन्शनके सभापति बननेमें असमर्थ है। पर केवल पन्द्रह दिनकी देर है, सर फिरोजशाह क्या इतने निष्ठुर पिता हैं कि अपनी लाड़ली कन्याको मझधारमें छोड स्वर्ग जानेसे सहमत होगे? गवर्नमेंट भी क्या कन्वेन्शनका मोल नही समझती? इस आवश्यक कार्यके लिए क्या फिरोजशाहको पन्द्रह दिनकी छुट्टी नही देगी? हमने भी एक अनुमान लगाया है। शासन-सुधारसे समस्त हिंदू-सप्रदाय असंतुप्ट व क्रुद्ध हो उठा है, फिरोज-शाह इससे अनभिज्ञ नही, फिर भी शासन-सुधार व गवर्नमेंटके अनुग्रहका लोभ दिखा उन्होंने सूरत महासभामें फूट डाली थी। उसके बाद बगालके प्रतिनिधियोकी इतनी रूढतासे अवमानना की थी कि वे लाहौर जाकर पुनः

अपमानित होना नही चाहते। फिरोजशाह खुद कहते हैं कि किसी गुरुतर राजनीतिक कारणसे उन्होंने सभापति-पद त्याग दिया है। यही क्या वह राजनीतिक कारण नही ? पद-त्यागके कारण यदि सुरेन बाबू आदि कन्वेन्शनमें भाग लेनेके लिए राजी हों तो शासन-सुधारके ग्रहणका दोप मेहताके हिस्सेमें न पड़ सारे मध्यपंथी दलमें सम-भावसे विभक्त होगा, यही है आशा। यदि बगालके मध्यपथियोंकी अनुपस्थितिसे मेहताके सभापतित्वमें अल्प सख्यक प्रतिनिधियोद्वारा शासन-सुधार स्वीकृत हुआ तो सुधारके साथ-साथ कन्वेन्शनकी दशा भी अति शोचनीय होगी। फिरोजशाहकी इच्छा है कि बगालके प्रतिनिधियोंको लाहौरमें हाजिर करा उनसे अपना काम निकाल बगाली शिखडीकी आड़में छिपे-छिपे युद्ध चलायें। ऐसा नही हो तो कुचक्रियोंके शिरोमणि उद्देश्यहीन चाल क्यों चलेंगे भला ?

पूर्वी वंगालमें निर्वाचन

पूर्व बगाल शुरूसे जो तेज, सत्य-प्रियता व राजनीतिक तीक्ष्ण दृष्टि दिखलाता आ रहा है, शासन-सुधारकी परीक्षामें जाना गया कि वे सब गुण दमन और प्रलोभनसे निस्तेज नही हुए है, पहले जैसे ही है। फरीदपुरमें एक भी हिंदू निर्वाचन-प्रार्थी नही बना। ढाकामें सिर्फ एक व्यक्ति मारलेके मोहसे मुग्ध हुए है। मैमनसिहमें जो चार व्यक्ति इस राजभोगकी आशासे दौड़े आये थे उनमेंसे दो चैतन्य लाभ कर खिसक गये है, और दो व्यक्ति, आशा है, श्रेयः पथ पकड़ेंगे। बड़े आश्चर्यकी बात है, सुननेमें आ रहा है कि अश्विनीकुमारका बारीसाल सुधारके मदसे मतवाला हो लज्जा परित्याग कर मारलेकी इच्छानुसार नाच रहा है। यह दुर्बुद्धि क्यो ? निर्वासित अश्विनीकुमारका यह अपमान क्यों ? बारीसालके देवता ब्रिटिश जेलमें कैद हैं, कठिन रोगसे आक्रांत, अकारण ही बन्धु-बाधवों व आत्मीयोंकी सेवा-टहलसे वचित। उनका बारीसाल उन्हें भूल राजपुरुषोंके प्रेमके बाजारमें अपनेको बेच देनेके लिए दौड़ पडा है। छि. ! शीघ्र ही यह दुर्मति त्यागो, कहीं बंगाल बारीसालका उपहास कर यह न कहे कि व्यर्थ ही अश्विनी-कुमार जीवन-भर बारीसालवासियोंको मनुष्यत्व सिखाने और दृष्टातद्वारा दिखलानेके लिए घटे, व्यर्थ ही अंतमें देशके हित अपनी बलि चढ़ायी।

पश्चिम वंगालकी अवस्था

पश्चिम वगाल कभी भी वीचका रास्ता नही पकड़ता। जिस राह जाता है उसपर दौड ही लगाता है, जिस भावका अवलंवन लेता है उसका चरम दृष्टात दिखाता है। पश्चिम वंगालमें जैसे सर्वश्रेष्ठ तेजस्वी पुरुष सिह हैं वैसे ही निर्लज्ज चाटुकारोका दल भी। जो कमर वाध निर्वाचनकी दौड़में प्रयम स्थान पानेके लिए लालायित हैं वे हैं प्रायः देशके अज्ञात, अपूज्य, स्वार्थ-अन्वेपी चाटुकारोका दल। व्यवस्थापक सभामें उनके भीड़ लगानेसे न कोई लाभ है न हानि,—सभा वन जायगी अयोग्य चाटुकारोका चिड़िया-खाना, और कोई कुफल नही निकलेगा। पर उनमें दो-एक देशपूज्य लोगोंका नाम देख दु.खित हुए। वंगालमें श्रीयुत वैकुठनाथ सेनका क्या इतना कम आदर है कि अतमें उन्हें इस भीड़में काउन्सिलमें घुसनेके लिए ठेलाठेली करनी पडी? वृद्धावस्थामें वैकुठ वावूकी यह अपमान-प्रियता क्यों? चिड़ियाखानामें प्रवेश क्या इतना लोभनीय है?

मारले-नीतिका फल

यह कहना पड़ा कि मोटे तौरपर मारले-नीतिका फल देशके लिए उपकारी है। भारतके प्रधान वंधु व हितकारी लार्ड कर्जनने वंग-भंग कर सुप्त जातिको जगाया था, दूर किया था निबिड़ मोह। जो अवशिष्ट रहा—मोहका पुनर्विस्तार, निद्राके नव प्रभावकी आशंका,—शासन-सुधार कर उसका अपसारण किया हमारे हितैषी लार्ड मारलेने। जिनपर वंग-भंगकी चोट नहीं पड़ी वे भी इस प्रकारसे मर्माहत हो जाग रहे हैं। सारी हिंदू-जाति परमुखापेक्षाकी असारता जान राष्ट्रीयताकी ध्वजाके तले अविलंव इकट्ठी होगी। राजपुरुषोका साथ दे रहे हैं जमीदार और मुसलमान। देखें वे भी कवतक टिकते हैं। भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि हमारे कोई तृतीय हितैषी अंगरेजोके मनमें कोई नयी युक्ति घुसा दे जिसके सुफलसे जमीदारो व मुसलमानोको भी पूरी तरह होश आ जाय। राष्ट्रीय दलकी आस्था व्यर्थ कल्पना नही, जब भगवान् सुप्रसन्न होते हैं तब विपक्षकी चेष्टाके विपरीत फलसे उनकी उद्देश्य-सिद्धिमें सहायता करते हैं।

मिण्टोका उपदेश

इस परीक्षाके समय छोटे-बड़े अनेक अंगरेज भारतीयोंको सुधार-विषयक सदुपदेश देनेके लिए आगे बढ़ रहे हैं। इनमें हमारे अति लोक-प्रिय सदाशय बड़े लाटने भी अपने पूजनीय मुख-विवरसे उपदेश-सुधा ढाल हमारे कानोंको तृप्त किया है। सबके मुहमें एक ही बात—अहा, कैसा सुदर शिशु भूमिष्ठ हुआ है, तुम सब इस तरह उसके अपरूप रूपमें छोटी-छोटी खोट न निकाल co-operation सुधा (सहयोग-सुधा) से हमारे सोनेके चादको हृष्ट-पुष्ट करो, सब दोष खुद ही मिट जायेंगे। शिशुके मा-बाप ऐसी प्रशसा करेंगे, दोष ढकेंगे, यह तो स्वाभाविक और मार्जनीय है। किंतु सच बात तो यह है कि लडकेमें एक या दो या तीन छोटे-मोटे दोष होते तो कोई हानि नही थी, उसका तो सारा शरीर ही गला-सडा हुआ है, वह जनमा ही है हृत् रोग, यकृत् रोग, क्षय रोग लेकर, यह सोनेका चाद नही बचने का, बचनेके लायक भी नही, व्यर्थमें उसे बचा कष्ट देनेकी अपेक्षा बॉयकाटके तकियेसे उसका गला घोटकर यंत्रणा-मुक्त करना होगा दयावान्का काम। इससे यदि शिशु-हत्या व नृशंसताके दोषसे अपराधी बने तो न हुआ नरक-भोग कर लेंगे। किंतु कौतूहलका एक कारण रह गया हमारा—सोनेके चादके बाप मिण्टोकी उक्ति सुनी,—माननीय मि० गोखले जो सोनेके चादके मातृस्वरूप हैं, वे क्यों चुपचाप संतानकी निंदा सह रहे हैं? या हमारे गोपाल कृष्ण 'हिंदू पच'का ध्वस कर विजय-आनदके अतिरेकसे समाधिस्थ हैं? शायद कुछ दिन सूतिका अशौचका पालन कर रहे हैं। समय आनेपर सभ्य समाजमें फिर मुख दिखाने आयेंगे।

लाहौर कन्वेन्शन

लाहौर कन्वेन्शनका अदृष्ट निविड़ मेघाच्छन्न है। बगाल अप्रसन्न है, पंजाब असतुष्ट है, देशके अधिकाश लोग या तो बहिष्कृत है या भाग लेनेके अनिच्छुक। फिरोजशाह-प्रसूत, हरकिसन लाल-पालित, गवर्नमेंट-लालित कन्वेन्शन बड़े कष्टसे प्राण बचा रही थी। अंतमें कैसा वज्राघात! जिस प्रिय पिताके प्रेमसे बंगालकी आपत्तिको अग्राह्य कर स्वयको विपदापन्न किया था वही पिता व इष्ट देवता फिरोजशाह विमुख हो सब प्रार्थनाओंको ठेल निज गुप्त विचारके अभेद्य तिमिरमें इंद्रजितकी तरह अतर्क्य माया-युद्धके

लिए प्रवृत्त हुए। बबईके 'साझ वर्तमान'के टेलिग्रामके उत्तरमें हरकिसन लालने दु:खके साथ जनाया है कि फिरोजशाह अपने पद-त्यागका कारण बतलानेको तैयार नही। लाचार हो भक्त अपने रहस्यमय अनिर्देश्य और अतर्क्य देवताके मुखकी तरफ करुण व शून्य दृष्टिसे मुह बाये ताक रहे हैं। आल इंडिया "काग्रेस" कमेटीको छोड़ नये सभापतिको और कौन निर्वाचित करेगा? उस कमेटीका सभा-स्थल है फिरोजशाहका शयन-कक्ष। अतः कमेटीके अधिवेशनमें प्रभुकी इच्छा व्यक्त हो भी सकती है। फिरोजशाह-स्पर्शित, पुण्यमयी, परित्यक्त माला उनके पवित्र कर-कमलसे निक्षिप्त हो किसके गलेमें पड़ेगी? वाच्छाके या मालवीयके या गोखलेके? हमारे सुरेंद्रनाथका नाम भी लिया गया है, किंतु वे फिरोजशाहके उच्छिष्ट सभा-पतित्वको उनकी कृपाके दानके रूपमें स्वीकार कर बगालियोंके अप्रीति-भाजन बनेंगे, यह आशा पालना अन्याय होगा। गोखले हैं फिरोजशाहकी द्वितीय आत्मा, वाच्छा हैं उनके आज्ञावाहक भृत्य। मालवीयको इस महत् पदपर विठा कमेटीको स्वाधीनताका ढोग करने दो।

धर्म
अक 16
पौष 5, 1316

'बंगाली'की उक्ति

हमारे सहयोगी 'बगाली'ने सयुक्त महासभा कमेटीका विफल परिणाम देख आक्षेप कर लिखा है कि राष्ट्रीय दलके प्रतिनिधि क्रीड (सिद्धात-पत्र) से सहमत नही हुए, क्रीडपर सही न करनेसे कोई महासभामें प्रवेश नही पा सकेगा, इस अतिमेत्थमके बावजूद सहयोगी यह आशा करता है कि पुनः मिलनकी चेष्टा हो सकती है, पुनः दोनो दल मिलकर एक साथ देश-कार्यमें प्रवृत्त हो सकते हैं। जबतक यह भ्रात धारणा मध्यपथी नेताओंके मनसे विदूरित नहीं होती तबतक मिलनकी आशा व्यर्थ है। जबतक वे यह जिद छोड़नेको तैयार नही होते तबतक राष्ट्रीय दल मिलनकी ओर किसी भी चेष्टामें योग नही देगा। क्योंकि वे जानते है कि अपर पक्षमें प्रकृत मिलनकी इच्छा नही। देशको व्यर्थ आशा दिखाना अनुचित है। जनताको बतलानेके

लिए राष्ट्रीय पक्ष अविलंब अपना वक्तव्य प्रकाशित करेगा, इससे यह स्पष्टतः निरूपित होगा कि वे किस शर्तपर मध्यपथियोके साथ संधि करनेके लिए तैयार हैं। जिस दिन मध्यपथी मेहता व मारलेकी सफल राजनीतिसे विरक्त हो यह शर्तें मान हमारे पास संधि स्थापनार्थ आयेंगे उसी दिन हम फिरसे संयुक्त महासभाकी स्थापनाके लिए सचेष्ट होंगे।

मजलिसके सभापति

मेहताके पद-त्यागसे बंगालके मध्यपंथी इस प्रबल आशासे उत्फुल्ल हो उठे थे कि अबकी शायद सुरेन बाबूकी बारी आयी। बंगालके यह मध्यपथी नेता कन्वेन्शनके सभापति बनेंगे, बॉयकाटका प्रस्ताव पारित होगा, बंगालकी जीत होगी। आशा ही है मध्यपथियोका सबल। सहिष्णुता है उनका प्रधान गुण। जो सहस्र बार श्वेतांगके आनंदमय पद-प्रहारका भोग कर पुन. प्रेम करनेके लिए दौड़ पड़ते है, सहस्र बार आशासे प्रतारित हो सगर्व कहते हैं कि हम अब भी निराश नही हुए हैं, वे स्वेच्छाचारी स्वदेशवासीके बार-बारके अपमानसे लब्धसंज्ञ होगे या मेहता-मजलिसके बंग-विद्वेषसे जर्जरित होकर भी सीखेंगे और आत्म-सम्मानको बचाये रखनेकी चेष्टा करेंगे, ऐसी आशा व्यर्थ है। मेहताकी मजलिस न कांग्रेस है न कन्वेन्शन। जो मेहताके सुरमें गायेंगे, मेहताके पद-पल्लवमें स्वाधीन मत व आत्म-सम्मान विक्रय करेंगे, उनके लिए ही है यह मजलिस। जो मेहता-पूजाके "क्रीड"को स्वीकार न कर प्रवेश करेंगे वे अनाहूत अतिथिकी तरह अपमानित होगे और यदि अपमानसे भी वशमें न आये तो अतमें गरदनिया खा उस संगको परित्यागनेके लिए बाध्य होंगे। उन्होंने क्या यह समझ लिया है कि पद-त्याग करके भी मजलिसके कर्णधारने पतवार छोड़ दी है? हम तभी जान गये थे कि मदनमोहन ही सभापति होंगे। मजलिसके परमेश्वरने ऐसी आज्ञा दी है, उनकी बंबईवासी आज्ञावह-मंडलीने देशको यह आज्ञा जनायी है, ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटीने भी सिर झुका दिया है। बंगालके थोड़े-से लोग प्रतिनिधि चुने गये हैं—कलकत्ता और ढाकामें, अन्यत्र कोई चहल-पहल नही। कितने जायेंगे मालूम नही। जो जायेंगे वे यह मानकर जायेंगे कि हम ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशनके प्रतिनिधि बनकर जा रहे है। वे बंगालके प्रतिनिधि नही।

विलायतका राष्ट्र-विप्लव

विलायतके पुरातन ब्रिटिश राजतंत्रको ले जो महान् संघर्ष आरंभ हुआ है उसके पूर्व लक्षण भी उग्र व भीति-संचारक हैं। इंगलैंडका लोकमत किस तरह उत्तेजित व क्रुद्ध होता जा रहा है वह 'रायटर'के संवादसे दिन-ब-दिन प्रकट हो रहा है। बहुत दिन बाद उस देशमें प्रकृत राजनीतिक उत्तेजना और दल-दलमें विद्वेष दिखायी दे रहा है। पहले तो साधारणत. जो होता है वही हुआ, उदारनीतिक मंत्री मि० ऊरके भाषणके समय शोरगुल और विरोधियोंका हुड़दंग, फिर बल-प्रयोगसे सभा-भंगकी चेष्टा। रक्षणशील दलके नेता भी, विशेषतः जमींदार-वर्ग, प्रजाके असंतोषसे ऐसी बाधा पाने लगे, अब मुख्य-मुख्य मंत्रियों व विख्यात वक्ताओंको छोड़ कोई रक्षणशील राजनीतिज्ञ बेरोक-टोक स्वमतके प्रकाशनका अवसर नहीं पा रहे, अनेक सभाओंमें एक शब्द भी नहीं कहने दिया गया। कुछ एक स्थानोंमें सूरत महासभाका अभिनय विलायतमें अभिनीत हो रहा है। अब देखते हैं कि बड़े-बडे रक्षणशील राजनीतिज्ञ भी बाधा पा रहे हैं। और भी उग्र लक्षण दिखायी दिया है—प्राण लेनेकी चेष्टा। ऊरकी एक सभामें उस घरके कांचके दरवाजेको एक तरहके battering-ram (भित्ति-पातक) से चूर-चूर कर दिया गया, अनेक आहत हुए। और एक रक्षणशील-सभामें बल-प्रयोगसे सभा भंग की गयी, उस दलके स्थानीय कर्मचारियोंको निर्दय प्रहारसे अचेत कर दिया गया, निर्वाचन-प्रार्थियोंने भागकर विपदाके हाथसे अपनी रक्षा की। ये लक्षण हैं राष्ट्र-विप्लवके। दिन-पर-दिन वह जो उग्र रूप धारण करता जा रहा है उससे संदेह होता है कि निर्वाचनके समय रक्षणशील निर्वाचक-वर्गको वोट देने दिया जायगा कि नहीं।

गोखलेका मुख-दर्शन

गोखले महाशयका सूतिका अशौच समाप्त हुआ, उन्होंने फिर अपना मुंह दिखाया है, उनकी अमूल्य वाणी भी सुनी गयी है। राष्ट्रीय पक्षके नृसिंह चिन्तामणि केलकर दुष्टा-सरस्वतीके आवेशमें नव व्यवस्थापक सभामें निर्वाचन-प्रार्थी हुए थे, बंबईके लाटने केलकरको अयोग्य व्यक्ति मान उनकी निर्वाचन-लालसापर रोक लगायी। केलकर भी लज्जा छोड़ लाट साहबको साधने गये थे, लाट साहबने भी इस दावेका उपयुक्त उत्तर दिया है। हमारे

गोपाल कृष्णने सोचा, अच्छा हुआ, गवर्नमेंटको कठोरता व निर्दयतासे इनका दमन करने दो, इस बीच मैं उनके साथ जरा प्रेम कर लूं, मुझपर लोगोंकी जो घृणा व क्रोध है शायद वह कम हो जाय। अतः अपने "दक्षिण-सभा"के अधिवेशनमें गोखलेने केलकरके पक्षका समर्थन कर बंधु क्लार्कको मीठी-मीठी झिड़की सुनायी है। उन्होंने कहा—केलकर अयोग्य नहीं, योग्य व्यक्ति हैं, गोखले उन्हें यौवन-कालसे जानते हैं, उत्तम सिफारिश दे सकते हैं, केलकर राजद्रोही नहीं, विकृत-मस्तिष्क भी नहीं। लाट साहब पुनः विवेचना करें तो अच्छा हो।

गोखलेका स्वसंतान-समर्थन

गोखले महाशयने अपनी सुधाररूप संतानकी बात भी कही है। कहा है—मेरी प्रिय संतान बहुत सुंदर लड़का है, शांत-शिष्ट लड़का, सारे देशके प्यारके योग्य। किंतु गवर्नमेंटने जो रेगुलेशनरूपी परिधान उसे पहनाया है उससे ही घपला हो गया है, 'सोनेके चांद'का रूप निखर नहीं पा रहा। कोई बात नहीं, सोनेके चांदको प्यार करो, पालो, वस्त्र कितने दिन रहेगा, शीघ्र ही प्रचलित परिपाटीके अनुसार वेश-भूषा पहना उसका निर्दोष सौंदर्य सबको दिखाऊँगा। बंबईके लाटने भी यही उपदेश दिया है। देश क्या इतना अभद्र व राजद्रोही हो गया है कि लाटका अनुरोध अमान्य करेगा? गोखलेको ही शोभा देती है ऐसी बात!

धर्म
अंक 17
पौष 12, 1316

प्रस्थान

जिन्होंने लाहौरके धनीपुंगव हरकिसन लालके निमन्त्रणका मान रखनेके लिए प्रस्थान किया है, जो कन्वेन्शन-यज्ञमें मारलेके श्रीचरणोंमें स्वदेशकी बलि चढ़ाने और शासन-सुधारके पेषण-यंत्रमें जन्मभूमिके भावी ऐक्य व स्वाधीनताको पीसकर चूर-चूर करनेको तैयार बैठे भारत-सचिवका

धन्यवाद अदा करने सानंद, महा सुखसे नाचते-गाते जा रहे हैं वे ठहरे देशके नेता, सभ्रात, धनी, देशमें उनका "stacke" (खूंटा) है, सम्मान है, प्रभाव-प्रतिष्ठा है। शायद यह धन-सपत्ति, सम्मान, प्रभाव-प्रतिष्ठा है अंगरेजोंकी दी हुई, माकी दी हुई नही, तभी तो वे कृतघ्नता और अपवादके भयसे जन्मभूमिकी उपेक्षा कर मारलेको ही भज रहे हैं। दरिद्र मा एक तरफ, वरदाता, शातिरक्षक, सपत्तिरक्षक गवर्नमेंट दूसरी तरफ। जो मासे प्रेम करते हैं वे एक तरफ जायेंगे, जिन्हें स्वयसे प्यार है वे दूसरी तरफ। अव दोनो तरफ रहनेकी चेष्टा न करें, दोनो तरफके देय पुरस्कार और सुविधा भोग करनेकी दुराशा अव न पालें। जिन्होने कन्वेन्शनमें योग देनेके लिए प्रस्यान किया है वे अपनी लोक-प्रियता, देश-वासियोके हृदयमें अपनी प्रतिष्ठा और देश-हितैपिताके गौरवको पद-दलित कर उस कुस्थानकी ओर भाग रहे हैं। उनका यह प्रस्थान है राजनीतिक महा प्रस्थान।

हरकिसन लालका अपमान

तेजस्वी स्वदेश-हितैपी अगरेजको कभी भी देशद्रोहीका सम्मान करना प्रिय नही रहा। यदि कभी अपने उद्देश्य-सिद्धिके लिए थोडे दिन मौखिक भद्रता व प्रीति दिखाये भी तव भी अवज्ञा व असम्मानका भाव उनके हृदयमें छिपा रहता है। पजावके हरकिसन लाल मान वैठे थे कि मैं तो राजपुरुपोंका वहुत प्रिय हूं, पजावके लोक-मतका दलन कर कन्वेन्शन वुला रहा हूं, राजपुरुपोंकी सहायतासे स्वदेशी वस्तुओंकी प्रदर्शनी कर रहा हूं, गवर्नमेंट मेरे सव दावेको मान लेगी। हरकिसन लाल पजाव विश्वविद्यालयके प्रतिनिधि होनेको लालायित है, उनका नाम भी निर्वाचन-प्रार्थियोंमें रखा गया था। किंतु किसी नियम भगके कारण वह नाम स्वीकृत नही हुआ। इससे लालजीके प्राणोंको वड़ी ठेस लगी है। कन्वेन्शनके हरकिसन लाल, गवर्नमेंटके हरकिसन लाल, प्रतिनिधि नही वनेंगे, नामतक नही लिया गया। यह कैसी वात? किसकी है इतनी वड़ी धृष्टता? ठहरो, गवर्नमेंटको लिखता हूं। सवको मजा चखाऊंगा। किंतु हरकिसनके आवेदनका फल हुआ उल्टा। पजाव गवर्नमेंटने लालाजीको अपदस्थ कर कलमके एक ही वारमें उनके आवेदनको अग्राह्य कर कहा है कि नियमके अनुसार हरकिसन लालका नाम अस्वीकृत हुआ है, अस्वीकृत ही रहेगा। न्याग्य वात। व्यक्तिकी खातिर नियम भग करना सभ्य राजतत्रकी प्रथा नहीं। किंतु हरकिसन

लाल मारले व मिंटोकी मनस्तुष्टिके लिए जब प्राणपणसे खटे थे, तब नाम अस्वीकारनेके पहले उन्हें सतर्क कर सकते थे। भूल सशोधित हो जाती। हम जानते है कि जान-बूझकर यह अपमान किया गया है, मध्यपथी दलको सबक सिखानेके लिए किया गया है। राजपुरुष मध्यपथियोंको अपने पक्षमें करना चाहते हैं, पर कैसे मध्यपथियोंको? ऐसे मध्यपथियोंकी अब अगरेजोके बाजारमें दर नही जो एक हाथसे गवर्नमेंटके पाव दबाने और दूसरे हाथसे गला टीपनेके अभ्यस्त हों, गवर्नमेंटकी निन्दा भी करें और अनुग्रहका दान भी आदाय करें। जो पूर्ण राजभक्त बने, पूर्ण सहयोग दें, ऐसे मध्यपथी बनो, नही तो चरमपंथियोकी तरह तुम सब भी बहिष्कृत कर दिये जाओगे। नूतन काउन्सिलकी नियमावलीका जो उद्देश्य है वही उद्देश्य है हरकिसन लालके अपमानका।

फिरसे जागो

बंगालवासियो, बहुत दिनसे सोये पडे हो, जो नव जागरण हुआ था, जिस नव-प्राण सचारक आंदोलनने समस्त भारतको आदोलित किया था, वह निस्तेज पड गया है, म्रियमान अवस्थामें है, अर्ध-निर्वाण-प्राप्त अग्निकी तरह सिसक-सिसककर जल रहा है। अभी है सकटकी घड़ी। यदि बचाना चाहते हो तो मिथ्या भय, मिथ्या कूट-नीति व आत्म-रक्षाकी चेष्टा छोड़ केवल माके मुखकी तरफ निहार फिरसे सम्मिलित हो कार्यमें लग जाओ। जिस मिलनकी आशामें इतने दिन प्रतीक्षा की थी, वह आशा व्यर्थ हुई। मध्यपंथी दल राष्ट्रीय दलके साथ एक होना नहीं चाहता, चाहता है ग्रसना। ऐसे मिलनके फलसे देशका यदि हित होता तो हम बाधा न देते। जो सत्य-प्रिय हैं, महान् आदर्शकी प्रेरणासे अनुप्राणित हैं, भगवान् और धर्मको ही एकमात्र सहाय मान कर्म-क्षेत्रमें उतरे हैं, वे तो हट जाते, जो कूट-नीतिका आश्रय लेनेसे सहमत हैं, वे मध्यपथियोंका साथ दे, मेहताका आधिपत्य और मारलेकी आज्ञा शिरोधार्य कर देशका हित करते। किन्तु ऐसी कूट-नीतिसे भारतका उद्धार नही होनेका। धर्मके बलसे, ब्रह्मके बलसे, सत्यके बलसे उठेगा भारत। अतः जो राष्ट्रीयताके महान् आदर्शके लिए सर्वस्व त्यागनेको प्रस्तुत हैं, जो जननीको पुनः जगत्की शीर्ष-स्थानीय, शक्तिशालिनी, ज्ञानदायिनी, विश्व-मंगलकारिणी ऐश्वरी शक्ति नव नव जातिके सामने प्रकाश करनेको उत्सुक हैं वे एक हों, धर्म-बलसे, [illegible]

बलीयान हो मातृ कार्य आरंभ करें। मांकी संतान! आदर्शभ्रष्ट हो गयी हो, फिरसे धर्मके पथपर आओ। किंतु अब उद्दाम उत्तेजनाके वश कोई कार्य मत करो, सब मिल एक प्रण, एक पंथ एक उपाय निर्धारित कर जो धर्म-संगत हो, जिससे देशका हित अवश्यंभावी हो, वही करना सीखो।

नासिकमें खून

नासिक-वासी सावरकरने—कुछ उद्दाम कविताएं लिखी थी। अंगरेज विचारालयमें उन्हें यावज्जीवन द्वीपातरका दंड मिला। सावरकरके एक अल्प वयस्क बंधुने नासिकके कलक्टर जैकसनकी हत्या कर उसका प्रतिशोध लिया। राजनीतिक हत्याके बारेमें अपना मत हमने पहले ही प्रकाशित किया है, बार-बार उसकी पुनरावृत्ति वृथा है। अगरेजी पत्रिकाएं क्रोधसे अधीर हो पूरे भारतपर इस हत्याका दोष मढ़ गवर्नमेंटसे और भी कठोर उपाय अपनानेका अनुरोध कर रही हैं। यानी दोषी-निर्दोषीका विचार न कर जिसपर सदेह हो उसे पकड़ो, द्वीपातर भेजो, फासीके तख्तेपर झुला दो। जो कोई भी गवर्नमेंटके विरुद्ध चूं-चौं करे उन्हें निःशेष करो। देश-भरमें प्रगाढ़ अंधकार, गभीर नीरवता, परम निराशा फैल जाने दो। इससे भी यदि राजद्रोहके स्फुलिंग फिर और प्रकट न हो तो गुप्त वह्नि बुझ जायगा। यह उन्मत्त प्रलाप सुन, ब्रिटिश राजनीतिकी शोचनीय अवनति देख दया भी होती है और विस्मय भी। यदि उस पुरातन राजनीतिक कुशलताका भग्नांश भी रहता तो तुम सब जानते कि अंधकारमें ही हत्यारोंकी बन आती है, नीरवतामें उन्मत्त राष्ट्र-विप्लवकारियोंकी पिस्तौल व बमकी आवाज बार-बार सुनायी पड़ती है, निराशा ही है गुप्त समितिककी आशा। हम भी ऐसी ही चेष्टा करना चाहते हैं जिससे राजनीतिक हत्याका अवलंबन लेनेकी यह प्रवृत्ति देशसे उठ जाय। किंतु इसका एकमात्र उपाय है कार्यों-द्वारा यह दिखाना कि वैध उपायोंसे भारतकी राजनीतिक उन्नति व स्वाधीनता साधित हो सकती है। केवल मुंहसे यह शिक्षा देनेसे लोग इसका विश्वास नही करेंगे, कार्यद्वारा भी समझाना होगा। इस पुण्य कार्यमें तुम ही बाधा दे सकते हो। किंतु इससे जैसे हमारा विनाश होगा वैसे ही तुम्हारे विनाशकी भी संभावना है।

धर्म
अंक 18
पौष 19, 1316

मरणासन्न कन्वेन्शन

हमारे कन्वेन्शन-प्रिय महारथी लाहौरमें मेहता-मजलिस करनेको बद्धपरिकर थे। पंजाबकी जनता कन्वेन्शन नहीं चाहती थी। कितनी ही तरहसे उसने अपनी अनिच्छा और अश्रद्धा ज्ञापित की, किंतु हरकिसन लाल ठहरे ना-छोड़ बंदा। लोक-मतका दलन करनेके लिए कन्वेन्शनकी सृष्टि हुई थी। पंजाबके लोक-मतको दलित कर राजपुरुषोंकी प्रसन्नतापर निर्भर हो यदि लाहौरमें कन्वेन्शन बुला सके तो मेहता-मजलिसका अस्तित्व सार्थक होगा। इस हठका यथेष्ट प्रतिफल फला है। सारे भारतवर्षसे सिर्फ तीन सौ प्रतिनिधि मेहता-मजलिसमें पधारे और दर्शकवृंदकी संख्या इतनी कम थी कि नातिवृहत् ब्रैडला हॉल आधा ही भर पाया था। इस शून्य मंदिरमें इन अल्प पूजकोंके हताश पुरोहितोंने ब्रिटिश राजलक्ष्मीको नाना स्तव-स्तोत्रोंसे तुष्ट कर उनके चरण-कमलोंमें अनेक आवेदन-निवेदनोंका उपहार चढ़ा, भक्तोंका यथोचित आदर न करनेके कारण उनकी मृदु-मंद भर्त्सना कर आर्यकुलमें अपना जन्म चरितार्थ किया। मेहता-मजलिसने जबरदस्ती अपनेको राष्ट्रीय महासभाके नामसे अभिहित किया है। राष्ट्रीय महासभाके किस अधिवेशनमें, अर्ध-शून्य पंडालमें, अल्प जन प्रतिनिधियोंने इस तरहके हास्यकर प्रहसनका अभिनय किया है, बताओ तो जरा? तुम्हारी मजलिस सभा तो है पर न "महा" है, न "जातीय" (राष्ट्रीय)। जिस सभामें जाति भाग लेनेको तैयार नहीं उसका न नाम हुआ "जातीय" सभा!

सख्य-स्थापनके प्रमाण

उत्तर समुद्रके उस पार बैठ ब्रिटिश राजलक्ष्मीने जब 'रायटर'के टेलीग्राम-दूतके मुंहसे इन सब स्तव-स्तोत्रोंको सुना तब अपने मनमें अंतर्निहित विद्रूप और अवज्ञाको मनमें ही रख वह हर्षसे हंसी या नहीं—हमें पता नहीं। शायद प्रतिनिधि निर्वाचनके महारवमें मालवीय, गोखले और सुरेंद्रनाथका क्षीण स्वर एकदम ही दब गया हो। कौन जानें, शायद पूज्य अंगरेज-देवता यह भी न जानते हो कि हरकिसन लालने राजभक्तिको चरितार्थ करना

ही कन्वेन्शनका चरम उद्देश्य निर्दिष्ट किया है। कोई हानि नही, कलकत्तेके अगरेजी समाचार-पत्रोंके कर्ता-धर्ताओंने बरतानियाके नामसे पूजा ग्रहण कर ली है। लाहौरका यह कलंककारी व्यापार बेकार नही गया। 'इडियन डेली न्यूज'ने मुक्तहस्तसे आशीर्वादोंकी वर्षा की है। 'स्टेटस्मैन'ने उस मधुर भर्त्सनाके मधुर भावको न समझ जरा असंतुष्ट होनेपर भी पूजापर सतोष प्रकट किया है। 'इग्लिशमैन'ने भी गाली-गलौजकी गुजाइश न देख, आड़े-तीरछे-वकिम कटाक्ष करके भी हरकिसन लालकी राजभक्ति अस्वीकृत नही की। देशवासियोंका असतोष, एग्लो-इडियनोकी खुशी वं प्रशसा हैं मेहता-मजलिसके परिपोषकोंका योग्य पुरस्कार।

नेता तो हैं, सेना कहां?

कन्वेन्शनकी अपूर्व बहादुरी यह है कि सर्व प्रधान फिरोजशाहको छोड भारतके सारे बड़े-बडे नेता उपस्थित थे। किंतु उनके अधीन सेनाने लाहौरकी कडाकेकी ठडसे भय खा या और किसी कारणसे नेताओके साहससे समुत्साहित न हो अपने घरमें ही बड़े-दिनकी छुट्टियाँ बितायी। बगालसे अंबिका बाबूको छोड़ जितने भी नेता—सुरेन बाबू, भूपेन बाबू, आशु बाबू, योगेश बाबू, पृथ्वीश बाबू—गये थे उनकी सेनाकी सख्या कोई कहते हैं दो थी, कोई कहते तीन, कोई कहते पाँच। मद्राससे बारह व्यक्ति गये थे। कोई दीवान बहादुर थे इस महती सेनाके नेता। और कितने नेता थे उसकी ठीक-ठीक सूचना अभीतक नही आयी है। मध्य-प्रदेशसे पाँच-छः जन गये थे, सभी नेता, कारण वहाँ उनके अलावा और कोई मध्यपंथी है ही नही। सयुक्त प्रदेशसे महारथी मालवीय, गगाप्रसाद और कई, राजे, साहबजादे इत्यादि गये थे। उन सबकी सेनाए थी, कोई कहते हैं तीस जनोकी, तो कोई साठ और कोई अस्सी। सिर्फ पंजाबमें यह क्रम नही टिक पाया। वहाँ हरकिसन लाल ही है एकमात्र नेता, अन्य सब है सेना। ग्रीक प्रतिनिधि किनियसने रोमन सेनेटमें उपस्थित हो कहा था: This is a senate of kings!'—इस सभाका प्रत्येक सभ्य है एक-एक राजा! हम भी कन्वेन्शनकी ओर देख कह सकते हैं: This is a congres of leaders, इस महासभामें प्रत्येक सभ्य है एक-एक नेता! किंतु सेना कहाँ?

श्रीरामकृष्ण और भावी भारत

भगवान् श्रीरामकृष्णदेवकी उक्तियाँ और उनसे संबंधित जितनी पुस्तकें रचित हुई है उनके पढनेसे ज्ञात होता है कि जो नूतन भाव देशमें गठित हुआ है, जो भावराशि समग्र भारतवर्षको प्लावित करे दे रही है, जिस भाव-तरगमें मत्त हो कितने ही युवक सव कुछको तुच्छ कर आत्माहुति दे रहे हैं, उस भावकी कोई वात उन्होने नही कही, सर्वभूत-अंतर्यामी भगवान्ने उसे नहीं देखा; ऐसी वातोपर भला कैसे विश्वास कर सकते है? जिनके पाद-स्पर्शसे पृथ्वीपर सत्ययुग उतर आया है, जिनके स्पर्शसे धरणी सुखमग्न है, जिनके आविर्भावसे वहुयुग संचित तमोभाव विदूरित हुआ है, जिस शक्तिके सामान्य उन्मेष-भरसे दिग-दिगत-व्यापिनी प्रतिध्वनि जागरित हुई है; जो पूर्ण है, युग धर्म-प्रवर्तक हैं, जो हैं अतीतके अवतारोंके समष्टि स्वरूप, उन्होने भावी भारतको नही देखा या उसके वारेमें कुछ नही कहा, यह हम विश्वास नहीं करते—हमारा विश्वास है कि जो उन्होंने मुँहसे नही कहा उसे कार्यान्वित कर गये हैं। वे भावी भारतको, भावी भारतके प्रतिनिधिको अपने सामने ही गढ़ गये हैं। इस भावी भारतके प्रतिनिधि हैं स्वामी विवेकानन्द। वहुतेरे ऐसा मानते हैं कि स्वामी विवेकानंदका स्वदेश-प्रेम है उनका निजी दान। किंतु यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि उनका स्वदेश-प्रेम है उनके परम पूज्यपाद गुरुदेवका ही दान। उन्होने भी अपना कहकर कुछ दावा नही किया। लोक-गुरु जिस तरह उन्हें गढ गये थे वही है भारतको गढनेका उत्कृष्ट पथ। उनके सवधमे कोई नियम-विचार नही था—उन्होने उन्हे पूर्ण वीर साधककी तरह गढा था। वे जन्मसे ही थे वीर, यह था उनका स्वभाव-सिद्ध भाव। श्रीरामकृष्ण उनसे कहा करते थे: "तू तो वीर है रे!" वे जानते थे कि जो शक्ति वे उनके भीतर सचारित कर जा रहे हैं समय आनेपर उसी शक्तिकी उद्भिन्न छटासे देश प्रखर सूर्य-किरणके जालसे आवृत हो उठेगा। हमारे युवकोको भी इसी वीर भावसे साधना करनी होगी। उन्हें वेपरवाह हो देशका कार्य करना होगा और अहरह यह भगवद्वाणी स्मरण रखनी होगी: "तू तो वीर है रे!"

धर्म
अक 19
पौष 26, 1316

कन्वेन्शनकी दुर्दशा

बंबईके 'राष्ट्र-मत'में कन्वेन्शनके प्रतिनिधियों और दर्शकोकी सख्या छपी है। इस पत्रके लाहौर-सवाद-दाताने लिखा है, "लाहौरके क्रीड काग्रेसके अधिवेशनमें सव मिलाकर 224 प्रतिनिधि उपस्थित थे। उनमें आधेसे ज्यादा थे पंजाबके अधिवासी। जो पहले भी राजनीतिक कार्य कर चुके हों ऐसे सज्जन वहुत थोडे ही थे। दर्शकोकी सख्या छः सौ या सात सौके लगभग होगी। कभी-कभी हालके दोनों भाग ही रिक्त रह जाते। एक भी मुसलमान प्रतिनिधि या मुसलमान दर्शक नही आया था। सभापति मालवीयने वहुत ही दक्षतासे कार्य चलाया, नही तो क्रीड काग्रेसकी इस वार और भी दुरवस्था होती।" सवाद-दाताकी अंतिम उक्तिमें किसी गुप्त मतभेदकी ओर इशारा है। संभवतः यह मतभेद शासन-सुधारके कारण हुआ हो, दोनो दलोके समझौतेकी शर्त कन्वेन्शनके तद्विपयक प्रस्तावको देखनेसे ही समझी जा सकती है। प्रस्तावके पहले अशका अंतिम अंशके साथ कोई मेल नही। पहले अशमें है मिंटो व मारलेकी उदारता, जनताकी मनस्तुष्टिके लिए उत्कट व विकट चेष्टा इत्यादि गुणोकी सानद प्रशसा और कृतज्ञताकी उद्दाम लहरी; अतिम अशमें है कठोर, लगभग अभद्र भापामें गवर्नमेंटको गाली-गलौज और क्रोध व घृणाका उद्दाम उच्छ्वास। इस हास्यास्पद और असगत सम्मिलनमें मालवीयकी दक्षता प्रकट हुई है। कराल अकाल मृत्युके हाथसे छुटकारा पा कन्वेन्शन इलाहावादमें मालवीयकी शीतल छायामें पुनः सम्मिलित होनेकी दुराशा पाल रही है।

गुटवंदी और एकताका मिथ्या ढोंग

मनुष्य-मात्र है वातोंका दास, वाक्देवीके हाथोंका खिलौना। चिर परिचित श्रुति-मधुर वातें सुना मनको नचानेमें हमारे मध्यपंथी वंधु है सिद्ध-हस्त। वे हैं अंगरेज राजनीतिज्ञोंके चेले। जैसे अगरेज श्रुति-मधुर शव्दोकी आवृत्ति-कर—यथा, व्रिटिश शांति, व्रिटिश न्यायपरता, स्वायत्त-

शासन-सुधार इत्यादि—विशाल शून्य भावकी आड़में अपना अभीष्ट कार्य कर लेनेके अभ्यस्त हैं वैसे ही उनके मध्यपंथी चेले "ब्रिटिश न्यायपरताका इजलास", "ब्रिटिश जनताकी विवेक-बुद्धि", "ब्रिटिश साम्राज्य-अतर्गत अधिकार", आदि श्रुति-मधुर रीते शब्दोसे देशकी बुद्धिको पथ-भ्रष्ट कर इतने दिनोंतक भारतकी प्रकृत उन्नतिका सुपथ रोके बैठे थे। अब भी वह आदत नही गयी। राष्ट्रीय पक्षकी ओरसे स्वतंत्र कार्य-शृंखलाकी चेष्टा चलती है देख वे "गुटबदी", "एकता" इत्यादि परिचित शब्दोका शोर मचा जन-साधारणके मनको नचानेमें लगे हैं। उन्होने ही 'क्रीड्' व 'कास्टिटयूशन' की रचना कर मारलेकी मनस्तुष्टिकी आशामें राष्ट्रीय पक्षको बहिष्कृत किया। उन्होने ही हुगली प्रादेशिक समितिमें यह विभीषिका दिखलायी कि यदि राष्ट्रीय पक्षका एक भी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ तो वे समितिको तोड़ देंगे। वे ही तो राष्ट्रीय दलके नेताओके साथ काम करनेसे भय खाते हैं, उनके साथ काम करना नही चाहते। किसी भी घोषणामें मध्यपथी नेताओंके नामके साथ यदि उनके हस्ताक्षर देनेकी बात उठे तो "काम नही, काम नहीं, गवर्नमेंट नाराज होगी, बड़े लोग नाराज होंगे", कह उस प्रस्तावको उड़ा देते हैं। फिर भी "उल्टा चोर कोतवालको डाटे"से लज्जित नही होते। हम लोग ही जैसे गुटबदी कर रहे हैं, सामान्य मतभेदके कारण एक साथ काम करना नहीं चाहते, कन्वेन्शनमें शामिल हो, मेहताको समझाने-बुझानेकी चेष्टा न कर अलग-अलग रहते हैं। अबतक हमने कोई बाधा नही दी। देश, आदोलन, राजनीतिक क्षेत्र, तुम्हारे ही हाथोंमें तो था। इसका फल यह हुआ कि सारा देश नीरव हो गया, भारत सो गया है, लोगोका उत्साह और आशा टूटने-टूटनेको है। हम देशको जगाना चाहते हैं—तुम सबोको पहचान गये हैं, हम जानते हैं कि इच्छा रहतेपर भी भय और विपद्की आशंका तुम्हें काम नहीं करने देगी—हमपर भले ही विपत्ति टूटे, हमारा दलन हो, पर हम देशका कार्य करेंगे, यही उद्योग हम कर रहे हैं। तुरत ही मध्यपंथियोंका शोर उठ खड़ा होता है—अहा, क्या कर रहे हो? झुंड बांध कैसी गहरी नीद हम सो रहे थे। फिरसे गुटबंदी! हमारी प्रिय एकता गयी, रक्षा करो, मतिलाल कहा, अनाथबंधु कहां, हमारी रक्षा करो। तुम्हारे मनकी बात हम जानते हैं, राष्ट्रीय-पक्ष यदि कार्य-शृंखला-सहित कार्य करनेमें समर्थ हो, तो तुम्हें चाहे तो उस कार्यमें योग दे गवर्नमेंटका अप्रिय बनना होगा या फिर निश्चेष्ट रहने, अकर्मण्य और भीरु करार दिये जानेपर देशवासीका सम्मान और अपने नष्ट-प्राय: नेतृत्वका भग्नांश खोना होगा। इसलिए चिर अभ्यासवश मिथ्या एकताका ढोंग कर अपनी उस प्रिय और सुखकर निश्चेष्टाके लिए उद्विग्नता दर्शाते हो।

निर्वासनकी विभीषिका

हमारे पुलिस वधुओने हवा उडायी है कि फिर निर्वासन-ब्रह्मास्त्र चलाया जायगा। इस वार नौ नही चौवीस जनोको कारसे, रेलसे, "guide" जहाजसे गवर्नमेंटके खर्चेपर नाना प्रदेशो और विविध जेलोकी सैर कर आनेके लिए प्रस्थान करना पडेगा। पुलिसकी इस तालिकामें श्रीयुत अरविंद घोषने शायद पहला स्थान पाया है। हम कभी समझ नही पाते कि निर्वासन ऐसी क्या भयकर चीज है कि निर्वासनका नाम सुनते ही लोग भयसे काठ हो, देशका कार्य, कर्तव्य, मनुष्यत्व परित्याग, कपित कलेवर घरके कोनेमें मुँह ढक दुवक जाते है। चिदवरम् प्रभृति कर्म-वीरोने वॉयकाटका प्रचार करनेके अपराधमें जिन कठिन दडोको हंसते-हंसते शिरोधार्य किया है उसकी तुलनामें यह दड वहुत तुच्छ है, अकिंचित्कर है। वाहर परिश्रम कर रहे थे, नाना दुश्चिताओमें घिरे देश-सेवा करनेकी चेष्टा कर रहे थे, शायद भगवान्ने लार्ड मिंटो या मारलेको अपना यत्र वनाकर कहा, "जाओ, निश्चित हो वैठे रहो, निर्जनमें मेरा चितन करो, ध्यान लगाओ, पुस्तक पढ़ो, पुस्तक लिखो, ज्ञानका सचय करो, ज्ञानका विस्तार करो। जनताके वीच रह रसका आस्वादन कर रहे थे, अव निर्जनताका स्वाद चखो।" यह ऐसी क्या भयानक वात है कि भयसे कातर होना होगा? कुछ दिन प्रिय जनोका मुह नही देख पायेंगे—विलायत घूमने जानेपर भी तो यही होता है, फिर भी लोग विलायत घूमने जाते हैं। मान लो, अखाद्य खा, जाड़ा-गरमीमें कष्ट पा शरीर टूट जायगा। घरमें रहनेपर भी तो रोगके चगुलसे छुटकारा नही मिलता, घरमें भी वीमारी आती है, मृत्यु होती है, अदृष्टमें लिखी आयुको कोई अन्यथा नही कर सकता। और हिंदुओके लिए तो मृत्यु भयकर नही। देह गयी यानी पुराना वस्त्र गया, आत्मा तो नही मरती। हजार वार जनमा हूँ, हजार वार जनमूँगा। भारतकी स्वधीनता भले स्थापित नही कर पाया, भारतकी स्वाधीनताका भोग करने आऊँगा, कोई मुझे रोक नही सकता। इतना भय किसका? सस्तेमें इतिहासमें अमर नाम कमाया, स्वर्गका पथ उन्मुक्त हुआ, फिर कष्ट नही, या सामान्य शरीर-क्लेशके वदौलत पायी मुक्ति और भुक्ति। वस, इतनी-सी वात? ट्रासवालके कुलियोका महान् भाव और भारतके शिक्षित लोगोका यह जघन्य कातर भाव देख लज्जित होना पडता है।

निर्वाचन असंभव

हमारी धारणानुसार यह भय दिखाना है निरर्थक दंभ-मात्र। प्रस्ताव रखा गया है, शायद इंडियन गवर्नमेंटकी अनुमति भी मिली है, किन्तु लार्ड मारले मान जायेंगे इसपर हम सहज ही विश्वास करना नही चाहते। नौ जनोंको निर्वासित करनेपर उन्हें काफी भोगना पड़ा है, फिरसे चौबीसको निर्वासित करेंगे? विशेषतः यह जानी हुई बात है कि लार्ड मारले श्रीयुत कृष्णकुमार मित्र आदि नौ जनोंको जेलसे मुक्ति देनेके लिए उत्सुक हैं, केवल इंडिया गवर्नमेंटके हठके कारण ऐसा नही कर पा रहे। ऐसी अवस्थामे क्या वे सहज ही और चौबीस व्यक्तियोंको निर्वासित कर देशकी गभीर अशातिको और भी गभीर बनायेंगे, विप्लवियोके इच्छानुसार कार्य करेंगे? उन्होंने अनेक भूलें की हैं, किंतु अभी वे उन्मादकी अवस्थातक नही पहुंचे हैं। अवश्य ही यदि लार्ड मिंटो कहें कि निर्वासनकी अनुमति न देनेपर वे भारतकी शातिके लिए दायी नही, या पद-त्यागका डर दिखाये तब लार्ड मारले बाध्य हो सहमत हो सकते हैं। नही भी हो सकते हैं, क्योकि लार्ड मिंटोके न रहनेपर ब्रिटिश साम्राज्यका ध्वंस हो जायगा, इस बातपर लार्ड मारलेको शायद पूर्ण विश्वास नही। जो भी हो, चौबीस व्यक्तियोंको निर्वासित कीजिये, या सौको, अरविंद घोषको निर्वासित कीजिये या सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको, कालचक्रकी गति नही थमने की।

धर्म
अंक 20
माघ 4, 1316

नवयुगका प्रथम शुभ लक्षण

शासन-सुधार है नवयुगकी प्रथम अवतारणा। उस युगमें अविश्वासका घोर अधकार मधुर प्रीतिके आलोकमे परिणत होगा और दड-नीतिकी कठोर मूर्ति अगरेज प्रकृतिमें लीन हो साम्य नीतिका आनंदमय विकास भारत-जीवनको सुख और प्रेमसे पूर्ण करेगा, यह श्रुति-मधुर रव बहुत दिनोसे सुनते आ रहे हैं। इतने दिन बाद मायाविनी आशाकी वाणी सफल हुई।

जो सभा-निषेधका आईन पूर्व बंगालके एक ही जिलेमें जारी हुआ था वह अब सारे भारतमें लागू हुआ है। पिछले शुक्रवारसे समग्र भारत इस आईनके लपेटमें आ गया है। कानूनन विना अनुमतिके कही भी वीस आदमी न एक साथ खड़े हो सकेंगे न वैठ सकेंगे। खड़े या वैठे इन वीस आदमियोके सम्मेलनको पुलिस यदि खुली सभाके नामसे अभिहित करनेकी अभिलाषा करे—ऐसी हास्य-रस-प्रिय पुलिसकी सख्या कम नही—तो जो खड़े या वैठे हैं वे कानूनन दडनीय होगे। प्रमाणित करना होगा कि वे "सभा"के सदस्य नही थे या सदस्य होनेपर भी "प्रकाश्य" नही थे। जव "प्रकाश्य" नही थे तव गुप्त थे, यह तो और भी विपज्जनक है। यह प्रमाणित न कर पानेपर छः मास विना पैसेके गवर्नमेंटके आतिथ्य और विना महीनाके सम्राट्के लिए मजदूरीका सुयोग पा नवयुगका रसास्वादन कर सकेंगे। अपने घरमें भी एकत्रित होनेपर रक्षा नही। वहाँ भी यदि राजनीतिकी चर्चा हो, या होनेकी सभावना रहे, या वहाँ 'अमृत वाजार पत्रिका', 'पंजावी', 'वगाली', 'कर्मयोगीन्' आदि राजद्रोही समाचार-पत्र पढ़े जाते हो या पढे जानेकी कोई सभावना हो तो पुलिस वहाँ आ सकती है और गृहस्वामी व उनके वंधुओको सरकारी होटल ले जा सकती है। यदि वीस आदमियोको पितृ-श्राद्धमें या कन्याके विवाहमें निमंत्रण दें तो वहाँ भी यह पुलिस-लीला संभव है। नवयुगका विहान हुआ है। मिंटो मारलेकी जय! शासन-सुधारकी जय!

आईन और हत्यारे

यह कहना कठिन है कि लाट साहवने क्यों सारे भारतपर यह अनुग्रह किया है। वहुतोंका कहना है कि हत्याएं व डकैतियाँ होती हैं इसीलिए सभा-निषेधकी यह घोषणा की गयी है। गुप्त हत्याकारी और राजनीतिक डाकू इस भयकर ब्रह्मास्त्रसे डर जायेंगे, इसमें हमें विश्वास नही। ऐसे वीस आदमी मिल "प्रकाश्य सभा" करनेके अभ्यस्त हैं यह भी कभी नही सुना। इसकी भी वहुत कम ही संभावना है कि छः महीनेके कारा-दडके भयसे वे जिला-मैजिस्ट्रेट या पुलिस-कमिशनरसे अनुमति ले हत्या या डकैतीके लिए सलाह करने वैठेंगे। इस युक्तिका मर्म अपनी इस क्षुद्र वुद्धिसे हम ग्रहण नही कर पाये। पर हमारे ऐंग्लो-इडियन वंधुओंका कहना है कि ऐसी वात नही, देशमें आदोलन होनेपर हत्याएं हैं उनका अवश्यभावी फल, अतः

सभा-समितिका बंद करना और हत्या-डकैती बंद करना एक ही बात है। यदि यह सच होता तो जगत्में राजनीति बहुत ही सरल खेल होती, पांच सालका बच्चा भी शासन-कार्य चला सकता। दुःखकी बात है कि आजकी राजनीतिक अवस्थामें इस अद्भुत उपायका एक भी प्रमाण नही मिलता, वरन् विपरीत सिद्धात ही है अनिवार्य। अवतक क्या सभा-समिति वद नही थी? चरमपंथी दलकी सभा-समितियाँ बहुत पहलेसे ही लुप्त हो चुकी हैं। मध्यपंथी नेताओंने निर्वासनके वादसे सभा-समितियोंमें योग देना वंद कर दिया है। कभी-कभी कालेज स्क्वायरमें जो स्वदेशी सभाएं होती हैं उनमें कोई विख्यात वक्ता उपस्थित नही होते, दर्शक मंडलीकी सख्या भी नगण्य रहती है। जेलसे बाहर आनेके बाद श्रीयुत अरविंद घोषने कुछ-एक दिन भाषण जरूर दिया पर हुगली प्रादेशिक सभाके वादसे वे भी चुप हो गये है। सभाओंमें होती है बार-वार हत्या-निषेधकी सभाएं या कभी-कभी होती है दक्षिण सभाके अधिवेशनमें अगरेज-बधु गोखलेकी शक्तिशाली वक्तृताए। तो क्या हत्या-डकैती है गोखले महाशयके भाषणका फल? हो भी सकता है, क्योंकि गोखले महाशयने भारतके स्वाधीनता लुब्ध युवकोको समझा दिया है कि बल प्रयोग ही है एकमात्र स्वाधीनता-प्राप्तिका उपाय। तभी तो पूर्ण नीरवतामें हत्या-डकैती दिन-दिन बढ रही है। यही स्वाभाविक भी है, भीतर वह्नि हो तो अवाध निर्गमनसे ही वह निर्विघ्न शात होता है, निर्गमनका पथ खोल प्रतिरोधकको विनष्ट कर बाहर आता है।

हम क्या निश्चेष्ट रहेंगे?

अब भी जिला या शहरमें यह आईन राजकर्मचारीद्वारा प्रचारित नही हुआ है, किंतु किसी भी प्रदेशमें आंदोलनके सतेज आरंभ होते ही लागू हो जायगा, इसमें सदेह नही, अतः इसे कहना होगा सव तरहसे आंदोलनको वंद करनेका सरकारी सकेत। अव विवेच्य यह है कि ऐसी स्थितिमें राष्ट्रीय पक्ष कौन-सा पथ पकडेगा। हम अपने राजनीतिक आदोलनको आईनके दायरेमें आवद्ध रखनेको सचेष्ट हैं। यदि आईनका घेरा इतना संकीर्ण हो कि उसमें खुला आदोलन और नही चल सकता तो हमारे लिए क्या उपाय रह गया है? एक ही उपाय—नीरव रह इस भ्रांत नीतिकी प्रतीक्षा करना। हम जानते हैं और गवर्नमेंट भी जानती है कि भारतीयोंकी स्वाधीनताकी आशा वुझ नही गयी, मस्तकपर दमन-दंडके प्रहारसे असंतोष

प्रेममें परिणत नही हो गया है। जनताकी स्पृहा, जनताका असतोष अपनेमें आवद्ध हो घुमड़ रहा है। अभी भी विप्लवीगण लोगोंके मनको गुप्त हत्या और बल-प्रयोगके पथपर खीच नही पाये, पर कब खीच ले जायेंगे यह भी निश्चित नही। यदि एक बार अनर्थ घट गया तब तो गवर्नमेंटकी विपद् और देशकी दुर्दशाकी सीमा नही रह जायगी। इसी आशकासे एवं देशके नवजीवनकी रक्षाकी आशासे हम राष्ट्रीय पक्षको सुश्रृंखलित करनेका प्रयास कर रहे थे। हमारी धारणा थी कि स्वाधीनता-प्राप्तिका निर्दोष पथ दिखा पानेपर गुप्त हत्या देशसे उठ जायगी। अब हम समझ गये कि अंगरेज गवर्नमेंट वह उपाय अपनाने नही देगी। ऐसी अवस्थामें स्वभावतः ही यह विचार मनमें उठता है,—वही हो, उनकी यदि ऐसी ही धारणा है कि और भी उग्र दड-नीतिका प्रयोग करनेसे रोगका उपशम होगा तो वे जी भर दड-नीतिका प्रयोग करें। हम चुप बैठे देखेंगे कि किससे क्या होता है। हम भ्रात हैं कि वे। जब अगरेज राजनीतिज्ञ अपनी भूल समझेंगे तब हमारे कर्मका समय आयगा। इस पथको कहा जा सकता है masterly inactivity—फलवती निश्चेष्टता।

चेष्टाका उपाय

निश्चेष्टता अपनानेसे हमारी भावी सुविधा तो हो सकती है पर उससे देशका प्रचुर अमगल होनेकी आशका है। हमने न हुआ भाषण या सभा-सम्मेलन नही किया, बीस आदमी सम्मिलित न भी हुए तो क्या। हमारा उद्देश्य न तो भाषण देना है न ही अगरेजी ढंगका आदोलन चलाना। देशका काम करना है हमारा उद्देश्य, कार्यकी श्रृंखला है हमारे मिलनका कारण। देशके बारह-चौदह प्रतिनिधि क्या उस कार्यकी श्रृंखला नही बना सकते? वे जो कार्य-प्रणाली निर्धारित करेंगे देशके लोग क्या उसी परिमाणमें छोटी-सी परामर्श-सभा बुला सुसपन्न नही कर सकते? और यदि ऐसा कानून भी हो कि पाच आदमियोका एक साथ बैठना गैरकानूनी जनता होगी तो क्या और कोई निर्दोष उपाय नही है? शकराचार्यके देशमें सभा-सम्मेलनके बिना क्या कोई मत प्रचारित नही हो सकता? मदिरमें, विवाहमें, श्राद्धमें, नाना स्थानोंमें, नाना अवसरोपर भाई-भाईसे भेंट होती है, साधारण बातोंके बीच क्या देश-कार्य-विषयक दो-एक बातें नही हो सकती? आईनके घेरेमें रहेंगे, पर आईन जो कुछ मना नहीं करता उसे तो कर ही सकते है?

इतना करनेपर भी यदि अतमें गवर्नमेंट राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्को बेकानूनी जनता मान सब राष्ट्रीय विद्यालयोको बंद करे, शिक्षा देने, स्वदेशी कपड़े पहनने, विदेशी माल न खरीदने और सालिसीमें कलह मिटानेको घोरतर अपराध मान सश्रम जेल या कालेपानीकी व्यवस्था करे, और यदि ट्रासवाल-वासी कुली व दुकानदारोका साहस, देश-हितैषिता और स्वार्थ-त्याग हममें न हो तो पुलिस और गुप्त विप्लवियोके पथको रुद्ध करना अब अनावश्यक मान हम हट जायेंगे। इस हदतक चेष्टा करके तो देखा जाय।

धर्म
अंक 21
माघ 11, 1316

आर्य समाज

आर्य समाज है स्वामी दयानदकी सृष्टि। वे जो भाव और प्रेरणा दे गये हैं, जबतक आर्य समाज उस भावसे समन्वित एव प्रेरणासे अनुप्राणित रहेगा तबतक रहेगा उसका तेज, वृद्धि और सौभाग्य। विभूति या महापुरुष किसी एक विशेष भावको ले पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं, उस भावको अभि-व्यक्त कर उसकी शक्तिसे जगत्का उपकारी महत् कार्य कर चले जाते हैं या अपने भावके संचार व विस्तारसे शक्तिका एक विशेष केंद्र स्थापित कर जाते हैं। उनके द्वारा संस्थापित संस्था, चाहे बड़ी हो या छोटी, उसी विभूति या महापुरुषकी प्रतिनिधि हो जगत्में उनका आरब्ध कार्य चलाती रहती है। जिस दिन संस्थामें महापुरुषका भाव मलिन हो उठेगा, या उसके तिरोहित होनेके लक्षण दिखेंगे उस दिन या तो यह विनष्ट हो जायगी या अन्य आकार, अन्य भाव ग्रहण कर जगत्का अनिष्ट करना आरंभ कर देगी। उस समय अन्यान्य महापुरुष जन्म ले सस्थाका विनाश रोक सकते है और अनिष्टकी मात्रा कम कर सकते हैं, किंतु असली भाव लौटा लाना सभव नहीं। आर्य समाजके संस्थापक तेजस्वी स्वामी दयानदके भावमें हम पाते हैं तीन तत्त्व: पुरुषार्थ, स्वाधीनता और कर्म। इन तीनोपर अवलबित उनका प्रचारित धर्म कर्मठ, तेजस्वी, स्वाधीनता-प्रिय पजाबी जातिका प्रिय बन गया है। वह दिखला पाया है अतुल्य कर्म-शृंखला, कार्य सिद्धि और

उत्तरोत्तर उन्नति। जो परीक्षा उपस्थित है हमें नही लगता कि उसमें आर्य समाज उत्तीर्ण होगा। लाला लाजपतरायके निर्वासनके समय समाजमें अनेक दोष प्रकट हुए थे, अब तो हम और भी शोचनीय दुर्वलताके लक्षण देख रहे हैं। जिस मनुष्यत्व और स्वाधीनतापर आधारित था दयानद सरस्वतीका भाव, उस मनुष्यत्व और स्वाधीनताको जलांजलि दे किससे निरापद रह सकेगा, इसी चिंता व भयसे उन्मत्त हो उठा है समाज। विना विचारे परमानंदको निकालना और दो सामान्य पत्नोके प्रकाशनसे लाला लाजपतरायको उनके सभी पदसे हटा देना हैं इस आश्चर्यभरी विह्वलताके प्रमाण। यदि शीघ्र ही मति न लौटी तो आर्य समाज मृत्युकी ओर दौडेगा। जितने भी धर्म जगत्में वर्तमान हैं, मनुष्य-जातिके मनमें अधिकार जमाये हुए हैं—ईसाई-धर्म, वौद्ध धर्म, इसलाम, सिक्ख-धर्म—छोटे हों या वड़े, सभी परीक्षाके समय अपने-अपने भावकी रक्षा कर पाये थे, तभी तो आज वे जीवित हैं।

प्रहारका परिचय

हमने "एक सत्य घटना"के नामसे वंगाली और वंगालके अपमान व लांछनाका जो विवरण प्रकाशित किया था उसमें किसीका नाम नही दिया था। इस आत्म-संयमका कारण था। किंतु हमारे सहयोगी 'हितवादी'ने "प्रहारकका परिचय" शीर्षक पत्न छाप आक्रमणकारी साहवो और मेमोका परिचय दिया है। हमने सुना था कि प्रहारक है राईच साहवका पुत्र, किंतु सहयोगीके पत्न-प्रेरकने विशेष खोज-वीन की है, उनका प्रदत्त सवाद गलत नही हो सकता। जो हो, यदि पूर्व वंगालकी गवर्नमेंट इस संवंधमें अनुसंधान करना चाहे तो उसका पथ सुगम कर दिया गया है। नीचे पत्न उद्धृत कर रहे हैं—

पिछले दो माघके दैनिक 'हितवाद'में 'धर्म'से उद्धृत "सत्य घटना" शीर्षक निवधमें गोयालंदमें एक काव्यतीर्थ पंडित महाशयके प्रति कुछ श्वेतांग और श्वेत महिलाओंद्वारा की गयी लाछनाके विषयसे अवगत हो मैं उसके सच्चे तथ्यके निर्णयकी चेष्टामें जो कुछ जान सका हूँ उसे आपकी देश-प्रसिद्ध पत्रिकामें प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ।

आपकी पत्रिकामें घटना जिस तरह प्रकाशित हुई है वह सारीकी सारी सच है। जिन दो श्वेताग पुगवोंने इस पैशाचिक कांडका अभिनय किया है उनमें

से एक हैं पिछले वर्षके (ढाका) "वायड़ा हंगामा" मुकदमेके प्रधान अभिनेता स्वनामधन्य महावीर श्रील श्रीयुत डी० मटि साहब बहादुर; (इनकी कीर्ति-कहानीसे समाचार-पत्रके सभी पाठक अवगत हैं)। दूसरे हैं मि० ल्याडेल एंड क्लार्कके (पावना) नाकालिया पाट-कुटीर मैनेजर मि० राईचके माननीय साले, यही हैं प्रथम आक्रमणकारी। दु:ख है कि इन साले महाशयका नाम नही जान पाया, पर "राईच साहबके साले" यह परिचय भी कुछ कम नही। महिलाओंमें एक हैं उक्त राईच साहबकी सहधर्मिणी और दूसरी हैं उनकी कनिष्ठा।

गोयालंदमें यह अमानुषिक अभिनय कर ये दूसरे दिन रातको नारायण गंज होते हुए मैमनसिंह आ उपस्थित हुए और यहाँ सिर्फ एक दिन फिलिप पोलो साहबके बंगलेमें ठहर दूसरे दिन जगन्नाथ गंजके रास्तेमें काली गज स्टीमरसे आड़ालिया उतरते हुए वहाँसे मील-भर दूर नाकालिया कुटीमें कुटुंबियोंके साथ ज्ञानतः और खुश मिजाज आहार-विहार कर रहे हैं।

श्री—

इंगलैंडके निर्वाचन

इंग्लैंडमें निर्वाचन आरंभ हो गया है। किस दलका प्राधान्य होगा यह ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। अबतक तो रक्षणशील दलकी ही जीत होती रही है। दक्षिण और मध्य इंगलैंडमें इनका प्रभाव अत्यंत अधिक दीख रहा है। लदनमें दोनों दलोंका समान प्रभाव है शायद। उत्तर भागमें ही उदारनीतिक दलका प्रभाव है एवं वेल्स और स्कॉटलैंड एक तरहसे संपूर्णतः इनकी तरफ है। निर्वाचनके फलस्वरूप उभय दलोकी क्षमता एक समान होनेपर जो भी दल गवर्नमेंट चलाना चाहेगा उसे नेशनलिस्टों (राष्ट्रवादियों) पर ही निर्भर करना होगा। रक्षणशील होमरूल (स्वराज्य) के पक्षपाती नहीं अतः नेशनलिस्टोंके साथ मिल उदारनीतिक दल सरकार बना सकते हैं। किंतु ऐसा हो जानेपर भी वे सरकार नही चला सकेंगे। कारण अभिजात सभाके पास वीटोकी क्षमता तो रह ही जायगी और वे फिर 'बजटको अस्वीकार कर देंगे। अतः जिस पथपर भी क्यो न जायं, सभी बंद है। यह अद्‌भुत उभय संकट एक महा समस्याका विषय बन गया है। इस निर्वाचनके फलके साथ भारतवर्षका कोई खास संबंध नही। पर हम इतनी आशा करते हैं कि उदारनीतिक दलकी विजय

और अभिजात सभाकी वीटोकी क्षमता लुप्त व उससे संबंधित कोई परिवर्तन होनेपर शासन-सुधारके बारेमें हमें थोड़ी सुविधा होगी। फिर चाहे उदार-नीतिक दलकी विजय हो या रक्षणशीलकी, हमारे लिए तो दोनों ही हैं समान।

धर्म
अंक 24
फाल्गुन 2, 1316

विचार

विचारोंकी शुद्धता है समाजका स्तंभ। वह शुद्धता कुछ तो निर्भर करती है जजके मन व चित्तकी शुद्धतापर और कुछ रक्षित होती है स्वाधीन लोक-मतद्वारा। जज राजाके मुख्य धर्मका भार वहन करते हैं, वे हैं ईश्वरके प्रतिनिधि, जैसे ईश्वर विचार-आसनपर बैठ निरपेक्षतासे शत्रु-मित्र, धनी-दरिद्र, राजा-प्रजा इत्यादिका भेद न कर केवल धर्मकी रक्षा करते हैं वैसे ही विचार करना है उनका धर्म। यदि राग-द्वेष, मान-मर्यादा, राजनीतिक या सामाजिक किसी भी उद्देश्य-वश आईनमें धांधली मचाते हैं तो वे तो धर्म-च्युत होते ही हैं साथ ही समाजका बंधन भी शिथिल पड़ जाता है। और यदि अज्ञ या लघु-चित्त व्यक्तिको विचारकके आसनपर बिठा दिया जाय तो उस राज्यका अकल्याण है अवश्यंभावी। शासन-तंत्रके अन्य सभी विभागोंमें धांधली होनेसे अनिष्ट क्षण-स्थायी हो भी सकता है, पर विचारकी अशुद्धतासे राजा, राज्य और प्रजाका ध्वंस होता है। किसी भी शासन-तंत्रके गुण-दोषका निर्णय करनेके समय सहस्र शृंखला, कार्य-क्षमता व सुख शांतिका प्रमाण देना निरर्थक है,—यदि विचार-प्रणाली निर्दोष न हो तो उस शासन-तंत्रकी प्रशंसा मिथ्या है।

लोक-मतकी प्रयोजनीयता

मनुष्य यदि निष्पाप व स्थिर-बुद्धि होता तो विचारके संबंधमें लोक-मतकी स्वाधीनता आवश्यक न होती। किंतु मनुष्यका मन है चंचल,

उसके चित्तमें कामना व राग-द्वेष प्रबल हैं, उसकी बुद्धि है अशुद्ध और पक्षपातपूर्ण। ऐसी अवस्थामें विचारकी शुद्धताकी रक्षाके उपाय हैं तीन। प्रथम उपाय—कानूनवेत्ता प्रौढ, धीर-प्रकृति लोगोंको विचार-आसनपर बिठा उन्हें सब तरहके प्रलोभनोंसे, भय-प्रदर्शन, स्वार्थ-चिंता, पर-आदेश, प्रार्थना, अनुनय आदिसे दूर रखना; चचलमना आईनसे अनभिज्ञ युवकको कभी भी विचार आसनपर आरूढ़ करना उचित नही, विचारकको किसी भी तरहसे शासकके अधीन करना भी है विपज्जनक। यह तत्त्व व नियम इंगलैंडीय विचार-प्रणालीमें पूर्णतः रक्षित है, तभी तो होती है इसकी इतनी प्रशसा। दूसरा उपाय—विचारका महान् निष्कलक आदर्श स्थापित कर उस आदर्शको विचारक, आईन-व्यवसायी और सर्व-साधारणके मनमें दृढ़तः अंकित करना। किंतु आदर्श-भ्रष्ट होना मनुष्यके लिए है अति सहज, इसीलिए लोक-मतको आदर्शके रक्षकके रूपमें खड़ा करना अच्छा है। विचारकको यदि मालूम हो कि आदर्शसे लेश-मात्र भी भ्रष्ट होनेपर लोगोंकी निंदा व कलंकका पात्र बनना होगा तो उनके मनमें अन्याय करनेकी प्रवृत्ति सहज ही आश्रय नही पायेगी।

हमारे देशमें

हमारे देशमें कई कारणोंसे विचारकको शासकके अधीन रखा गया है, इसीसे उनका दायित्व बहुत-कुछ शासकपर पड़ा है। विचारक ईश्वरके प्रतिनिधि न हो शासकके प्रतिनिधि हैं। अतएव शासकका दायित्व है अति गुरुतर। तिसपर शासन-तत्रकी सुविधाके लिए अपक्व-केश, अनभिज्ञ लोगोंपर विचारका भार देना आवश्यक हो गया है। हालमें ही बने नये कानूनके अनुसार विचारकके विचारके बारेमें विपरीत लोक-मत व्यक्त करना निषिद्ध है। प्रचारित किया गया है कि ये व्यवस्थाएं शासनके लिए आवश्यक हैं अतः इसके बारेमें कुछ भी कहनेका अधिकार हमें नही। किंतु इस अवस्थासे शासकपर कितना भारी दायित्व आ पड़ा है यह शासक जरा विवेचना कर देखें। वे स्मरण रखें कि वे इस अपूर्व क्षमताका कैसा प्रयोग कर रहे हैं, यह भगवान् देख रहे हैं, देशका हिताहित, राज्य-शासनका फलाफल और साम्राज्यकी सुख-शांति व स्थायित्व इसीपर निर्भर है।

धर्म
अंक 25
फाल्गुन 9, 1316

भगवत्-दर्शन

देश-पूज्य श्रीयुत कृष्णकुमार मित्रने ब्रह्म-समाजके छात्रोंको बतलाया है कि आगरा जेलमें निर्वासित हो कैसे उन्होंने भगवान्‌की प्रत्यक्ष उपलब्धि व सर्वत्र-दर्शन प्राप्त किया। जब श्रीयुत अरविंद घोषने उत्तरपाड़ामें यही बात कही थी तब पूनाके 'इडियन सोशल रिफार्मर' (समाज-सुधारक) ने उपहास कर कहा था कि देखते हैं जेलमें ईश्वर-दर्शनका ताता लग गया है। उपहासका अर्थ यही है कि ये बाते हैं सिरफिरे पागलोकी कल्पना या मिथ्या प्रतारणा। अरविंद बाबूने जो कुछ कहा था अविकल वही तो कहा है ब्रह्म-समाजके शीर्ष स्थानीय श्रीयुत् कृष्णकुमारने। इसमें ऐसी क्या बात है जो अनेकोको परिहासके योग्य लगी, विचारक और जेलमें उसी सर्वव्यापी प्रेममय व दयामयका दर्शन, यही तो दोनोने लाभ किया है। निःसदेह, एक ही आध्यात्मिक उपलब्धिके दो तरहके तार्किक सिद्धात हो सकते हैं, एक सत्यको ले नाना मतोका होना है स्वाभाविक। किंतु आगरा और अलीपुरमें भिन्न मत और भिन्न प्रकृतिवाले दो व्यक्तियोको जब एक ही प्रत्यक्ष उपलब्धि हुई है तब क्या कोई उसे पागलपन या ढोग कह सकता है? पूनाके 'समाज-सुधारक'के मतानुसार भगवान् कभी भी प्रत्यक्ष दर्शन नही देते। वे रहते हैं नियमोंकी ओटमें। हम प्राकृतिक नियमका अनुभव कर सकते हैं, भगवान्‌के अस्तित्वका अनुभव करना है वाचालोका प्रलाप। कोई विज्ञान-अनभिज्ञ यदि कहे कि अमुक रासायनिक प्रयोग मिथ्या है और कुछ विज्ञान-विद् वैज्ञानिक प्रयोग करके कहें कि यह सत्य है, हमने अपनी आखोसे देखा है तो किसकी बात अधिक विश्वासयोग्य होगी, लोग किसका मत ग्रहण करनेको बाध्य होगे?

जेलमें दर्शन

ऐसे लोगोके अविश्वासका एक और कारण है। जेल है अपवित्र स्थान, खूनी, चोर और डकैतोसे भरपूर। यदि भगवान् दर्शन दें भी तो देंगे पवित्र स्थानमें, साधु-संन्यासियोको, कानूनके जालमें फसे राजनीतिज्ञ, घोर

राजसिक कार्यमें लिप्त संसारीको जेलमें दर्शन देने क्यों जायेंगे? हमारे मतमें साधु-संन्यासीकी अपेक्षा ऐसे लोगोंको ही भगवान् सहजमें पकड़ाई देते हैं। आश्रम व मंदिरकी अपेक्षा जेलमें या वध्य भूमिमें ही लगता है भगवत् दर्शनका तांता। जो मानव-जातिके लिए, देशके लिए खटते हैं, जीवन उत्सर्ग करते हैं वे खटते हैं, जीवन उत्सर्ग करते हैं भगवान्‌के लिए। ईसा मसीहने कहा है कि जो दुःखीको सांत्वना, दरिद्रको मदद, प्यासेको पानी, निरुपायको उपाय देता है वह मुझे ही देता है; मैं ही हूँ वह दुःखी, वह दरिद्र, वह प्यासा, वह निरुपाय। और फिर जेलमें अहंकार पूर्णतः मिट जाता है। वहाँ रत्ती-भर भी स्वाधीनता नहीं रह जाती। भगवान्‌के मुंहकी ओर ताकते ही रहना होता है आहार, निद्रा, सुख, भाग्य और स्वाधीनताके लिए। अतः ऐसी अवस्थामें पूर्ण निर्भरता, पूर्ण आत्म-निवेदन और आत्म-समर्पण जितना सहज हो उठता है उतना और कहीं नहीं। कर्मवीरका आत्म-समर्पण है भगवान्‌को अतिप्रिय उपहार, यही पूजा है श्रेष्ठ पूजा, यही बलि है श्रेष्ठ बलि। यदि इससे भगवान्‌के दर्शन नहीं होंगे तो किससे होंगे?

वेदमें पुनर्जन्म

जब यूरोपियनोंने पहले-पहल आर्य-साहित्यका आविष्कार किया तब उन्हें इतना आनंद हुआ कि समुचित प्रशंसा करनेको शब्द न जुटते, पंडित जो कह देते उसे ध्रुव सत्य मान लेते। इसके बाद पाश्चात्य हृदयमें प्रज्वलित हो उठी ईर्ष्याकी आग। अनेकोंने उस ईर्ष्यावश संस्कृत भाषा और विफल साहित्यको ब्राह्मणोंका जाल व जुआचोरी कह उड़ा देनेकी चेष्टा की। जब वह चेष्टा चल रही थी तब यूरोपीय पंडितोंने एक नया फंदा रचा, उन्होंने प्रमाणित करनेकी चेष्टा की कि हिंदुओंका कुछ भी अपना नहीं, सब विदेशसे आया है। रामायण और महाभारत हैं होमरके अनुकरण, ज्योतिष, काव्य, नाटक, आयुर्वेद, शिल्प, चित्रकला, स्थापत्य विद्या, गणित, देवनागरी अक्षर, पंचतन्त्र आदि जो कुछ भी भारतके गौरवके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे हैं ग्रीस, इजिप्ट बैबिलॉन आदि देशोंसे उधार लिये हुए। गीता है ईसाई-धर्मसे चुराया माल। हिंदूधर्ममें यदि कोई गुण है तो वह है बौद्ध-धर्मका दान,—और हम कहें कि बुद्ध तो हैं भारतवासी, तो वे इस अद्‌भुत कल्पनाका आविष्कार करते हैं कि बुद्ध हैं मंगोल या तुरस्क जातिके। शाक्यगण हैं शक या

Seythian। इसी समय यह मत प्रचारित हुआ कि कर्मवाद और पुनर्जन्म-वाद बुद्धके पूर्ववर्ती हिंदूधर्ममें नही थे, बुद्धने ही इन दोनो मतोकी सृष्टि की। अभी उस दिन देखा, Hindu Spiritual Magazine के सपादकने यह मत प्रचारित किया है कि यह बात ठीक है, पुनर्जन्मवाद वेदमें नही, पुनर्जन्मवाद हिंदूधर्मका अंग नही। मालूम नही, संपादक महाशयने यह बात स्वय वेदका अध्ययन करके कही है या यह है केवल पाश्चात्य पडितोकी प्रतिध्वनि। हम दिखा सकते हैं और दिखायेंगे कि उपनिषदोको पाश्चात्य पंडिततक बुद्धके आविर्भावके पहलेका मानते है। जो उपनिषदें हैं वैदिक ज्ञानका चरम विकास, उन्ही उपनिषदों में पुनर्जन्म ध्रुव और गृहीत सत्यके रूपमें सर्वत्र उल्लिखित है। कर्मवाद भी वेदमें मिलता है। बौद्ध धर्म है हिंदूधर्मकी एक शाखा-मात्र, हिंदूधर्म बौद्ध धर्मका परिणाम नही।

आर्य समाजकी अवनति

आर्य समाजकी अवनति देख हम दुःखित हैं। इस समाजके अध्यक्षने हाल ही ऐसा विचार प्रकट किया है कि राजभक्ति आर्य समाजके धर्म-मतोमें एक मत माना गया है, अतः जो "मैं राजभक्त हूँ" कह शपथ लेगा उसे ही प्रवेश करने दिया जायगा, दूसरे किसीको नही। अन्य धर्म सप्रदायोको भी इस महात्माने इसी विधानका उपदेश दिया है। यदि यह अध्यक्षजीका प्रकृत मत होता तो हम कुछ नही कहते, किंतु आर्य समाजपर बार-बार राजद्रोहका अभियोग लगनेके पहले उसमें उस उत्कट राजभक्तिका उदय नही हुआ था। धर्म सभीके लिए है, जिस धर्म सप्रदायसे रानीतिक मतके कारण कोई बहिष्कृत कर दिया जाय, वह सप्रदाय धर्म संप्रदाय नही, है स्वार्थ-संप्रदाय। मैं राजभक्त हूँ या नही यह राजपुरुष देखेंगे और राजपुरुष भी तो मेरे मनके भावोपर अधिकार करनेकी चेष्टा नही करते, वे केवल यही चेष्टा करते हैं कि राजभक्तिके विरुद्ध-भावके प्रचारसे देशकी शाति नष्ट न हो, उनका अधिकार नष्ट न हो। जिस धर्म-मदिरके द्वारपर यह नहीं पूछा जाता कि तुम भगवद् भक्त हो कि नही, पूछा जाता है तुम राजभक्त हो कि नही, उस मदिरमें कोई भगवद्-भक्त पग न रखे। Render unto Caesar the things that are Caesar's, unto God the things that are God's—जो सम्राटका प्राप्य है उसे ही सम्राटको अर्पण करो, जो भगवान्‌का प्राप्य है वह भगवान्‌का है, सम्राट्‌का नही।

परिशिष्ट

कोरिया और जापान

स्वाधीनताकी प्रबल आकाक्षा सारे एशियामें व्याप अपूर्व लीला खेल रही है। अघटनघटनापटीयसी महाशक्तिके लिए कुछ भी असाध्य, असंभव नही। हम जिसे असाध्य कहते हैं, महाशक्तिकी प्रेरणासे, महाशक्तिके अभ्रात साधनोंसे वह सहज-साध्य हो जाता है। हम जिसे असभव कहते हैं, महाशक्तिकी इच्छासे वह हो जाता है सभव और अवश्यभावी। दुर्बल फारस दो प्रकांड आसुरिक शक्तियोकी खरलमें पडकर भी सहसा उठ खडा हुआ है, अनगिनत विघ्नोको पार कर धीर, दृढ गतिसे बल जुटा रहा है। मुमूर्षु तुर्किस्तान न जानें कहाँसे सजीवनी सुधा पान कर नये बलसे बलीयान् हो, नये यौवनावेगसे प्रफुल्ल हो यूरोपके विस्मय व भयका कारण बन रहा है। प्राचीन चीनका स्वेच्छाचारी राजतत्र अपने ही आग्रहसे प्रजातंत्रमें परिणत हो रहा है। अरबमें, तुर्किस्तानमें, भारतमें जो भी एशियाई पराधीन हैं उन सभी देशोमें स्वाधीनताकी अदम्य आकाक्षा अंगड़ाई ले सब देशोको आलोड़ित कर रही है। अफगानिस्तानमें भी अशातिकी पहली झलक दिखायी पडने लगी है। केवल बर्मा व स्याममें इस प्रवाहने बहना शुरू नही किया है। सारा एशिया है जीवित, जाग्रत, स्वाधीनताके सग्राममें जयाभिलाषी।

खेद है कि इस उत्थानके समय एशियाई एशियाईके बीच विरोध उठ खडा हुआ है। तुर्क-साम्राज्यमें जो अशांति है वह सुलतान अब्दुल हमीदके पहलेके किये गये पापके प्रायश्चित्तके रूपमें नये प्रजातंत्रको भोगना पड रहा है। इसमें संदेह नही कि इस प्रजातंत्रके उदार, प्रतिभाशाली और तीक्ष्णबुद्धि राजनीतिविद् नेता इस अशातिको शीघ्र ही प्रशमित करेंगे। पर पूर्वी एशियामें जापानकी साम्राज्य-लिप्सा और वाणिज्य-विस्तारकी आकाक्षासे जो बाधा पनपी है उसे हटाना उतना सहज नही। जापानके प्रधान और पूज्यतम नेता, नये जापानके स्रष्टा, पाता और विस्तारकर्ता हिरोबूमि इतो पराधीन कोरियाईके हाथ मारे गये हैं। जो राष्ट्र दूसरेकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करता है वह महापाप करता है इसमें कतई सदेह नही; पर सारे एशियाके आवश्यक हितकार्यके लिए भगवान्की इच्छासे जापानने कोरियामें प्रवेश किया है और जबतक उसके आगमनका उद्देश्य सिद्ध नही हो जाता तबतक कोरियाके हजार प्रयत्नसे भी वह बधन नही कटने का। वह उद्देश्य

है—रूसके हाथसे उत्तरी और पूर्वी एशियाकी रक्षा। यह उद्देश्य कोरियासे सपन्न नही हो सकता। जापानको ही भगवान्‌ने उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उपयुक्त शक्ति, सामर्थ्य, जनवल, धनवल और साधन दिये हैं। तिसपर कोरिया है उत्तरी एशियाका गढ—जो कोई भी कोरियाको जीत सकेगा वही उत्तरी एशियाका प्रभु बन विराजेगा। रूसने यदि कोरियामें प्रवेश किया—रूश-जापानके युद्धके पहले रूसने वहा प्रवेश किया था—तो जापानकी स्वाधीनता दो दिन भी नही टिकने की। ऐसी अवस्थामें कोरियापर अधिकार जमाना है जापानकी आत्म-रक्षाका आवश्यक साधन; इसे पाप-कर्म नही कहा जा सकता। यह सिर्फ आत्म-रक्षा ही नही है, यह है ईश्वरनिर्दिष्ट पुण्य-कार्यका अनिवार्य अग। जबतक साइबेरिया पुनः एशियाके करतलगत नही हो जाता, जबतक क्रूर, अत्याचारी और परस्वापहारी रूसका राज्य उस देशमें नष्ट नही हो जाता, तबतक एशियाकी स्वाधीनता निरापद नही हो सकती। साइबेरिया है जापानका प्राप्य। जापान ही रूसको साइबेरियासे हटा सकता है। कोरियाको दखल न करनेसे हार्विन और ब्लाडिवोस्टको भी दखल नही किया जा सकता। अतः भगवान्‌की इच्छा और उनकी उद्देश्य-सिद्धिके लिए जापान कोरियामें घुसा है। यह उद्देश्य विफल होने का नही। जबतक ब्लाडिवोस्टक जापानके हाथ नही आ जाता तबतक कोरियाकी स्वाधीनताकी इच्छा व चेष्टा विफल रहेगी।

किन्तु इस अनिवार्य कार्यमें जापानियोने अनावश्यक कठोरता बरती और अत्याचार ढाया—इसमें जो थोड़ा-बहुत दोष कोरियाका है इसे नकारा नही जा सकता; पर सारा दोष कोरियाका नही। नीच श्रेणी व नीच प्रकृति जापानियोका लोभ, विजयकी मत्तता और पाशविक प्रवृत्ति हैं इसके कारण। इस अत्याचारसे कोरियावासियोकी क्रोधाग्नि भभक उठी तब जापानके नेता हिरोवूमि इतोने स्वयं कोरिया जा इस कठिन व विपज्जनक महत् कार्यके भारको अपने ऊपर लिया। व्यक्तिगत अत्याचार तो उन्होने बंद करा दिये पर खुद कोरियावासियोपर और भी जोर-जुल्म ढाने लगे। कोरियाका स्वतंत्र जीवन, स्वतन्त्र शिक्षा, स्वतन्त्र आचार-व्यवहार, स्वतन्त्र अस्तित्वके प्रत्येक छाप-चिह्नको कठोर निर्दय पेषणसे चूर-मार कर कोरियाको जापानका उपनिवेश बना जापानी शिक्षा, जापानी सभ्यता, जापानी आचार-व्यवहार, जापानी कार्य-दक्षता, कार्य-प्रणाली व शृखला, जापानी मंत्र, जापानी तन्त्रको कोरियावासियोंके तन-मन-प्राणमें अकित करनेमें जुट गये। इतो कोई साधारण राजनीतिज्ञ नही थे, उनके जैसे महापुरुष उन्नीसवी शताब्दीमें राजनीति-क्षेत्रमें अवतीर्ण नही हुए। नैपोलियनके बाद उन्हें ही जगत्‌का

श्रेष्ठ कर्मी कहा जा सकता है। ऐसे व्यक्तिने इस कठिन कार्यको क्यों इस तरहके नृशंस साधनोसे सपन्न करनेकी चेष्टा की? अंशतः अतिरिक्त देशहित व साम्राज्यकी लिप्सासे। भगवान्की विभूति भी मानव शरीर धारण करनेपर अपनी निर्मल बुद्धिपर मानव स्वभावका रग चढा जगत्का कार्य करती है। इतो थे जापानी, अतः उनमें थे जापानियोके गुण, जापानियोंके दोष। यदि कोरिया चिरकालतक जापानी साम्राज्यमें रहे तो जापानका गौरव बढ़ेगा, बलवृद्धि होगी और उत्तरी एशियामें उसकी प्रतिष्ठा व विस्तारका पथ निष्कटक होगा। पर एक दूसरा कारण भी ढूंढा जा सकता है—अपने किये पापके फलसे कोरियानिवासियोको यह लांछना भोगनी पड़ी। जब विजातीय विदेशीय विधर्मी रूस राज्यने कोरियामें अपना सर्वनाशी विस्तार आरभ किया तब कोरियावाले स्वाधीनता खो जानेके भयसे आशकित नही हो उठे थे, वरन् चीनके प्रति विद्वेष, जापानके प्रति विद्वेषके कारण रूसके साथ संधि और मैत्री स्थापित कर अपने विनाश, जापानके विनाश, चीनके विनाश, सारे एशियाकी स्वाधीनताके विनाशमें जान-बूझकर मदद दे रहे थे। यह पाप कोई मामूली पाप नही। कितने दिनतक कोरियाको इसका प्रायश्चित्त भोगना पड़ेगा इसकी कोई इयत्ता नही। फिर जब जापानने, एशियाका रक्षक और परित्राता बन, कोरियामें प्रवेश किया, रूसको उत्तरी एशियाके गढ़से चन्द दिनोमें निकाल बाहर किया, तब कोरियाने, अपने श्वेतवर्ण बन्धुके दु खसे दुखित हो जापानके विरुद्ध आचरण किया। अन्तमें जब जापानके अत्याचारसे अधीर हो उठे तब भी निज मनुष्यत्वके बलसे उठनेकी चेष्टा न कर पहले तो रूसके साथ षड्यन्त्र किया, फिर उसमें भी विफल मनोरथ हो यूरोपके दरपर रोनेके लिए अपने प्रतिनिधि भेजे। कैसा आश्चर्यमय प्रभेद। शत्रु निपीड़ित हो जापान व चीनने जब यूरोपमें प्रतिनिधि-संघ (Commission) को भेजा तो किस उद्देश्यसे भेजा? शत्रुओमें ऐसी कौन-सी विद्या, गुण, प्रणाली व शृखला है जिससे वे अजेय और दुर्धर्ष पराक्रमशाली हो उठे है, उसे जान अपने देश लौट आ उसी विद्या, गुण, प्रणाली व शृंखलाको स्वदेशमें संस्थापित कर स्वाधीनताकी रक्षा और शत्रुके विनाशके पथको उन्मुक्त करना था उस प्रतिनिधि-सघको भेजने का उद्देश्य। और इस अवस्थामें कोरियाका प्रतिनिधि-सघ क्यों यूरोप दौड़ा गया? अर्थलोलुप, परदेशलोलुप पाश्चात्य राष्ट्रोंके सामने गिडगिड़ाने, उन्हें जापानके विरुद्ध भड़काने—यही था भिक्षुक-यात्राका उद्देश्य। मूर्ख भी जानता है कि कृतकार्य होनेसे जापानका सर्वनाश हो जाता, पर कोरियाको स्वधीनता न मिलती। इस नीचता, इस बार-बारके महापातक आचरणके फलसे

कोरिया अब क्षिप्तप्राय हो रहा है। हिरोबूमि इतोने देखा कि कोरिया यदि जापानसे अलग रहा तो इस दुर्वलकी स्वाधीनता-चेष्टाके कारण एक-न-एक दिन पाश्चात्य शत्रु जापानको, एशियाको विनाश करनेका सुअवसर जरूर प्राप्त करेंगे, पूर्व एशियामें एक वार फिर प्लासीका काड अभिनीत होगा। अतः कोरियाके स्वातंत्र्यका विनाश करना है आत्मरक्षाका श्रेष्ठ साधन। एक वार कृत निश्चय होनेपर कर्मवीर अपने निर्दिष्ट पथसे डिगे नही। इतोने अपनी सारी शक्ति, प्रतिभा, विद्या लगा दी कोरियाकी स्वतन्त्रताको नीरव निष्पेषणसे नेस्त-नाबूद करनेमें।

पापोका प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। पापोमें भी दो पाप हैं विशेष घृण्य व अमार्जनीय—क्रूरता और नीचता। जापानकी क्रूरता बनी नये जापानके निर्माता, पृथ्वीके श्रेष्ठ कर्मवीर इतोकी हत्याका कारण। कोरियाकी नीचताने बना दिया उसकी स्वाधीनता और स्वातंत्र्यके विनाशको अवश्यंभावी। इस हत्यासे कोरियाकी स्वाधीनता प्राप्तिमें कोई सुविधा नही होगी। जापानियोमें मृत्यु-भय नही, वे अततक दृढ़तः इतोकी राजनीतिका अनुसरण करेंगे। कोरियाका स्वातंत्र्य विनष्ट होगा। कोरियाके परिणामसे भारत एक आवश्यक सवक सीख सकता है। जिस पातकके कारण कोरिया विनाशोन्मुख हुआ है, सहस्र वर्षोंसे हम वही पातक करते आ रहे हैं, उसका फल भी भोग रहे हैं। फिर भी हम नही चेतते। दूसरेपर निर्भर रहनेसे किसी भी राष्ट्रका कल्याण नही हो सकता, भ्रातृ-विरोधसे दूसरेकी शरण लेनेमें अपना विनाश, भाईका विनाश अनिवार्य है। राष्ट्रीयताका पहला नियम है अपने वलसे वलीयान् होना, अपनोसे अपने-आप निपटना। जो भी इस नियमका उल्लंघन करेगा, वह हिन्दू हो या मुसलमान, नरमपंथी हो या चरमपथी, उसे पापका प्रायश्चित्त करना ही होगा।